वृन्दावनलाल वर्मा
उपन्यास
और
कला

लेखक—
शिवकुमार मिश्र एम० ए०

प्रकाशक—
रवि प्रकाशन कानपुर

प्रथम संस्करण] १९५६ [मूल्य ६)

— अपनी बात —

मुझे अधिक कुछ नहीं कहना, प्रस्तुत पुस्तक के विषय में केवल थोड़ी सी बातें ही कहना चाहता हूं। वर्मा जी के उपन्यासों पर लिखने की मेरी आकाँक्षा बहुत दिनों से थी। इच्छा तो यह थी कि वर्मा जी के सम्पूर्ण साहित्य पर कुछ लिखूँ पर फिल-हाल उनके उपन्यासों तक ही अपने विवेचन को सीमित रख सका हूं। यदि अवकाश मिला तो नाटक और कहानियों पर फिर कभी विचार किया जायगा।

वर्मा जी एक श्रेष्ठ उपन्यासकार हैं, ऐतिहासिक उपन्यासकार तो उनकी समता का हिन्दी में दूसरा है ही नहीं। अपने अब तक के साहित्यिक जीवन में उन्होंने कुल मिलाकर कोई १६, १७ छोटे बड़े उपन्यास लिखे हैं जिनमें से कुछ तो हिन्दी साहित्य के गौरव हैं। ऐसे उपन्यासकार के प्रति आलोचक वर्ग की उदासीनता मुझे अखरी, अन्ततः मैंने निश्चित किया कि मैं ही वर्मा जी के उपन्यासों पर कुछ न कुछ लिखूँगा। प्रस्तुत पुस्तक इसी दिशा में किया गया प्रयत्न है। पाठकों एवं विद्वानों से मेरा अनुरोध है कि वे मेरी त्रुटियों की ओर से आँख न मूंदें और न ही उन्हें टाल दें वरन् मुझे उनसे सूचित करें जिससे भविष्य में मैं और भी अधिक सावधानी से इस कार्य में लगूं। वर्मा जी के उपन्यासों पर दो तीन वर्ष पूर्व भी मैंने अपने विचार व्यक्त किये हैं पर आज मैं अनुभव करता हूं कि मेरी धारणाएं पहले से बहुत कुछ बदल गई हैं। पहले मेरा दृष्टिकोण एक साधारण रस वादी पाठक का दृष्टिकोण था, और अब एक निष्पक्ष आलोचक का है। यही कारण है कि वर्मा जी के उपन्यासों के सम्बन्ध में व्यक्त किये गये अपने पिछले विचारों को आज मैं पूरी तौर से त्याग रहा हूं; उनके उपन्यासों के सम्बन्ध में मेरी जो धारणाएं इस पुस्तक में व्यक्त हुई हैं, वही मेरी अन्तिम धारणाएं हैं। मेरी विचार धारा में होने वाले इस परिवर्तन का कारण क्या है, इसे बतलाने में मैं असमर्थ हूं हाँ इतना अवश्य कह सकता हूं कि मैंने प्रस्तुत पुस्तक में जो कुछ लिखा है, अपनी स्वतंत्र बुद्धि से, बिना किसी के मत का सहारा लिए हुए, बिना किसी के विचारों से प्रभावित हुए? कहाँ तक सफल अथवा असफल हुआ हूं, इसे तो भविष्य बतलायेगा।

वर्मा जी के उपन्यास मुझे एक कारण से विशेष प्रिय लगे—वह कारण है उन उपन्यासों में वर्मा जी की जनसाधारण के प्रति गहरी सहानुभूति। आज के संघर्ष शील युग में जन साधारण की प्रगति चाहने वाले, उसे उपयुक्त संबल प्रदान करने वाले साहित्य-कारों की अत्यधिक आवश्यकता है। वर्मा जी ऐसे ही साहित्यकार हैं, इसी कारण

उनके उपन्यास मुझको अच्छे लगे। जनसाधारण के प्रति मेरी भी सहानुभूति है, सामन्तीय व जनसाधारण का शोषण करने वाली अन्य व्यवस्थाओं से मैं भी घृणा करता हूं। यह भी किसी विशेष प्रभाव के कारण नहीं प्रत्युत अपनी स्वतंत्र विचार धारा के कारण, मानवता के नाते, जनसाधारण का ही एक अंग होने के नाते। क्या भारतीय, क्या पाश्चात्य, कोई भी दर्शन, कोई भी विचार धारा यदि जनसाधारण के प्रति अपनी सहानुभूति रखती है तो मैं उसका कायल हूं। उन पाश्चात्य विचारों से भी मैं सहमत हूं जो एक स्वस्थ्य समाज की स्थापना एवं स्वस्थ्य जीवन दर्शन की ओर इंगित करते हैं। वैसे भारतीय संस्कृति एवं मानवता के उज्वल भविष्य के प्रति मेरी अडिग आस्था है और उसे मैं अन्त तक नहीं त्याग सकता। भारतीय संस्कृति की परिधि इतनी व्यापक है कि वह सहज में ही अपने अनुरूप समस्त वाह्य विचारधाराओं, मान्यताओं एवं आदर्शों को आत्मसात कर लेती है। वर्मा जी के उपन्यासों पर विचार करते समय मैंने यही प्रयत्न किया है कि अपनी मान्यताओं पर कायम रहूं।

जैसा मैंने कहा कि वर्मा जी के उपन्यासों की आलोचना मैंने अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से की है। वर्मा जी के उपन्यासों पर अभी तक विस्तार पूर्वक कुछ नहीं लिखा गया है, लिखा भी गया हो तो मेरे देखने में वह नहीं आया अतः मैंने उनके उपन्यासों से सम्बन्धित किसी अन्य सामग्री से कोई भी सहायता नहीं ली है। कतिपय विद्वानों द्वारा लिखे गये छोटे मोटे लेख अवश्य मेरी सहायता के पात्र बने, उन विद्वानों का मैं आभारी हूं। ऐसे महानुभावों के नाम पुस्तक में ही आ गये हैं। भूल से जिन महानुभाव का नाम रह गया हो उनसे मेरा निवेदन है कि वे इसे अनजान की भूल समझ कर इस पर विशेष ध्यान न दें। डा० रामविलास शर्मा के 'नया पथ' में प्रकाशित दो लेख मुझे अत्यन्त सुन्दर लगे। उनसे मैंने सहायता ली है, अतएव डाक्टर शर्मा का मैं विशेष आभारी हूं।

वर्मा जी के सुपुत्र श्री सत्यदेव वर्मा का मैं अत्यधिक अनुग्रहीत हूँ। उनसे मुझे समय २ पर पुस्तक लिखने में अनेक प्रकार की सहायता मिली है जिसे मैं नहीं भूल सकता। यदि सत्यदेव जी का सहयोग मुझे प्राप्त न होता तो कदाचित पुस्तक में कतिपय त्रुटियाँ रह जातीं।

आदरणीय आचार्य नन्ददुलारे जी वाजपेयी ने पुस्तक के सम्बन्ध में अपनी जो कुछ सम्मति व्यक्त की है, उससे पुस्तक का महत्व मेरी समझ में अत्यधिक बढ़ गया है। मेरी यही कामना है कि मैं भविष्य में भी उनका कृपा पात्र रहूँ एवं अपने को उनके आदर्शों के अनुरूप साबित कर सकूँ ? उनकी उदारता, विद्वता एवं विशाल हृदयता से मैं सदैव प्रभावित रहा हूँ।

अपने उन मित्रों को भी धन्यवाद देना न भूलूँगा जिन्होंने पुस्तक रचना में विविध प्रकार से मुझे सहयोग दिया है। कृष्णचन्द्र अग्निहोत्री एम० ए०, दुर्गाप्रसाद तिवारी एम० ए० एल एल० बी०, केशव सिंह राठौर एम० ए०, राजेन्द्रबहादुर पालीवाल एवं सुदेल परमार मेरे ऐसे ही मित्र हैं।

पुस्तक के छपते समय यद्यपि प्रूफ आदि पढ़ने में विशेष सावधानी बरती गई है फिर भी हिन्दी में छपी अधिकांश पुस्तकों की एक विशेषता रही है और वह विशेषता है उनमें सब प्रकार की सावधानी बरतने पर भी अशुद्धियों का रह जाना। मेरी पुस्तक भी इस विशेषता से शून्य नहीं है। पाठकों को पुस्तक पढ़ते समय यदा कदा कुछ अशुद्धियाँ मिलेंगीं। मेरा उनसे अनुरोध है कि वे उन्हें सुधार कर पढ़ें और उन्हें अनजान की भूलें समझें। इससे अधिक कह ही क्या सकता हूं?

अन्त में मैं पुस्तक के प्रकाशक महोदय को धन्यवाद देता हूं जिन्होंने साहित्य प्रेमियों के सम्मुख प्रस्तुत पुस्तक रखने में मेरी सहायता की! बस !!

१ जनवरी १९५६
रामबाग, कानपुर।

शिवकुमार मिश्र

— विषय-क्रम —

विषय प्रवेश-

[हिन्दी उपन्यास साहित्य, वर्मा जी से पूर्व] १—१६

वृन्दावनलाल वर्मा, उपन्यास और कला १७—१८

ऐतिहासिक उपन्यास

[१] गढ़ कुण्डार १६—२७

[२] विराटा की पद्मिनी २८—४०

[३] मुसाहिब जू ४१—४३

[४] झाँसी की रानी ४४—५३

[५] कचनार ५३—६४

[६] मृगनयनी ६५—८३

[७] टूटे कांटे ८४—६३

सामाजिक उपन्यास ६४—६५

[१] अचल मेरा कोई ६६—१०६

[२] प्रेम की भेंट १०७—११२

[३] लगन ११३—११६

[४] कुण्डली चक्र १२०—१३४

[५] प्रत्यागत १३५—१४०

[६] संगम १४१—१५०

[७] कभी न कभी १५१—१५५

[८] अमर बेल १५६—१५८

विविध

[१] सोना १५६—१६२

उपन्यास-शिल्प
[कथावस्तु, चरित्र चित्रण, भाषा शैली, कथोपकथन] १६३—२२८
उपन्यासों की ऐतिहासिकता २२९—२४६
देश काल चित्रण २४७—२५५
रोमान्स और वर्मा जी के उपन्यास २५६—२६५
बुन्देलखण्डीय चित्र २६६—२८२
समस्याएँ २८३—२९४
उपसंहार २९५—२९६
परिशिष्ट–१
मध्यकालीन सामन्तीय युग और वर्मा जी का दृष्टिकोण २९७—३०९
परिशिष्ट–२
अहिल्याबाई ३१०—३१४

अभिन्न

'कुन्तल मेघ'

को

विषय प्रवेश:—

हिन्दी उपन्यास साहित्य : वर्मा जी से पूर्व—

हिन्दी उपन्यास पूर्णतः आधुनिक युग की देन हैं। आधुनिक सभ्यता के विकास के साथ साथ साहित्य की यह शाखा भी निरन्तर विकसित होती गई है। जिस समय हिन्दी साहित्य का प्रथम उपन्यास 'परीक्षा गुरु'* प्रकाशित हुआ, देश अनेक महत्वपूर्ण राजनैतिक एवं सामाजिक आन्दोलनों तथा उथल पुथलों के बीच से गुजर रहा था। १८५७ के विद्रोह और उसकी असफलता ने देश में अंग्रेजी शासन को पूर्ण रूपेण केन्द्रित कर दिया था। सामन्तीय व्यवस्था दम तोड़ चुकी थी और उसके स्थान में नवीन पूंजीवादी व्यवस्था ने अपने पैर जमाने प्रारम्भ कर दिये थे। अंग्रेजों की साम्राज्यवादी, कूटनीतिक चालें जहां एक ओर भारतीयों की राष्ट्रीय संस्कृति, उनकी कला एवं साहित्य का शोषण कर रही थीं वहां दूसरी ओर अपने पिछलगुये स्वामिभक्त भारतीयों की एक सेना भी तैयार करती जा रही थीं। परन्तु इसके बावजूद भी कतिपय देशभक्त देश की इस दुर्गति की ओर से सचेष्ट थे और नवीन वैज्ञानिक अनुसन्धानों के प्रकाश में एवं उसके परिणाम स्वरूप जागृत राजनैतिक एवं सामाजिक चेतनाओं की विस्तृत भूमि में भारतीयों को देश की बदली हुई परिस्थितियों के साथ साथ आगे बढ़ाने में प्रयत्नशील थे। देश में अनेक नवीन राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं का उदय हुआ जो अपने सुधारवादी दृष्टिकोण से युग युग से अन्धविश्वासों और संकीर्णताओं में खोये अशिक्षित और निरीह भारतीयों को अनुप्राणित कर रही थीं। ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, रामकृष्ण मिशन आदि इसी प्रकार की संस्थायें थीं जिन्होंने बदले हुए जमाने को परख कर उसके अनुरूप अपनी गतिविधियों का प्रसार किया। 'परीक्षा गुरु' उपन्यास में इन बदले हुए दृष्टिकोणों का पूर्ण आभास पाया जाता है।

'परीक्षा गुरु' के प्रकाशन से पूर्व हिन्दी जनता अरबी, फारसी एवं संस्कृत की उपदेशात्मक, रोमानी प्रेम से युक्त, साहस और कौतूहल तथा जादू टोनों से पूर्ण आख्यायिकाओं एवं कहानियों से ही अपना मनोरंजन कर रही थी! देश में होने वाले सामाजिक और राजनैतिक आन्दोलनों से वह एक प्रकार से अपरिचित ही थी। प्रश्न यह था कि उसके सम्मुख ऐसी कथा कहानियों को प्रस्तुत किया जाय जो उसकी सामाजिक और राजनैतिक चेतना को तो संस्कृत कर ही सकें, उसे स्वस्थ्य मनोरंजन भी प्रदान कर

---

* सन् १८८१ ई० —लाला श्रीनिवासदास !!

सकें। कथा कहानियों की ओर जनता की अत्यधिक रुचि होने के कारण यह और भी आवश्यक हो गया था।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जहां साहित्य के अन्य अंगों की समृद्धि पर बल दिया वहां उपन्यासों की ओर भी उनकी दृष्टि गई! बंगला एवं संस्कृत से अनेक कथाओं के अनुवाद किये गये परन्तु भारतेन्दु जी के प्रयत्नों से भी उपर्युक्त आवश्यकता की पूर्ति न हो सकी।

इसी समय परीक्षा गुरु का प्रकाशन हुआ जिसने अपने युग की बदली हुई परिस्थितियों के प्रति अपनी सचेष्टता का परिचय दिया। हिन्दी में सामाजिक उपन्यासों का प्रारम्भ भी इसी से होता है। हिन्दी में अंग्रेजी ढंग के पहले मौलिक उपन्यास के रूप में भी इसे ही विभूषित किया गया है। इसके निवेदन में लाला श्रीनिवास दास ने लिखा है "अपनी भाषा में अब तक जो पुस्तकें लिखी गई हैं उनमें अक्सर नायक नायिका वगैरे का हाल ढेर से सिलसिलेवार लिखा गया है— जैसे कोई राजा, बादशाह, सेठ, साहूकार, का लड़का था। उसके मन में इस बात से यह रुचि हुई और उसका यह परिणाम निकला। ऐसा सिलसिला इसमें कुछ नहीं मालूम होता ··· ··· अपनी भाषा में यह नई चाल की पुस्तक होगी।" लेखक का उपर्युक्त कथन बहुत अंशों में सत्य है। इसमें केवल नायक नायिका की प्रेम सम्बन्धी घिसी पिटी कहानी का ही अभाव नहीं है वरन इसमें लेखक ने जीवन के अन्य पहलुओं की ओर भी व्यापक दृष्टि डाली है। इसमें लेखक ने दिखाया है कि किस प्रकार दिल्ली का एक व्यवसायी अपने चापलूस मित्रों की चाटुकारी में अपने पथ से भ्रष्ट होकर ऋण के बोझ से दब जाता है और किस प्रकार एक सच्चे मित्र के उपदेशों के फलस्वरूप उसका परित्राण होता है। गुरु के रूप में उसका यह मित्र ही उसका वास्तविक पथ प्रदर्शन कर उसे मुक्ति दिलाता है। एक छोटी सी कहानी में अपने कौशल से लेखक ने अपने उद्देश्य की जो पूर्ति की है वह निश्चय ही सराहनीय है। चरित्र चित्रण के क्षेत्र में भी लेखक ने अपूर्व सफलता प्राप्त की है। उपन्यास के नायक मदनमोहन और सच्चे मित्र के रूपमें ब्रजकिशोर के चरित्रों के गुणों अवगुणों को लेखक ने विस्तार के साथ प्रदर्शित किया है। अंग्रेजी सभ्यता की चकाचौंध में आकर पथ भ्रष्ट होने वालों के सच्चे प्रतीक के रूप में मदनमोहन एवं अपनी जातीयता और संस्कृति पर निष्ठा रखने वाले स्वदेश भक्त के प्रतीक के रूप में ब्रजकिशोर ने उपन्यास में अद्भुत आकर्षण ला दिया है। ब्रजकिशोर के निम्नांकित वाक्यों से हमें उस युग के राजनैतिक और सामाजिक चेतना से अनुप्राणित देशभक्त भारतीयों का पूर्ण परिचय मिलता है। वह कहता है— "जब तक हिन्दुस्तान में और देशों से बढ़ कर मनुष्य के लिये वस्त्र और सब तरह के सुख की सामग्री तैयार होती थी,

रक्षा के उपाय ठीक ठीक बन रहे थे, हिन्दुस्तान का वैभव प्रतिदिन बढ़ता जाता था परन्तु जब से हिन्दुस्तान का एका टूटा और देशों में उन्नति हुई वाफ और बिजली आदि कलों के द्वारा हिन्दुस्थान की अपेक्षा थोड़े खर्च, थोड़ी मेहनत और थोड़े समय में सब काम होने लगा हिन्दुस्थान की घटती के दिन आ गये !"

जैसा कहा जा चुका है सामाजिक उपन्यासों की जिस परम्परा का प्रारम्भ लाला श्रीनिवासदास ने किया वह परम्परा आगे भी विकासशील रही ! इस प्रकार के अन्य उन्पयास लेखकों में पं० बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्ण दास एवं श्री लज्जाराम शर्मा विशेष उल्लेखनीय हैं। पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय का नाम भी इन्हीं के साथ लिया जा सकता है।

सन् १८८६ ई० में पं० बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रह्मचारी' प्रकाशित हुआ। लेखक के अनुसार इसकी रचना का मुख्य उद्देश्य छात्रों को उपदेश देना था। इसमें नायक विनायक अपने चरित्र बल से एक डाकू का हृदय जीत लेता है और उसे भी सदाचार पथगामी बना देता है। १८९२ में पं० बालकृष्ण भट्ट की दूसरी कृति 'सौ अजान एक सुजान' प्रकाश में आई ! इसका कथानक भी सदाचार और सद् वृत्तियों पर आधारित है। दो धनी व्यापारी भाई किस प्रकार कुसंग में पड़ कर चरित्र भ्रष्ट होते हैं और उनका एक मित्र अपने आचरणों और उपदेशों से किस प्रकार उन्हें सत्पथ पर लाता है, यही कथा का आधार है। परन्तु भट्ट जी की इन कृतियों का साहित्यिक मूल्य अधिक नहीं आँका जा सकता कारण इनमें वे सीमा से अधिक उपदेशक हो उठे हैं और स्थान स्थान पर उनका यह रूप उपन्यास में अनाकर्षण का भागी हो उठा है।

सन् १८९० ई० में श्री राधाकृष्ण दास का 'निस्सहाय हिन्दू' प्रकाशित हुआ। इसका मूल विषय गोवध निवारण है। एक समस्या को चित्रित करने के कारण अवश्य इसका महत्व है वैसे कथा का ताना बाना अत्यन्त ही शिथिल और अस्तव्यस्त है।

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय भी १८९९ में 'ठेठ हिन्दी का ठाट' लेकर उपन्यासकार के रूप में सामने आये। प्रस्तुत उपन्यास में 'ठेठ हिन्दी का तो ठाठ' है ही अनमेल विवाह के दुष्परिणामों पर भी अच्छा प्रकाश डाला गया है। कुछ वर्षों पश्चात् 'अधखिला फूल' नामक आपका एक अन्य उपन्यास भी प्रकाश में आया।

श्री लज्जाराम शर्मा ने कई उपन्यास लिखे जिनमें 'धूर्त रसिकलाल' स्वतन्त्र रमा और परतन्त्र लक्ष्मी', 'आदर्श दम्पति' 'बिगड़े का सुधार' और 'आदर्श हिन्दू' उल्लेखनीय हैं। विषय का बहुत कुछ ज्ञान उपन्यास के शीर्षकों से ही हो जाता है।

सामाजिक और नैतिक उपन्यासों की परम्परा किस प्रकार आगे की ओर विकसित होती रही, इसका कुछ अनुमान ऊपर के उपन्यासों से हो जाता है परन्तु एक

बात ध्यान देने की यह है कि इस युग में केवल यही धारा विकासशील नहीं रही, कुछ दूसरी धारायें भी बलवती होकर आगे बढ़ीं और सबसे अधिक आकर्षण का विषय बनीं। यदि कहा जाय कि यह धारायें हिन्दी उपन्यासों के आदि काल का प्रतिनिधित्व करती हैं तो कोई अत्युक्ति नहीं है। हिन्दी उपन्यासों के इस आदि काल में सामाजिक और नैतिक उपन्यासों के विपरीत नई धाराओं को प्रवाहित करने वालों में सबसे अग्रणी और प्रभावशाली तीन व्यक्ति हैं — श्री देवकीनन्दन खत्री, श्री किशोरीलाल गोस्वामी एवं श्री गोपालराम जी गहमरी! इनके द्वारा जिन धाराओं का प्रवर्तन हुआ वे निम्नलिखित हैं—१ तिलस्मी धारा—प्रवर्तक श्री देवकीनन्दन खत्री!

२ सामाजिक ऐतिहासिक प्रेम और रोमांस की धारा—प्रवर्तक श्री किशोरीलाल गोस्वामी।

३ जासूसी धारा—प्रवर्तक श्री गोपालराम गहमरी!

हिन्दी उपन्यासों के आदि काल में जितनी प्रसिद्धि बाबू देवकीनन्दन जी खत्री को मिली उतनी कदाचित ही किसी अन्य को मिली होगी! उस युग में आपके उपन्यासों का एक समाँ सा बँध गया था। आपने अपने उपन्यासों का उद्देश्य मनोरंजन रक्खा और अपनी प्रतिभा और कल्पना के बल पर एक आश्चर्यमयी सृष्टि करने में सफल हुए। आपके तिलस्मी उपन्यासों की इतनी धूम मची कि बहुत से हिन्दी न जानने वालों ने केवल आपके उपन्यासों को पढ़ने के हेतु ही हिन्दी सीखी। तिलस्म की चकाचौंध और चुनार की पहाड़ियों में पाठक खो से गये। ऐय्यारों के करतब, जनता के हृदय में उतर गये। आपके लिखे हुए उपन्यासों में प्रमुख हैं—चन्द्रकान्ता (चार भाग) चन्द्रकान्ता सन्तति (२४ भाग), काजर की कोठरी, कुसुम कुमारी, नरेन्द्र मोहिनी, और भूतनाथ जिसे खत्री जी की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र ने पूर्ण किया। इन उपन्यासों में भी चन्द्रकान्ता, चन्द्रकान्ता सन्तति और भूतनाथ ही जनता के प्रिय पात्र बने! इन उपन्यासों की कथा भी प्रायः एक सी ही है। कोई राजकुमार किसी राजकुमारी से प्रेम करता है। कोई उसका प्रतिद्वन्दी होता है। अपने शौर्य और साहस के बल पर वे उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। दोनों ओर से भांति भांति के ऐय्यारी करतब किये जाते हैं, भांति भांति के तिलस्म भी बाधा स्वरूप बीच में उपस्थित हो जाते हैं जिन्हें तोड़े बिना राजकुमारी की प्राप्ति सम्भव नहीं होती। वीरता, शौर्य, प्रेम और ऐय्यारी के ये ही दाँव पेंच अन्त तक चलते रहते हैं। आखिर तिलस्म टूटते हैं, प्रतिस्पर्धियों की हार होती है और विरह व्यथित राजकुमार और राजकुमारी एक दूसरे को प्राप्त करते हैं।

इन उपन्यासों के सम्बन्ध में एक बात और उल्लेखनीय है। इनका नैतिक स्तर अत्यन्त उच्च है। मध्य युगीय नैतिकता इनके चरित्रों में पूर्ण रूपेण विद्यमान है।

राजकुमार और राजकुमारी के प्रेम का आदर्श भी अत्यन्त उच्च है। भीषण से भीषण विपत्तियों में फँसने पर भी, लोभ और वैभव का आकर्षण देने पर भी उनकी पारस्परिक निष्ठा में कोई कमी नहीं आती। ऐय्यार भी कतिपय आदर्शों का पालन करते हैं। अकेले पर वार न करना, प्रतिद्वन्दी ऐय्यार को जान से न मारना ऐसे ही आदर्श हैं। उपन्यास की समाप्ति पर दुष्ट चरित्रों का उनके अनुरूप परिणाम को प्राप्त होना स्पष्ट हो जाता है।

हाँ, लेखक का उद्देश्य इन आदर्शों की स्थापना नहीं रहा! उसने केवल मनोरंजन के लिये ही अपनी कल्पना का यह चमत्कार उपस्थित किया है। देवकीनन्दन जी ने स्वयं लिखा है— "चन्द्रकान्ता में जो बातें लिखी गई हैं वे इसलिये नहीं कि लोग उनकी सचाई झुठाई की परीक्षा करें प्रत्युत इसीलिये कि पाठ कौतूहल बर्धक हो।" इसी कौतूहल को ही जाग्रत रखने के लिये तिलस्म की लम्बी लम्बी भूमिकायें बाँधी गई हैं। ऐय्यारों के सम्बन्ध में खत्री जी का कहना है —

"आज हिन्दी में बहुत से उपन्यास हुए हैं जिनमें कई तरह की बातें वो राजनीति भी लिखी गई है, राज दरबार के तरीके वो सामान भी जाहिर किये गये हैं मगर राजदरबारों में ऐय्यार (चालाक) भी नौकर हुआ करते थे जो कि हरफन मौला याने सूरत बदलना, बहुत सी दवाओं का जानना, गाना, बजाना, दौड़ना, शस्त्र चलाना, जासूसों का काम देखना वगैरह बहुत सी बातें जाना करते थे। जब राजाओं में लड़ाई होती थी तब ये लोग अपनी चालाकी से बिना खून गिराये वो पलटनों की जान गँवाये लड़ाई खतम कर देते थे। इन लोगों की बड़ी कदर की जाती थी। इन्हीं ऐयारी पेशे में आजकल बहुरूपिये दिखलाई देते हैं। वे सब गुण तो इन लोगों में रहे नहीं सिर्फ शक्ल बदलना रह गया, वह भी किसी काम का नहीं। इन ऐय्यारों का बयान हिन्दी किताबों में अभी तक मेरी नजरों से नहीं गुजरा। अगर हिन्दी पढ़ने वाले भी इस मजे को देख लें तो कई बातों का फायदा हो। सबसे ज्यादा तो यह है कि ऐसी किताबों का पढ़ने वाला जल्दी किसी के धोखे में न पड़ेगा। इन सब बातों का ख्याल करके मैंने यह चन्द्रकान्ता नामक उपन्यास लिखा है।"

खत्री जी के उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका मुख्य उद्देश्य कौतूहल उत्पन्न कर पाठकों का मनोरञ्जन करना था और अपने उद्देश्य में वे पूर्णरूपेण सफल भी हुए।

खत्री जी के पश्चात् उनके पुत्र दुर्गाप्रसाद खत्री ने पिता की परम्परा को आगे बढ़ाए रखा और नवीन रूप में इन्हीं करिश्मों को रखा! उनके अतिरिक्त इस क्षेत्र में सफलता पाने वालों में और किसी का नाम नहीं लिया जा सकता।

इस प्रकार तिलस्मी धारा केवल खत्री परिवार में ही सीमित होकर रह गई ! इस धारा के उपन्यासों का और कोई महत्व भले ही न हो पर उस युग में हिन्दी के प्रति पाठकों का चाव बढ़ाने में ये अभूतपूर्व प्रेरक सिद्ध हुए ! इनका यह महत्व कम नहीं है ।

सामाजिक ऐतिहासिक प्रेम रोमांस की धारा का वर्णन करने से पूर्व हम इसी तिलस्मी धारा से मिलती जुलती जासूसी धारा का वर्णन करना अधिक आवश्यक और सुविधाजनक समझते हैं ।

जैसा कहा जा चुका है इस धारा के प्रवर्तक श्री गोपालराम गहमरी थे ! रोमांचकारी एवं कौतूहल वर्धक उपन्यासों के प्रति जनता की बढ़ती हुई रुचि को देखकर उन्होंने जासूसी उपन्यासों की एक परम्परा चलाई । अंग्रेजी के जासूसी उपन्यास गहमरी जी के लिये विशेष प्रेरक सिद्ध हुए । सबसे पहले तो उन्होंने बंगला के एक जासूसी उपन्यास 'हीरार मूल्य शेखर धूली' का अनुवाद हीरे के मोल नाम से प्रकाशित कराया ! लोगों में इसका पर्याप्त प्रचार हुआ । गहमरी जी को इससे पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त हुआ । उन्होंने लिखा है कि "हीरे के मोल का पसन्द किया जाना और बम्बई में ही महालक्ष्मी के मन्दिर में एक खूनी धोबी का जो महन्त बन बैठा था, मेरी प्राइवेट मुखबिरी से पकड़ा जाना, इन दोनों के प्रभाव से मेरी रुचि जासूसी उपन्यास लिखने में बढ़ी और तब से कोई १५० छोटे-बड़े उपन्यास (जासूसी) लिखे और अनुवाद किये ।" जासूस नामक मासिक पत्र भी उन्होंने निकाला जो अत्यधिक सफल रहा ।

इंगलैण्ड के जासूसी उपन्यासों की बाढ़ सी भारत में आ चुकी थी । जनता जासूसों के साहसपूर्ण क्रिया कलापों के प्रति अत्यधिक रुचि भी रखती थी, गहमरी जी के उपन्यासों को इसी कारण जनता का प्रिय-पात्र बनने में कोई कठिनाई न हुई । खत्री जी की भाँति ही गहमरी जी के उपन्यास भी घटना प्रधान हैं परन्तु इनकी घटनाओं में तिलस्मी उपन्यासों की घटनाओं की भाँति अस्तव्यस्तता और असंबद्धता नहीं है । सारे जासूसी उपन्यासों में यही बात देखी जा सकती है । घटनाओं की एक लड़ी उनमें आदि से अन्त तक मिलेगी ! किसी का खून हुआ या किसी के यहाँ चोरी हुई और जासूस ने किस प्रकार इधर उधर से तथ्य एकत्र कर, अपनी बुद्धिमानी और साहस से खूनियों या डाकुओं के गिरोह का भेद लेकर सारी बातों का पता लगाया, जासूसी उपन्यासों के कथानक का यही विषय है और यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि बिना घटनाओं के पूर्वापर सम्बन्ध के जासूसी उपन्यास सफल नहीं हो सकता । कौतूहल और मनोरञ्जन इनका भी उद्देश्य है । उपन्यास का ताना बाना इस प्रकार रचा जाय कि अन्त तक पाठकों को रहस्य का पता न चले, यही जासूसी उपन्यास की विशेषता है । जासूसी उपन्यासों की रचना के विषय में स्वयं गहमरी जी ने ही एक स्थान पर कहा है । "पहले जानने योग्य

बात, घटना की जवनिका में छिपा रखना और इधर-उधर की जो बेसिलसिले और बेजोड़ न हों पहले कहना, और घटना पर घटना का तूमार बाँधकर असल भेद जानने के लिये पाठकों के हृदय में कौतूहल बढ़ाना और रहस्य पर रहस्य साजकर ऐसा उपन्यास गढ़ना कि पूरा पढ़े बिना पूरा स्वाद न मिले ...... ।"

गहमरी जी ने जो उपन्यास लिखे सबमें यही बातें पाई जाती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इस जासूसी धारा ने भी पाठकों का बड़ा मनोरञ्जन किया और आज भी उसी वेग से प्रवाहित हो रही है। हिन्दी उपन्यासों के इस आदि काल में इसका भी अपना अलग महत्व है।

हिन्दी उपन्यासों के आदिकाल में जिस तीसरी महत्वपूर्ण धारा का उल्लेख किया गया है वह पं० किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा प्रवर्तित सामाजिक, ऐतिहासिक प्रेम रोमांस की धारा है। गोस्वामी जी ने अपने साहित्यिक जीवन में कुल मिला कर कोई ६४–६५ छोटे बड़े उपन्यास लिखे जिनमें कुछ अनुवाद भी शामिल हैं। इन उपन्यासों में गोस्वामी जी ने तिलस्मी, जासूसी, सामाजिक, ऐतिहासिक सभी विषयों को स्थान दिया! इन उपन्यासों में उस युग की सारी औपन्यासिक प्रवृत्तियों की सत्ता तो है ही कतिपय नवीन प्रवृत्तियों का समावेश भी लेखक ने मौलिक ढंग से किया है। चरित्र चित्रण, जिसकी ओर अब तक उपन्यासकारों ने विशेष ध्यान न दिया था, इन उपन्यासों में गोस्वामी जी के आकर्षण का विषय बना है। प्रेम के क्षेत्र में भी गोस्वामी जी ने अपनी व्यापक दृष्टि का परिचय दिया है। परन्तु इतना होने पर भी ये उपन्यास घटना प्रधान उपन्यासों की श्रेणी से अधिक ऊपर न उठ पाये, हाँ, तिलस्मी जासूसी धारा और बाद में आने वाले प्रेमचन्द युग के उपन्यासों की बीच की कड़ी के रूप में इनका ऐतिहासिक महत्व अवश्य है। कथाविधान में भी गोस्वामी जी ने अपने परिश्रम का स्पष्ट आभास दिया है। एक मुख्य कथा के साथ अनेक उपकथाएँ जुड़ी हुई चलती हैं जो कभी २ अनाकर्षक और शिथिल तथा अस्वाभाविक भी मालूम होने लगी हैं परन्तु फिर भी जो कथा संविधान इन उपन्यासों में है, वह सुन्दर है। एक बात जो इन उपन्यासों के सम्बन्ध में और विचारणीय है वह इनकी आदर्शवादिता है। यथार्थ सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण करने पर भी लेखक ने उपन्यास के अन्त में आदर्श-वादी दृष्टिकोण ही अपनाया है। आपके लिखे हुए उपन्यासों में प्रमुख त्रिवेणी (१८८८ ई०), स्वर्गीय कुसुम वा कुसुम कुमारी (१८८९), लवंगलता वा आदर्श बाला (१८९०), सुखशर्वरी (१८९१), लखनऊ की कब्र वा शाही महल सरा, तारा, रजिया बेगम, लीलावती वा आदर्श सती, कटे मूड़ की दो दो बातें वा तिलस्मी शीश महल, कनक कुसुम वा मस्तानी, पुनर्जन्म वा सौतिया डाह, गुलबहार, इन्दुमती, प्रणयिनी

परिचय, जिन्दे की लाश, आदि २ !! उपन्यासों की उपर्युक्त सूची से ही विषयों का स्पष्ट आभास मिल जाता है। सभी उपन्यासों में प्रायः प्रेम रोमांस की धारा बहती हुई देख पड़ती है। बीच २ में सामाजिक जीवन के कुछ यथार्थ चित्र भी मिलते जाते हैं। लगभग सारे उपन्यासों में प्रेम कथा की व्यापकता का मूल कारण यही है कि गोस्वामी जी उपन्यास को 'प्रेम का विज्ञान' मानते थे ! 'सुखशर्वरी' उपन्यास के प्रारम्भ में उन्होंने लिखा भी है—

"प्रेम और प्रेम तत्व को सभी चाहते हैं पर इसका उपाय बहुत कम लोग जानते होंगे। प्रेमिक प्रेम पाने के लिए व्याकुल तो होते हैं, सभी अपने लिए दूसरों को पागल करना चाहते हैं पर अभी तक इसका उपाय बहुतों ने नहीं जाना है। इसका अभाव केवल उपन्यास ही दूर करता है इसीलिए प्राचीनतम कवियों ने और सांप्रतिक यूरोपीय कवियों ने उपन्यास की सृष्टि की। जो बात झूठ सच से नहीं होती, तन्त्र, यन्त्र से नहीं बनती वह प्रेम के विज्ञान 'उपन्यास' से सिद्ध होती है।"

अपने इस द्रष्टिकोण को अपनी रचनाओं में उन्होंने चरितार्थ भी किया। सामाजिक उपन्यासों में तो गोस्वामी जी एक अंश तक कुछ सफल भी रहे पर ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में उन पर सबसे अधिक आक्षेप हुए। आक्षेपों के कारण भी थे ! ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास की जो छीछालेदर गोस्वामी जी ने की वह उनका सारा महत्व नष्ट कर देती है। ऐतिहासिक उपन्यासों की इस दुर्गति का मुख्य कारण यही है कि गोस्वामी जी ने इतिहास से कथानक तो चुन लिया पर ऐतिहासिक तथ्यों की ओर से वे जानबूझ कर उदासीन रहे। अपनी कल्पना का चमत्कार इन उपन्यासों में भी उन्होंने जी भर कर दिखाया ! दारा शिकोह जैसे चरित्र पर भी काली स्याही पोत दी। देश काल की ओर भी गोस्वामी जी ने बिल्कुल ध्यान नहीं दिया इस कारण अनेक अस्वाभाविक घटनाओं की सृष्टि भी हुई है। कहने का तात्पर्य यह है कि गोस्वामी जी के इन उपन्यासों को ऐतिहासिक नहीं कहा जा सकता कारण उनमें इतिहास का कथानक होते हुए भी, कल्पना का ही राज्य है जो इतिहास के साथ बिल्कुल न्याय नहीं करती।

इस सम्बन्ध में एक बात और उल्लेखनीय है। गोस्वामी जी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में जो भूलें की हैं, कल्पना की जो उड़ान भरी है, वह सब जान बूझ कर ही ! वे जानते थे कि इससे उपन्यास की ऐतिहासिकता को आघात पहुंचेगा परन्तु उन्होंने इसकी ओर ध्यान न दिया ! 'तारा' (जो उनका सबसे प्रसिद्ध उपन्यास है) की भूमिका में उन्होंने अपने इस द्रष्टिकोण को स्पष्टतः सबके सम्मुख रख दिया है। वे कहते हैं—"हमने अपने बनाये उपन्यासों में ऐतिहासिक घटना को गौण और अपनी

कल्पना को मुख्य रखा है और कहीं २ तो कल्पना के आगे इतिहास को दूर ही से नमस्कार कर लिया है।………………इस लिए लोग इसे इतिहास न समझें और इसकी सम्पूर्ण घटना को इतिहासों में खोजने का उद्योग भी न करें।"

यह सत्य है कि गोस्वामी जी के इस कथन से उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिकता की हत्या का जो आक्षेप लगाया जाता है, उसके लिए स्थान नहीं रह जाता परन्तु फिर भी इतिहास में वर्णित कथानक का रूप यदि लेखक विकृत करता है तो उसे यों ही भुलाया भी नही जा सकता।

गोस्वामी जी के इन ऐतिहासिक उपन्यासों का एक महत्व भी है। हिन्दी में ऐतिहासिक रोमानी उपन्यासों का प्रारम्भ इन्हीं उपन्यासों से हुआ है। प्रेम और रोमांस की धारा इन्हीं उपन्यासों से ही प्रारम्भ होती है। इस दृष्टि से इनके महत्व को भुलाया नहीं जा सकता।

भाषा के भी गोस्वामी जी ने कई प्रयोग किये! कभी संस्कृत निष्ठ पदावली कभी अरबी फारसी मिश्रित और कभी खालिस उर्दू! संवादों में मुसलमान पात्र प्रायः उर्दू बोलते हैं और हिन्दू पात्र हिन्दी! मुसलमानों से बातचीत करते समय हिन्दू पात्र भी खालिस उर्दू का व्यवहार करने लगते हैं। इससे अनेक स्थलों पर अत्यधिक अस्वाभाविकता उत्पन्न हो गई है। आचार्य शुक्ल ने इसे लक्ष्य करते हुए अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है—"

"एक बात और जरा खटकती है। वह है उनका भाषा के साथ मजाक। कुछ दिन पीछे उन्हें उर्दू लिखने का शौक हुआ। उर्दू भी ऐसी वैसी नहीं उर्दूए मुअल्ला। इसी शौक के कुछ आगे पीछे उन्होंने राजा शिवप्रसाद का जीवन चरित्र लिखा। उर्दू जबान और शेर सुखन की बेढंगी नकल से, जो असल से कभी २ साफ अलग हो जाती है उनके बहुत से उपन्यासों का साहित्यिक गौरव घट गया है।" वैसे गोस्वामी जी की भाषा चुटीली, मुहावरेदार और सुन्दर है।

चरित्र या तो समाज के मध्यम वर्ग से संबन्धित हैं या इतिहास से! प्रेम का चित्रण भी रीति कालीन प्रभाव वश परंपरागत पद्धति पर ही हुआ है। कभी २ लन्दन रहस्य जैसे कामुक ग्रन्थों का प्रभाव भी स्पष्ट हो जाता है।

निष्कर्ष रूप में हम यही कह सकते हैं कि भले ही गोस्वामी जी के उपन्यासों का साहित्यिक अथवा ऐतिहासिक महत्व न हो परन्तु प्रेम और रोमांस की जो धारा उन्होंने चलाई उस युग की जनता और साहित्य को तो उसने प्रभावित ही किया आज के रूमानी उपन्यासों तक में उसका प्रभाव देखा जा सकता है। ऐतिहासिक रूमानी उपन्यासो के प्रवर्तक के नाते पं० किशोरीलाल गोस्वामी को भुलाया नहीं जा सकता।

उपर्युक्त तीन धाराओं के अतिरिक्त इस काल में भावात्मक उपन्यासों का भी प्रतिनिधि स्थान है। भावात्मक उपन्यासों के प्रणेता थे बाबू व्रजनन्दन सहाय। बँगला के भावात्मक उपन्यासों से ये विशेष रूप से प्रभावित हुए। अनुभूतियों की सूक्ष्म व्यन्जना इनके उपन्यास की एक विशेषता है। आपके 'सौन्दर्योपासक' 'राधाकान्त' और राजेन्द्र मालती उपन्यास इसी प्रकार के हैं। इस प्रकार के उपन्यास जनता में प्रसिद्ध नहीं हुए! स्वयं लेखक भी इसे समझता था परन्तु जनरंजन की द्रष्टि से नहीं, तो अपनी विशेष व्यंजकता और भाव प्रवणता की द्रष्टि से इन उपन्यासों का महत्व है, और उसे द्रष्टि से ओझल नही किया जा सकता। इस प्रकार के उपन्यासों के विषय में श्री नन्द दुलारे जी बाजपेयी का कहना है—"इनमें उपन्यास के सुदृढ़ कथा सूत्र के बदले गीति काव्य का सा सूक्ष्म भावना तन्तु ही अधिक रहता है। ऐसे उपन्यासों में कथा की धारा अटूट नहीं रह पाती, घटनाओं की विरलता हो जाती है। भाषा की अलंकारिता, लम्बे २ वाक्यों की खींच तान, और भावात्मक उद्‌गारों की भूल भुलैया में पाठक अपने को खो बैठता है। उपन्यासों की इस परम्परा को हम सस्कृत की 'कादम्बरी' का ही आधुनिक रूप कह सकते हैं, यद्यपि कादम्बरी के अनेक गुणों का इनमें बहुत कुछ अभाव है।"

इन उपन्यास लेखकों के अतिरिक्त इस काल में और भी उपन्यासकार हुए जिन्होंने सामीजिक तिलस्मी या जासूसी उपन्यास लिखे परन्तु प्रतिनिधि उपन्यासकारों में उपर्युक्त व्यक्ति ही उल्लेखनीय हैं।

जैसा हमने देखा, इस काल में प्रयत्न तो सभी क्षेत्रों को छूने के लिए किये गये पर प्रमुखता तीन धाराओं की ही रही और उन्हीं से संबन्धित उपन्यास इस काल का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। घटना प्रधान उपन्यासों का प्रणयन इस काल की एक विशेषता है। चरित्र प्रधान और घटना चरित्र सापेक्ष्य उपन्यासों का प्रणयन तो प्रेमचन्द जी के आगमन से प्रारम्भ होता है जो आज तक चला आ रहा है।

इसके पश्चात अनुवादों का युग प्रारम्भ होता है। प्रेमचन्द के आगमन से पूर्व हिन्दी उपन्यास को नवीन गतिविधियों से पूर्ण करने में इन अनुवादों का महत्वपूर्ण योग है। इस काल में अनेक भाषाओं के उपन्यासों का सुन्दर अनुवाद हुआ! बंग विजेता और दुर्गेशनन्दिनी का अनुवाद ठा० गदाधर सिंह ने किया, बाबू राधाकृष्ण ने भी स्वर्णलता, 'मरता क्या न करता' शीर्षक से दो उपन्यासों का अनुवाद किया! पं० प्रतापनारायण मिश्र ने भी राजसिंह, इन्दिरा, राधारानी, युगलांगुलीय, उपन्यासों का अनुवाद किया। अनुवाद तो जैसा कहा जा चुका है सभी भाषाओं से हुए पर बंगला के उपन्यासों का अनुवाद पर्याप्त मात्रा में हुआ! पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने

'कृष्णाकान्त का दान पत्र' कार्तिक प्रसाद खत्री ने इला, प्रमिला, मधुमालती, तथा दलित कुसुम आदि अनूदित उपन्यास निकाले। बाबू गोपाल राम गहमरी ने भी बंगला के कुछ उपन्यासों का अनुवाद 'भान मती', देवरानी जेठानी, सास पतोहू नाम से किया। उपाध्याय जी ने 'Merchant of Venice' का अनुवाद 'वेनिस का बांका नाम से किया। मराठी से 'पूर्ण प्रकाश और चन्द्र प्रभा' तथा 'रमा और माधव' आदि अनुवाद किये गये। गुजराती से पं० किशनलाल ने 'मुद्राकालीन अर्थात इतिहास चन्द्रोदय' का अनुवाद किया। बाबू गदाधर सिंह ने बँगला से शेक्सपियर के 'अथोलो' का अनुवाद किया।

जिन प्रमुख बँगला उपन्यासकारों की कृतियों का हिन्दी में अनुवाद हुआ उनमें श्री शरतचन्द्र, बंकिमचन्द्र, रमेशचन्द्र दत्त, रवीन्द्रनाथ टैगोर, चारुचरण आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन अनुवादों का महत्व इसी में है कि इनसे भविष्य के लिए मौलिक और सामाजिक उपन्यासों को लिखने का मार्ग साफ होगया। नवीन अभिव्यंजना शैली से भी हिन्दी लेखक परिचित हुए जिसके परिणाम स्वरूप बाद को हिन्दी उपन्यास एक नई मोड़ को लिए विकसित हुए।

अब तक हिन्दी के उपन्यास कौतूहल, कल्पना और जादू टोनों की एक रूमानी दुनिया में ही अपना विकास किए हुए थे परन्तु युग की बदली हुई परिस्थितियों ने एक नया चित्र प्रस्तुत किया! अब लेखकों के सम्मुख केवल एक कल्पित संसार ही न रह गया वरन जीवन और जगत के थपेड़ों ने उन्हें यथार्थ की एक ठोस भूमि पर खड़ा किया! लेखकों ने यह अनुभव किया कि केवल रूमानी दुनिया में विचरण करने से ही समस्याओं का समाधान नहीं मिलेगा। उसके लिए आवश्यक यह है कि जीवन के कटु यथार्थों में प्रवेश किया जाय, देश की बदली हुई राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप बहा जाय और तभी कुछ प्रगति संभव है। उनके सामने यह स्पष्ट हो गया कि संसार की कठोर वास्तविकताओं से दूर भागना उचित नहीं है, कलाकार वह है जो उन संघर्षों में घुस पड़े और ऐसा सृजन करे जिससे देश जाति और जीवन का कुछ हित साधन हो सके! यह युग कुछ ऐसा था कि उसने लेखकों को यह सब सोचने के लिए बाध्य कर दिया। प्रेमचन्द ऐसे ही युग में अवतरित हुए! उन्होंने संसार के उस संघर्षों की चोटें सहीं भी थीं, सह रहे थे इस कारण स्वभावतः उनके साहित्य में हमें यथार्थ जीवन की अनेकानेक समस्याओं के वास्तविक चित्र मिलते हैं।

यही नहीं प्रेमचन्द ने उपन्यासों के क्षेत्र में नई मान्यताओं की भी सृष्टि की! उन्होंने जो उपन्यास लिखे उनमें घटनाओं की भरमार न थी, कौतूहलवर्धक और रूमानी दुनिया के चित्रों की सत्ता न थी, वरन् उनमें जीवन और जगत की समस्याओं का निदर्शन

था, चरित्रों की सुन्दरतम् सृष्टि थी, सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं एवं मानव प्रवृत्तियों की विशद व्यंजना थी। समस्याएँ ही न खड़ी कर दी गई थीं, उनके उपयुक्त समाधानों को भी इंगित किया गया था।

प्रेमचन्द जी से पूर्व भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी साहित्य को जीवन और जगत के अत्यधिक निकट प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया था! उपन्यासों के क्षेत्र में तो वे सफल न हो सके थे पर अपने नाटकों में उन्होंने इस प्रकार की एक व्यापक भूमि प्रस्तुत कर दी थी जिस पर खड़े होकर कलाकार जीवन और जगत सम्बन्धी समस्याओं का आकलन कर सकता था, अपने साहित्य में उन्हें चित्रित कर समाज का वास्तविक कलाकार कहला सकता था। प्रेमचन्द जी ने भारतेन्दु जी के इस बीजारोपण को उपन्यासों के क्षेत्र में पल्लवित किया! समाज के संघर्षों में घुस कर उन्होंने यथार्थ की ठोस भूमि में खड़े होकर भविष्य के लेखकों का पथ प्रदर्शन किया! भारत की मिट्टी से उत्पन्न यह कलाकार जीवन भर उसी मिट्टी पर एक स्वर्ग बसाने के लिए प्रयत्नशील रहा। भले ही संसार की कठोर वास्तविकताओं ने उसे 'गोदान' जैसा उपन्यास लिखने को बाध्य किया हो पर इसी सड़ी गली धरती में स्वर्ग बनाने की उसकी आस्था के विषय में किसी को सन्देह नहीं हो सकता! उन्होंने यह साबित कर दिया कि कलाकार वह नहीं जो युग के संघर्षों से भाग जाये वरन् कलाकार वह है जो संघर्षों में ही डूबे उतराये, युग की धड़कनों के साथ अपनी धड़कनों को भी मिला दे। उपन्यासों के इस संक्रान्ति काल में प्रेमचन्द ने अवतरित होकर उपन्यासों की दिशा ही बदल दी। आज हिन्दी में जिस प्रगतिवाद का स्वर सुनाई पड़ रहा है भारतेन्दु और प्रेमचन्द ने ही उसका बीजारोपण हिन्दी साहित्य में किया था।

समाज के दुःख दर्दों को उन्होंने वाणी दी, पीड़ित और दलित मानवता को शक्ति दी, उसे टिकने के लिए एक व्यापक धरातल प्रस्तुत किया। जब २ मानवता दलित और पीड़ित होती है, वर्ग संघर्ष से उत्पन्न अनेक भीषण समस्याओं का लक्ष्य बनती है तभी किसी न किसी युगप्रवर्तक कलाकार का जन्म होता है जो उस पीड़ित मानवता का प्रतिनिधि, उसकी वाणी होता है। जारशाही के अत्याचारों से उत्पन्न हुआ गोर्की, भारत की दरिद्रता से उत्पन्न हुए प्रेमचन्द एवं चीन की सिसकती मिट्टी से उत्पन्न हुआ लुह सुंग इसके उदाहरण हैं। प्रेमचन्द्र की सूक्ष्म दृष्टि देश की प्रत्येक समस्यओं को आत्मसात किये थी! मजदूर किसानों की तड़पती, दरिद्र आत्माएँ उनकी अपनी थीं। जैसा कहा गया है कि उन्होंने भी समाज की सारी प्रताड़नाएँ सहीं थीं, चारों ओर व्याप्त दुःख दर्दों का अनुभव किया था और इसी कारण वे ऐसा प्रगतिशील साहित्य लिखने में समर्थ हुए। वे जानते थे कि समाज किस प्रकार की दुर्बलताओं

से ग्रस्त है। मानवता की दरिद्रता के क्या कारण हैं और अपने इसी व्यापक अनुभव के बल पर उन्होंने समाज की एक एक दुर्बलता की अपने साहित्य में विशद विवेचना की है। तत्कालीन कोई ही ऐसी समस्या होगी जो उनकी दृष्टि से अछूती रह गई हो। पीड़ित और दलित मानवता के प्रति उनकी अडिग आस्था थी! उन्होंने जितने भी उपन्यास लिखे सब में अपनी इस आस्था का परिचय दिया है। उनके द्वारा लिखित उपन्यासों में सेवासदन, प्रेमाश्रम, कर्म भूमि, रंगभूमि, कायाकल्प गबन और गोदान प्रमुख हैं। इन उपन्यासों में शहरी एवं ग्राम्य जीवन दोनों की ही व्यापक झलक एवं दोनों की समस्याओं का विशद चित्रण है। किस प्रकार मुट्ठी भर धनिक वर्ग पीड़तों और असहायों पर अत्याचार कर अपनी प्यास बुझाता है, इन उपन्यासों में विस्तार से वर्णित है।

गोदान प्रेमचन्द का अंतिम उपन्यास है। इसमें प्रेमचन्द जी अपने पूर्व के उपन्यासों से अधिक यथार्थवादी हो उठे हैं। कारण और कुछ नहीं, जीवन की परिस्थितियां ही हैं। प्रेमाश्रम, सेवासदन आदि में तो उन्होंने मजदूर किसानों का स्वर्ग भी निर्मित किया पर जब कटु वास्तविकताएँ और भी भीषणता से उनके सम्मुख आईं तब गोदान में उस स्वर्ग का निर्मित करना प्रेमचन्द की आत्मा न सहन कर सकी और जिस प्रकार दरिद्र का अन्त आज की परिस्थितियों में दरिद्रता को ही छाती से चिपटाये होता है, 'गोदान' का होरीलाल भी उसी प्रकार जीवन भर दरिद्रता में पिसने के बाद मर जाता है।

प्रेमचन्द के जीवन की थोड़ी बहुत जानकारी रखने वाले लोग भी यह जानते होंगे कि उनका अंत कैसी विषम परिस्थितियों में हुआ था! जो जिन्दगी भर स्वयं दरिद्रता की आग में जलता रहा हो उससे बुर्जुआ आदर्शवादी साहित्य की रचना की अपेक्षा नहीं की जा सकती! प्रारम्भिक कृतियों में प्रेमचन्द जी की आदर्श वादिता के कतिपय कारण हैं। जैसा कहा जा चुका है वे आशावादी थे! मानवता के सुन्दर भविष्य के प्रति उन्हें अंत तक आस्था थी। यही कारण है कि उनकी कृतियों में हमें आदर्शवाद भी देख पड़ता है और जो उचित भी है पर गोदान के समय की विषम परिस्थितियाँ लेखक को आदर्शवादी, आशावादी न बना सकीं। उन्होंने उसमें लेखक को समाज का नग्न चित्र खींचने को ही बाध्य किया।

प्रेमचन्द का साहित्य संघर्ष और क्रांति का साहित्य है। वह मजदूर किसानों, समाज से ठुकराये गये लोगों का साहित्य है। प्रेमचन्द ने इनसे सदैव यही कहा है कि 'संघर्ष करो, आगे बढ़ो' न कि बुर्जुआ साहित्यकारों की भाँति धर्म, भाग्य और ईश्वर पर सारा उत्तरदायित्व डाल कर उन्हें संतोष करने का उपदेश दिया है। यही कारण है

प्रेमचन्द आज भी लाखों करोड़ों दरिद्र और पीड़ित जनता के सिरताज हैं और आगे भी रहेंगे।

जहाँ तक उपन्यास कला का प्रश्न है प्रेमचन्द ने उसमें महत्वपूर्ण युग प्रवर्तन किया। उनसे पूर्व के उपन्यासों में कौतूहल वर्धक अस्वाविक घटनाओं का जो जाल बिछा रहता था उसके स्थान पर प्रेमचन्दजी ने अपने उपन्यासों में स्वस्थ कथानकों की योजना की। अभी तक उपन्यासों में चरित्र चित्रण को कोई महत्व न दिया जाता था परन्तु प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में ऐसे २ चरित्रों की सृष्टि की है जो कभी नहीं भुलाए जा सकते! सूरदास, होरी, धनियाँ ऐसे ही पात्र हैं। ये अपने २ वर्ग के प्रतिनिधि हैं, इन्हें Type कहा जाता है। सूरदास अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक देहातों में होरी व धनियाँ ही मिलेंगे। यह सब प्रेमचन्द की विशाल हृदयता और सूक्ष्म दृष्टि के परिणाम स्वरूप ही सम्भव हो सका है। कथोपकथनों में भी प्रेमचन्द जी पथ-प्रदर्शक रहे! उनके कथोपकथन सोद्देश्य, स्वाभाविक और अवसर तथा पात्र के अनुकूल हैं। भाषा पर आपका अटूट अधिकार था! आगे के लेखकों के लिये प्रेमचन्दजी ने स्वच्छ भाषा का उदाहरण प्रस्तुत कर महत्वपूर्ण कार्य किया।

प्रेमचन्दजी के उपन्यासों और उनकी कला के उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि हिन्दी उपन्यास को काल्पनिक और अस्वाभाविक दुनिया से बाहर लाकर उसे जीवन के निकट प्रतिष्ठित कर प्रेमचन्द ने एक नवीन युग को जन्म दिया। उन्होंने जो राह दिखाई आगे के लेखकों को उस पर चलने में कोई दिक्कत न हुई। उनके उपन्यासों ने हिन्दी में एक नई धारा को जन्म दिया जो आज तक उसी प्रकार प्रवाहित है। समाजवादी दृष्टिकोण वाले उपन्यासों का जो दायित्व होता है प्रेमचन्द के उपन्यास उसे पूर्ण करते हैं। एन्जेल्स * का यह कथन प्रेमचन्द जी के उपन्यासों पर पूर्णरूपेण घटित होता है। "In my view the socialist tendentious novel completely fulfills its mission in describing relative illusions concerning them, in upsetting the optimism of the bourgeois world, in sowing doubt as to the eternal nature of the existing social order even though the author did not there by advance any definite solution and some times did not even come down on one side or another."

प्रसादजी प्रेमचन्द के समकालीन थे! कवि और नाटक कार के रूप में तो वे चिरस्मरणीय हैं ही एक सफल उपन्यास कार के रूप में भी उनका महत्व अत्यधिक है।

* राल्फ फाक्स की 'The novel and the people' पुस्तक से उद्धृत (१०८)

सामाजिक उपन्यासों की धारा चल ही पड़ी थी, प्रसादजी ने भी इसमें योग दिया और सन् १९१९ में उनका प्रथम उपन्यास 'कंकाल' प्रकाशित हुआ ! प्रसादजी के उपन्यासों के विषय में एक बात दृष्टव्य है। वह यह है कि अपने नाटकों एवं काव्यों में हमें प्रसादजी वर्तमान समाज से जितनी ही दूर दिखाई पड़ते हैं उपन्यासों में वे उसके उतने ही निकट हैं। कंकाल तो सामाजिक यथार्थताओं का चित्रण करता ही है उनके दूसरे उपन्यास 'तितली' में भी ग्राम्यजीवन की सुंदर झलक है। हाँ इन दो उपन्यासों में एक अंतर है। कंकाल में जहाँ प्रसादजी ने समाज का नग्न चित्र खींचकर उसके सड़े-गले रूप को ही उभारा है वहाँ तितली में उनकी दृष्टि अधिक व्यापक और बहुत कुछ आदर्शवादी हो उठी है। वैसे इन दोनों उपन्यासों से इतना स्पष्ट हो जाता है कि अपने आस-पास के समाज और उसकी कटु वास्तविकताओं से न तो प्रसाद अपरिचित ही थे और न उदासीन ही। उन्होंने इन्हें चित्रित करने का माध्यम उपन्यास ही चुना और उसमें वे सफल भी हुए। कंकाल और तितली के अतिरिक्त प्रसादजी ने जीवन के अंतिम दिनों में 'इरावती' नामक एक ऐतिहासिक उपन्यास लिखना भी प्रारम्भ किया पर वह उसे पूर्ण न कर सके ! जीवन की कठोर वास्तविकताओं के प्रहारों ने उन्हें शीघ्र ही यहाँ से उठा दिया ! अपने इन्हीं तीन उपन्यासों के बल पर प्रसादजी हिन्दी के उपन्यास क्षेत्र में अमर हैं। कंकाल और तितली में भले ही कतिपय दुर्बलताएँ अथवा अभाव हों पर उनकी उत्कृष्टता असंदिग्ध है।

कंकाल में प्रसाद जी ने वर्तमान सामाजिक मान्यताओं और बन्धनों के प्रति स्पष्टता से विद्रोह किया है। उन्होंने आज के समाज के ठेकेदारों पर जो २ व्यंग किये हैं वे अचूक और उन्हें तिलमिला देने को पर्याप्त हैं। धर्म की आड़ लेकर आज समाज में भोलेभाले पुरुष स्त्रियों पर जो अत्याचार किया जाता है उसका उन्होंने भण्डा फोड़ किया है। समाज जिन्हें उपेक्षित समझकर त्याग देता है उन्हें अपनाकर प्रसादजी ने अपनी विशाल हृदयता का पूर्ण परिचय दिया है। आज की सड़ीं-गली धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं के प्रति लेखक को घोर घृणा है, वह उनके स्थान पर एक स्वस्थ समाज की स्थापना चाहता है जहाँ केवल मनुष्य का मूल्य हो, उसे आँकनेके सारे कृत्रिम साधनों का बहिष्कार हो। अपनी इस कामना को लेखक ने उपन्यास में व्यक्त भी किया है।

तितली में प्रसादजी ने जैसा कहा गया है एक व्यापक जीवन का चित्रण किया है। तितली की कथा ग्राम्य जीवन से सम्बन्धित है। भारतीय नारीत्व और दाम्पत्य प्रेम का जो भी चित्रण 'तितली' में है वह अपूर्व है। तितली में प्रसाद अत्यधिक आशावादी हैं। भाषा, कथोपकथन और चरित्र चित्रण भी विषय के अनुरूप ही सुन्दर और स्वाभाविक हैं।

वर्माजी से पूर्व के प्रतिनिधि उपन्यास लेखकों और उनकी कृतियों के इस विवेचन से

हमारा मुख्य तात्पर्य पाठकों को यह बताना था कि वर्माजी से पूर्व हिन्दी उपन्यास साहित्य किन परिस्थितियों और किन धाराओं में बह रहा था ? ऐसे कौन २ से उपन्यासकार थे जो समय २ पर उसकी धारा को तोड़ते-मोड़ते रहे और साहित्य को नवीन दिशा की ओर अग्रसर करते रहे ? इस विवेचन से हमें उपर्युक्त प्रश्नों का संक्षिप्त उत्तर मिल जाता है। इसकी भूमिका में वर्माजी के उपन्यासों का अध्ययन करने में भी हमें सुविधा होगी। आगे हम देखेंगे कि किस प्रकार हिन्दी उपन्यासों की धारा को इतिहास की ओर मोड़कर वर्माजी ने उपन्यास साहित्य के सबसे बड़े अभाव की पूर्ति की। वर्माजी से पूर्व हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों का अत्यधिक अभाव था। जो एक दो थे भी वे सच्चे अर्थों में ऐतिहासिक उपन्यास कहलाने के योग्य नहीं थे ! वर्माजी ने अपनी प्रतिभा से साहित्य के इस अंग को समृद्ध किया और यही उनका सबसे बड़ा महत्व है।

बृन्दावनलाल वर्मा—

उपन्यास और कला

वर्मा जी ने जिस समय हिन्दी उपन्यासों के क्षेत्र में प्रवेश किया उस समय तक उपन्यास साहित्य में बहुत कुछ प्रौढ़ता आ चुकी थी। प्रसाद और प्रेमचन्द सदृश प्रतिभाओं ने उपन्यासों के क्षेत्र में एक युग प्रवर्तन उपस्थित कर दिया था परन्तु उपन्यासों के विषय प्रधानतः सामाजिक ही थे। वर्मा जी को अपने उपन्यासों का विषय चुनने में कोई कठिनाई न हुई कारण प्रारम्भ में सामाजिक विषयों की ओर उन्होंने देखा नहीं और अपनी ऐतिहासिक रुचि को तृप्त करने के लिये उनके जाने बूझे बुन्देलखंड का इतिहास उनके सामने ही था। बुन्देलखंड के इतिहास ने उन्हें ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की प्रेरणा प्रदान की और वे उस ओर प्रवृत्त भी हुए। हिन्दी उपन्यासों के क्षेत्र में सामाजिक उपन्यास तो पर्याप्त संख्या में लिखे जा चुके थे और लिखे जा रहे थे, हां, ऐतिहासिक उपन्यासों का अभाव अवश्य अखर रहा था। जैसा विषय प्रवेश में कहा जा चुका है, वर्मा जी से पूर्व जो दो एक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे भी गये उनमें उपन्यास कला का अभाव तो था ही उनकी ऐतिहासिकता भी संदिग्ध थी। पं० किशोरीलाल गोस्वामी के ऐतिहासिक उपन्यासों के विषय में हम कह ही चुके हैं। उनमें इतिहास तो नहीं इतिहास की छीछालेदर अवश्य थी। उनके द्वारा रोमांस की जो धारा चलाई गई थी वह भी विकृत थी। स्वस्थ रोमांस का उसमें बिलकुल अभाव था। वर्मा जी ने ऐतिहासिक उपन्यासों के इस अभाव की ओर दृष्टि डाली और इस क्षेत्र को समृद्ध करने में वे प्रयत्नशील हुए। अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में रोमांस (कारण यह उन्हें अत्यधिक प्रिय है) के जिस रूप का समावेश उन्होंने किया है वही वास्तविक रोमांस कहलाने का दावा कर सकता है। इतिहास और रोमांस के अद्भुत समन्वय ने उनकी कला को निखार दिया है। हिन्दी उपन्यासों के क्षेत्र में वास्तविक रोमांस की प्रतिष्ठा वर्मा जी ने ही की। वही इसके जन्मदाता हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों के अतिरिक्त वर्मा जी ने सामाजिक उपन्यास भी लिखे हैं और उनमें भी वे पर्याप्त सफल हुये हैं। उपन्यासों के क्षेत्र में एक आध नवीन प्रयोगों को करने का श्रेय भी वर्मा जी को है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्मा जी ने ऐतिहासिक और सामाजिक दोनों प्रकार के विषयों को अपने उपन्यासों का आधार बनाया और इस दृष्टि से हिन्दी उपन्यासकारों के बीच उनका महत्वपूर्ण स्थान है। आज भी वर्मा जी की लेखनी नहीं रुकी है और भविष्य में उनसे और भी ऐतिहासिक उपन्यासों की आशा है।

अब तक उनके १६ छोटे बड़े ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें से कुछ में तो उनकी कला अत्यधिक निखर उठी है। उपन्यास निम्न-लिखित हैं—

ऐतिहासिक:—(१) गढ़ कुण्डार (१९२८) (२) विराटा की पद्मिनी (३) मुसाहिब जू (१९४६) (४) कचनार (१९४८) (५) झाँसी की रानी (१९४६) (६) मृगनयनी (१९५०) (७) टूटे काँटे (१९५४)!!

सामाजिक:—(१) अचल मेरा कोई··· (१९४८) (२)* लगन (१९५१) (३)* प्रेम की भेंट (१९५१) (४) अमर बेल (१९५३) (५) कुण्डली चक्र (६) प्रत्यागत (७) संगम (८) कभी न कभी !!

विविध:—सोना† (१९५२)।

उपन्यासों की उपर्युक्त तालिका से ही यह अनुमान लग जाता है कि हिन्दी उपन्यास साहित्य को समृद्ध करने में वर्मा जी का कितना महत्वपूर्ण हाथ है। ऐतिहासिक व सामाजिक दोनों प्रकार के उपन्यासों में वर्मा जी की रोमांस प्रियता प्रतिबिम्बित हो उठी है। विराटा की पद्मिनी तो शुद्ध रोमांस है, अन्य में ऐतिहासिक और सामाजिक तत्वों के साथ रोमांस का सुन्दर सामंजस्य किया गया है। अगले पृष्ठों में हम क्रम से इन उपन्यासों एवं उनकी कला का विवेचन करेंगे।

---

* मयूर प्रकाशन से ये दोनों उपन्यास १९५१ में प्रकाशित हुए ऐसा वर्मा जी के पुत्र श्री सत्यदेव ने सूचित किया है।

† यह न ऐतिहासिक ही है न सामाजिक। एक नया प्रयोग है।

ऐतिहासिक उपन्यास

(१) गढ़ कुण्डारः—

'गढ़ कुण्डार' वर्मा जी का सबसे प्रथम उपन्यास है। यह १६२८ में लिखा गया था। इसके प्रकाशित होते ही हिन्दी जगत वर्मा जी की ऐतिहासिक उपन्यास लेखन प्रतिभा से अवगत हो गया। बुन्देलखण्ड के बीते हुए सामन्तीय युग की स्मृति जब वहाँ वीरता एवं साहस की आँधियाँ उठा करती थीं प्रस्तुत उपन्यास का मूलाधार है। इसमें पारस्परिक मानापमान के कारण हुए खंगारों और बुन्देलों के उस युद्ध का वर्णन है जिसने खंगारों की प्रभुता एवं उनका अस्तित्व ही सदा के लिये समाप्त कर दिया। उपन्यास की कथा निम्नलिखित है —

चौदहवीं शती बुन्देलखण्ड के लिये एक भीषण रूप लेकर उपस्थित हुई। क्षत्रियों में पारस्परिक वैमनस्य अपनी पराकाष्ठा पर था। एक ओर खंगार थे और दूसरी ओर बुन्देले। बुन्देले अपने को खंगारों से ऊँचा समझते थे पर खंगार उनकी आधीनता स्वीकार करने की अपेक्षा मृत्यु को अधिक श्रेयस्कर समझते थे। राजा सोहनपाल बुन्देला अपने परिवार के लिये इधर उधर भटक रहा था। उसके भाई ने उसके साथ विश्वासघात किया था परिणाम स्वरूप सोहनपाल को उसका साथ छोड़ देना पड़ा था। साथ में कुछ चुने हुए सरदारों, मन्त्री धीर व उसके पुत्र दिवाकर के अतिरिक्त उसका पुत्र सहजेन्द्र व पुत्री हेमवती भी थी। हरि चंदेल ने इन्हें अपनी गढ़ी में आश्रय दिया। खंगार राजा हुरमतसिंह के पुत्र नागदेव ने हेमवती के सौन्दर्य की ख्याति सुनी। घटनावश हरिचन्देल की गढ़ी में पहुंचा। मुसलमानों ने अवसर देख कर गढ़ी को अपने हाथ में करने का आयोजन किया। नागदेव को यह ज्ञात हुआ। उसने अपने सैनिकों को सचेत किया। भीषण युद्ध हुआ। मुसलमान हार गये। हरि चन्देल नागदेव की वीरता पर रीझ उठा। नागदेव युद्ध में घायल हो गया। गढ़ी के भीतर ले जाकर उसकी सेवा सुश्रूषा आरम्भ हुई। राजा सोहनपाल का भी परिचय उससे हुआ। सबने कुमार को किसी अच्छे स्थान में लिटा देने की सलाह दी पर उसकी आँखें तो हेमवती को ढूंढ़ रही थीं जो कुछ देर पहले अपनी एक झलक देकर उसके हृदय पर अमिट प्रभाव छोड़ गई थी। सबने उसे उठाया। "उसकी आँखों ने चारों ओर देखा मानो किसी को ढूंढ़ा। एक किवाड़ के किनारे केवल एक आँख से उसकी भेंट हुई। नाग ने और देखना चाहा परन्तु ओट हो गई।" वह मानों सब कुछ पा गया। नाग ने सोहनपाल से परिवार समेत कुण्डार चलने की प्रार्थना की। सब लोग चल पड़े। नाग की मैत्री कुण्डार राज्य के

महान शुभ चिन्तक विष्णुदत्त पाण्डे के पुत्र अग्निदत्त से थी । वह मानवती से प्रेम करता था । मानवती भी उसे चाहती थी । नाग इस तथ्य से अपरिचित था । एक दिन नाग ने अवसर पाकर हेमवती से अपने मन की बात कही। हेमवतीबुन्देला कन्या थी । जात्याभिमान उसकी रग रग में बसा था । नाग के प्रणय निवेदन करते ही भभक उठी । उसे बुन्देला होने का गर्व था । नाग खंगार था,उससे नीचा पड़ता था परन्तु उसने हिम्मत न हारी ।

अमावस्या की रात को नाग की बहन मानवती का विवाह था । अग्निदत्त व्यथित हो उठा । अपनी बहन तारा के वेश में मानवती के अपहरण के उद्देश्य से वहाँ पहुँचा । नाग भी उसी रात्रि हेमवती के अपहरण की योजना बनाये था । कुछ चुने हुए साथियों के साथ वह हेमवती के निवास स्थान पर पहुँचा । परन्तु दिवाकर ने स्वामी की पुत्री की रक्षा की । नाग असफल हुआ । उसकी भेंट तारा वेश धारी अग्निदत्त से हुई । उसने अग्निदत्त को पहचान लिया । जब उसे मानवती और उसके प्रेम सम्बन्ध का पता चला तो जल उठा । उसने अग्निदत्त को फटकारा । उसे लात मारी और प्रातःकाल तक कुण्डार छोड़ देने का आदेश दिया । अग्निदत्त अपमानित होकर प्रतिशोध के लिये इधर उधर भटकने लगा ।

उधर तारा दिवाकर को अपना हृदय दे चुकी थी । तारा ब्राह्मण थी, दिवाकर कायस्थ । वर्णाश्रम धर्म उनके मिलन में बाधा स्वरूप उपस्थित था । परन्तु वे शान्त रहे । बुन्देले खंगारों से चिढ़े तो थे ही, अग्निदत्त का सहयोग पाकर भड़क उठे । अग्निदत्त ने षडयन्त्र रचा । बुन्देलों ने खंगारों को शराब पिलाकर उन पर आक्रमण कर दिया । कुण्डार जीत लिया गया । इसी युद्ध में अग्निदत्त की मृत्यु हो गई । अन्तिम घड़ी उसे अपने कृत्य पर पश्चाताप हुआ पर जो होना था सो हो चुका था । तारा और दिवाकर के मस्तिष्क में इस नाश की भीषण प्रतिक्रिया हुई । युद्ध की आग में उनका प्रेम और भी तीव्र हो उठा था । वर्णाश्रम धर्म की मान्यताओं का विरोध करने का साहस उनमें न था । आत्माओं के संयोग से ही उन्होंने अपने मन को सन्तोष प्रदान किया और सब कुछ त्याग कर एक अजानी डगर की ओर चल पड़े ।

प्रस्तुत उपन्यास पूर्णरूपेण ऐतिहासिक है । रोमांस की धारा ने उसे और भी आकर्षक बना दिया है । सामन्तीय युग के युद्धों और प्रेम से सने 'गढ़ कुण्डार' में हमें वीरता का अद्भुत प्रदर्शन, प्रेम की सुन्दर झलक एवं पारस्परिक जाति दर्प का विस्तृत वर्णन मिलता है । वर्मा जी की पहली कृति होने पर भी इसमें पर्याप्त प्रौढ़ता है । घटनाओं की योजना और दृश्यों का संविधान भी सराहनीय है । मानवती अग्निदत्त, तारा

दिवाकर, नागदेव, हेमवती जैसे प्रेमी युग्मों के क्रिया कलापों से उपन्यास में अत्यधिक सरसता आ गई है।

'गढ़ कुण्डार' का सबसे पहला आकर्षण उसकी कथावस्तु है। कथा वस्तु का आकर्षण बनाये रखने के लिए वर्मा जी ने तीन तीन प्रेमी युग्मों की अवतारणा की है। इनके रोमांस ने उपन्यास में पर्याप्त सजीवता ला दी है। घटनाओं का चक्र कुशलतापूर्वक निर्मित किया गया है। इन प्रेमी युग्मों के पारस्परिक प्रेम प्रसंग में सबसे आकर्षक बात तो यह है कि इनमें से किसी का भी विवाह समाज और धर्म की रूढ़ियों को मानते हुए सम्भव न था। इस कारण उनके प्रेम में और भी तीव्रता, हृदय में उठती हुई आँधियों में और भी बल देखा जा सकता है। सामन्तीय युग के प्रेम के आदर्श इनके पारस्परिक प्रेम में पूर्णतः उभर आये हैं।

सबसे पूर्व तो हम हेमवती और नागदेव के प्रेम प्रसंग को लेते हैं। जैसा कहा जा चुका है नागदेव खंगार था और हेमवती बुन्देला! सामन्तीय जात्याभिमान की भावना अपने वेग पर थी। बुन्देले अपने को खंगारों से ऊँचे कुल वाला समझते थे अतः खंगारों के यहाँ कन्याएँ देना उनका जातिगत अपमान था। यह नागदेव और हेमवती के मिलन में सबसे पहली बाधा थी। दूसरा और मुख्य कारण जो नागदेव और हेमवती के बीच बाधास्वरूप उपस्थित था वह उनके प्रेम का एकोन्मुखी होना था। नागदेव तो हेमवती को चाहता था पर हेमवती नाग से प्रेम न करती थी। नाग भ्रमवश यह अनुमान लगाये था कि हेमवती उसे चाहती है। दोनों के मिलन की यह सबसे बड़ी बाधा थी। परन्तु नाग के पास उपर्युक्त भ्रम का आधार था। उसे यह भ्रम क्यों हुआ? हरिचन्देल की गढ़ी में जब उसने पहले पहल हेमवती को देखा था तभी उसकी छवि उसके हृदय में अंकित हो गई थी। वह अर्जुन कुम्हार नामक एक व्यक्ति से हेमवती के नाम एक प्रेमपत्र भिजवाता है जिसे अर्जुन अपने स्वामी हरिचन्देल को दे देता है। नाग यही समझता है कि पत्र हेमवती के पास पहुँच गया है, किसी कारण वश ही वह उत्तर नहीं दे पाई। यही अनुमान नाग के मन में यह धारणा बना देता है कि हेमवती उसे प्रेम करती है। उसका यह स्वप्न तब चकनाचूर होता है जब वह स्वयं हेमवती से प्रेम निवेदन करता है और हेमवती उसे फटकारती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नाग और हेमवती की कथा कौतूहल और रोमांस से पूर्ण है। इनके प्रेम की असफलता ही खंगारों और बुन्देलों के युद्ध का कारण बनती है। सामन्तीय प्रवृत्तियाँ पुनः अपना उभार पाती हैं और युद्ध का परिणाम खंगारों के नाश में प्रकट होता है।

दूसरे प्रेमी युग्म में अग्निदत्त और मानवती आते हैं। इनका प्रेम भी सामन्तीय युग की प्रवृत्तियों और आदर्शों में घिरा है। संघर्ष और परिस्थितियों का चक्र यहाँ भी

है। रोमांस की व्यापकता भी यहाँ है। अग्निदत्त ब्राह्मण है, मानवती खंगार क्षत्रिय! अग्निदत्त राजमहल में पुत्रवत समझा जाता है। मानवती से उसका प्रेम हो जाता है। मानवती भी उसे चाहती है। यहाँ नागदेव व हेमवती वाली परिस्थिति नहीं है। नागदेव इस बात से अपरिचित है। अग्निदत्त से उसकी अत्यधिक घनिष्टता है। भाइयों का सा व्यवहार है। वर्णाश्रम धर्म की मान्यताएँ यहाँ बाधास्वरूप उपस्थित हैं इस कारण इनका विवाह असम्भव हो जाता है। मानवती की सगाई उसी के वर्ण के एक व्यक्ति के साथ हो जाती है। अग्निदत्त विक्षिप्त हो उठता है। वह मानवती से मिलकर उससे भाग चलने को कहता है। मानवती दुर्बल हृदया थी! अग्निदत्त का साथ नहीं दे पाती। विवाह के दिन अग्निदत्त अपनी बहन तारा के वेश में मानवती के पास पहुँचता है। लोग उसे तारा समझते हैं अतः मानवती से मिलने में उसे कोई कठिनाई नहीं होती। उसी दिन नाग ने भी हेमवती के अपहरण की योजना बनाई थी पर असफल हुआ था! घर आते ही उसकी भेंट तारा वेशधारी अग्निदत्त से होती है। रहस्य खुल जाता है। नागदेव अग्निदत्त को अपमानित कर उसे कुंडार छोड़ देने का आदेश देता है। अपमानित अग्निदत्त खंगारों के नाश का प्रण करता है।

तीसरे प्रेमी युग्म में दिवाकर और तारा आते हैं। वर्णाश्रम-धर्म यहाँ भी बाधास्वरूप उपस्थित होता है। तारा ब्राह्मण है, दिवाकर कायस्थ। इन दोनों का प्रेम भी शनैः शनैः तीव्रता प्राप्त करता रहता है। दोनों दुर्बल थे! वर्णाश्रम धर्म के सम्मुख घुटना टेक देते हैं और एक निष्क्रिय आदर्श की छाया में अपने प्रेम को आगे बढ़ाते रहते हैं। इनके प्रेम का उदय उस समय होता है जब दिवाकर तारा की पूजा के हेतु कनेर के पुष्प लेकर पहुँचता है। वहीं तारा उसे बेले के पुष्पों का हार देती है। दिवाकर अकेले में उसे देखता है। उसमें गुँथा हुआ था—'मेरे देव' !!

दिवाकर जहाँ तारा का प्रेम पाकर प्रसन्न होता है वहां उसे दुख भी होता है। वर्णाश्रम धर्म का आतङ्क उसके लिये बहुत था! वह जानता था कि उनका मिलन असम्भव है। एक दिन तारा से वह कह भी देता है और आँसू बहाकर अपने व उसके मन को सान्त्वना प्रदान करता है। संयम की कठोरता के आग्रह के फलस्वरूप इनके प्रेम का रूप अन्य दूसरे प्रेमी युग्मों की अपेक्षा भिन्न हो जाता है। मिलन के लिये वे उतना संघर्ष नहीं करते जितना नागदेव या अग्निदत्त करते हैं। तारा का प्रेम अवश्य उस समय क्रियाशील हो उठता है जब वह अर्धनग्न अवस्था में दिवाकर को बन्दीगृह से छुड़ाती है। युद्ध के पश्चात् सब कुछ समाप्त हो जाता है। दिवाकर व तारा बच रहते हैं। दोनों को विवाह की पूर्ण स्वतन्त्रता थी पर वर्णाश्रम धर्म से प्रभावित दिवाकर धर्म के बन्धन तोड़ने की अपेक्षा तारा के साथ एक अनजानी डगर की ओर चल पड़ता है। योग साधन करके अगले जीवन में उसे प्राप्त

करने के उद्देश्य से ! धर्म और समाज की रूढ़िगत मान्यताओं के प्रति दिवाकर की यह आस्था उसे उसकी प्रेमिका को पाने से वंचित कर देती है। तारा उसके पास थी ही। इसे ही वह बहुत समझ लेता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अपनी प्रेमिकाओं को प्राप्त करने में नागदेव, अग्निदत्त व दिवाकर तीनों असफल होते हैं। इनके प्रेम प्रसंगों में सामन्तीय युग की प्रवृत्तियों ने पूर्ण उभार पाया है। अपनी २ प्रेमिकाओं को पाने के लिये ये (दिवाकर को छोड़कर) मारकाट, युद्ध, धोखेबाजी, अपहरण आदि सब कुछ करने को प्रस्तुत हो जाते हैं। दिवाकर को असफलता उसकी स्वयं की दुबर्लताओं के कारण प्राप्त होती है।

कथा का आकर्षण इन तीन प्रेमी युग्मों के अतिरिक्त और भी अनेक घटनाओं पर आश्रित है। सामन्तीय युग की सारी प्रवृतियाँ इस उपन्यास में उभर उठी हैं।

चरित्रों का चित्रण लेखक ने कुशलता से किया है। लगभग सारे चरित्र एक विशेष सामन्तीय वर्ग से सम्बन्धित हैं। युग की प्रवृत्तियाँ भी उनके चरित्रों में पूर्णतः उभरी हैं। जरा सी बात में तलवारों का खिंचजाना, जात्याभिमान के कारण एक दूसरे के प्राणों के लिये उद्यत हो उठना, प्रेम के क्षेत्र में असफल होने पर शक्ति और छल से सफल होने का प्रयास करना ये प्रवृत्तियाँ लगभग सभी चरित्रों में हैं। चरित्रों का विकास भी उनकी प्रवृत्तियों के अनुरूप ही सुन्दर हुआ है। कोई अपने थोथे आदर्श के कारण असफल होता है, कोई धर्म और समाज की मान्यताओं पर अपनी बलि दे देता है, कोई छल और प्रपंचों से सफल होने का प्रयत्न करता है, कोई जात्याभिमान के कारण अपना गला कटाने को उत्सुक हो जाता है, कोई अपनी शक्ति और साधनों के बल पर सफल हो जाता है, कोई अपने स्वामी की रक्षा में प्राण देकर अपने सेवकत्व को चरितार्थ करता है, यही बातें आदि से अन्त तक सारे चरित्रों में देख पड़ती हैं। लेखक ने पर्याप्त परिश्रम से उनकी इन प्रवृत्तियों को उभारा है।

वैसे तारा का चरित्र उपन्यास भर में सबसे आकर्षक है। एक विशेष युग की सीमाओं और प्रवृत्तियों से घिरे हुए उसके चरित्र के चित्रण में लेखक ने भी परिश्रम किया है। नाग का चरित्र भी परिस्थितियों के अनुसार ही उभारा गया है। वह भी जो कुछ करता है परिस्थितियों और अपनी विशेष प्रवृत्तियों के वश ही। हेमवती जो उसकी अतिथि थी, उसी का अपहरण करने के उद्देश्य से वह उसके निवास स्थान में पहुँचता है भले ही लोग उसके चरित्र पर आक्षेप करें पर उस युग की प्रवृत्तियों के देखते हुए उसका यह कार्य बिलकुल स्वाभाविक है।

अग्निदत्त का चरित्र भी युग की विशेष प्रवृत्तियों के अनुसार ही उभार पाता

है। सामन्तीय युग में इस प्रकार के असंख्य उदाहरण मिलेंगे। अपमानित होकर अपने स्वामी से प्रतिशोध लेने के लिये उसका नाश करा देना उस युग की साधारण सी बात थी! वैसे व्यक्तिगत रूप से अग्निदत्त जो कुछ करता है, वह परिस्थितियों को देखते हुए स्वाभाविक है। उसका विश्वासघात परिस्थितियों से प्रेरित है। उसके चरित्र का अधःपतन भी परिस्थितियाँ ही कराती हैं। मेरे अपने दृष्टिकोण से उसके चरित्र का विकास स्वाभाविक है, वह दोषी नहीं है।

मानवती दुर्बल थी! इसी कारण अपने प्रेमी को प्राप्त करने में असफल होती है। हेमवती का जात्याभिमान नागदेव की असफलता का कारण बनता है। तारा और दिवाकर का आदर्श, वर्णाश्रम धर्म और समाज के सम्मुख उनका घुटने टेक देना (यद्यपि वे अन्तः करण से इनके विरोधी हैं) उन्हें असफल बनाते हैं। इनके चरित्रों का विकास भी स्वाभाविक है। हेमवती द्वारा नागदेव को सम्बोधित किये गये निम्नाङ्कित कथन में सामन्तीय युग का जात्याभिमान स्पष्ट बोलता हुआ प्रतीत होता है।

"यदि आप यहाँ से नहीं जाते हैं तो मैं यहाँ से जाती हूं। बुन्देला कन्या न ऐसी भाषा न सुन सकती है और न सह सकती है। और खंगार राजा होने पर भी बुन्देला कन्या का अपमान करने की शक्ति नहीं रखता।"

इन प्रमुख पुरुष और स्त्री चरित्रों के अतिरिक्त सोहनपाल, हुरमतसिंह, धीरप्रधान विष्णुदत्त, पुण्यपाल आदि के चरित्रों का विकास भी स्वाभाविक और युग के अनुरूप है। अन्तिम क्षणों में अग्निदत्त का चरित्र भी लेखक ने उठाने का प्रयास किया है। अंत में अग्निदत्त को अपने कृत्य पर पश्चाताप होता है और अपनी प्रेमिका मानवती की रक्षा करते २ उसकी मृत्यु होती है। इस समय का दृश्य पर्याप्त सजीव है। युद्ध हो रहा है। चारों ओर रक्त की होली खेली जा रही है। जात्याभिमान की वेदी पर प्राणों की आहुति दी जा रही है। अग्निदत्त भी उसमें सम्मिलित है। इसी समय उसके कानों में एक स्त्री के कराहने की आवाज सुनाई पड़ती है। वह पास जाता है। मानवती उसे देखती है। अग्निदत्त को आश्चर्य होता है। मानवती एक दो क्षणों में ही एक बच्चे को जन्म देने वाली थी। मानवती अग्निदत्त से उसका परिचय पूछती है। अग्निदत्त का परिचय पाकर वह उससे कहती है:—

"तुम पाण्डे नहीं हो। पाण्डे ऐसा नहीं कर सकते थे।"

अग्निदत्त ऐसे स्वरों में बोला जैसा फूटे बड़े से निकलता है:—

"मैं वही पापी राक्षस हूं। सर्वद्रोही, सर्वहन्ता। मुझे मारो। भिक्षा माँगता हूं। मेरे हृदय में इतनी शक्ति नहीं कि आत्मघात कर सकूँ।"

इसके उपरान्त वह अपने सारे कपड़े उतारकर वहीं बिछा देता है। मानवती पुत्र को जन्म देती है। बच्चे के रोने की ध्वनि सुनकर एक ओर से चार पाँच सैनिक आजाते हैं। मानवती के देखते ही दलपति बुन्देला कहता है—"मारो इस खंगार को। उतार लो सब आभूषण इस स्त्री के।" अग्निदत्त सामने आ जाता है और कहता है:—

"घायल को मत मारना और स्त्री को मत छूना।" युद्ध होता है और अग्निदत्त मारा जाता है।

इस प्रकार चरित्र चित्रण की दृष्टि से सारे पात्र गतिवान प्रतीत होते हैं। उनमें क्रियाशीलता है। आदर्शों के लिये प्राण दे देने की क्षमता है। वे वीर हैं, उनमें साहस है और अपनी इसी वीरता, साहस और अभिमान के बल पर वे अपने युग की प्रवृत्तियों को चरितार्थ करते हैं। सामन्तीय युग की सारी प्रवृत्तियों, उसकी दुर्बलताओं और सबलताओं के वे प्रतिबिम्ब हैं।

कथोपकथन सुन्दर हैं। पात्रों की मानसिक और जातिगत प्रवृत्तियों के अनुसार कथोपकथनों की भी योजना हुई है। कथोपकथनों से लेखक ने चरित्रों के विकास में पर्याप्त सहायता ली है। उनमें स्वाभाविकता है, ओज है और वे प्रभावशाली भी हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों में जिस प्रकार के कथोपकथन वाञ्छित हैं लेखक ने वैसे ही कथोपकथनों की अवतरणा की है।

भाषा भी साधारण ही है। परिस्थिति और पात्रों के अनुरूप भाषा का प्रयोग कर उपन्यासकार ने स्वाभाविकता को स्थिर रखा है। बुन्देलखण्डी बोली भी पर्याप्त आकर्षक प्रतीत होती है। इसकी भाषा वर्मा जी के बाद की कई उपन्यासों से अधिक प्रौढ़ और स्वाभाविक है। उसमें ओज है प्रवाह है' गति है और विचारों को व्यक्त करनेकी क्षमता भी। हेमवती द्वारा अपमानित नाग के वर्णन में वर्मा जी ने जिस भाषा का प्रयोग किया हैं उसमें पर्याप्त प्रौढ़ता और ओज है। इस प्रकार की भाषा के दर्शन वर्मा जी के उपन्यासों में कम ही होते हैं! देखिये —

"नाग को वह रात बड़ी कठिनाई से कटी। एक ओर सामन्त नाग, दूसरी ओर आहतवर्ग नाग। एक ओर मनुष्य नाग दूसरी ओर दर्पयुक्त नाग। एक ओर राजकुमार नाग दूसरी ओर प्रणयोन्मत्त नाग। एक ओर वीर नाग, दूसरी ओर उद्धत नाग। एक ओर नाग देव और दूसरी ओर नाग राक्षस! देवता पर राक्षस विजय पा चुका था और खंगारों का सूर्य अस्ताचल की ओर जा चुका था।"

ऐसी ही भाषा के दर्शन हमें अन्य स्थानों पर भी होते हैं। वातावरण का पूर्ण ध्यान लेखक ने रखा है!

देशकाल चित्रण की दृष्टि से भी उपन्यास में वर्मा जी को सफलता मिली है। जिस युग का वर्णन प्रस्तुत उपन्यास में किया गया है जैसा कि कहा गया है वह सामन्तीय युग था! जरा सी बात पर तलवारों का खिंच जाना, भीषण युद्धों का होना उस समय साधारण सी बात थी। प्रेम, वीरता, शौर्य, आदि (Chivalary) उस युग की विशेषतायें थीं। शक्ति सम्पन्न और असीमित साधनों से पूर्ण व्यक्तियों के निजी स्वार्थों के चक्र में साधारण जनता बुरी तरह पीसी जा रही थी! सामन्तीय वर्ग प्रेम करता था, प्रेम में सफल और असफल होता था। असफल होने पर अपहरण की योजनायें बनाई जाती थीं जिनके फलस्वरूप युद्ध होते थे और साधारण जनता ही उनका लक्ष्य बनती थी। नगर के नगर उजाड़ दिये जाते थे! सैकड़ों सैनिक अपने प्राणों की बलि दे देते थे। उनके परिवार दरिद्रता की आग में जल जल कर अपने जीवन का अन्त कर देते थे। सामन्तीय वर्ग की दृष्टि इस ओर न जाती थी। उसे अपने स्वार्थों और मानापमान की चिन्ता थी। साधारण जनता से उनका कोई सम्पर्क न था! प्रसन्न होते तो उनपर हीरे और जवाहरों की बौछार कर देते, क्रोधित होते उनका संहार कर डालते, ऐसी ही परिस्थितियों के बीच से तत्कालीन युग गुजर रहा था। साधारण जनता के लिये जो उपकार किये जाते थे वह भी इसी भावना से प्रेरित होकर कि राजा प्रजा का रक्षक है, उसका स्वामी है। साधारण जनता की मनोवृत्तियाँ भी बदल दी जाती थीं। वह भी अपने शासकों को यदि वे उसका ख्याल रखते थे, अपना रक्षक समझती थी! उन पर अपने प्राणों की बलि देने को उद्यत रहती थी। पीड़ित होती थी तो भाग्य को दोष देकर संतुष्ट हो जाती थी। इस प्रकार की भावनायें भी सामन्तीय वर्ग ही उनमें भरता था। यदि विरोध करती तो कुचल दी जाती थी। सामन्तीय युग की इन्हीं प्रवृत्तियों का चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है। देशकाल के निर्वाह में लेखक ने सफलता पाई है। उपन्यास की कथा मुख्यतः सामन्तीय वर्ग से ही सम्बन्धित है। उन्हीं के दुख सुख का वर्णन उपन्यासकार ने किया है! अपने व्यक्तिगत और जातीय तथा वर्गीय स्वार्थों की प्राप्ति में वे क्या करते थे और किस प्रकार से तुष्ट होते थे, असफल होने पर किस प्रकार प्रतिशोध लेते थे, यही सब उपन्यास में वर्णित है। साधारण जनता की क्या दशा थी लेखक ने इसे नहीं प्रदर्शित किया है पर सामन्तों के स्वार्थों और उनके कर्मों तथा होने वाले परिणामों और युद्धों की भूमिका में उसका अनुमान सहज ही हो जाता है। खंगारों का नाश हुआ! सामन्तीय वर्ग के तो गिने चुने लोग अपने स्वार्थों के संघर्ष में मृत्यु को प्राप्त हुये पर अधिकांश रूप में साधारण वर्ग ही पिसा! बुन्देलों ने साधारण वर्ग से आने वाले सैनिकों का ही खून बहा कर विजय प्राप्त की। युद्धों का प्रभाव तुरन्त नहीं मिट जाता। उसकी आग में बाद तक भी साधारण जनता ही जली। इस प्रकार

साधारण जनता का चित्रण न होने पर भी उसकी दशाओं का अनुमान सरलतापूर्वक लग जाता है ! लेखक ने अपने को एक विशेष वर्ग तक ही सीमित रखा है।

हाँ, इस वर्ग के इस चित्रण में तत्कालीन प्रवृत्तियाँ जैसा कि हम कह चुके हैं, पूर्णतः उभर उठी हैं। लेखक ने निष्ठा पूर्वक उनका चित्रण किया है। तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक दशाओं का भी अनुमान सरलता से हो जाता है। वर्णाश्रम धर्म की जो समस्या उपन्यास में उठाई गई हैं, यह निश्चित है कि उसके मूल में लेखक की आधुनिक विचार धारा ही कार्य कर रही है। उसने वर्णाश्रम धर्म की रूढ़ियोंका लक्ष्य सामन्तीयवर्ग से सम्बन्धित व्यक्तियों को बनायाहै जबकि तत्कालीन प्रवृत्तियों को देखते हुये यह बात मानने को जी नहीं करता ! वर्णाश्रम धर्म और समाज सामन्तीय युग में केवल साधारण वर्गों के लिये ही सब कुछ थे ! शक्ति सम्पन्न व्यक्तियों के सन्मुख तो स्वयं समाज और धर्म ही झुक जाता था। ऐसे उदाहरण हैं।

नागदेव, अग्निदत्त , दिवाकर के स्थान पर यदि साधारण वर्ग के व्यक्ति होते तो हम मान लेते कि समाज और वर्णाश्रम धर्म की बाधा एक बड़ी बाधा थी ! पर सामन्तीय वर्ग के व्यक्तियों की राह में समाज और वर्णाश्रम धर्म को रोड़ा बना देना और उसकी विजय दिखाना जैसा कि हमने कहा तत्कालीन युग की परिस्थितियों को देखते हुये एक अपवाद भले ही हो सकता है, सर्व मान्य नहीं बन सकता। अग्निदत्त, या दिवाकर के स्थान पर यदि उसी वर्ग के दूसरे व्यक्ति होते तो बहुत अंशों में परिणाम उलटा दृष्टि गोचर होता ! ये लोग व्यक्तिगत दुर्बलताओं के कारण असफल हुये न कि समाज और वर्णाश्रम धर्म के कारण। जैसा कि हमने कहा कि इसके मूल में लेखक की आधुनिक युगीय विचार धारा कार्य कर रही है। आगे इस प्रश्न पर विस्तार पूर्वक विचार किया गया है !

समग्र रूप से हम यही कह सकते हैं कि प्रस्तुत उपन्यास सामन्तीय युग की प्रवृत्तियों का सजीवता से चित्रण करता है। ऐतिहासिकता की दृष्टि से भी यह सफल है। रोमांस और इतिहास के सम्मिलन ने इसे पर्याप्त आकर्षक बना दिया है। लेखक की पहली कृति होने पर भी इसमें उसकी बाद की कई कृतियों से अधिक प्रौढ़ता है। ऐतिहासिक रोमांस की दृष्टि से तो इसकी समता लेखक' का 'मृगनयनी' उपन्यास ही कर सकता है।

(२) विराटा की पद्मिनी:—

प्रस्तुत उपन्यास शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास नहीं प्रत्युत शुद्ध रोमांस है ! घटनाएं या तो काल्पनिक हैं या जनश्रुतियों आदि पर आधारित हैं, केवल उन्हें ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि में वर्णित भर कर दिया गया है। रोमांस के लगभग सभी तत्वों की सत्ता इसमें विद्यमान है। जहां तक रोमान्स का प्रश्न है वर्मा जी की कला इसमें अत्यधिक निखर उठी है, हां जन जीवन से इसका कोई सम्बन्ध नहीं। एक विशेष युग की भूमिका में कुछ काल्पनिक, रोमान्स से पूर्ण घटनाओं का वर्णन, जन जीवन के कल्याण और प्रगति से बहुत कुछ परे होकर करना, तत्कालीन युग की प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन, प्रेम की भावुकता और उसके आदर्शवादी स्वरूप का चित्रण कर पाठकों को कठोर वास्तविकता से हटा कर एक कल्पना लोक में ले जाना, ऐसे प्रेम और उसकी आदर्शवादिता के प्रति पाठकों के हृदय में श्रद्धा की भावनाओं को भरना, एक दुखद अन्त दिखा कर पाठकों को करुणा और मोह से आच्छादित कर देना ही उपन्यासकार का लक्ष्य रहा है !

घटनाओं की एक पूर्व कल्पना लेखक के मस्तिष्क में थी। अतः उन्हीं के अनुरूप ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि भी निर्मित की गई है। लेखक ने इतिहास के उस युग का वर्णन किया है जब भारतवर्ष की राजनीति में एक भीषण अस्तव्यस्तता छाई हुई थी। भारत किसी सुदृढ़ शासन के अन्तर्गत न होकर फर्रुखसियर जैसे बादशाह के निर्बल हाथों में था। छोटे छोटे राजा नवाब केन्द्रीय शासन से विरोध कर अपने स्वतंत्र राज्यों की नींव डाल रहे थे। पारस्परिक कुचक्रों, षणयन्त्रों एवं सामन्तीय वर्ग के व्यक्तिगत स्वार्थों की वेदी में साधारण जनता की वलि दी जा रही थी। फर्रुखसियर नाममात्र का शासक था। शासन की बागडोर सय्यद भाइयों के हाथ में थी। छोटे छोटे स्वतंत्र राजे व नबाब उपयुक्त अवसर की बाट देख रहे थे। ऐसे ही अशान्ति मय वातावरण के बीच—

पालर में एक दांगी के घर एक कन्या ने जन्म लिया ! कन्या रूप में अद्वितीय थी। लोगों ने समझा साक्षात् दुर्गा ने अवतार लिया है। बालिका का नाम कुमुद रक्खा गया और १६ वर्ष की आयु तक पहुंचते पहुंचते उसके रूप की ख्याति दूर दूर तक फैल गई। देवी के अवतार की चर्चा भी सब लोगों में थी ही फलस्वरूप दूर दूर से लोग उसके दर्शनों को आते और उचित भेंटें चढ़ा कर देवी का आशीर्वाद प्राप्त करते ! बालिका की अद्वितीय सुन्दरता उन्हें यह मानने को बाध्य कर देती कि सचमुच यह दुर्गा का अवतार है।

इन्हीं दिनों दिलीपनगर के राजा नायकसिंह का शिविर भी पास ही पड़ा था। राजा नायकसिंह कामुक व विलासी थे। उन्हें भी कुमुद के रूप का पता चला और

उनकी इच्छा उसे प्राप्त करने की हुई। राजा नायकसिंह का दासी पुत्र कुञ्जरसिंह भी कुमुद के रूप की ख्याति सुन कर उसके दर्शनों के लिये उत्सुक हो उठा। उसके मन में निरन्तर यही प्रश्न उठता "क्या वह वास्तव में देवी का अवतार है'? सेनापति लोचनसिंह को लेकर वह कुमुद के दर्शनों को गया। प्रथम दर्शन ने ही उसे कुमुद के प्रति श्रद्धा की भावना से भर दिया। उसके अद्वितीय रूप ने उसकी आँखों में चकाचौंध पैदा कर दी और वह सब कुछ हार गया। कुमुद ने भी उसे देखा और आशीर्वाद दिया। कुञ्जरसिंह ही पहिला व्यक्ति था, जिसे देख कर कुमुद ने आँखें नीची कर लीं।

लौटते समय कालपी के कुछ मुसलमान सवारों से लोचनसिंह की खटपट हो गई। झगड़ा बढ़ा पर देवी का मन्दिर रक्तपात के उपयुक्त न समझा गया। कुमुद ने मन्दिर से बाहर निकल कर सबको शान्त करना चाहा। कुञ्जरसिंह का हाथ तो रुक गया पर, लोचनसिंह न माना। कुछ लोग मारे गये। राजा नायकसिंह को जब मुसलमानों की धृष्टता का पता चला तो वे बिगड़ उठे! सनकी स्वभाव के थे ही, कालपी पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया। उस समय कालपी का सूबेदार अलीमर्दान था। उसने आक्रमण का प्रतिरोध किया। युद्ध में राजा नायकसिंह मरते मरते बचे। उनके प्राण बचाये देवीसिंह नामक एक बुन्देले वीर ने जो पालर में अपना विवाह करने बारात के साथ जा रहा था। देवीसिंह भी पर्याप्त आहत हुआ। विवाह रुक गया और उसकी पालर की होने वाली वधू पीले हाथ लिये बैठी रही। राजा नायकसिंह भी स्वस्थ हुए। देवीसिंह उनका कृपा पात्र बन गया। वह भी राजा के निकट ही रहने लगा। अपनी होने वाली पत्नी को भूल गया। सामन्तीय स्वार्थों के चक्र में एक बालिका को पीस डाला गया।

राजा नायकसिंह तो सनकी और विलासी प्रकृति के थे, अतः राज्य की बागडोर मुख्य रूप से जनार्दन शर्मा नामक एक व्यक्ति के हाथ में थी। राजा नायकसिंह की रानियाँ भी उसके विरुद्ध कुछ नही कर सकती थीं! कामुक होने के कारण राजा प्रायः बीमार रहा करते। एक दिन उनकी अवस्था बिगड़ गई। जनार्दन शर्मा कुञ्जरसिंह के प्रति उदासीन था। अपनी धूर्तता से उसने देवीसिंह को दिलीपनगर का राजा घोषित कराया। कुञ्जरसिंह अपमानित हुआ और प्रतिशोध लेने के लिये स्थान स्थान पर भटकने लगा।

कुमुद की अवतार वाली बात अलीमर्दान के कानों में भी पहुंची। वह भी उसे प्राप्त करने का उपाय सोचने लगा। कुमुद का पिता नरपति नामक व्यक्ति था। पालर में बेटी को सुरक्षित न समझ कर अपने ही एक कुटुम्बी के यहाँ विराटा चला गया, विराटा की गढ़ी जिसके अधिकार में थी। विराटा के बगल में ही बेतवा बहती थी। उसी में एक

टापू पर एक मन्दिर था। कुमुद वहीं रहने लगी। कुमुद का सौन्दर्य निखरने लगा। कुञ्जर भी घूमता हुआ एक दिन विराटा के मन्दिर में आया और उसे जब यह पता चला कि कुमुद भी वहीं है तो वह भी उसकी रक्षा के निमित्त वहाँ रुक गया। कुमुद ने भी कुञ्जर को देखा और पुनः अपनी आँखें नीची कर लीं।

घटनाक्रम परिवर्तित होता है। कुमुद व कुञ्जर का प्रेम अप्रत्यक्ष रूप से विकसित हो रहा था। देवीत्व की दीवाल दोनों को पृथक किये थी। अलीमर्दान व देवीसिंह दोनों विराटा की ओर बढ़ते हैं। अलीमर्दान कुमुद को हस्तगत करने के उद्देश्य से और देवीसिंह उसकी रक्षा के निमित्त! विराटा की गढ़ी का स्वामी सबदलसिंह दाँगी था। दाँगी भी युद्ध के लिये उद्यत होते हैं! कुञ्जरसिंह भी दाँगियों का साथ देता है। उसे तोप चलाने का कार्य सौंपा जाता है। कुमुद के लिये प्राण देने में वह कोई मोह नहीं करता। कुमुद के लिये उसके हृदय में अपार श्रद्धा थी। दाँगियों की साधारण सेना अलीमर्दान के सम्मुख अधिक देर टिक सकने में अपने को असमर्थ पाती है। फलस्वरूप दाँगी लोग जौहर का निश्चय करते हैं। भूख और प्यास से जर्जर, अपने फटे हुए कपड़ों को हल्दी से रंग कर वे अलीमर्दान की सेना पर टूट पड़ते हैं। कुञ्जर भी अन्तिम विदा के हेतु कुमुद के पास पहुंचता है। प्रेम की धारा जिसे देवीत्व की दीवाल बाँधे हुये थी, उफना उठती है। कुमुद कुञ्जर के आलिंगन में बद्ध हो जाती है। कुमुद ने—"अपने आँचल के छोर से जंगली फूलों की गूंथी हुई एक माला निकाली और कुञ्जर के गले में डाल दी। उस माला के फूल अधखिले और सूखे थे।"

कुमुद कुञ्जर को बिदा करती है। अब तक देवीसिंह भी विराटा आ पहुंचा था। कुञ्जर और उसकी मुठभेड़ होती है। कुञ्जर अपना स्वत्व छीनने वाले देवीसिंह पर आक्रमण करता है। देवीसिंह और उसमें युद्ध होने लगता है। अब तक अलीमर्दान मन्दिर पहुंच चुका था। कुमुद ने भी मन्दिर छोड़ दिया था। उसे वहां न पाकर अलीमर्दान बाहर निकलता है और बेतवा की ओर जाती हुई कुमुद का पीछा करता है। अलीमर्दान उसके बहुत पास पहुंच जाता है। लड़ते हुए कुञ्जर की दृष्टि कुमुद और अलीमर्दान पर पड़ती है। वह विक्षिप्त और अन्यमनस्क हो जाता है, इतने में ही देवीसिंह की तलवार का वार उसके सिर को भूमि पर फेंक देता है। देवीसिंह कुमुद की रक्षा के हेतु अलीमर्दान की ओर बढ़ता है।

"कुमुद शान्त गति से ढालू चट्टान के छोर तक पहुंच गई। अपने विशाल नेत्रों की पलकों को उसने ऊपर की ओर उठाया। उंगली पर पहनी हुई अँगूठी पर किरणें फिसल पड़ीं। दोनों हाथ जोड़ कर उसने धीमे स्वरों में गाया —

मलिनियाँ फुलवा ल्यावो नन्दन वन के

बीन बीन फुलवा लगाई बड़ी रास
उड़ गये फुलवा रह गई बास .... !!

उधर तान समाप्त हुई और इधर उस अथाह जल राशि में पैंजनी का छम्म से शब्द हुआ। धार ने अपने वक्ष को खोल दिया और तान समेत उस कोमल कंठ को सावधानी से अपने कोष में रख लिया। ठीक उसी समय अलीमर्दान भी आ गया। घुटना नवा कर उसने कुमुद के वस्त्र को पकड़ना चाहा परन्तु बेतवा की लहर ने मानों उसे फटकार दिया। मुट्ठी बाँधे खड़ा रह गया।"

अलीमर्दान और देवीसिंह में सन्धि हो जाती है। देवीसिंह दाँगियों के बलिदान से विक्षिप्त हो उठता है। उसे अपने देर से पहुँचने पर क्षोभ होता है। कुमुद का आत्म बलिदान उसे और भी व्यथित करता है। कुमुद के चरणों के चिन्ह बेतवा के किनारे की मिट्टी पर अब भी बने थे। "वह स्थान मन्दिर के सामने से जरा हटकर दक्षिण की ओर था। ढालू चट्टान पर मिट्टी का एक बहुत हलका थर जमा हुआ था। उस पर कुमुद के पद और सरकने के चिन्ह अंकित थे। दह की लहरें सजग और चपल थीं। देवीसिंह को रोमांच हो आया। उस ओर उंगली से संकेत करते हुये जनार्दन से कहा— देवी ये अन्तिम चिन्ह छोड़ गई है। लहरें कुछ कह सी रही हैं। उनके नीचे पैंजनी की ध्वनि अब भी आती जान पड़ती है। इन चिन्हों को इस चट्टान पर ज्यों का त्यों अंकित करवा देना चाहिये। लोग पर्वों पर आकर इस पुण्य स्मृति से अपने को पवित्र किया करेंगे"।

प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु की योजना में जैसा हम कह चुके हैं जनश्रुतियों और किंवदन्तियों का प्रमुख हाथ है। इतिहास की पृष्ठभूमि भर है। परन्तु लेखक ने इनकी योजना इतनी कुशलता से की है कि ये कल्पित नहीं मालूम पड़तीं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये घटनायें वास्तवमें उस युग में घटित हुई होंगी। उपन्यासकार का यह कौशल सराहनीय है।

कथा का प्रधान आकर्षण कुमुद है। सारा घटना चक्र उसी को लेकर निर्मित हुआ है एवं उसकी समाप्ति के साथ ही कथा भी समाप्त हो जाती है। कुमुद के आस पास ही घटनायें चक्कर करती हैं एवं उनका पारस्परिक सम्बन्ध भी जुड़ा रहता है। कुमुद के रूप की चर्चा सुन कर ही वहाँ कुन्जर जाता है तभी अलीमर्दान के सैनिकों से उसकी मुठभेड़ होती है, परिणामस्वरूप राजा नायकसिंह और अलीमर्दान में युद्ध होता है। देवीसिंह अवतरित होता है, और राज्य की बागडोर अपने हाथों में ले लेता है। अलीमर्दान भी कुमुद को पाने के ही उद्देश्य से विराटा पहुंचता है। देवीसिंह भी उसी को बचाने के हेतु! युद्ध होता है। देवीसिंह और कुञ्जर की मुठभेड़ होती है। कुञ्जर मरता है और कुमुद भी! अलीमर्दान और देवीसिंह में भी कुमुद के मरते ही संधि हो जाती है।

कुमुद पर देवीत्व का आवरण घटनाओं में और भी तीव्रता और संघर्ष को जन्म देता है। विराटा के दाँगी भी देवी की रक्षा के हेतु ही विशेष रूप से जूझते हैं। एक पात्र के चारों ओर घटनाओं का ताना बाना बुनने में उपन्यासकार को अत्यधिक कौशल से कार्य करना पड़ा है। अन्य सारी घटनायें मूल घटना से ही सम्बन्धित हैं। गोमती (जिसका विवाह देवीसिंह से होने वाला था) की कथा भी कुछ छोटी छोटी घटनाओं को जन्म देती है पर उनकी परिणति भी मूल घटना के साथ ही होती है।

कुमुद और कुञ्जर का प्रेम कथा का प्रधान आकर्षण है। युद्ध आदि तो विभिन्न चरित्रों के कुमुद के प्रति आकर्षण और उससे सम्बन्धित होने के कारण ही होते हैं। कुमुद और कुञ्जर के प्रेम का निर्वाह भी लेखक ने कुशलतासे किया है। धार्मिक अंध-विश्वास इसे और भी गति प्रदान करते हैं। लोग कुमुद को देवी समझते थे पर वह एक साधारण स्त्री थी। उसे भी इसका ज्ञान था पर धार्मिक अन्ध विश्वास उसे यह आवरण ओढ़े रहने के लिये वाध्य कर देते हैं। वह चाह कर भी उसे छिन्न भिन्न नहीं कर पाती। कुञ्जर के हृदय में भी अंतर्द्वन्द होता है। कभी वह उसे देवी का अवतार समझता है, कभी अपनी प्रेमिका और इसी पशोपेश में अन्त तक वह भी संयमित रहता है। इस देवीत्व के आवरण ने जैसा कि कहा जा चुका है कथा का आकर्षण तो बढ़ाया ही है, लेखक को भी कथा का विकास करने में सहायता प्रदान की है। उसने जान बूझ कर ही इस आवरण को कुञ्जर के लिए अन्त में ही उतरवाया है। इनका पारस्परिक प्रेम अन्त तक इतना संयमित रहता है कि कुमुद की सखी गोमती भी जो कि कुमुद के पास ही रहती थी, कुञ्जर और कुमुद के प्रेम के प्रति कुछ भी निश्चित रूप से नहीं जान पाती।

कथा की अन्य घटनायें भी तीव्र हैं। रामदयाल और गोमती से सम्बन्धित प्रसंग भी स्वाभाविक है। राजघराने की कलह ने भी घटनाओं में तीव्रता उत्पन्न की है। राजा नायकसिंह की रानियाँ भी अपने स्वत्व के लिये अन्त तक संघर्ष करती हैं।

कथानक में वेदना और मार्मिकता भी है। सामन्तीय व्यवस्था की वेदी में कुमुद और गोमती का बलिदान कम मार्मिक नहीं है। अन्त में एक विषादयुक्त वाताव-रण छा जाता है। अपनी अधूरी साधें लिये कुमुद धार्मिक अंधविश्वासों और सामन्तों के व्यक्तिगत स्वार्थों का लक्ष्य बनती है। उसकी आत्महत्या सामन्तीय व्यवस्था के प्रति एक भीषण घृणा उत्पन्न करती हैं। कुमुद साधारण स्त्री थी। दरिद्र थी। धार्मिक अन्ध-विश्वास ही उसे देवी बना कर उससे देवीत्व का बोझ वहन कराते हैं! उसके व्यक्तिगत अरमान, उसकी इच्छायें कुचल दी जाती हैं। उसका रूप सामन्तों की लोलुप दृष्टि का लक्ष्य बनता है और उसी के परिणाम स्वरूप उसे आत्महत्या करनी पड़ती है। कुञ्जर

भी सामन्तीय व्यवस्था का लक्ष्य बनता है। दासी पुत्र होने के कारण उसे अपमानित होना पड़ता है, स्वत्व से वंचित होना पड़ता है तथा प्रेम में निराश होकर अन्त में मर जाना पड़ता है। इन सब बातों को उपन्यासकार ने चित्रित किया है। वेदना की भूमिका भी ये ही घटनायें निर्मित करती हैं। कथा वस्तु की मार्मिकता इसी कारण बढ़ जाती है।

कथानक को आकर्षण प्रदान करने के लिये वर्माजी ने दृश्यों की बड़ी सजीव योजना की है। कभी कभी तो ऐसा प्रतीत होता है मानों घटनाएँ नेत्रों के सम्मुख ही घट रही हों। अन्तिम दृश्य अत्यन्त ही मार्मिक और प्रभावोत्पादक है। तोपें आग उगल रही हैं, गोले छूट रहे हैं। ऐसे भयानक वातावरण के बीच कुंजर कुमुद से मिलने जाता है। कुमुद आज कुछ अधिक व्यथित थी। दाँगी देवी की रक्षा के लिये भूखे-प्यासे, फटे पुराने कपड़ों को हल्दी से रंगे रण में जूझ रहे थे। कुमुद कुञ्जर को देखती है और उसके धैर्य का बाँध टूट जाता है। अपना सारा देवीत्व वह कुञ्जर के ऊपर निछावर कर देती है। वह भी कुंजर के साथ चलने को कहती है पर कुञ्जर उसे रोक देता है। एक जंगली फूलों की माला कुञ्जर के गले में डालकर वह उसे विदा करती है। स्वयं भी चल देती है। अब दो क्षणों की बात थी! एक सुरीले कण्ठ से गीत की ध्वनि फूट पड़ती है और बेतवा अपना वक्ष खोल देती है।

कुमुद का यह बलिदान नेत्रों के सामने एक सजीव दृश्य बनकर नाच उठता है। पाठक उसे कभी नहीं भूल पाता।

तात्पर्य यही कि कथावस्तु में सर्वत्र एक गति है, एक प्रवाह है। उसमें कहीं भी शिथिलता नहीं दृष्टिगोचर होती! घटनाएँ तीव्रता से घटती जाती हैं और विभिन्न परिणामों को जन्म देती रहती हैं। कथावस्तु की यही विशेषता उसे ग्राह्य बनाती है। वर्माजी कथाओं की योजना में अत्यन्त निपुण हैं और इसी कारण रस की धारा आदि से अन्त तक सूखने नहीं पाती! घटनाओं की भाग-दौड़ में' संघर्षों और युद्धों के वातावरण में, प्रेम के भव्य चित्रण में उपन्यास की कथा ने जो विकास पाया है वह अनुपम है। कथा की परिणति एक ऐसी भूमिका में होती है जो पाठकों की सारी सहानुभूति खींच लेती है और उन्हें कुछ काल के लिये मूक सा बना देती है।

चरित्रों के चित्रण में भी उपन्यासकार को पर्याप्त सफलता मिली है। प्रत्येक पात्र का चरित्र उसकी प्रवृत्तियों के अनुसार ही उभारा गया है। जहाँ तक पुरुष पात्रों का प्रश्न है हमारे सम्मुख मुख्य रूप से राजानायकसिंह देवीसिंह, लोचनसिंह, जनार्दन शर्मा अलीमर्दान, रामदयाल एवं कुञ्जरसिंह ही आते हैं। इनके चरित्रों में अपनी अपनी विशेषताएँ और दुर्बलताएँ हैं जिन्हें लेखक ने सावधानी से उभारा है।

राजा नायकसिंह विलासी, सनकी, एवं उदार सभी कुछ है। उसके चरित्र चित्रण में लेखक ने इन सभी वृतियों को इतनी कुशलता पूर्वक समाविष्ट किया है कि नायकसिंह जब भी हमारे सम्मुख आता है हमें उसकी इन सारी प्रवृत्तियों का एकबारगी ध्यान हो आता है। सामन्तीय वर्ग की सारी विशेषताएँ और दुर्बलताएँ उसमें हैं। लोचनसिंह सेनापति है। वह उद्दण्ड और पराक्रमी है। प्राणों को हथेली पर लिये वह कर्तव्यों की पूर्ति करता है। सामन्तीय व्यवस्था में सेवक के लिये जिन आदर्शों की दुहाई दी जाती है लोचनसिंह में सब विद्यमान हैं। स्वामी के लिये प्राणों का त्याग देना उसके लिये साधारण बात है। स्वामी के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों के मुख से तनिक भी अपमान जनक बात सुनने की सहन-शक्ति उसमें नहीं है। उसका चरित्र भी लेखक ने कुशलता-पूर्वक चित्रित किया है।

देवीसिंह सिंहासन पाते ही सामन्तीय वर्ग का प्रतिनिधित्व सा करता देख पड़ता है। वह जानता है कि सिंहासन पर उसका वास्तविक अधिकार नहीं है फिर भी उसे कोई चिन्ता नहीं। कुञ्जरसिंह का स्वत्व छीनकर वह उसके प्राण तक लेने में नहीं हिचकता। छोटी रानी के प्रति उसका व्यवहार अवश्य कुछ उदारता लिये हुए रहता है। राज्य लिप्सा में वह इतना बेसुध हो जाता है कि उसे उस गोमती की कभी याद नहीं आती जिसे ब्याहने वह पालर जा रहा था। बाद को उसे नरपति गोमती के विषय में बताता भी है, उसे स्मरण भी दिलाता है पर वह गोमती को भूल चुका था। इस दृष्टि से देखने पर उसका चरित्र और भी नीचे गिर जाता है। गोमती को अपने साथ ले जाकर उसके रहने सहने की सम्पूर्ण व्यवस्था कर देने को तो वह तत्पर हो जाता है पर उसे पत्नी रूप में स्वीकार करने से इन्कार कर देता है।

इन दुर्बलताओं के होने पर भी देवीसिंह में वीरता और उदारता भी है, सामन्तों में जिनका होना भी स्वाभाविक ही है। परन्तु देवीसिंह के सम्पूर्ण चरित्र का अध्ययन करने पर जो निष्कर्ष निकलता है उससे हमारे हृदय में उसके प्रति उपेक्षा ही होती है। उसके कार्यों का समर्थन हम कभी नहीं कर सकते! दूसरे का स्वत्व छीनकर स्वयं राजा बन जाना, अपनी विवाहिता स्त्री को सामन्तीय वैभव के कारण भुला देना और उसे पहचानने और किसी भी बात के न याद आने का बहाना करना सामन्तीय वर्ग की कलई खोल देता है। देवीसिंह के कार्य, भले ही वह वीर और साहसी तथा अपने स्वार्थों की रक्षा के हेतु उदार हो, सदा ही हमारी दृष्टि में उसके व समस्त सामन्तीय वर्ग के प्रति घृणा को ही उभारते रहेंगे! उसके चरित्र का जो विकास लेखक ने किया है वह सुन्दर है।

जनार्दन शर्मा धूर्त एवं चाल-बाज दरबारी के रूप में हमारे सम्मुख आता है।

दलीपनगर के राज्य की बागडोर वास्तव में उसी के हाथ में रहती है। वही देवीसिंह को भी राजा घोषित करता है। सामन्तीय दाँवपेंचों, धूर्तता और चालबाजी से उसका चरित्र पूर्ण है! सामन्तों के दरबारों में किस प्रकार के व्यवहार कुशल, चतुर और चाटुकार दरबारी होते थे जनार्दन शर्मा उसका जीवित रूप है। उसका अन्त भी उसके चरित्र के अनुरूप ही है।

रामदयाल चाटुकार है। सामन्तीय दरबारों में रहने वाले चाटुकारों का वह भी प्रतिनिधि है। जीवन भर छोटी रानी की चापलूसी करता है। उसके पास उसका निज का कोई भी व्यक्तित्व नहीं समझ पड़ता। गोमती को देखते ही वह उसकी ओर आकर्षित हो जाता है और उसके लिये अनेक कठिनाइयों का सामना भी करता है। उसका गोमती के साथ जो भी व्यवहार रहा वह स्वाभाविक है। इसके लिये रामदयाल कोकोई दोष नहीं दिया जा सकता। उपन्यास कार ने उसे दुष्ट चरित्र के रूप में प्रस्तुत किया है और उसी के अनुरूप बेतवा में डूबकर उसकी मृत्यु भी होती है।

अलीमर्दान भी सामन्त वर्ग का है। अतः उसके चरित्र में भी सामन्तीय दुर्बलताओं और विशेषताओं की सत्ता है। नायकसिंह की भाँति कुमुद के रूप की चर्चा सुनते ही वह भी उसे प्राप्त करने को उद्यत हो जाता है। उसके सम्मुख केवल एक ध्येय है। कुमुद की प्राप्ति !! और उसी ध्येय की पूर्ति के लिये वह भाँति २ की घटनाओं में फँसता हुआ अन्त में बिराटाकी गढ़ी पर आक्रमण करता है। वहाँ पहुंचकर भी कुमुद उसे नहीं मिल पाती। वह बेतवा में डूब जाती है और मुट्ठीबाँधकर खड़े रह जाने के अतिरिक्त अलीमर्दान के पास कोई उपाय नहीं रह जाता। जब कुमुद ही चली गई तब युद्ध से क्या लाभ! अलीमर्दान देवीसिंह से सन्धि कर लेता है। उपन्यासकार ने कुमुद के आत्मबलिदान द्वारा अलीमर्दान के चरित्र में कतिपय सद्वृत्तियों को उभारने की चेष्टा की है पर अलीमर्दान का चरित्र जितना भी परिवर्तित होता है हम उसे कुमुद के आत्मबलिदान का प्रभाव नहीं मानते। वह भी एक प्रकार का छल आडम्बर और दिखावा मात्र था— देवीसिंह को भ्रम में डालने के लिये। अलीमर्दान जैसा प्रारम्भ में था अन्त तक वैसा रहता है। जब इच्छितवस्तु न मिली तब अधिक सर पीटने से ही क्या लाभ था। देवीसिंह की सेनाएँ भी उसके सिर पर सवार थीं। इसी कारण देवीसिंह को बहकाने के लिये उसने कुमुद के प्रति श्रद्धा भी प्रदर्शित की है। उपन्यासकार अथवा पाठक यदि अलीमर्दान के इस परिवर्तित रूप को सत्य मानते हैं तो वे भ्रम में हैं। अलीमर्दान का चरित्र एक सा रहता है भले ही उसे लेखक ने अन्त में कुछ उठाने का प्रयत्न किया हो। जब देवीसिंह उसे युद्ध को ललकारता है, वह सुनता ही नहीं। कुमुद के डूबने का दृश्य उसके नेत्रों के सम्मुख था। वह देवीसिंह से कहता है—"क्या झलक थी महाराज! बहुत

हो चुकी। अब बन्द करिए। आप दलीपनगर पर राज्य करिए। हम लोग लड़ना नहीं चाहते। भ्रम ने हमारे आपके बीच बैर खड़ा कर दिया था।"

इसी समय उसके कुछ सैनिक दौड़ते हुए कुमुद के पद चिन्ह के ऊपर से निकलना चाहते हैं। अलीमर्दान तुरन्त उन्हें सावधान करता है—"दूर रहो! चट्टान की उस छोटी सी खोल पर जो मिट्टी है उसके पास मत आना। उसमें पद्मिनी के पैर का और सरकने का चिन्ह बना हुआ है। उससे दूर रहना।"

निष्कर्ष यही कि अलीमर्दान का चरित्र प्रवृत्तियों के अनुरूप ही कुशलतापूर्वक विकसित किया गया है। वह सामन्तीय वर्ग का है और उसकी सारी विशेषताएँ दुर्बलताएँ उसके चरित्र में विद्यमान हैं।

कुन्जर के चरित्र का विकास बहुत कुछ अवरुद्ध सा हो गया है। प्रारम्भ में जब देवीसिंह और जनार्दन शर्मा के षड़यन्त्रों द्वारा उसके स्वत्व का अपहरण किया जाता है तब भी उसमें कोई विशेष सक्रियता नहीं देख पड़ी केवल हारे हुए जुआरी की भाँति मन मसोस कर रह जाता है और न ही उसमें अन्त तक ही कोई सक्रियता आ पाती है। छोटी रानी भी जनार्दन शर्मा से चिढ़ी थी! वह कुंजर को उभारती भी है, सहयोग देने का वचन भी देती है परन्तु इतना होने के बावजूद भी कुंजर शिथिल और निकम्मा सा बना रहता है। विराटा पहुँचकर जब उसे यह पता चलता है कि कुमुद भी वहीं है तब अपने स्वत्व की चिन्ता भूल कर वह कुमुद की रक्षा के निमित्त वहीं रहने लगता है। एक स्त्रैणता सी लादे उसका इधर-उधर मारा-मारा फिरना हमारी-सहानुभूति का भी पात्र नहीं बनता! अन्त में भी वह कुमुद की रक्षा के लिये युद्ध करता है। कुमुद ही उसे युद्ध की प्रेरणा देती है अन्यथा वह युद्ध भी न करता। कुमुद यदि उससे कहीं चुपचाप भाग चलने को कहती तो कुंजर की चारित्रिक प्रवृत्तियों को देखते हुए हम यह कहने में तनिक भी नहीं हिचकते कि वह दाँगियों को अलीमर्दान से जूझने के लिये छोड़कर उसके साथ चल दिया होता! उसका प्रधान आकर्षण कुमुद थी! उसी के लिये वह मरता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्त में उसके चरित्र और क्रिया कलापों में अवश्य तीव्रता और गरिमा आती है परन्तु प्रारम्भ से लेकर इस अन्त के प्रारम्भ तक वह हमें निकम्मा ही देख पड़ता है। सामन्ती व्यवस्था से वह भी पीड़ित है। वह भी कुमुद की भाँति उसका लक्ष्य बनता है। हाँ, कुन्जर के स्थान पर यदि कोई दूसरा व्यक्ति होता तो कदाचित उसे वह परिणाम न भुगतना पड़ता जो कुन्जर भोगता है। कुन्जर की असफलता, में जहाँ परिस्थितियों का हाथ है वहाँ उसकी व्यक्तिगत दुर्बलताओं को भी हम नहीं भुला सकते। अपनी वैयक्तिक दुर्बलताओं के कारण भी वह कम नहीं पिसता।

कहने का तात्पर्य यह कि कुन्जर सिंह के चरित्र को जिस प्रकार विकसित होना चाहिये था उसने वैसा विकास नहीं प्राप्त किया।

सबदलसिंह, नरपति आदि के चरित्र भी सुन्दर हैं। नरपति कुमुद का पिता है। दरिद्र है इस कारण झूठा धार्मिक अन्धविश्वास और लोभ उसे कुमुद को अवतार मान कर उसकी पूजा करने और कराने को बाध्य करवाता है, जो आगे चल कर कुमुद की आत्म हत्या का कारण बनती है। परन्तु नरपति दोषी नहीं है। सामन्तीय युग की प्रवृत्तियाँ ही उसके इस अन्ध विश्वास की कारण हैं। वह साधारण वर्ग का है, सामन्तों के व्यक्तिगत स्वार्थों और लोलुपता से पुत्री की रक्षा करते हुए इधर उधर घूमता है और अन्त में अपनी जान भी दे देता है। उसका चरित्र मार्मिकता से ओत प्रोत है। उसके अन्त से हमें करुणा होती है, सामन्ती आदर्शों के प्रति और भी विरक्ति हो उठती है। नरपति का बलिदान, उस पर किये गये अत्याचार सामन्ती युग के प्रति विरक्ति उत्पन्न करने के लिये पर्याप्त हैं!

इतना होने पर भी नरपति वीर है। वह कुमुद को देवी ही समझता है। जब उसके ऊपर विपत्ति आती है और कोई उपाय शेष नहीं रह जाता तब वह भी उसी की रक्षा के हेतु अली मर्दान की सेनाओं से जूझ जाता है जहाँ जन साधारण सामन्तीय स्वार्थों की वेदी पर अपने रक्त की बूँदे अर्पित कर रहे थे चाहे वे अली मर्दान के सैनिक हों अथवा सबदल सिंह के। नरपति के युद्ध में जाते समय का दृश्य अत्यन्त सजीव है। इस समय नरपति का लोभ उसका अभिमान सब धूल में मिले हुए हैं—उसके सामने एक उद्देश्य—है देवी की रक्षा के लिए प्राणों को होम देना। कुमुद पिता से कहीं चले जाने को कहती है परन्तु नरपति उसकी बात मानने से इन्कार कर देता है। वह कुमुद से कहता है—

"कदापि न जाऊँगा। मैं भी दाँगी हूँ। मैं भी अपने कपड़े हल्दी में रंगता हूँ! हम सब दाँगियों को अपना अन्तिम आशीर्वाद दो। हम सब थोड़े हैं और दरिद्र हैं। तुम एक अनेक हो। शक्ति हो। शक्ति शालिनी हो। हमें वरदान दो जिसमें पुरुष की तरह मरें।' फिर आँखें फाड़ कर प्रखर स्वर में ऊपर की ओर देखकर बोला—'दुर्गे देवी! हम थोड़े से दाँगियों ने अपने अन्तिम रक्त कण से आपके देवालय की रखवाली की है। हमारे हृदय को इतना बल दो कि अन्त समय हमारे भीतर किसी तरह की झिचक न आवे और हम हँसते २ तुम्हारे झूले की डोर पकड़ कर पार हो जायँ। माँ, माँ। आशिर्वाद दो। 'दो दो' की अन्तिम गूँज उस खोह में कई बार गूँजी। नरपति का शरीर थिरकने लगा। वह प्रसन्न होकर गाने लगा और ताली बजाने लगा—मलिनिया फुलवा ल्याओ नन्दन वन के।.........!!"

नरपति का यह गरिमा मय चित्र अत्यन्त सजीव और महान है और उसकी छोटी २ प्रारंभिक चारित्रिक दुर्बलताओं को समाप्त कर देता है।

विराटा की पद्मिनी में वर्मा जी की चरित्र चित्रण की कला अधिक विकसित और निखरी हुई है।

स्त्री पात्रों में प्रमुख कुमुद, गोमती, छोटी व बड़ी रानियाँ हैं। इनमें से बड़ी रानी के चरित्र में कोई विशेषता नहीं देख पड़ती, छोटी रानी अवश्य तत्कालीन युग की क्षत्राणियों की प्रतिबिम्ब है। वह जानती है कि देवीसिंह ने सबके स्वत्वों का अपहरण किया है और उससे प्रतिशोध लेने के हेतु वह प्राणों से भी खेल जाती है। देवी सिंह से प्रतिशोध लेने में उसके वैयक्तिक स्वार्थ भी थे पर अनाचारों का विरोध उसके चरित्र को गति प्रदान करता है। वह संघर्षों से खेलती है। जनार्दन शर्मा के लिए भी उसके हृदय में असीम घृणा है। उसके लिए वह प्रण करती है कि जब तक उसका कटा सिर न देखूँगी अन्न जल न ग्रहण करूँगी। परिस्थितियाँ उसे असफल बनाती हैं और संघर्षों से खेलते हुए वह मर भी जाती है।

गोमती के चरित्र का विकास लेखक ने कुशलता पूर्वक दिखाया है। सामन्तीय व्यवस्था से वह भी पीड़ित है। देवीसिंह द्वारा तिरस्कृत होकर कुमुद के साथ ही रहने लगती है। परन्तु देवीसिंह को प्राप्त करने की उसकी आशा मरती नहीं। वह उसकी सफलता चाहती है। कुमुद से भी देवीसिंह की सफलता के लिए वह वचन ले लेती है। यहाँ उसके व्यक्तिगत स्वार्थ अवश्य हैं पर नारी की स्वभावगत दुर्बलताओं के कारण ही वह ऐसा करती है। रामदयाल से भी घनिष्टता बढ़ाती है। सब कुछ होने पर भी उसके पास आत्माभिमान है। वह देवीसिंह के पास स्वयं जाना हेय समझती है। देवीसिंह उसका तिरस्कार करता है। उसे आघात लगता है। परिस्थितियाँ उसे रामदयाल की बाहों में ढीली हो जाने को बाध्य करतीं हैं पर वह देवीसिंह से एक बार उसको दंड देने के लिए अवश्य मिलना चाहती है। घटना चक्र चलता है और आहत अवस्था में देवीसिंह के सम्मुख ही वह प्राण छोड़ देती है। अधूरी साधें लिए हुए गोमती का यह बलिदान भी हमारे हृदय में सहानुभूति को जन्म देता है। उसके चरित्र का विकास जैसा कि कहा जा चुका है लेखक ने स्वाभाविकता के साथ किया है।

सबसे प्रमुख चरित्र है कुमुद का! वही कथानक का भी केन्द्र विन्दु है। सब उससे प्रभावित होते हैं और वह सबको प्रभावित करती हुई अन्त में अपने को बेतवा की लहरों में मिला देती है। कुन्जर के प्रति उसके हृदय में असीम प्रेम भावना है पर देवीत्व का झूठा आवरण उसे उसको व्यक्त नहीं करने देता! संयम की कठोरता पालन करते हुए वह अन्त तक शांत रहती है। जीवन के अन्तिम क्षणों में ही उसका प्रेम व्यक्त

होता है। सामन्तीय व्यवस्था उसे भी अपना लक्ष्य बनाती है और सामन्तीय वर्ग की लोलुपता के परिणाम स्वरूप ही वह अपनी बलि भी दे देती है। उसमें साहस, विवेक, धैर्य, कष्ट सहिष्णुता सब कुछ है। वह कुन्जर को भी प्रोत्साहन देती है कि वह अपने स्वत्व के लिए संघर्ष करे और गोमती के अधिकारों का भी समर्थन करती है। देवीत्व का झूठा आवरण यद्यपि उसे मूक बनाए रहता है फिर भी उचित अवसरों पर वह अपनी भावनाओं को प्रकट करती है।

लोग उसे अवश्य देवी का अवतार समझते हैं पर वह अपने को देवी की दासी ही मानती है। धार्मिक संस्कारों के प्रति विद्रोह करने की शक्ति अवश्य उसमें नहीं है अन्यथा वह देवीत्व के झूठे आवरण का बोझ न ढोती और न ही उसे सामन्तों की लोलुपता के कारण आत्म-हत्या ही करनी पड़ती।

इतना होने पर भी उसमें कर्त्तव्य भावना है। कुन्जर को भी वह कर्त्तव्य की प्रेरणा देती है। उसकी राह में रोड़ा बन कर नारीत्व को कलंकित नहीं करती। युद्ध के वातावरण के बीच जब कुन्जर उसे लेने आता है। तब वह कुन्जर से कहती है—

"सबने जौहर कर लिया है? सबने? अच्छा किया। चलो कहाँ चलें?"
कुन्जर उत्तर देता है— "नदी के उस पार, गढ़ी के पूर्व ओर से। अभी वहाँ कोई नहीं पहुँचा है। हम दोनों चलेंगे।"

कुमुद कहती है—"हाँ दोनों चलेंगे उस पार परन्तु अकेले अकेले"।
मैं समझा नहीं, कुन्जर ने व्यग्रता के साथ कहा
मैं उस ओर से जाऊँगी जहाँ मार्ग में कोई न मिलेगा। कुमुद दृढ़ता से बोली, आप उस ओर से आएँ जहाँ जौहर हुआ है। हम लोग अन्त में मिलेंगे।
और उसने आँचल के छोर से जंगली फूलों की गुँथी हुई एक माला निकाली और कुन्जर के गले में डाल दी। उस माला के फूल अवखिले और सूखे थे।"

कुमुद पहली बार कुन्जर के आलिंगन में बँध जाती है परन्तु दृढ़ता से कहती है—"जाओ, खड़े मत रहो, मेरा मार्ग निश्शंक है, तुम अपना असंदिग्ध करो!"

कुमुद जाती है बेतवा में डूबने और कुन्जर जौहर करने।
इस प्रकार कुमुद का चरित्र अन्त तक और भी गरिमामय हो उठता है। कुछ दुर्बलताओं के होते हुए भी उसका चरित्र अत्यन्त महान है। वर्मा जी की तूलिका से रचित यह चरित्र अमर है।

भाषा और कथोपकथन भी सुन्दर, स्वाभाविक और अवसर तथा पात्रों के अनुरूप हैं। कथोपकथनों ने पात्रों के चरित्रों को विकसित करने में पर्याप्त सहयोग दिया है।

देश काल का चित्रण भी सफलता पूर्वक हुआ है। घटनाएँ तो ऐतिहासिक नहीं है पर जिस ऐतिहासिक भूमिका में उनकी योजना हुई है वे ऐतिहासिक सी प्रतीत होने लगती हैं। यही उपन्यासकार की कुशलता है। जिस ऐतिहासिक युग का चित्रण उपन्यासकार ने किया है वह राजनैतिक अस्तव्यस्तता का युग था। उपन्यास की घटनाए इस अस्तव्यस्तता, अशान्ति और अराजकता का जीता जागता चित्र उपस्थित करती है सामन्तीय युग की सारी प्रवृत्तियाँ भी इस युग के चित्रण में उभर आई है। सामन्तों के व्यक्तिगत स्वार्थों के चक्र में पिसती हुई साधारण जनता का चित्र भी उभर आया है।

इस प्रकार सम्पूर्ण उपन्यास को समग्र रूप से देखने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि इसमें भी लेखक को पूर्ण सफलता मिली है वरन् इसमें लेखक गढ़ कुण्डार से भी अधिक सफल हुआ है।

(३) मुसाहिब जू:— [१९४६]

प्रस्तुत उपन्यास के अधिकाँश पात्र लेखक की कल्पना से प्रसूत हैं। घटनाएँ भी जनश्रुतियों पर आधारित हैं परन्तु पृष्ठ भूमि ऐतिहासिक है। इस उपन्यास में इतिहास के उस युग का चित्रण है जब अँग्रेज भारत में अपनी सत्ता को केन्द्रित करने के लिए देशी राजाओं और नवाबों को संधियों के बंधन में बाँध कर निष्क्रिय कर रहे थे! सामन्ती व्यवस्था दम तोड़ रही थी और उसके अवशेषों में पूँजीवादी व्यवस्था का निर्माण हो रहा था। ! अँग्रेजों का साम्राज्य वादी जाल सबको अपनी परिधि में लेता जा रहा था! परन्तु अभी उनके पंजे इतने दृढ़ न हुए थे। संधियों के बंधनों में भी पर्याप्त दृढ़ता न आ पाई थी। छोटे छोटे राजा नवाब अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने के लिये प्रयत्नशील हो रहे थे। चारों ओर एक अराजकता सी दृष्टिगोचर हो रही थी। राजपूतों, मराठों, मुसलमानों के दिन लद गये थे! ऊपरी शान शौकत के अतिरिक्त उनमें भीतर कुछ न रह गया था!

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि किस प्रकार अराजकतामय और सामन्तों के अस्त होने वाले वैभव के भी दिनों में राजपूती मुसाहिबों और सामन्तों की मनुष्यता उनके साथ थी! वे स्वयं तो पिस रहे थे पर अपनी प्रजा के लिए लड़ मरने की शक्ति उनमें अब भी शेष थी! प्रस्तुत कथा का सम्बन्ध अंग्रेजों से सीधा नहीं है पर उनके किया कलापों और नीतियों के फलस्वरूप दम तोड़ते हुए जर्जर सामन्तीय युग का यथार्थ चित्र उसमें अवश्य उभर आया है। इतिहास के उस अंधकार मय युग के भीतर भी लोगों में एक चेतना व्याप्त थी, इसका चित्रण भी उपन्यासकार ने सफलता पूर्वक किया है। कथावस्तु दतिया राज्य की एक जागीर केरुआ के मुसाहिब दलीपसिंह से सम्बन्धित है। सामन्तों की व्यक्तिगत दुर्बलताओं और विशेषताओं के चित्र भी उपन्यास के इस वर्ग से संबन्धित पात्रों में उतर आये हैं। उपन्यास की मुख्य कथा निम्नलिखित है—

दतिया राज्य के अन्तर्गत केरुआ नामक एक जागीर थी। मुसाहिब दलीपसिंह ही उसके कर्ता-धर्ता थे। कहने को तो वे मुसाहिब थे पर जीवन दरिद्रता की गोद में ही पल रहा था। उन्हें १२०० योद्धा रखने का आदेश था। इनकी तनख्वाहों का भी उत्तरदायित्व मुसाहिब जू पर ही था! मुसाहिब जू के पास उनका एक शिकारी दस्ता था जिसमें अधिकांशतः मेहतर थे। मुसाहिब जू को ये मेहतर सबसे अधिक प्रिय थे और वे भी अपने स्वामी के लिए प्राणों को न्योछावर करने में न हिचकते थे।

यद्यपि मुसाहिब जू को आर्थिक चिन्ता भीषणता से घेरे रहती थी पर वे उसे किसी के सम्मुख व्यक्त न करते। स्वामिभक्त मेहतर मुसाहिब जू की चिन्ता का कारण भली भाँति समझते थे पर चुप चाप रह जाते! मुसाहिब जू की पत्नी भी अत्यन्त सहृदय और दयालु थीं। चरखारी के राजा की बेटी होने पर भी वे मुसाहिब जू के साथ दरिद्रता पूर्ण जीवन व्यतीत करतीं और अपने आश्रितों के सुख के लिए सारे कष्टों को सहने के लिए तत्पर रहतीं।

अधीनस्थ सैनिकों के भरण पोषण में मुसाहिब जू की पत्नी के सारे आभूषण गिरवी में रखे गये। परन्तु समस्या किंचित मात्र न सुधरी।

दतिया के राजा के यहाँ उत्सव था! मुसाहिब जू की पत्नी के पास भी निमंत्रण आया पर उन्होंने बहाना कर दिया कारण उनके पास अब वह वैभव न था जिसकी उस समाज में माँग थी। आभूषणों से रहित जाकर अपनी दरिद्रता को सबके सम्मुख व्यक्त करने में उन्होंने आमतभिमान पर चोट करना उचित न समझा। निमंत्रण में तो न गईं पर उन्हें अपनी दरिद्रता पर बड़ा क्षोभ हुआ। एकान्त में जाकर खूब रोईं। मेहतरों को यह बात पता लग गई और उन्होंने स्वामिनी का दुख दूर करने का निश्चय किया। मेहतरों ने डाका डाला! उन्हें पर्याप्त आभूषण प्राप्त हुए। पर उसका रहस्य खुल गया! मुसाहिब जू से उन्होंने वास्तविक घटना न बताई। जिन लोगों के आभूषण छीने गये थे उनमें मुसाहिब जू के साहूकार की पत्नी भी थी! उसने मुसाहिब जू की पत्नी के पास आभूषण देखकर सब पर यह रहस्य प्रकट कर दिया कि डाका मुसाहिब जू के मेंहतरों ने उनके कहने पर डाला है। मुसाहिब जू को यह रहस्य पता न था! साहूकारों ने राजा से प्रार्थना की! मुसाहिब के बन्दी बनाने का आदेश हुआ। मुसाहिब जू को सब कुछ पता चला पर उन्होंने अपने आश्रितों पर आँच तक न आने देने का प्रण किया और मुसाहिबी छोड़ कर अन्यत्र चले जाने का निश्चय किया। अपनी प्रजा समेत केरुआ से चल पड़े। राजा को जब मुसाहिब जू के निश्चय का पता चला उन्हें पश्चाताप हुआ कारण वे मुसाहिब जू जैसे स्वामिभक्त राज कर्मचारी को न जाने देना चाहते थे। उन्होंने मुसाहिब के सारे आश्रितों के अपराध क्षमा कर दिये। साहूकारों ने भी क्षमा मांगी पर वे न लौटे! जब उनसे यह कहा गया कि राज्य में वाह्य आक्रमणों का डर है, तब वे न जा सके और पुनः केरुआ लौट आये। मुसाहिब जू का प्रण पूरा हुआ! उनके आश्रितों पर आँच तक न आने पाई।

प्रस्तुत उपन्यास उद्देश्य मूलक है। उपन्यासकार का मुख्य उद्देश्य उस युग की जर्जर अवस्था के बीच भी ऐसे छोटे छोटे सामन्तों और मुसाहिबों का चित्रण करना था जो दरिद्रता के चक्र में पिसते हुए भी अपने जातीय गौरव से ओतप्रोत थे। सामन्ती

व्यवस्था ढल चुकी थी ! मुसाहिब जू एक साधारण स्थिति में आ चुके थे। परन्तु फिर भी उनमें राजपूती आन और गौरव था ! सामन्तीय वर्ग की प्रवृतियाँ मुसाहिब जू के चरित्र में भी उभरी हैं पर वे परोपकार और त्याग से अधिक सम्बन्ध रखती हैं। वर्मा जी अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल हैं।

कथावस्तु में तीव्रता नहीं है। वह साधारण है। चरित्र चित्रण भी साधारण कोटि का ही है। मुसाहिब जू व उनकी पत्नी का चरित्र वर्मा जी ने कुशलतापूर्वक अंकित किया है। सामन्तीय युग की स्वामिभक्ति रम्मू और उसके साथियों (मेहतर वर्ग) में पूर्णतः उभर उठी है। कथोपकथन और भाषा भी साधारण ही है। तत्कालीन युग की विभिन्न दशाओं का अनुमान उपन्यास से लग जाता है। दम तोड़ती हुई सामन्तीय व्यवस्था का प्रस्तुत उपन्यास एक सुन्दर चित्र है। सामन्तीय वर्ग के लोगों में परमार्थ, त्याग और कष्ट सहिष्णुता दिखाने के मूल में उपन्यासकार की आदर्शवादी विचार-धारा कार्य कर रही है। मुसाहिब जू जैसे व्यक्ति सामन्तीय वर्ग के अपवाद ही हो सकते हैं।

[४] झाँसी की रानी :—[१९४६]

'झाँसी की रानी' वर्मा जी का अत्यन्त प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है। पात्र घटनाएँ, स्थान सब कुछ ऐतिहासिक हैं। प्रथम बार इस उपन्यास में वर्मा जी का इतिहासकार उपन्यासकार से अधिक प्रबल हो उठा है। ऐतिहासिकता के कठोर आग्रह ने इसमें कहीं २ नीरसता का समावेश भी किया है पर ऐतिहासिक उपन्यासकार ऐतिहासिक तथ्यों की ओर से उदासीन नहीं रह सकता। प्रस्तुत उपन्यास वर्मा जी के १०—१२ वर्ष के परिश्रम का परिचायक है। इस उपन्यास को लिखने में वर्मा जी का मुख्य उद्देश्य भारतीय आदर्शों से युक्त एक वीर नारी का चित्रण करना तो था ही, पारसनीस के उस कथन को भी असत्य प्रमाणित करना था कि झाँसी की रानी भारतीय स्वतंत्रता के हेतु न लड़ कर अँग्रेजों की ओर से झाँसी का शासन करती हुई बाध्य होकर जनरल रोज से लड़ी थीं। विभिन्न ऐतिहासिक तथ्यों की खोज द्वारा उपन्यासकार ने पारसनीस के इस कथन को असत्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

उपन्यास चार भागों में विभक्त है। उषा से पूर्व, उदय, मध्यान्ह और अस्त ॥ 'उषा के पूर्व' में रानी के पति राजा गंगाधर राव की प्रकृति, झाँसी राज्य की स्थापना, एवं राजा की कला सम्बन्धी रुचियों की ओर निर्देश किया गया है।

'उदय' में रानी की बाल क्रीड़ाएँ, गंगाधर राव से उनका विवाह' झाँसी आकर अपने प्रयत्नों के फलस्वरूप राजा के सम्बन्ध में प्रजा के असंतुष्ट विचारों का निराकरण, पुत्र की उत्पति, उसकी मृत्यु, राजा द्वारा अपने एक सम्बन्धी दामोदर राव का गोद लिया जाना, अंग्रेजों द्वारा गोद लिए हुए पुत्र को मान्यता न देना, और परिणाम स्वरूप झाँसी राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले लेना, रानी की प्रतिक्रिया, गुप्त रीति से प्रतिशोध लेने के लिए प्रयत्न करना, झाँसी की जनता द्वारा रानी के प्रयत्नों में सहयोग देना, आदि घटनाओं का उल्लेख है।

'मध्यान्ह' में अंग्रेजों की नीति के फलस्वरूप सैनिक छावनियों में विद्रोह की चिनगारी का सूत्रपात्र होना, विद्रोह का प्रारम्भ, झाँसी के भीतर सुलगती हुई चिनगारी का अंगार बन जाना, रानी को खोई हुई झाँसी का प्राप्त होना, सागर सिंह डाकू द्वारा रानी के सम्मुख आत्म समर्पण, झाँसी पर अँग्रेजी पताका फहराने के उद्देश्य से जनरल रोज का अभियान आदि घटनाओं का वर्णन है।

तत्पश्चात झाँसी ही नहीं भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सूर्य का अस्त प्रारम्भ होता है। 'अस्त' में अंग्रेजी सेना द्वारा झाँसी पर आक्रमण, रानी का झाँसी की

रक्षा के लिए युद्ध, स्त्री पुरुषों का आत्म बलिदान, झाँसी पर अंग्रेजों की पताका का फहराना, रानी का झाँसी छोड़ कर कालपी की ओर प्रस्थान करना, अंग्रेजों से पुनः टक्कर एवं रानी की पराजय, ग्वालियर जाकर अंतिम बार अंग्रेजी सेना से जूझ जाना और मृत्यु को प्राप्त होना आदि वीरता एवं साहस से पूर्ण घटनाओं का वर्णन है।

'उषा के पूर्व' से प्रारंभ होने वाली कथा 'अस्त' में समाप्त हो जाती है।

कथानक की विवेचना करने से पूर्व हम तत्कालीन युग की राजनैतिक स्थिति पर दृष्टि पात करना आवश्यक समझते हैं। अब तक भारत में अंग्रेजों के पैर अच्छी तरह जम चुके थे। वे केवल भारत का आर्थिक शोषण ही न कर रहे थे उसकी कला, साहित्य एवं संस्कृति पर भी कुठाराघात कर रहे थे। देशी राजे व नवाब संधियों के बंधनों में जकड़े जा चुके थे। अधिकांश तो अपने निजी स्वार्थों के हेतु अंग्रेजों से मिलकर स्वयं देश की स्वतंत्रता पर कुठारा घात कर रहे थे। अंग्रेजों की कूटनीति उनकी सत्ता के विकास में बहुत अंशों तक सफल रही। वे देशी राजा नवाबों को परस्पर भिड़ाकर, कभी एक की सहायता कर, कभी दूसरे का पक्ष लेकर अपनी शक्ति को दृढ़ कर रहे थे। साधारण जनता दोहरी पिस रही थी। एक तो राजा नवाबों के अत्याचारों ने ही उसकी कमर तोड़ दी थी, दूसरे स्वयं अंग्रेजों का दमन चक्र भी उसे सदियों से पीस रहा था। जनता परतन्त्रता की इन बेड़ियों, इन अत्याचारों से ऊब उठी थी और उपयुक्त अवसर की बाट जोह रही थी। डलहौजी की नीतियों ने देशी राजा नवाबों को और भी भड़का दिया और वे भी अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। इस कारण सैनिक विद्रोह का मूल कारण न तो धार्मिक था और न राजा नवाबों के व्यक्तिगत स्वार्थों के कारण ही वह हुआ, इसके मूल में सदियों से पिसती हुई साधारण जनता का विरोध था। शेष सब कारण तो चिनगारी में आग लगाने वाले ही सिद्ध हुए। अंग्रेजों की नीति का लक्ष्य झांसी भी बनी। फलस्वरूप झांसी में भी रानी लक्ष्मीबाई विद्रोह का झन्डा लेकर उठ खड़ी हुई। झांसी गई पर रानी ने इतिहास में अपना नाम अमर कर दिया।

प्रश्न यह उठता है कि रानी स्वराज्य के लिए लड़ी अथवा उनका शौर्य विवशता की परिस्थितियों में उत्पन्न हुआ था। पारसनीस[1] ने लिखा है कि रानी जनरल रोज़ की ओर से ही झांसी का प्रबन्ध करते हुए बाध्य होकर अंग्रेजों से लड़ी। पारसनीस का यह कथन वर्मा जी के लिऐ इस उपन्यास को रचने की प्रेरणा बना। उन्होंने तथ्य एकत्रित किये, वर्षों परिश्रम किया और तत्पश्चात् प्रस्तुत उपन्यास के रूप में इसे प्रमाणित किया कि रानी बाध्य होकर नहीं लड़ी-वह स्वराज्य के लिए लड़ी। बालपन से ही उसके हृदय में अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति के विरुद्ध घृणा पनप रही थी जो अवसर आने पर सक्रिय हो उठी। इसी कारण उपन्यास बहुत कुछ इतिहास सा बन गया है। लेखक

के अन्य उपन्यासों की भाँति इसमें कल्पना का प्राचुर्य नहीं है वरन् इसमें कल्पना से अधिक ऐतिहासिक तथ्य हैं और यह भी अनजाने नहीं वरन् जैसा कहा जा चुका है लेखक ने जान बूझ कर किया है। परन्तु इतना होने पर भी उपन्यास नीरस नहीं है। कल्पना की प्रचुरता न होने पर भी लेखक ने कतिपय प्रेमी युग्मों की अवतारणा द्वारा उपन्यास में पर्याप्त सरसता भर दी है।

एक प्रकार से इस उपन्यास में रानी लक्ष्मीबाई का सम्पूर्ण जीवन चरित्र वर्णित है। एक ऐसे नारी चरित्र का चित्रण करने के लिए जिसने अपने युग में अंग्रेजों के दाँत खट्टे कर दिये, सहस्त्रों झंझा वातों के समान उठकर जिसने ब्रिटिश साम्राज्य शाही को जड़ से हिला दिया, वर्मा जी बधाई के पात्र हैं। इस प्रकार की नारियाँ भारत का गौरव हैं।

उपन्यास की कथावस्तु का संक्षेप में हम उल्लेख कर ही चुके हैं। कथावस्तु पूर्णतः ऐतिहासिक है। घटनाएँ एवं स्थान सभी कुछ ऐतिहासिक हैं। इस ऐतिहासिक कथानक के निर्वाह में भी लेखक ने पर्याप्त सफलता पाई है और जहाँ भी कल्पना के डोरों से बिखरे कथा सूत्र को जोड़ा है वहाँ भी ऐतिहासिकता अक्षुय है।

प्रारम्भ में रानी की बाल क्रीड़ाओं का वर्णन करता हुआ उपन्सासकार शीघ्र ही अपने महत उद्देश्य की ओर अग्रसर हो जाता है। और उसका यह उद्देश्य है—बिठूर में पली मोरोपन्त ब्राह्मण की कन्या मनो को झांसी के सिंहासन पर आसीन कराना। १०-११ साल की मनों झांसी के अधेड़ राजा गंगाधर राव से ब्याह दी जाती है। कुशाग्र बुद्धि मनो झांसी आकर तत्कालीन परिस्थितियों और वातावरण के बिल्कुल अनुरूप बन जाती है। राजा गंगाधर राव के प्रति जनता में जो विरोध था वह रानी पाकर समाप्त हो जाता है।

तत्पश्चात् अन्य दो एक उपकथाओं के वर्णन के पश्चात् उपन्यासकार भारत के उस स्वाधीनता संग्राम की ओर आता है जिसने एक बार सैकड़ों वर्षों से जमे हुए ब्रिटिश शासन की जड़ों को हिला दिया था। कथावस्तु का आकर्षण कहीं भी कम नहीं होने पाता।

कथावस्तु का अन्त कारुणिक है पर करुणा के होते हुए भी वह जीवन में अपूर्व क्रियात्मकता का संचार करता है। रानी का अन्त भारत के सम्पूर्ण स्वाधीनता संग्राम का अन्त था। उन्होंने अंग्रेजों को यह बता दिया था कि भारत की नारी केवल श्रृंगार और वासना की पुतली नहीं है उसके हृदय में सैकड़ों ज्वालामुखियों का विस्फोट निहित है एवं वह बड़े बड़े साम्राज्यों तक को, धूल में मिला सकती है। रानी की मृत्यु भारत के स्वाधीनता संग्राम को लगने वाला एक कड़ा आघात था। उनको आहतावस्था

में देख गुलमुहम्मद जैसा कट्टर पठान भी आँखों से आँसू बरसाकर अपने खुदा को पुकार उठा था—" खुदा ! पाक परवर दिगार ! रहम ! रहम ! उस कट्टर सिपाही की आँखे मानों आँसुओं को बरसाने लगीं और वह बच्चों की तरह हिलक हिलक कर रोने लगा।"

बुन्देलखण्डीय वातावरण ने कथानक में अत्यधिक स्वाभाविकता और रोचकता को जन्म दिया है। उदाहरण के लिए हम पलाश पूजन के उस दृश्य को लेते हैं जहाँ रानी झाँसी कीं सामान्य स्त्रियों के साथ घुल मिल कर वार्तालाप करती हैं।

" पूजन के पश्चात् स्त्रियाँ पलाश के वृक्ष के पास से सीढ़ियों द्वारा बारहदरी में इकट्ठी हो हो जा रही थीं। रानी वहीं थीं। वहीं सिन्दूरोत्सव हो रहा था। हरदी कूँ कूँ। रानी विधवा थीं इसलिए वह स्वयं सिन्दूर नहीं दे रही थीं परन्तु वहाँ भाऊ बख्शी की पत्नी थीं, और भी अनेक सधवाएं थीं जो आपस में सिन्दूर दे रही थीं और किसी न किसी बहाने एक दूसरे के पति का नाम लिवाने का हंस हंस कर प्रयत्न कर रही थीं।

मोती बाई ने भाऊ बख्शी की पत्नी से कहा—तुम अपने देवर को क्या कह कर पुकारोगी ?

बख्शिन—मेरे देवर हैं ही नहीं।

मोती—होता तो बख्शिन जू उसे कैसे पुकारतीं ?

बख्शिन—लाला कहती।

रानी—और बुन्देलखण्ड में लाला के लिये दूसरा शब्द क्या है ?

बख्शिन—सरकार, भउआ।

सब हंस पड़ीं। बख्शिन ने क्रोध की मुद्रा बना कर कहा—महारानी साहब की सहायता से हरा लिया नहीं तो मैं इतना छकाती कि ये सब याद करतीं।

रानी बोलीं—तुम इन सबके लिए अकेली ही बहुत हो।

इसी प्रकार पूरन कोरी की पत्नी झलकारी की बारी भी आती है।

रानी—तुम्हारे आदमी का नाम भूल गई, उसे क्या कहते हैं ?

झल—ऊँ उँ।

रानी—ऊँ ऊँ भी कोई नाम होता है।

बख्शिन ने कहा—सरकार इससे बुन्देलखण्डी बोली में बोलें।

मोती बाई ने आग्रह कया—सरकार के मुंह से यहाँ की बोली बहुत अच्छी लगती है।

जूही ने अनुरोध किया।

झलकारी भी इस बात पर सहमत हो गई कि यदि रानी बुन्देलखण्डी बोली में बोलेंगी तब वह अपने पति का नाम बता देगी।

"रानी ने कहा—तोरे घर वारे को का नाँव झलकारी।

झल—हौ ऐसे सूदौ बताओ जात कऊँ।

रानी—तो कैसे बताय पनमेसरी?

झल—मोएँ कौनौ धोको देव जैसे एक बेर पूछी हती तैसे पूछौ अपुन।

रानी—आज कौन मिती है?

झल—पाँचै महाराज।

रानी—दस दिन पाछै का हुइहै?

झल—पूनैं।

रानी हंस पड़ीं, उन्होंने फूलों की एक माला झलकारी के गले में डाली, सिर पर हाथ फेरा।

कथावस्तु में सरसता और रोचकता लाने वाले ऐसे कई प्रसंग हैं।

कथानक में और भी रमणीयता लाने के लिये कतिपय प्रेमी युग्मों की अवतारणा की गई है। (१) मोतीबाई–खुदाबख्श (२) जूही और तात्या टोपे (३) सुन्दर और रघुनाथसिंह (४) नारायण शास्त्री और छोटी भंगिन।

नारायण शास्त्री और छोटी भंगिन के प्रेम प्रसंग को छोड़ कर शेष तीनों का अन्त दुखद है। यह बात नहीं कि समाज अथवा वर्णाश्रम धर्म अथवा अन्य कोई बाधा इनके सम्मुख थी, वरन ये रानी के साथ ही स्वतन्त्रता संग्राम में जूझ जाते हैं। प्रेम को कर्तव्यों की राह में बाधक नहीं होने देते।

नारायण शास्त्री छोटी के लिए समाज छोड़ देता है। उसे लेकर बाहर चला जाता है। उसे किसी की चिन्ता नहीं। शेष तीनों प्रेमी युग्मों के प्रेम का चित्रण अपूर्व है। सब रानी के साथ अंग्रेजों से जूझते हैं और स्वतन्त्रता संग्राम में अपने प्राणों की बलि दे देने में नहीं हिचकते।

सागरसिंह डाकू का रानी के सम्मुख आत्म समर्पण वाला प्रसंग भी कम प्रभावोत्पादक नहीं है। वैसे सारी कथावस्तु त्याग और बलिदानों, प्रेम और उसके भव्य चित्रण से भरी हुई है।

एक बात कथावस्तु के सम्बन्ध में और भी विचारणीय है। 'झांसी की रानी' की कथावस्तु अत्याधिक व्यापक है। वर्मा जी के पूर्व ऐतिहासिक उपन्यासों के कथानक एक छोटी परिधि से घिरे हैं। वहाँ युद्ध होते हैं पारस्परिक मानापमान के कारण, स्त्री के सौन्दर्य के कारण पर यहाँ युद्ध होता है देश की स्वाधीनता के लिये, भारतवर्ष को विदेशी दासता से मुक्त करने के लिये! इसमें समूचे देश की प्रतिक्रिया उभरी है, अन्य उपन्यासों में एक विशेष वर्ग ही अपने दुख दर्दों, सुख और विलासों के लिए कटता मरता है।

इसमें नारीत्व को जो गरिमा दी गई है उसकी जो महानता प्रदर्शित की गई है वह अन्य उपन्यासों में नहीं देख पड़ती। प्रेम भी इसमें दूसरी ही कोटि का है। इसके प्रेमी अपने स्वयं के सुख दुख को देश की स्वाधीनता की वेदी पर निछावर कर देते हैं, अन्य उपन्यासों के प्रेमी प्रेमिका एक दूसरे को प्राप्त करने के लिये संघर्ष करते रहते हैं। अन्य उपन्यासों में पात्रों के उद्देश्य उनके स्वयं के सुख दुख तक सीमित थे इसमें वे देश के सुख दुख को अपना सुख दुख समझते हैं।

कथावस्तु की इस व्यापकता ने ही इसे एक विशेष भू भाग से सम्बन्धित नहीं प्रत्युत समस्त राष्ट्र का उपन्यास बना दिया है। भले ही ऐतिहासिक तथ्यों के आग्रह ने कुछ स्थानों में नीरसता का समावेश किया हो पर यह नीरसता भी उपन्यासकार की जानी बूझी हुई है, उद्देश्य गर्भित है।

चरित्र चित्रण में उपन्यासकार ने अच्छी सफलता पाई है। सभी प्रमुख स्त्री और पुरुष पात्रों के चरित्र सुन्दरता पूर्वक अंकित किये गये हैं। स्त्री पात्रों का चरित्र कुछ विशेष आकर्षक और तीव्रता लिये हुए है जैसा कि वर्मा जी के प्रायः सभी उपन्यासों में देख पड़ता है। पुरुष पात्रों में प्रमुख गंगाधर राव, तात्या टोपे, पीर अली, सागरसिंह डाकू, रघुनाथसिंह, जवाहरसिंह एवं खुदाबख्श हैं। गुलमुहम्मद भी अपने अजेय पराक्रम और रानी के प्रति असीम आस्था के कारण हमारे गौरव का पात्र बनता है। गौसखाँ भी गुलमुहम्मद की ही श्रेणी में आता है। स्त्री पात्रों में प्रमुख रानी हैं। उपन्यास एक प्रकार से उनका ही जीवन चरित्र है। रानी के अतिरिक्त सुन्दर, मुन्दर, काशीबाई, झलकारी, जूही, मोतीबाई, बख्शिन आदि भी अपने कार्यों के कारण अमर हैं।

सबसे प्रमुख चरित्र रानी का है। लेखक ने उनके चरित्र का विकास अत्यन्त कुशलतापूर्वक दिखाया है। बाल्यकाल से ही उनकी कुशाग्र बुद्धि, उनके साहस एवं उनकी देश के प्रति निष्ठा का वर्णन करके उसने, पहले से ही उस महत्कार्य की भूमिका बाँध दी है जिसे रानी आगे चल कर पूर्ण करती हैं। गंगाधर राव से विवाह हो जाने पर झाँसी निवासी रानी को प्राणों से भी अधिक चाहने लगते हैं। राजा गंगाधर राव द्वारा बिगाड़ी गई परिस्थिति को रानी आते ही सँभाल लेती हैं। साधारण जनता के साथ रानी के सम्बन्धों का वर्णन कर उपन्यासकार ने उनके चरित्र को और भी गरिमा प्रदान की है। अंग्रेजी शासन के प्रति भी रानी को अत्यधिक घृणा थी! उस घृणा को प्रदर्शित करने के लिये अवसर की बाट जोहती हैं, अवसर आता है और रानी स्वतन्त्रता संग्राम में अपनी आहुति देने के लिये कूद पड़ती हैं। रानी यह आहुति अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की वेदी पर नहीं किन्तु देश के स्वाधीनता संग्राम की वेदी पर देती हैं। सामन्तीय वर्ग

के लोगों की तरह वे जनता की शक्ति की ओर से उदासीन नहीं रहती वरन जनता की शक्ति पर अटूट आस्था रखती हैं। वे कहती हैं कि मैं स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने के अपने पवित्र कर्तव्य को करूंगी। 'करूँगी और फिर करूँगी। चाहे मेरे पास खड़े होने के लिये हाथ भर भूमि ही क्यों न रह जाय। मान लो कि मैं सफल न हो पाई फिर भी जिस स्वराज धारा को आगे बढ़ा जाऊँगी वह अक्षय रहेगी ...... हमको एक बड़ा सन्तोष है। जनता हमारे साथ है। जनता सब कुछ है, जनता अमर है, इसको स्वराज्य के सूत्र में बाँधना चाहिये। राजाओं को अंग्रेज भले ही मिटा दें परन्तु जनता को नहीं मिटा सकते। एक दिन आवेगा जब इसी जनता के आगे हो कर मैं स्वराज्य की पताका फहराऊंगी।'

रानी इसी आस्था के बल पर अंग्रेजों से टक्कर लेती हैं। सारी जनता उनका साथ देती है। सब स्वतन्त्रता संग्राम में जूझ जाते हैं। रानी के लिये वे अपने घर बार सबको छोड़ कर, अपनी आहुति देते हैं। कारण रानी, झाँसी की शासिका नहीं, साधारण जनता की नेता थीं। उन्हें जनता पर, उसकी शक्ति पर विश्वास था, जनता को अपने नेता पर विश्वास था। बख्शिश किले पर तोप का गोला लगने से धराशायी हो जाती है। बख्शी को समाचार दिया जाता है पर वह कहता है—'उससे बढ़ कर झांसी और झांसी की रानी है। शाम को देखूंगा तब तक दाह न करना।" और सबने देखा—"झाँसी की रानी वहाँ धूल में बैठी बख्शिश के शव से लिपटी हुई थीं"।

यह सब इसी कारण हुआ कि रानी ने झाँसी के स्त्री, पुरुष, बच्चों में एक नवीन चेतना जागृत कर दी थी! जूही, मोतीबाई, सुन्दर सब रानी के साथ लड़ते लड़ते अपने प्राण दे देती हैं और इसे अपना सौभाग्य समझती हैं कि उन्होंने रानी की छाया में अपने प्राणों की बलि दी!

ऐसे दृढ़ चरित्र की रचना कर उपन्यासकार ने वास्तव में सराहनीय कार्य किया है। रानी की रण कुशलता देख कर अंग्रेजी सेना भी स्तंभित हो उठती है। रानी का अन्त उनके जीवन के अनुरूप ही एक गौरवमयी पृष्ठ भूमि में होता है। उनका चरित्र भारतीय नारीत्व को गरिमा प्रदान करता है। उसे आकाश की ऊँचाइयों तक ले जाता है। भारतीय इतिहास की यह अमर विभूति सदा ही आने वाले जन संघर्षों में जनता को प्रकाश देगी। उसे प्रेरणा प्रदान करेगी।

राजा गंगाधर राव का चरित्र भी कुशलतापूर्वक चित्रित किया गया है। वे एक सच्चे सामन्त का प्रतिनिधित्व करते हैं जनता जिसके लिये कुछ नहीं है। अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के लिये साधारण जनता पर अत्याचार करना उनका लक्ष्य है। नाटक, नाचरंग में भी उनकी रुचि है। रानी आते ही राजा तक को प्रभावित करती हैं और अपने चरित्र

और अपने कार्यों द्वारा जनता के हृदय में घर कर लेती हैं। जनता गंगाधरराव के अत्याचारों को भुला देती है। रानी के आते ही गंगाधरराव भी संयमित हो जाते हैं। और कोई विशेष बात उनके चरित्र में नहीं देख पड़ती। अन्य पुरुष पात्रों का चरित्र भी सावधानी और सुन्दरता से अंकित किया गया है। रामचन्द्र देशमुख, रघुनाथसिंह जवाहरसिंह, तात्या टोपे, खुदाबक्स, गौसखाँ, गुलमुहम्मद आदि ऐसे ही पात्र हैं जो रानी के लिये अपने प्राणों की होड़ लगा देते हैं।

यही बात स्त्री चरित्रों के विषय में भी कही जा सकती है! रानी का साहचर्य उनमें एक अदम्य साहस भर देता है। वे प्रेम भी करती हैं और तोप के गोलों के सम्मुख जूझ भी जाती हैं। जूही और मोतीबाई जैसी नाटक की अभिनेत्रियाँ भी रानी के सम्पर्क में आकर स्वाधीनता संग्राम में अपनी बलि दे देती हैं। सुन्दर मुन्दर और काशीबाई भी रानी की आज्ञा का पालन करते हुए युद्ध में जूझ कर अमर हो जाती हैं। झलकारी कोरिन की वीरता और साहस तो नारी जाति का आदर्श बन जाता है। बख्शिन की मृत्यु भी रानी की गोद में होती है। रणक्षेत्र में तोपों के गोलों के बीच वे प्रेम करती हैं और देश की स्वाधीनता में अपने प्राणों को होम देती है। ऐसे स्त्री चरित्र भारतीय नारी जाति के गौरव हैं, भविष्य के लिये प्रेरणा हैं!

कथोपकथनों में कथावस्तु के अनुसार ही ओज है, प्रवाह है, गति है। अवसर के अनुकूल वे परिवर्तित भी होते रहते हैं। पात्रों की प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर ही उनकी योजना की गई है जिससे उनके चरित्र भी विकसित और स्पष्ट होते चलते हैं। भाषा भी सुन्दर व पात्र और परिस्थितियों के अनुरूप है। बुन्देलखण्डी बोली का पुट स्वाभाविकता और रमणीयता की सृष्टि करता है। वर्माजी के अन्य उपन्यासों की अपेक्षा इस उपन्यास की भाषा कुछ अधिक प्रौढ़ और परिष्कृत है। इस दृष्टि से भी वर्माजी को पर्याप्त सफलता मिली है।

देशकाल चित्रण भी स्वाभाविक और उपयुक्त है। तत्कालीन युग की दशाओं का पूरा परिचय उपन्यास पढ़ने से प्राप्त होता है। सामाजिक आन्दोलन, धार्मिक आन्दोलन, राजनैतिक उथल-पुथल सबका वर्णन उपन्यास में किया गया गया है! युद्धों आदि के वर्णन में वर्माजी ने विशेष सफलता प्राप्त की है और तत्कालीन युग की युद्ध कला को सजीव कर दिया है। झांसी के सामाजिक जीवन के सुन्दर चित्रों से उपन्यास भरा हैं। अंग्रेजों की छावनियों के वर्णन भी सजीव हैं। स्वाधीनता संग्राम के पूर्व की राजनैतिक अस्तव्यस्तता, अंग्रेजों की नीतियों का जनसाधारण द्वारा विरोध, विद्रोह की चिनगारी का फूटना, ये सारी बातें अत्यन्त सजीवता के साथ अङ्कित की गई हैं।

उपन्यास का अन्त अत्यधिक मार्मिक है। वह निराशा को नहीं प्रत्युत आशा को बल देता है। बाबागंगादास के ये शब्द वास्तव में एक नवीन स्फूर्ति और प्रेरणा को जन्म देते हैं। रानी की मृत्यु पर वे कहते हैं:—

"प्रकाश अनन्त है। वह कण कण को भासमान कर रहा है। फिर उदय होगा। फिर प्रत्येक कण मुखरित हो उठेगा।"

रानी का सन्देश भी यही था। ये वाक्य सदैव ही इसी प्रकार प्रेरणा उत्पन्न करते रहेंगे।

उपन्यास को समग्र रूप से देखने पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इसमें वर्माजी की कला ने पर्याप्त विकास पाया है। यद्यपि कल्पना की उतनी प्रधानता नहीं है फिर भी रोमान्स और इतिहास ने सरसता को बनाए रखा है। लक्ष्मीबाई के चरित्र की जो झाँकी उपन्यासकार ने दी है वह अनुपम है। पारसनीस के कथन ने ही वर्माजी से ऐतिहासिकता पर अधिक बल देने का आग्रह किया! वे कहीं भी सस्ती भावुकता में नहीं बहे हैं। वर्माजी का यह कथन कि "मैंने निश्चय किया था कि उपन्यास लिखूंगा ऐसा जो इतिहास के रंग रेशे से सम्मत हो और उसके सन्दर्भ में हो" पूर्ण सत्य है। यह ऐतिहासिक कृति साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी है।

(५) कचनार:—[१९४७]

'कचनार' उपन्यास को वर्माजी ने इतिहास और परम्परा पर आधारित कहा है पर लेखक के ही अनुसार इसमें परम्पराओं का अधिक आग्रह है। पृष्ठ भूमि ऐतिहासिक है, घटनाएँ भी सत्य हैं केवल समय और स्थान का फेर है। विभिन्न समयों और स्थानों में घटने वाली घटनाओं को एक विशेष समय और स्थान में गूँथ दिया गया है। कथानक का केन्द्र धामोनी रियासत है जो एक समय राजगोंडों के आधीन थी। राजगोंडों ने उसे कई बार खोया और प्राप्त किया। उनका अपना जीवन था, अपनी संस्कृति थी पर समय की गति ने आज उस जीवन और संस्कृति को बहुत दूर फेंक दिया है! लेखक गोंडों की इस संस्कृति से विशेष प्रभावित रहा है। वह कहता है—"आजकल के भारतीय राजनैतिक विकास में गोंड कोई विशेष भाग लेते नहीं जान पड़ते यद्यपि मध्य भाग में उनके कई राज्य हैं। परन्तु एक समय वे अपने सहज, सरल, स्वाभाविक और प्रमोदमय जीवन द्वारा भारतीय संस्कृति को अपने दृढ़ और पुष्ट हाथों की अंजलियाँ भेंट किया करते थे। वे क्या फिर ऐसा नहीं कर सकते? मुझको तो आशा है।" उपन्यासकार ने प्रस्तुत उपन्यास को इसी आशा का प्रतीक कहा है। धामोनी के विषय में उसे और कोई आकर्षण नहीं! वह कहता है—"वह किसी बड़े मुगल मन्त्री* का जन्म स्थान रहा हो तो अथवा किसी बड़े मुगल सरदार का शिविर तो भी हम जन साधारण के लिये कोई महत्व नहीं रखता।" लेखक का आकर्षण यही है कि "वहीं एक सहज स्वाभाविक और स्वच्छ चहल-पहल थी। गोंडों का एक जन राज्य था जिसको सामन्तीय साँचे ने कुछ ढाल अवश्य दिया था परन्तु बिल्कुल परिवर्तित नहीं कर पाया था, उसको देखना है और वही हमारे लिये कुछ महत्व रखता है।" परन्तु 'कचनार' में एक कहानी भी है इस कारण उपन्यासकार ने स्पष्ट कह दिया है कि "परन्तु 'कचनार' में केवल इसी के दिग्दर्शन का प्रयत्न नहीं है।"

मुख्य कथा इस प्रकार है:—

धामोनी रियासत के राव दलीपसिंह का विवाह होता है। राव दलीपसिंह अस्वस्थ थे इस कारण भाँवरें उनकी कटार के साथ पड़ीं! बारात में उनका एक रिश्ते का छोटा भाई मानसिंह गया था! भावज से परिचय प्राप्त करने के लिये उतावला हो रहा था! मार्ग में ही अवसर निकाल कर उसके पास पहुंच गया! वधू के साथ उसकी

---

* कहा जाता है कि अकबर के मन्त्री फैजी का जन्म स्थान धामोनी ही है।

दो दासियाँ भी थीं—कचनार और ललिता। कचनार शान्त और संयत थी। ललिता चंचल और कुछ उच्छृंखल। मानसिंह ने भावज को देखा। उसका रूप उसकी उआँखों में पैठ गया। वधू जिसका नाम कलावती था मुस्करा उठी! बारात धामोनी आ गई! मानसिंह अवसर पाकर भावज से हँसी मजाक करता। कलावती भी उसे चाहने लगी। दलीपसिंह को न जाने क्यों यह बात अखरी पर कुछ कहा नहीं! वधू से दलीपसिंह की भेंट हुई! वे चाहते थे कि वह उनसे भी उसी प्रकार हँसे बोले जिस प्रकार मानसिंह से बोलती थी पर लज्जा के कारण कलावती दलीपसिंह के सम्मुख अधिक स्पष्ट न हो सकी! दलीपसिंह को यह और भी अखरा। समय बीतता गया! मानसिंह दिन प्रतिदिन कलावती के और भी समीप आता गया और दलीपसिंह उससे दूर हटते गये! कलावती दलीपसिंह से भयभीत भी रहती! दलीपसिंह आकर्षित हुए कचनार पर! वे उसे अपनी वासना पूर्ति का साधन बनाना चाहते थे! कचनार दलीपसिंह को चाहती थी पर उसने उनसे स्पष्ट कह दिया कि वह विवाह के बिना उनकी इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर सकती। रखेल होकर वह जीवन नहीं बिता सकती।

धामोनी पर सागर की सेनाऐं आक्रमण करती है। दलीपसिंह युद्ध में आहत होते हैं पर उनकी विजय भी होती है। विजय के नशे में उन्मत्त घोड़े पर लौट रहे थे कि घोड़े को ठोकर लगती है और वे पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। चोट लगने के कारण अचेत हो जाते हैं। उनका उपचार किया जाता है पर मूर्छा नहीं टूटती! इसी बीच मानसिंह और कलावती में और भी घनिष्टता हो जाती है। मानसिंह चुपचाप दलीपसिंह को एक ऐसी औषधि खिला देता है कि उनकी मूर्छा टूटती ही नहीं। सब समझते हैं कि दलीपसिंह की मृत्यु हो गई और दलीपसिंह दाह के लिये श्मशान ले जाये जाते हैं। मार्ग में ही भीषणता से वर्षा होती है। आँधी तूफान भी आते हैं। शव को चिता पर रख कर मानसिंह आदि वर्षा से बचने के लिये एक पेड़ के नीचे आ जाते हैं! वर्षा समाप्त होने पर दाह का निश्चय किया जाता है। रात अँधेरी थी! चारों ओर सन्नाटा था। उसी ओर से गुँसाई साधुओं एक दल निकलता है। गुसाइयों के महन्त अचलपुरी थे। वे दलीपसिंह को पहचानते थे। शव में कुछ स्पन्दन देखकर वे चुपचाप उसे उठाकर अपने आश्रम में ले जाते हैं। अपने शिष्यों से कह देते हैं कि रहस्य किसी को पता न चले! वर्षा कम होती है। मानसिंह आदि शव को नहीं पाते! वे अनुमान लगा लेते हैं कि या तो वह बह गया अथवा कोई नाहर आदि उसे उठा ले गया। निश्चिन्त होकर सब घर लौट आते हैं। उधर महन्त की सेवा से दलीपसिंह स्वस्थ तो हो जाते हैं पर अपनी सारी पूर्व स्मृति खो देते हैं और बिलकुल बच्चों जैसा व्यवहार करने लगते हैं। महन्त अपनी सेवा से उन्हें शनैः शनैः स्वस्थ करते जाते

हैं। महन्त उन्हें पुनः प्रारम्भ से ही शिक्षा देना व किसी प्रकार उनकी पूर्व स्मृति को लौटाने का प्रयत्न करते हैं।

मानसिंह धामोनी की गद्दी पर बैठते ही कलावती से विवाह कर लेता है। कलावती उसके ऊपर अनुरक्त थी ही। दलीपसिंह की मृत्यु का वास्तविक आघात कचनार को लगता है कारण वह उन्हें हृदय से चाहती थी। वह अपने जीवन का क्रम बदल देती है। सादगी से रहना, एवं सबके साथ अत्यन्त संयत व्यवहार करना प्रारम्भ कर देती है। दलीपसिंह का स्मरण आते ही उसका हृदय कचोटने लगता है। मानसिंह की कामवासना कलावती से ही नहीं बुझती वह कचनार को भी अपनी वासना का माध्यम बनाना चाहता है। अपने नारीत्व की रक्षा होते न देख एक दिन कचनार किले से भाग निकलती है और घटनावश वह भी गोसाईं अचलपुरी के आश्रम में पहुंचती है जहाँ दलीपसिंह सुमन्तपुरी नाम से रह रहे थे। कचनार का नाम भी बदल कर कंचनपुरी रख दिया जाता है। सुमन्तपुरी को देखते ही कचनार को दलीपसिंह की आकृति का स्मरण हो आता है पर वह कुछ समझ नहीं पाती कारण वह उन्हें मरा हुआ समझती थी! दलीपसिंह का बच्चों जैसा व्यवहार भी उसे यह अनुमान नहीं लगाने देता कि वह वास्तव में दलीपसिंह ही है। दलीपसिंह की तो पूर्व स्मृति लुप्त हो ही चुकी थी अतः वे भी कचनार को नहीं पहचान पाते। हाँ दलीपसिंह (सुमन्तपुरी) कचनार (कंचनपुरी) की ओर आकर्षित अवश्य थे।

गोसाईं अचलपुरी का यह दृढ़ विश्वास हो जाता है कि हो न हो सुमन्तपुरी दलीपसिंह ही है पर किसी आधार को पाये वह कुछ कर सकने में विवश थे! उनकी पूर्व स्मृति को लौटाने में वे असफल होते हैं। परन्तु वे इस निश्चय पर पहुंच जाते हैं कि दलीपसिंह ही राज्य का अधिकारी है और उसे धामोनी का राज्य पुनः मिलना चाहिये। कुछ काल पश्चात गोसाईं संगठित रूप से धामोनी पर आक्रमण करते हैं। दलीपसिंह में पर्याप्त परिवर्तन हो गया था। पूर्व स्मृति तो न लौटी थी पर बच्चों का व्यवहार करना समाप्त हो गया था। वे भी युद्ध में भाग लेते हैं। युद्ध में दलीपसिंह के सिर पर पुनः भीषण चोट लगती है और वे घायल हो जाते हैं। अब की बार की चोट का परिणाम सुन्दर होता है। उनकी पूर्व स्मृति लौट आती है। कचनार को जब यह पता चलता है कि सुमन्तपुरी वास्तव में दलीपसिंह ही है वह प्रसन्नता से भर उठती है। दलीपसिंह भी कचनार को पहचान जाते हैं। मानसिंह बन्दी होता है। दलीपसिंह पुनः धामोनी की गद्दी पर बैठते हैं। कचनार से उनका विवाह हो जाता है। मानसिंह को दलीपसिंह के सम्मुख लाया जाता है। वह अपने कृत्यों पर पश्चाताप करता है और उचित दण्ड की प्रार्थना करता है। राव दलीपसिंह उसे क्षमा कर देते हैं। राव दलीपसिंह को कलावती की याद आती है। महन्त मानसिंह से प्रश्न करते हैं:—"और कुछ कहना है।

हाँ महाराज- मैंने रानी के साथ पुनर्विवाह किया। हमारी जाति में यह प्रथा लगभग बन्द हो गई है, मैंने इस नई बात के करने में यह दूसरा अपराध किया।

इतने में ही दूसरे कमरे से बालक रोया।"

दलीपसिंह सब कुछ समझ जाते हैं पर वे पुनः उसको क्षमा कर देते हैं।

"एक दिन दलीपसिंह ने कचनार से कहा—रानी साहब, मुझे कंचनपुरी की बहुत याद आती है, कचनार मुस्कराकर बोली—तो मैं क्या करूँ? भस्म, त्रिपुण्ड, रुद्राक्ष, फिर ग्रहण करूँ?'

तुम्हारे नाम के पहले कञ्चन शब्द जोड़ देने से काम चल जायेगा जब उपयुक्त समय आयेगा तब सब छोड़ कर भस्म भी ग्रहण करेंगे।

तो मेरा नाम क्या होगा अब?

कंचन कचनार!!"

इस प्रकार उपन्यास की कथा सुखमय भूमिका में समाप्त होती है।

कथावस्तु के सम्बन्ध में हमारा निवेदन है कि उसका मूल आधार एक विवादास्पद विषय है। पूर्व स्मृति का किसी भीषण चोट लगने के कारण लुप्त हो जाना एवं उसी स्थान पर पुनः चोट लगने पर उसका लौट आना सुना तो गया है पर फिर भी विवाद बन जाता है। दूसरे विष से स्मरण शक्ति समाप्त हो जाती है अथवा नहीं यह विषय भी विवादास्पद है। तीसरा विषय जो अधिक विवादास्पद है वह है विष अथवा चोट के प्रभाव से लुप्त हुई पूर्व स्मृति वाले मनुष्य का चेत आने पर बालकों की तरह व्यवहार करन और पुनः नए सिरे से उसके मस्तिष्क का विकास होना! इन विषयों पर वर्माजी ने अपने एक मित्र डाक्टर बखरू के वार्तालाप का उल्लेख किया है पर उस वार्तालाप से कोई निश्चित हल नहीं निकलता! विषय विवादास्पद बने ही रहते हैं। चोट लगने पर पूर्व स्मृति का लुप्त हो जाना एवं कुछ काल पश्चात अपने आप से अथवा पुनः उसी स्थान पर गहरी चोट लगने के कारण स्मृति का लौट आना तो हम मान सकते हैं पर विष के प्रभाव से स्मृति का लुप्त होना और चेत आने पर बालकों की तरह व्यवहार करना ये विषय अधिक विवादास्पद हैं और इनका कोई हल जब तक सर्वमान्य नहीं हैं, हम मानने को प्रस्तुत नहीं है।

कथानक में एक और आधार का उलेल्ख किया गया है और वह है प्रसिद्ध 'भुवाल सन्यासी केस'। इसमें भी विषके प्रभाव वश किसी व्यक्ति की स्मृति लुप्त हो जाती है। एक प्रकार से पहले वह मर जाता है। उसे प्रवाहित कर दिया जाता है। एक सन्यासी शव में स्पन्दन देखकर उसे निकालता है और उसे स्वस्थ करता है पर जिस व्यक्ति की

पूर्व स्मृति लुप्त हो चुकी थी शनैः शनैः पर्याप्त समय बीतने पर वह लौटती है और तब सारा रहस्य खुलता है। भुवाल सन्यासी केस सत्य घटना है। पर डाक्टरों में उपर्युक्त प्रश्न पर विवाद बना रहा था ! आज भी कोई सर्वमान्य हल नहीं निकल सका !

खैर, इन बातों पर हम अधिक विस्तार नहीं देना चाहते ! हम कथानक को उस रूप में लेते हैं जिस रूप में उपन्यासकार ने उसका वर्णन किया है। उपन्यासकार द्वारा वर्णित कथानक रोचक और कौतूहल वर्धक है। उसका सम्बन्ध एक विशेष वर्ग के लोगों से है जिसे सामन्ती तो उपन्यासकार नहीं कहता पर उसके निकट अवश्य मानता है। वह राजगोंडों के राज्य को जनराज्य कहता है यद्यपि सामंतीय ढाँचे ने उसको बहुत कुछ अपने अनुरूप ढाल लिया था। उपन्यास में धामोनी राज्य व उसके कर्णधारों के जिन क्रियाकलापों का वर्णन है वे सामन्तीय प्रवृत्तियों से ही रँगे हुए हैं। वे ही अत्याचार, हास विलास, काम क्रीड़ाएँ छल, धोखेबाजी वे भी करते हैं, सामन्तीय वर्ग के व्यक्तियों के लिये उस युग में जो साधारण समझे जाते थे। तनिक सी बात में प्रजा को मारना पीटना, उनकी सामग्री को जब्त कर लेना उनके नियम के भी अन्तर्गत था। हाँ साधारण प्रजा में चेतना थी। हमारा तात्पर्य यहाँ केवल यह प्रदर्शित करना ही है कि धामोनी राज्य में सामन्तीय युग की प्रवृत्तियाँ थीं। उपन्यास के शासक वर्ग से सम्बन्ति पात्र इसे चरितार्थ करते हैं। हो सकता है कि सामन्तीय वातावरण अपने पूर्ण उत्कर्ष पर न रहा हो पर सत्ता प्राप्त दलीपसिंह और मानसिंह आदि अपने को सामन्तों के निकट सिद्ध करने में कुछ भी नहीं उठा रखते। वह युग जिसका कि उपन्यास में चित्रण है सामन्तीय युग ही था।

कथानक में घटनाओं और परिस्थितियों की योजना सुन्दरता से हुई है। हाँ, दलीपसिंह और कचनार के वास्तविक प्रेम का कोई आधार उपन्यासकार नहीं दे सका है। कचनार आते ही दलीपसिंह पर मुग्ध हो जाती है यद्यपि उस समय दलीपसिंह कामुक और विलासी सामन्त के अतिरिक्त और कुछ नहीं मालूम पड़ता ! मानसिंह और कलावती और पारस्परिक प्रेम का तो आधार है भी। दलीपसिंह कलावती की ओर से विरक्त रहहत है और मानसिंह इसी कारण उसके अधिक निकट आता जाता है। कथानक के विकास में गोसाइयों का प्रमुख हाथ है। उन्हीं के प्रयत्न से दलीपसिंह को पुनः उनकी गद्दी प्राप्त होती है। दलीपसिंह की स्मृति के लौटने के पश्चात उनका परिवर्तित चरित्र भी ध्यान देने योग्य है। वह पहले का सा कामुक, अत्याचारी और विलासी नहीं रह जाता, यह परिवर्तन स्वाभाविक है। कथानक का अन्त सुखद है और इसका उत्तरदायित्व दलीपसिंह के जीवन की बदली हुई परिस्थितियों पर है।

घटनाओं की योजना सुन्दर है। परिस्थितियों के घात प्रति घात भी सुन्दर हैं एवं अन्य छोटे छोटे प्रसंगों ने भी उदाहरणार्थ युद्ध आदि ने कथानक को रोचक बनाने में कोई कमी नहीं की। गोसाइयों के आश्रम के दृश्य भी सुन्दर हैं। राव दलीपसिंह का आश्रम में बिताया हुआ जीवन भी कथानक को आकर्षण प्रदान करता है।

कथानक की ऐतिहासिकता अथवा अनैतिहासिकता के विषय में हम पहले ही कह चुके हैं कि घटनाएँ सत्य हैं, केवल काल और स्थान का फेर है। उपन्यास कतिपय सत्य घटनाओं पर आधारित, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में उन घटनाओं का वर्णन करने वाला कहा जा सकता है। शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों की कोटि में उसे नहीं रखा जा सकता और न उपन्यासकार की ओर से इसका आग्रह ही है।

पात्रों में प्रमुख राव दलीपसिंह; मानसिंह गोंसाई अचलपुरी, कलावती और कचनार हैं। कुछ गौण पात्र भी हैं उदाहरणार्थ डरू, बैजनाथ, मंटोलेपुरी, ललिता, मन्ना और सोनेसाह !!

जहाँ तक राव दलीपसिंह के चरित्र का प्रश्न है उसे दो भागों में बाँटा जा सकता है। १—गोंसाई अचलपुरी के आश्रम में पहुंचने से पूर्व २—उसके पश्चात पुनः गद्दी पर बैठने तक !!

प्रारम्भ में वह एक कामुक, विलासी सनकी एवं अत्याचारी के रूप में ही हमारे सम्मुख आता है। कलावती से उसका विवाह होता है। अस्वस्थता के कारण वह स्वयं विवाह करने नहीं जा पाता अतः भाँवरें उसकी कटार के साथ ही पड़ जाती हैं। वधू घर आती है। मानसिंह इसका देवर लगता था। रास्ते में ही भावज से हँसी मजाक कर चुका था घर आने पर और भी करता है। दलीपसिंह को बुरा लगता है पर कुछ बोलता नहीं। वह चाहता है कि कलावती उससे भी उसी तरह हँसे बोले। कलावती झिझकती है, वह उससे विरक्त हो जाता है। चिढ़कर उससे कहता है—"मुंह तो क्या तुम्हारा सारा शरीर नंगा कर दूँगा" कलावती चुप हो जाती है। उसका सिर दाबते २ सो जाती है।

यह तो एक उदाहरण हुआ ! दूसरा देखियेः—

कचनार को दलीपसिंह चाहने लगता है कारण उसका रूप आकर्षक था। उसके इस प्रेम में भी वासना है। कचनार उसकी स्त्री की दासी थी, दलीपसिंह उसे भोगने का अधिकार समझता है। कचनार कुछ दृढ़ थी ! वह उससे कहती है कि विवाह के पूर्व वह उसकी वासना पूर्ति का साधन नहीं बन सकती ! विवाह करने में वह कुछ हिचकता सा है। बात आगे के लिये टल जाती है। कचनार और उसकी बातचीत में भी उसकी विलासता और कामुकता ही टपकती है। वह कचनार से कहता हैः—

" नहीं तुम मेरी प्यारी बनोगी। तुम रानी सी होकर रहोगी? ।

"दीदी का क्या होगा" कचनार कलावती को दीदी कहती थी ।

क्या होगा, हम लोग कई स्त्रियाँ रख सकते हैं ।

इसके बाद वह उन्मत्त हो उठता है, कचनार का रूप देख कर और आवेश में कहताहै —

" मैं तुमको आज, अभी अपनी प्यारी बनाऊँगा " ।

वह कचनार को पकड़ कर उसे धन और वैभव का आकर्षण देता है केवल अपनी वासना को सन्तुष्ट करने के लिये—। वह कचनार का हाथ पकड़ लेता है और कहता है ।

"कहो क्या बात है ? जो माँगोगी दूंगा। मेरे पिता बहुमूल्य वस्त्रालंकारों का भण्डार छोड़ गये हैं, जिसकी इच्छा करो दूंगा "

कचनार उसके अनुरोध को अस्वीकार कर देती है और विवाह करने को कहती है। इस पर दलीपसिंह कहता है —"यदि मैं जबरदस्ती करूं"

" असम्भव है। आप मुझको मरा हुआ पावेंगे " ।

दलीपसिंह निराश हो जाता है। उसका हाथ छोड़ देता है। आश्चर्य तो यह है कि ऐसे विलासी, कामुक और ईर्ष्यालु व्यक्ति से कचनार, जिसे उपन्यासकार ने प्रारम्भ से ही उच्च चरित्र वाली युवती सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, प्रेम कैसे करने लगती है ? उसके पास ऐसा कौन सा आधार था ? न उसे वैभव का मोह है. न रानी बन कर शासन करने का, फिर दलीपसिंह में ऐसा कौन सा गुण था जिस पर वह रीझ जाती है ? उपन्यासकार की यह असफलता कचनार के चरित्र पर भी आक्षेप करती है।

अत्याचारी उसे इस कारण कहा गया है कि डरू और बैजनाथ के साथ लगान न देने के कारण वह जो व्यवहार करने का आदेश देता है वह अत्याचारपूर्ण है। और भी किसानों के साथ उसका व्यवहार अच्छा न था इसका भी संकेत इसी प्रसंग पर मिल जाता है। सोने साह का कत्ल भी तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए उचित है। वह वैभव के मद में चूर था, उसका गरीबों के साथ अभद्र व्यवहार ही उसकी मत्यु का कारण बनता है।

सोने साह भी अपने इस कार्य के लिए पूर्णरूपेण उत्तरदायी नहीं है कारण दलीपसिंह का आदेश ही ऐसा था। सोने साह की मृत्यु होने पर वह डरूकी सम्पत्ति जब्त करने व उसे जिन्दा या मुर्दा पकड़ लाने का भी आदेश देता है।

कचनार अब भी उससे प्रेम करती रहती है और वह कचनार से ! इसी बीच सागर की सेनाएं धामोनी पर आक्रमण करती हैं। दलीपसिंह भी युद्ध में जाता है। जाते समय वह कलावती से नहीं प्रत्युत कचनार से ही बिदा लेता है यद्यपि कलावती भी वहीं थीं। कदाचित वह युद्ध से विजयी होकर लौटने के पश्चात् कचनार से विवाह कर लेने का निश्चय कर चुका था। पर इसका अवसर नहीं आता। वह आहत लौटता है और मानसिंह का षड्यन्त्र उसे अचलपुरी के आश्रम में एक सर्वथा नये जीवन को बिताने के लिए भेज देता है। कलावती और दलीपसिंह के पारस्परिक व्यवहार को देखते हुए कलावती का मानसिंह की ओर ढुलक जाना स्वाभाविक था। प्रारम्भ में उसके ऐसे किसी भी कार्य के दर्शन नहीं होते जो यह सिद्ध करते हैं कि वह दलीपसिंह को नहीं चाहती थी। परिस्थितियां उसे सब कुछ करने को विवश करती हैं जिसका उत्तरदायित्व उसके ऊपर नहीं प्रत्युत दलीपसिंह पर है।

अचलपुरी के आश्रम में आकर दलीपसिंह का जीवन नये सिरे से प्रारम्भ होता है। यहाँ उसके चरित्र का विकास दिखाने में लेखक पर्याप्त सफल हुआ है। वह मनोवैज्ञानिक भी प्रतीत होता है। दलीपसिंहको पुनः चोट लगती है, उसकी पूर्व स्मृति लौट आती है और वह पुनः अपनी गद्दी पर आसीन होता है। परिस्थितियाँ उसे पर्याप्त परिवर्तित कर चुकी थीं। वह मानसिंह और कलावती को क्षमा कर देता है और कचनार के साथ विवाह करके सुखी जीवन बिताता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दलीपसिंह का चरित्र असंगतियों से भरा है। वह एक सामन्तीय शासक की भाँति है और उसमें वे सारी प्रवृत्तियाँ भीं हैं। उसके प्रेम का आदर्श तो अत्यन्त गिरा हुआ है।

मानसिंह का चरित्र भी दलीपसिंह की कोटि में ही आता है। सामन्तीय वर्ग के लोगों की सारी प्रवृत्तियाँ उसके चरित्र में भी हैं। वह भी विलासी, कामुक और नीच है। कलावती की ओर उसका आकर्षण वासना प्रेरित है, कचनार की ओर भी उसका आकर्षक होना उसी वासना पूर्ति के निमित्त ही है। कचनार तो उसे मिल नहीं पाती, कलावती अवश्य मिलती है। वह उससे भी विलास करता है और उसकी दासियों से भी। डरू के प्रति वह जो सहानुभूति प्रदर्शित करता है वह भी उसकी स्त्री मन्ना के कारण ही। मन्ना अल्हड़ थी, सुन्दर थी। मानसिंह उसे भी अपने जाल में फाँसना चाहता था। उपन्यास के दूसरे परिच्छेद में उसकी और डरू की बातचीत मन्ना के प्रति उसकी अश्लील प्रवृतियों को स्पष्ट कर देती है। डरू उसकी इन प्रवृत्तियों से परिचित था। मन्ना भी सजग थी। अतः मानसिंह का प्रयत्न असफल रहता है।

मानसिंह का दलीपसिंह को अपने मार्ग से हटाने का प्रयत्न भी सामन्तीय वर्ग की प्रवृत्तियों को देखते हुए अस्वाभाविक नहीं है। सामन्तों की इन्हीं प्रवृत्तियों ने ही

उनका नाश किया। घटनाक्रम बदलता है। दलीपसिंह पुनः धामोनी की गद्दी पर बैठता है। मानसिंह अपने अपराधों की क्षमा माँगता है। उसका यह चरित्र परिवर्तन भी परिस्थितियों के कारण होता है। उसके पास इसके अतिरिक्त और कोई उपाय न था। वह क्षमा कर दिया जाता है।

गोंसाई अचलपुरी के चरित्र में भी कोई विशेष बात नहीं। गौसाइयों के रूप में वे भी सत्ता और वैभव के लिये संघर्ष करते हैं, किसी महत उद्देश्य की प्राप्ति के लिये नहीं। वे अपने मुंह से कुछ भी कहें पर उनके कार्य उनके दावों को असत्य सिद्ध करते हैं। दलीपसिंह के साथ उनका व्यवहार मानवतावादी है। मानवता ही उन्हें दलीपसिंह का स्वत्व दिला देने को प्रेरित करती है। और कोई बात उनके चरित्र में उल्लेखनीय नहीं। अन्त में उनका चरित्र अवश्य कुछ आकर्षक हो गया है।

गौण पुरुष पात्रों में डरू, सोने साह, मंटोले पुरी उल्लेखनीय हैं। डरू का चरित्र भी साधारण ही है। मानसिंह से उसकी मित्रता है पर वह मानसिंह की कुप्रवृत्तियों की ओर से पर्याप्त सचेष्ट रहता है। सोने साह को मार कर भाग जाता है और इधर उधर भटककता हुआ पिण्डारियों के गिरोह में सम्मिलित हो जाता है। बाद को पकड़ा जा कर गुसाइयों के सम्मुख उपस्थित किया जाता है। वहाँ इसे फांसी का आदेश होता है। उस समय डरू की निर्भीकता भी उल्लेखनीय है। दलीपसिंह द्वारा उसे क्षमा प्रदान की जाती है और फाँसी न देकर उसे देश निकाले का आदेश दिया जाता है। अपनी स्त्री मन्ना को लेकर डरू धामोनी छोड़ देता है।

सोने साह रिश्ते में दलीपसिंह का काका लगता है। किसानों पर अत्याचार करने का परिणाम डरू द्वारा उसके क़त्ल में प्रकट होता है। उसकी मृत्यु बिलकुल उचित है।

मराटोले पुरी का चरित्र साधारण है। गुंसाई अचलपुरी की आज्ञा का पालन करना उसका कर्तव्य है और इसे वह निभाता है।

स्त्री पात्रों में प्रमुख कलावती, और कचनार हैं। जहाँ तक कलावती का सम्बन्ध है, वह एक साधारण नारी है। उसका दुर्बल चरित्र उसे परिस्थितियों का लक्ष्य बनाता और वह उनके आदेश के सम्मुख झुक जाती है। दलीपसिंह की उदासीनता उसे मानसिंह की ओर आकृष्ट करती है यद्यपि दलीपसिंह की तथा कथित 'मृत्यु' तक ऐसी कोई बात उसके चरित्र में नहीं देख पड़ती जो यह सिद्ध करती हो कि वह दलीपसिंह से विश्वासघात कर रही है। परन्तु दलीपसिंह के धामोनी से दूर होते ही वह मानसिंह से विवाह कर लेती है। इस विवाह के मूल में उसकी अतृप्त वासना है। दलीपसिंह उसके यौवन और उसकी उभरती इच्छाओं का तिरस्कार करता है, उससे विरक्ति दिखाता है,

मानसिंह से उसे सहानुभूति मिलती है। फलतः परिस्थितियाँ देखते हुए उसका मानसिंह की ओर आकृष्ट होना और उससे विवाह करना पूर्ण स्वाभाविक है। एक स्थान पर वह अपनी उस विचारधारा को व्यक्त भी करती है जो अब तक दबी हुई थी। मानसिंह से विवाह करने के पूर्व बातचीत में वह उससे कहती है कि दलीपसिंह की ओर वह कभी आकर्षित नहीं रही। हो सकता है कि यह बात उसने मानसिंह को खुश करने के लिये ही कही हो क्योंकि, दलीपसिंह के जाने के पश्चात यदि वह मानसिंह के प्रेम से भी वंचित हो जाती तो उसके पास कोई संबल न रह जाता। वार्तालाप निम्नलिखित है—

मानसिंह कलावती से पूछता है—'यह बताओ कि विवाह के दिनों तुम क्या सोच रही थीं ?

कला उत्तर देती है—और क्या कहूं ? कटार के साथ भांवर पड़ने से क्या विवाह कटार के साथ हुआ' ?

मानसिंह—'कभी नहीं, फिर' ?

कला—फिर क्या, जिसको सामने देख रही थी उसी को अपना सब कुछ समझ रही थी।

मानसिंह उससे पुनः प्रश्न करता है —" विवाह के समय में जो भाव मन में उदय हुआ था क्या तुम्हारे मन में वह अब भी है " ?

कला—"मेरे मन से तो वह कभी हटा ही नहीं "।

उपर्युक्त वार्तालाप से यह स्पष्ट हो जाता है कि विवाह के समय से लेकर बाद क भी कलावती हृदय से मानसिंह को ही चाहती थी और दलीपसिंह के प्रति विरक्त थी।

परन्तु यह कोई अनुचित नहीं है। प्रारम्भ से ही जो स्त्री मानसिंह के प्रति आकर्षित रही वह अन्त में यदि उससे विवाह कर लेती है तो उसका दोष नहीं है। दलीपसिंह का आतंक उसे अवश्य चुप किये रहा! उसके धामोनी से हटते ही मार्ग साफ होगया और वह अपनी इच्छा पूर्ण करती है। कटार के साथ कलावती की भाँवरें पड़ती हैं और इस कारण कलावती को दलीपसिंह के साथ बाँध देना उचित नहीं है, भले ही गोंडों में में ऐसी प्रथा हो अथवा लोक लज्जावश, समाज के भय से कलावती उसका विरोध न कर सकी हो। नारी को इस सीमा तक निरीह बना देना कतई उचित नहीं है और यदि अवसर आने पर नारी अपने ऊपर आरोपित किये गये अनुचित बंधनों का तिरस्कार करती है तो थोथे आदर्श और थोथे पतिव्रत धर्म तथा नारीत्व की दुहाई देकर उसे कलंकित करना पूर्ण रूपेण अत्याचार है, नारी के अधिकारों का हनन है। कलावती जो कुछ करती है परिस्थितियों को देखते हुए वह बिल्कुल उचित है। उसे दलीप सिंह के साथ बाँधकर उससे झूठे पातिव्रत धर्म का बोझ ढुलाना उस पर स्पष्ट रूप से

अत्याचार करता था। मानसिंह से विवाह करने के उपरान्त कलावती के जीवन में सुख की घड़ियों का आगमन होता है। वह एक पुत्र को जन्म देती है व अन्त समय तक मानसिंह के साथ रहती है। बाद को स्वयं दलीपसिंह उसके व मानसिंह के विवाह को उचित बताता है एवं उसके व मानसिंह के साथ किये गये दुर्व्यवहारों पर पश्चाताप करता है। जब मानसिंह बन्दी के रूप में उसके सम्मुख लाया जाता है, वह स्पष्ट रूप से अपने अपने अपराधों के लिये दण्ड की प्रार्थना करता है पर दलीपसिंह स्वयं लज्जित था। वह उससे कहता है :—

"मानसा, तुमने न तो कोई अपराध किया है और न कोई पाप। मैंने तुम्हारे साथ अच्छा बर्ताव नहीं किया था और रानी के साथ तो दुर्व्यवहार ही करता रहा। तुम लोगों को स्वतंत्र करता हूँ।" आगे चल कर मानसिंह और कलावती के सम्बन्ध का समर्थन करता है— "मैं इन लोगों को अपना मुख नहीं दिखलाऊंगा और न सामना करने दूँगा। जो कुछ किया गया वह बिल्कुल उचित था। ऐसा न करना अचम्भे की बात होती।"

मेरे विचार से यह दलीपसिंह का नहीं स्वयं उपन्यासकार का मत है और उपर्युक्त कथन को बल प्रदान करता है।

दूसरा प्रमुख स्त्री चरित्र कचनार का है। उसके चरित्र के विकास में उपन्यासकार ने अत्यधिक सावधानी बरतने का प्रयत्न किया है पर कचनार और दलीपसिंह के प्रेम का कोई आधार न देकर उसने अनजाने में कचनार के चरित्र को हलका कर दिया है। कचनार दासी के रूप में कलावती के साथ धामोनी आती है। उसमें संयम, विवेक और आत्माभिमान भी है। अपने नारीत्व को वह विलासी सामन्तों के हाथों का खिलौना नहीं बनने देना चाहती और दलीपसिंह से उसके प्रणय निवेदन करते समय स्पष्ट शब्दों में कह भी देती है—"मैं भी आपको प्राण पण से प्रेम कर सकती हूँ परन्तु अपना नारीत्व नष्ट करके नहीं। × × × × !! मेरे साथ भाँवर डालिए। मुझको अपनी पत्नी की प्रतिष्ठा दीजिये। अपनी जीवन सहचरी बनाइये। वचन दीजिये। मैं आपके चरणों में अपना मस्तक रख दूँगी।" परन्तु यह समझ में नहीं आता कि दलीपसिंह जैसे कामुक और विलासी व्यक्ति के साथ वह प्रेम क्यों करने लगती है? वह वैभव की इच्छुक नहीं है, रानीत्व की चाह भी उसमें नहीं है फिर किस भावना से प्रेरित हो वह दलीपसिंह को देख कर हृदय हार जाती है? उपन्यासकार इसे बताने में असफल रहा है।

कुछ भी हो दलीपसिंह को वह हृदय से चाहती है और जब मानसिंह के षणयंत्र से उनको मरा हुआ समझ कर श्मशान में जाकर फेंक आया जाता है तब उसे वास्तविक

आघात भी होता है और सादगी से जीवन व्यतीत करती हुई वह अपने प्रेम के आदर्श को स्थिर रखती है। गोसाईं अचलपुरी के आश्रम में भी उसका यही जीवन क्रम चलता रहता है। अन्त में उसे दलीपसिंह पुनः मिलता है और उसकी पत्नी के रूप में वह अपने को धन्य समझती है।

कचनार का चरित्र उपन्यासकार ने उठाने का प्रयत्न तो बहुत किया है पर वह विशेष प्रभावशाली नहीं बन सका! उपन्यास भर में स्थान स्थान पर उसके संयम, उसकी पतिव्रता एवं उसके प्रेम की दृढ़ता पर बल दिया गया है पर इससे हमारी उपर्युक्त धारणा में कोई परिवर्तन नहीं होता।

मन्ना का चरित्र अवश्य आकर्षक है। वह डरू की पत्नी है। पति से उसे असीम प्रेम है और उसका निर्वाह भी अंत तक करती है। ललिता साधारण कोटि की स्त्री है! आत्मभिमान एवं चारित्रिक दृढ़ता का अभाव ही उसे मानसिंह की विलास क्रीड़ाओं की सहयोगिनी बनाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपन्यास के सारे स्त्री पात्रों में अपनी २ चारित्रिक विशेषताएँ हैं।

भाषा और कथोपकथन अन्य उपन्यासों की भाँति ही हैं। विस्तार देना हमें अभीष्ट नहीं।

देशकाल का निर्वाह अवश्य सावधानी के साथ किया गया है। तत्कालीन युग की अस्तव्यस्त राजनैतिक परिस्थिति, सामन्ती स्वार्थों की चक्की में पिसती हुई साधारण जनता के चित्र, सभी का प्रदर्शन उपन्यास में हुआ है।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि 'कचनार' अपने ढंग का एक रोचक उपन्यास है।

उद्देश्य में असफल रहा। बहलोल व सिकन्दर के अतिरिक्त मालवा का गयासुद्दीन खिलजी भी ग्वालियर पर अपनी दृष्टि जमाए था। ग्वालियर पर आक्रमण करने के मूल में उसका मुख्य उद्देश्य राई गांव की उन दो कुमारियों को हस्तगत करना था जिनके रूप और शौर्य की ख्याति दूर दूर तक फैल चुकी थी। राई की ये कुमारियां अपनी वीरता, शौर्य एवं सुन्दरता के लिये विख्यात थीं! बड़े बड़े अरनों, नाहरों को मार देना उनके लिये साधारण बात थी! विलासी और रूप लोलुप राजे नवाब इनके विषय में सुनते और इनको प्राप्त करने के लिए लम्बी लम्बी भूमिकाएँ बांधते। ग्वालियर के आधीन नरवर नाम का एक छोटा सा राज्य भी था! ग्वालियर के तोमरों ने उसे कछवाहों से छीन लिया था। कछवाहों का राजा राजसिंह नरवर के समीप चन्देरी में अपनी विलास प्रियता में डूबा हुआ किसी प्रकार अवसर आने पर नरवर को छींन लेने की योजनाएँ बना रहा था।

ग्वालियर में उस समय मानसिंह तोमर का राज्य था। उन्होंने भी उन कुमारियों के विषय में सुना। एक तो थी राई गांव के किसान अटलसिंह गूजर की बहन, निन्नी और दूसरी उन्हीं के साथ रहने वाली अहीर कन्या लाखी। राई गांव के पुजारी बोधन का राजा से परिचय था। गांव में भी उसकी धाक थी। उसने ग्वालियर जाकर राजा को राई गांव चलने का निमन्त्रण दिया। दोनों कुमारियों विशेषकर निन्नी की सुन्दरता और वीरता की जी भर के सराहना की। राजा मानसिंह राई गांव गये, शिकार का आयोजन हुआ और राजा निन्नी की वीरता देख कर स्तब्ध रह गये। एक जंगली अरने को उसने सींग पकड़ कर धरती पर गिरा दिया। राजा मानसिंह ने उसके साथ विवाह का प्रस्ताव किया। निन्नी भी राजा की वीरता की गाथाएँ सुना करती थी। राजा के आकर्षण में बँध गई। मानसिंह और निन्नी का विवाह हो गया। राई की अल्हड़ कन्या निन्नी मृगनयनी बनकर ग्वालियर के राज महलों आ गई।

सुल्तानों ने जब मृगनयनी और मानसिंह के विवाह की बात सुनी तो वे और भी क्रुद्ध गये और ग्वालियर पर आक्रमण की सामूहिक योजना बनाने लगे। मानसिंह मृगनयनी को पाकर अत्यधिक प्रसन्न हुये। लाखी का प्रेम मृगनयनी के भाई अटल से था। अटल और लाखी परस्पर विवाह करना चाहते थे पर समाज और धर्म के ठेकेदारों को उनका विवाह मान्य न था। मुख्य बाधा थी वर्णाश्रम धर्म की। गांव के पुजारी बोधन ने विवाह का सक्रिय विरोध किया। गूजर और अहीर में विवाह सम्बन्ध की आशा देना वर्णाश्रम धर्म का अपमान करना था। अटल और लाखी अपने प्रेम में दृढ़ थे! उन्होंने समाज और धर्म के विरुद्ध उठ खड़े होने का निश्चय किया। चुपचाप अपना विवाह कर एक रात नटों के एक दलके साथ गाँव छोड़ कर अन्यत्र चल दिये।

नटों के इसी दल की ही सहायता से गयासुद्दीन ने इन कुमारियों को हस्तगत करने की योजना बनाई थी ! निन्नी तो चली गयी थी पर लाखी को अपने जाल में फँसा देख कर नट अपनी सफलता पर मुग्ध थे ।

उधर मुसलमान सुल्तान चारों ओर से ग्वालियर पर आक्रमण करने की योजना बना रहे थे । ग्वालियर में संगीत और कला की धूम थी । मानसिंह मृगनयनी को भी गायन वादन की कला में दीक्षित करना चाहते थे और उन्होंने इसका प्रबन्ध भी कर दिया । मृगनयनी शीघ्र ही इन कलाओं में दक्ष होगई ।

राजसिंह कछवाहे ने अपनी प्रियतमा कला को जो विख्यात संगीतज्ञ बैजनाथ की शिष्या थी, गुरु समेत ग्वालियर के राज महलों में भेजना निश्चित किया जिससे वहाँ की सारी गुप्त बातों से परिचित हो जाय । कला और बैजनाथ ग्वालियर पहुँचे । कला तो अपने उद्देश्य को न भूली थी पर बैजनाथ मानसिंह जैसे आश्रय दाता को पाकर सब कुछ भूल गया । वह मृगनयनी को गायन वादन की शिक्षा देता और इसी में संतोष मानता । दरबार में ही विजय जंगम नामक एक शैव भी था जो राजा का परम मित्र था । बैजनाथ और उसकी संगीत प्रतिस्पर्धा से राजमहलों का वातावरण गुञ्जायमान रहता ।

मृगनयनी को मानसिंह की रानी बने पर्याप्त समय बीत चुका था । मानसिंह के आठ रानियाँ और थीं । फलतः गृह कलह का सूत्रपात्र हुआ । सबसे बड़ी रानी सुमन-मोहिनी समस्त रानियों की प्रतिधिनि बन कर मृगनयनी के विरोध में आई । उसने मृगनयनी को नीचा दिखाने का पूर्ण निश्चय कर लिया था परन्तु मृगनयनी की सहिष्णुता ने गृहकलह को अधिक नहीं उभारा । हाँ वह पनपती अवश्य गई ।

उधर राजसिंह के सहयोग से गयासुद्दीन ने नरवर पर आक्रमण किया । अटल लाखी व नटों का दल भी वहीं था ! नट अवसर की ताक में थे और वे लाखी को किसी भी प्रकार से गयासुद्दीन तक पहुँचाना चाहते थे । नटों की नायिका पिल्ली लाखी को भाँति २ के प्रलोभन दे रही थी । लाखी ने पिल्ली की मनोवृति को भाँप लिया और एक रात जब नट लोग रस्से के सहारे नरवर के किले से निकलने के प्रयत्न में थे, लाखी ने रस्सा काट दिया । नटों के षड्यंत्र से उसे मुक्ति मिली । नटों का नाश हुआ । ग्वालियर से भी अब तक सहायता आ चुकी थी फलतः नरवर को हस्तगत करने के गयासुद्दीन के सारे प्रयत्न धूल में मिल गये । नरवर को बचाने में सबसे बड़ा हाथ लाखी का था । उसी ने सैनिकों को सचेष्ट कर उन्हें गयासुद्दीन की सेना पर भीषण आक्रमण करने के लिए ललकारा था । मानसिंह भी ग्वालियर की सेना के साथ थे । जब उन्हें यह पता चला कि किले की रक्षा एक स्त्री ने की है तब वह समझ गये कि हो

न हो वह लाखी ही होगी ! वे उसे ढूँढ़ कर उससे मिले। उससे ग्वालियर चलने का आग्रह किया। अपने गले से मोतियों की एक माला उतार कर उन्होंने लाखी के गले में डाल दी ! लाखी और अटल मानसिंह के साथ ग्वालियर आगये।

सुमन मोहिनी को लाखी की उपस्थिति बहुत खली। उसने लाखी और मृगनयनी को विष देने की योजना बनाई ! पान में विष मिला कर इन लोगों के पास भेजा पर सफल न हुई ! मृगनयनी और लाखी सुमन मोहिनी की दूषित मनोवृत्ति पहले ही भाँप चुकी थीं। इतना होने पर वे चुप रहीं।

बैजनाथ को नायक की उपाधि से विभूषित किया गया ! कला ने बैजनाथ को अपने आने का उद्देश्य याद दिलाया। वह अपना कार्य समाप्त कर चुकी थी ! उसने बैजनाथ से चन्देरी लौट चलने का आग्रह किया। बैजनाथ मानसिंह पर मुग्ध था। उसने सारा रहस्य मानसिंह को बता दिया ! मानसिंह ने कला को चन्देरी भिजवा दिया।

अबकी बार सिकन्दर ने ग्वालियर पर आक्रमण किया। राई में भी एक गढ़ी बन चुकी थी ! उसकी रक्षा का भार मानसिंह ने अटल और लाखी पर सौंपा। दोनों ने गढ़ी की रक्षा करते हुए अपने प्राणों की बलि देदी ! सिकन्दर पराजित होकर लौट गया ! मानसिंह और मृगनयनी अटल और लाखी की मृत्यु का समाचार सुनकर अत्यधिक दुखी हुए। सिकन्दर ने अबकी बार दूसरी ओर से आक्रमण करने का निश्चय किया। मानसिंह सिकन्दर से भीषण प्रतिशोध लेना चाहते थे कारण उसने एक तो बोधन शास्त्री को लखनऊ में फाँसी दी और दूसरे दूत बन कर गये मानसिंह के सेनापति निहालसिंह को दिल्ली में मार डाला था। युद्ध चल ही रहा था।

गयास ने अवसर देख कर पुनः नरवर पर आक्रमण किया। अबकी बार ग्वालियर से भी कोई सहायता न पहुँची ! साल भर भूखे लड़ कर नरवर वासियों ने आत्मसमर्पण कर दिया ! गयासुद्दीन ने नरवर की मूर्तियाँ मंदिर ध्वस्त कर दिये। राजसिंह को नरवर प्राप्त करने की प्रसन्नता थी पर कला मूर्तियों और मन्दिरों का यह ध्वंस न देख सकी ! वह राजसिंह को छोड़ कर चन्देरी चली गई।

अब तक गयासुद्दीन को उसके पुत्र नसीरुद्दीन ने विष देकर मार डाला था। गुजरात का शासक महमूद बघार्रा भी मर चुका था। सिकन्दर भी ग्वालियर का विचार छोड़ कर लौट गया और उसकी भी मृत्यु होगई। फलतः वाह्य संकटों की इति हुई।

मृगनयनी के राजसिंह व बालसिंह नामक दो पुत्र भी हो चुके थे। राजा के सुमन मोहिनी के गर्भ से उत्पन्न हुआ एक पुत्र विक्रमादित्य पहले से ही था ! उन्हें

चिन्ता थी कि राज्य का उत्तराधिकारी किसे बनाया जाय ? मृगनयनी ने राजा की चिन्ता का समाधान किया ! एक पत्र उसने राजा के पास और दूसरा सुमनमोहिनी के पास इस आशय का भेजा कि राज्य का उत्तराधिकारी विक्रमादित्य है। राजसिंह व बालसिंह आजीवन अपने बड़े भाई की आज्ञा का पालन करेंगे। मानसिंह मृगनयनी का त्याग देख कर स्तब्ध थे। उन्होंने उससे उसका कारण पूछा। मृगनयनी ने इसे अपना कर्तव्य बताया। दोनों शान्त थे ! सामने लाखी की माला लटक रही थी। दोनों ने उसे देखा और उनके नेत्रों में अश्रु छलक आये। वह माला अपनी सम्पूर्ण आभा के साथ दमक रही थी। उपन्यास में वर्णित कथा यहाँ समाप्त हो जाती है।

कथानक पूर्णरूपेण ऐतिहासिक है यद्यपि जनश्रुतियों को भी आधार माना गया है। बिखरी घटनाओं का सम्बन्ध सूत्र जोड़ने के लिये उपन्यासकार ने कल्पना से भी कार्य लिया है जो स्वाभाविक है, अन्यथा उपन्यास उपन्यास न रह कर इतिहास ही हो जाय। इतिहास किसी विशेष काल में घटी घटनाओं का एक लेखा होता है और ऐतिहासिक उपन्यास इन्हीं घटनाओं को कल्पना से ऐसा मनोरम और सजीव रूप देता है कि उनमें इतिहास की नीरसता शेष नहीं रह जाती। उपन्यास के पात्र पूर्णरूपेण ऐतिहासिक हैं, कुछ पात्र अवश्य लेखक की कल्पना और जन श्रुतियों के परिणाम हैं। ऐतिहासिक पात्रों में प्रमुख मानसिंह (१४८६–१५१६) सिकन्दर लोदी, गयासुद्दीन खिल्जी, नसीरुद्दीन, महमूद बघर्रा, राजसिंह, बैजनाथ, बिजयजंगम और मृगनयनी आदि आदि हैं। जनश्रुतियों और किम्वदन्तियों के आधार पर जिन पात्रों की सृष्टि हुई है उनमें लाखी व अटल प्रमुख हैं। पिल्ली, पोटा और कला लेखक की कल्पना से प्रसूत पात्र हैं।

घटनाएं भी अधिकांशतः ऐतिहासिक हैं। सुल्तानों और राजाओं के पारस्परिक युद्ध ऐतिहासिक हैं। मानसिंह और मृगनयनी के प्रेम का आधार ग्वालियर राज्य का गजेटियर है। मृगनयनी के शौर्य से सम्बन्धित घटनाओं का भी उल्लेख गजेटियर में है। मानसिंह और विजयजंगम की भिन्नता, बोधन की हत्या भी इतिहासानुमोदित है। उत्तराधिकार के प्रश्न पर मानसिंह और सुमनमोहिनी तथा मृगनयनी के बीच जो घटनाएँ घटित हुई थीं, उनके सम्बन्ध में उपन्यासकार ने ग्वालियर किले के Guide की बातों को प्रमुखता दी है। बोधन शास्त्री की हत्या के विषय में वर्मा जी ने लिखा है—

"उसके मारने वाले की बर्बरता का मैंने बहुत थोड़ा वर्णन किया, उसके कुरूप का लाघवमात्र प्रस्तुत किया है, करना पड़ा है।" नसीरुद्दीन की विलासिता, बघर्रा की कलेवा आदि के वर्णनों का आधार भी इतिहास और तत्कालीन अरबी, फारसी के ग्रन्थ हैं"।

स्थान भी ऐतिहासिक हैं। ग्वालियर राज्य के जिन भवनों को मानसिंह ने

मृगनयनी की प्रेरणा से बनवाया था, वे आज भी हैं। उस नहर के अवशेष आज भी देख पड़ते हैं, जिसे मानसिंह ने मृगनयनी के कहने से साँक नदी से ग्वालियर तक निकलवाया था। राई की उस गढ़ी के अवशेष भी आज देखने को मिलते हैं जिसकी रक्षा करते हुये अटल व लाखी ने अपने प्राण दिये थे। नरवर का किला भी अपने भग्नावशेष लिये आज भी उपस्थित है। उसके सम्बन्ध में वर्मा जी ने एक पत्र में सूचित किया था कि "राजसिंह को नरवर मिल गया और उसके वंशजों के हाथ अठारवीं शताब्दी के मध्य तक रहा, फिर माधव जी सिंधिया ने ले लिया।"

कथानक की इस ऐतिहासिकता ने उपन्यास के गौरव की वृद्धि ही की है। अन्य दृष्टियों से देखने पर भी कथानक की योजना सुन्दर प्रतीत होती है। कथानक के प्रारम्भ में ही उपन्यासकार ने बहलोल के अत्याचारों का संकेत देकर पाठकों के सम्मुख आने वाली परिस्थितियों की भूमिका बाँध दी है। अधिक देर तक पाठकों को इधर उधर न बहका कर वह तुरन्त उनका साक्षात्कार निन्नी व लाखी से करा देता है।। अटल और लाखी के पारस्परिक प्रेम का संकेत भी उपन्यासकार यहीं दे देता है। निन्नी व लाखी के वीरतापूर्ण कार्यों का थोड़ी देर तक वर्णन कर चुकने के पश्चात वह शीघ्र ही मानसिंह को राई ले आता है जहाँ उसका प्रमुख उद्देश्य मानसिंह और निन्नी का विवाह कराना था। सुलतानों के लाखी व निन्नी को प्राप्त करने के प्रयत्नों व उनकी असफलताओं का भी वर्णन साथ में ही होता रहता है। कुछ ही देर में सारे प्रमुख पात्रों से हमारा साक्षात्कार हो जाता है।

अब कथानक ग्वालियर के महलों में केन्द्रित हो जाता है, हाँ, बीच बीच में संघर्ष करते हुए अटल और लाखी भी हमें दिखलाई पड़ जाते हैं। ग्वालियर के महलों में एक नई परिस्थिति का उदय होता है। वह है सुमन मोहिनी की सपत्नी जन्य ईर्ष्या! महलों के दाँव पेंच भी यहाँ देखने को मिलते हैं, यद्यपि उपन्यासकार ने अपने को कला और साहित्य सम्बन्धी वर्णनों की ओर ही सीमित करने का प्रयत्न किया है। इसके पश्चात कथानक में कुछ तीव्रता और आती हैं। नरवर का किला लाखी के प्रयत्नों से गयासुद्दीन के हाथ में जाने से बचता है। लाखी व अटल भी ग्वालियर आ जाते हैं। कथा अब समाप्त की ओर पग रखती है। नरवर जीत लिया जाता है सिकन्दर ग्वालियर पर आक्रमण करता है और अटल लाखी भी मारे जाते है। सिकंदर लौट जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। महमूद बघर्रा और नसीरुद्दीन भी मर चुके थे! ग्वालियर में नई समस्या उत्पन्न होती है, उत्तराधिकार की। पर उसका भी समाधान कर लेखक कथा को समाप्त कर देता है।

कथा कहने में वर्मा जी अत्यधिक पटु हैं। ऐतिहासिक घटनाओं के साथ ही रोमान्स की भी एक धारा बहा कर नीरसता को दूर कर सरसता को जन्म देने का

प्रयत्न किया गया है। कल्पित प्रसंगों ने भी कथा में रमणीयता की सृष्टि की है। कथा में सर्वथा एक संघर्ष है जिससे उसमें पर्याप्त गति आ गई है। मुख्य कथा तो मानसिंह और मृगनयनी से सम्बन्धित है पर अटल और लाखी की कथा सहायक कथा के रूप में हमारा ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करती है। निन्नी तो शीघ्र ही रानी बन कर राज महलों में चली जानी है पर जीवन के संघर्षों में डूबती उतराती लाखी और अटल की कथा ही पाठकों की सारी सहानुभूति खींच लेती है। सामन्तीय शासकों की प्रवृतियाँ को लेखक ने कथानक में अच्छी तरह उभारी हैं। सब रूपलोलुप, स्वार्थी व अत्याचारी हैं। कथानक में शिथिलता बहुत कम है, हाँ कहीं कहीं अनावश्यक वर्णनों को अधिक विस्तार दे दिया गया है। कथानक के विकास के साथ ही उसमें आई समस्याओं की व्याख्या भी होती चली गई है यद्यपि कुछ स्थानों पर लेखक का दृष्टिकोण पक्षपात पूर्ण है। मृगनयनी ही कथानक के केन्द्र विन्दु के रूप में सामने लाई जाती है पर जैसा कहा जा चुका है लाखी मृगनयनी से अधिक प्रभावशाली, संघर्षशील एवं प्रगतिशील है।

कथावस्तु में दो विरोधी पक्षों के होने के कारण पर्याप्त तीव्रता आ गई है। एक पक्ष का प्रतिनिधित्व मानसिंह करते हैं और दूसरे का मुसलमान सुल्तान। राजसिंह भी उनके साथ है। परन्तु ध्यान देने की बात यह है कि मानसिंह के विरोधियों के उद्देश्य भिन्न है! कोई ग्वालियर का राज्य हड़पने के लिये उससे लड़ता है, कोई अपने खोये हुए राज्य को प्राप्त करने के लिये और किसी का उद्देश्य मृगनयनी व लाखी का अपहरण करना है। इन भिन्न भिन्न उद्देश्यों के कारण ही विरोधियों में एकता नहीं हो पाती और कथानक समान गति से कभी मानसिंह के पक्ष को दृढ़ करता हुआ, कभी विरोधियों को उकसाता हुआ आगे बढ़ता है।

उपन्यासकार ने मुख्य कथा के साथ साथ अन्य कथाओं को भी आगे बढ़ाया है। कला और राजसिंह से सम्बन्धित कथा, बघर्रा और गयासुद्दीन की कथा ऐसी ही कथाएं हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कथानक सुव्यवस्थित, रोचक और गतिवान है। उपन्यासकार ने उसका निर्वाह कुशलता से किया है।

पात्रों के चरित्र चित्रण में भी उपन्यासकार ने पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। पुरुष पात्रों में प्रमुख मानसिंह, अटल, सिकन्दर, बघर्रा, गयासुद्दीन, नसीरुद्दीन, ख्वाजा मटरू, राजसिंह, बैजनाथ, विजयजंगम और बोधन शास्त्री हैं तथा स्त्रियों में मृगनयनी, लाखी, कला और सुमन मोहिनी ही हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं। गौण पात्रों में निहालसिंह, पोटा, पिल्ली व नायकिन की गणना हो सकती है।

इन सारे स्त्री व पुरुष पात्रों में जी चुराने वाला कोई नहीं है। सब संघर्षशील हैं भले ही कुछ का संघर्ष उनके अधःपतन का द्योतक हो। कथानक में सबका अपना अपना महत्व है और सब उसे गति भी प्रदान करते हैं।

पुरुष पात्रों में प्रमुख मानसिंह है। वह ग्वालियर का राजा है। लेखक ने उसे एक आदर्श सामन्ती शासक के रूप में चित्रित किया है। उसमें सामन्तीय वर्ग की प्रवृत्तियाँ हैं तो, पर वे अपने पूरे उभार पर नहीं हैं। उनके अतिरिक्त उसके चरित्र में कुछ विशेषताएं ऐसी भीं हैं, जिनके कारण उसका सामन्ती रूप दब सा जाता है और वह हमारी आलोचना का उतना पात्र नहीं बन जाता जितना उसी के वर्ग के अन्य सामन्तीय शासक बनते हैं। सबसे प्रथम बात जो हमें उसके चरित्र में देख पड़ती है वह है उसकी कर्तव्य निष्ठा। वह राजा अवश्य है पर अन्य शासकों की भांति उसमें प्रजा की ओर से उदासीनतता नहीं है। वह जानता है कि बाह्य आक्रमणों के कारण साधारण जनता, मजदूर, किसान पीड़ित हो उठे हैं और शक्ति भर वह युद्धों का निवारण भी करना चाहता है पर विवश होकर उसे युद्ध में भाग लेना पड़ता है। परन्तु प्रजा की पीड़िताबस्था की ओर से वह कभी उदासीन नहीं रहता। बोधन शास्त्री जब उससे राई के मन्दिर के पुनर्निर्माण की बात कहता है और उससे राई चलने का प्रस्ताव करता है तब वह उससे स्पष्ट कह देता है कि— "पहले कुएं, बावलियाँ, तालाबों और नहरों का उद्धार कर लूं फिर मन्दिर देखूंगा।"

विरोधियों के आक्रमणों का सामना करने के अतिरिक्त उसके पास और कोई उपाय भी नहीं था। यदि वह जनता के कष्टों का ख्याल करके आत्मसमर्पण भी कर देता तो वे धर्मान्ध सुलतान ग्वालियर राज्य और उसकी साधारण जनता को अपने अत्याचारी कृत्यों के नीचे पीस डालते। यही कारण है कि मानसिंह का युद्धों में भाग लेना अन्य सामन्तीय शासकों से भिन्न हो जाता है। उसका अपना स्वार्थ अवश्य है, उसे अपने राज्य की चिन्ता अवश्य है, वह उसकी रक्षा भी करना चाहता है, भले ही साधारण जनता युद्ध की आग में जले पर इस स्वार्थ के त्याग देने पर भी साधारण जनता के कष्टों की इति न होती। यदि मानसिंह के स्वार्थ त्याग से साधारण जनता को शान्ति मिलती तब उसका युद्धों में प्रवृत्त होना अवश्य हमारी आलोचना का पात्र बनता पर ऐसी स्थिति में हम उसे दोषी नहीं ठहरा सकते। वह सामन्तीय वर्ग का अवश्य है पर उसमें ऐसी प्रगतिशीलता, ऐसी मानवतावादी दृष्टि अवश्य थी जो हमें यह आशा दिला सकती है कि उसके शासन में साधारण जनता के अधिकार संघर्षों का दमन न होता, जनता के अधिकारों की विजय होती यदि कभी भी वह इसके लिये संघर्ष करती अपेक्षाकृत उन सुलतानों के शासन के, जो जनता के अधिकारों की बात तक न

सुनते यदि ग्वालियर में उनका शासन होग या होता। हाँ, मानसिंह का नरवर को अपने अधिकार में किये रहना और उसके लिये युद्ध करना अवश्य हमारी आलोचना का पात्र है। यहाँ वह पूर्ण रूपेण सामन्तीय वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। राजसिंह को नरवर देकर नरवर के विनाश को बचाया जा सकया था। यदि मुसलमान सुल्तान नरवर पर आक्रमण भी करते तो मानसिंह और राजसिंह की सम्मिलित सेनाएं उनको पीछे हटा देने में समर्थ थीं।

निन्नी के प्रति उसका आकर्षण भी उसके रूप पर उतना अधिक आधारित नहीं है जितना उसकी वीरता और शौर्य पर! परन्तु इस प्रेम का कोई महत्व हमारी दृष्टि में नहीं है। आठ स्त्रियों से विवाह करने के पश्चात वह मृगनयनी को नवीं रानी बनाता है और इसके लिये उसे विशेष प्रयत्न भी नहीं करना पड़ता। मृगनयनी के साथ उसके जीवन का जो सरल विकास लेखक ने दिखाया है उसमें भी मृगनयनी का ही अधिक हाथ है।

सामन्तीय वर्ग का होने पर भी वह कतिपय अंशों में प्रगतिशील भी है। बोधन की धार्मिक कट्टरता का वह विरोध करता है और विजय जंगम के कर्मशील सिद्धान्त का समर्थन! वह धर्म में रूढ़िवादिता को कतई आश्रय नहीं देना चाहता।

कला प्रेम का भी स्थान वह जीवन में आवश्यक मानता है। उसकी कला प्रियता पर तो उपन्यास के पन्ने पर पन्ने रंग दिये गये हैं। सहनशीलता और उदारता का उदाहरण भी वह उस समय प्रस्तुत करता है जब कला के षड़यन्त्र को जानने पर भी वह उसे क्षमा कर देता है। उसकी वीरता का भी स्पष्ट परिचय स्थान स्थान पर मिलता है। ये प्रवृत्तियां सामंतीय वर्ग की ही हैं जिनकी सत्ता मानसिंह के चरित्र में दिखाई गई है! मानसिंह को कर्तव्य पथ की ओर अग्रसर किए रहने में मृगनयनी का बहुत बड़ा हाथ है और ऐसे कई अवसर आते हैं जब वह उसे धक्के देकर उसके कर्तव्य पथ पर लाती है।

मानसिंह के चरित्र का एक आकर्षक गुण उसकी गुण ग्राहकता है। गुणी व्यक्तियों का सत्कार वह सब प्रकार से करने को तत्पर रहता है।

हां, उसके चरित्र के कतिपय अत्यधिक दुर्बल पक्ष हैं जिन्हें भुलाया नहीं जा सकता। सबसे पहली बात तो यह कि जहाँ वह स्वयं मृगनयनी से विवाह कर वर्णाश्रम धर्म को तोड़ता है वहाँ अटल और लाखी के विवाह सम्बन्ध पर कोई सक्रिय पग नहीं उठाता। धर्म की रूढ़ियों का विरोध करने पर भी वह स्पष्ट रूप से सम्मुख आने में कुछ झिझकता सा है। अटल और लाखी के विवाह के विषय में उसकी आन्तरिक इच्छा यही रहती है कि वह बोधन से ही इस कार्य को सम्पादित कराये। यदि वह

सक्रिय रूप से इस कार्य के सम्पादन के लिये प्रयत्न करता तो अटल और लाखी को कदाचित इतने संघर्ष न झेलने पड़ते ! अटल और लाखी के गाँव छोड़ देने की बात सुन कर भी वह जबानी सहानुभूति तो प्रकट करता है पर उनका पता लगाने के लिये कोई सक्रिय आदेश नहीं देता ।

निहालसिंह की हत्या का प्रतिशोध भी वह नहीं ले पाता । निहाल उसका दूत बनकर दिल्ली जाता है और वहाँ सिकन्दर द्वारा मारा जाता है । मानसिंह सिकन्दर से प्रतिशोध लेने का प्रण तो करता है पर राज-काज व अन्य संघर्षों में उसे भूल जाता है । जितना महत्व उसे इस बात का देना चाहिये था उतना नहीं दे पाता ।

आन्तरिक कलहों का भी सामना करने में भी वह असमर्थ रहता है । उसकी उपस्थिति में मृगनवनी और लाखी के विरुद्ध भाँति भाँति के षणयन्त्र किये जाते हैं पर वह उन सबसे अपरिचित रहता है । दूरदर्शिता की उसमें इतनी कमी है कि ग्वालियर आये हुए साधुवेषधारी जासूस को सुरंगों आदि का पता बता देता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानसिंह के चरित्र में दुर्बलताएँ और सबलताएँ दोनों ही हैं । सामन्तीय वर्ग का होने पर भी वह उससे अधिकाँश अर्थों में भिन्न है और इस सीमा तक हम उसकी सराहना करते हैं ! हाँ जैसा कहा गया है कि उसमें सामन्तीय वर्ग की प्रवृत्तियाँ भी हैं और उन मानों में हम उसका विरोध ही नहीं कड़ा विरोध करते हैं ।

लेखक ने उसे जैसा कहा जा चुका है आदर्श सामन्तीय शासक के रूप में चित्रित किया है । राई गाँव पहुंचने पर वहाँ की स्त्रियों पुरुषों द्वारा उसकी आरती उतरवाई है, पुष्प चढ़वाएँ हैं, उसके वैभव के लुभावने चित्र प्रस्तुत किये हैं पर हमारी दृष्टि में इन चित्रों का कोई मूल्य नहीं । ये चित्र कुरूप, अनगढ़ और अनाकर्षक हैं । राजमहलों में घुसा, संगीत और कलाओं में लिप्त मानसिंह भी हमारी सहानुभूति का पात्र नहीं है, उसके बड़े बड़े भवनों के निर्माण करने को भी हम महत्त्व नहीं देते, हम केवल उसकी मानवतावादी दृष्टि की, उसकी प्रगतिशीलता की, जन साधारण के दुख दर्दों को देखकर उसके हृदय में उठने वाली सच्ची टीस की सराहना करते हैं जो सामन्तीय वर्ग के चरित्रों के लिये एक अपवाद ही है । अपने सम कालीन अन्य सामन्ती शासकों की अपेक्षा उसके चरित्र में कुछ विशेषताएँ थीं और हमारी सहानुभूति केवल उन्ही तक है

दूसरा प्रमुख पुरुष पात्र अटल है । अटल का चरित्र हमें प्रारम्भ से ही आकर्षित करता है यद्यपि उपन्यासकार उसे पूर्णरूपेण उभार नहीं सका है । कहीं २ तो यह बिल्कुल भोला भाला और भोंदू तक प्रतीत होने लगता है । यहाँ दोष उपन्यासकार

का है। वैसे वह साहसी है वीर है और उसे अपने बाहुबल पर अटूट विश्वास है। वह लाखी से प्रेम करता है और उसका प्रेम सामन्तों की भाँति घर पर बैठे बिठाये का प्रेम नहीं है, कामुकता और अश्लीलता को उसमें आश्रय नहीं है वरन वह अपने प्रेम के लिये संघर्षों में भी घुस जाने की क्षमता रखता है। मृगनयनी उसकी बहन है। उसके लिये भी उसके हृदय में असीम प्रेम है। मृगनयनी को मानसिंह की पत्नी के रूप में देखकर उसे महान सुख होता है पर यहाँ हम अटल की इस भावना से सहमत नहीं हो पाते! सामन्तीय वैभवों और शान शौकत के प्रति उसका यह मोह हमें उसके चरित्र के विषय में ऊँची धारणा नहीं बनाने देता। उसकी यह सुख की भावना यही प्रकट करती है कि जन साधारण के वर्ग का होने पर भी वह उसके प्रति पूर्ण ईमानदार नहीं है। वह विलासिता, वैभवों और सत्ता के आकर्षण के सम्मुख कभी भी झुक सकता है, सामन्ती वैभवों से समझौता कर सकता है। यह ठीक है कि वह मानसिंह से यह आग्रह करता है कि विवाह राई से ही सम्पादित हो और मानसिंह इस पर सहमत भी हो जाते हैं, विवाह राई से होता भी है पर इससे हमारी उपर्युक्त धारणा में कोई परिवर्तन नहीं होता।

लाखी के प्रति वह ईमानदार है। जैसा कहा जा है चुका वह प्रेम के लिये सर्वस्व बलिदान कर देने को प्रस्तुत रहता है। लाखी को पाने के लिये वह समाज और धर्म की रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह करता है, समाज द्वारा तिरस्कृत भी होता है पर इससे उसके साहस में, सड़ी गली रूढ़ियों के प्रति उसकी विद्रोही भावना में तनिक भी नमीं देख पड़ती। वह सबको छोड़कर लाखी को पाता है और उसे लेकर अन्य संघर्षों में कूदने के लिये निकल जाता है। यहाँ भी उसकें चरित्र में थोड़ी सी दुर्बलता उस समय झलकती है जब वह लाखी से ग्वालियर चलने को कहता है। परन्तु लाखी सजग थी। वह धक्के देकर अटल को राह पर लाती है। नटों के साथ इधर उधर घूमता हुआ वह नरवर पहुंचता है जहाँ लाखी नरवर के किले की रक्षा करती है। मानसिंह भी वहीं थे! वे लाखी और अटल से मिलते हैं और उनसे ग्वालियर चलने को कहते हैं। यहाँ भी लाखी तो ग्वालियर जाने से कुछ झिझकती भी है पर अटल उतावला मालूम होता है।

ग्वालियर पहुंचकर मानसिंह अटल को सम्मान प्रदान करते हैं पर इसके मूल में भी उनकी मृगनयनी को प्रसन्न करने की ही भावना अधिक है। यहाँ ग्वालियर आकर अटल राजसी वैभवों में सब कुछ भूल जाता है। जब राई की गढ़ी की रक्षा का प्रश्न उपस्थित होता है तब मानसिंह अटल और लाखी को ही वहाँ ले जाते हैं। वहाँ साहस वीरता, और निष्ठा के साथ राई की गढ़ी की रक्षा करता हुआ वह अपना बलिदान देता है।

कतिपय दुर्बलताओं को छोड़कर अटल का चरित्र अत्यधिक सुन्दर और भव्य है। उसके चरित्र की कुछ विशेषताएँ तो अत्यधिक आकर्षक और प्रेरक हैं और जन-साधारण के वर्ग की निजी सम्पत्ति हैं। उसकी प्रगतिशीलता, धार्मिक और सामाजिक रूढ़ियों के प्रति उसका विद्रोह, संघर्षों में जमकर भी उनके सम्मुख सर न झुकाना, जन साधारण के गौरव की बातें हैं और हमें उन पर नाज़ है।

विजयजंगम का चरित्र भी आकर्षक है! उसकी प्रगतिशील सामाजिक और धार्मिक विचारधारा, कायकश्रम पर उसका अटूट विश्वास, उसकी मित्रता का आदर्श, हमें सबसे अधिक आकर्षक लगते हैं।

बोधन रूढ़िवादी, संकीर्ण, कट्टर और हृदयहीन है। सड़ी-गली सामाजिक और धार्मिक मान्यताओं के प्रति उसको घोर आस्था है। मनुष्य मात्र में वह भेद करता है। राजा कुछ भी कर सकता है, जन साधारण यदि उसको करे तो वह अपराध करता है उसकी यह संकीर्ण विचारधारा हमें उससे विरक्त कर देती है। अपनी मनोवृत्ति और कट्टरपन के अनुरूप ही उसका अन्त भी होता है। अन्तिम क्षणों में उसकी रूढ़िवादिता कुछ लुप्त हुई सी प्रतीत होती है। उस समय हमें उससे कुछ सहानुभूति भी होती है क्योंकि उसकी हत्या करने वाले उससे भी अधिक संकीर्ण, कट्टर और धर्मान्ध थे।

बैजनाथ गायक है, एक दरबारी गायक! सामन्ती दरबारों में जिस प्रकार के गायक हुआ करते थे बैजू उनका प्रतिनिधित्व करता है। उसके लिए उसकी कला ही सब कुछ है, अन्य किसी बात से उसे प्रयोजन नहीं! राज महलों की चहार दीवारियों में घिरी हुई कला को प्रश्रय देने वाला बैजनाथ हमें अधिक नहीं प्रभावित करता!

मुसलमान सुल्तानों के चरित्रों में कतिपय समानताएँ भी हैं और विभिन्नताएँ भी, यद्यपि हैं वे एक ही वर्ग के, अत्याचारी, शोषक, सामन्तीय वर्ग के! गियास कामुक, नीच, अदूरदर्शी और सनकी है। निन्नी और लाखी के रूप की चर्चा ही उसे ग्वालियर की ओर अधिक आकर्षित करती है। असफल होता है और पुत्र के हाथों मारा जाता है। बबर्रा भी अत्याचारी, नृशंस और पराक्रमी है। रूप लोलुपता अवश्य उसमें नहीं है यद्यपि निन्नी और लाखी की रूप चर्चा सुनकर वह भी कुछ आकर्षित होता है पर वह उन्हें विशेष महत्व नहीं देता। इस दृष्टि से वह गियास से भिन्न है। सिकन्दर लोदी में रूप की लोलुपता उतनी नहीं पर धर्मान्धता अधिक है। वह अत्यधिक कट्टर है। नीचता भी उसमें अन्य सुल्तानों को अपेक्षा अधिक है। निहालसिंह का बध करता है, बोधन की हत्या कराता है और अन्त में ग्वालियर जीतने में असफल होकर मर जाता है। ये तीनों सुल्तान एक दूसरे से कुछ भिन्न होते हुए भी एक ही हैं। अत्याचार, नृशंसता आदि में एक से एक बढ़ कर हैं। जनसाधारण इनके लिए कुछ

नहीं, स्वार्थ और सत्ता ही सब कुछ हैं। नासिरूद्दीन में केवल कामुकता और विलासिता है और उसकी मृत्यु भी उचित है। ख्वाजा मटरू चालबाज, धूर्त, नीच और मक्कार दरबारी है। राज दरबारों में होने वाले दाँव पेंचों में माहिर है। अन्त में उसकी भी दुर्गति होती है जो जो उस जैसे पात्र के लिए बिल्कुल ही उचित है।

राजसिंह भी सामन्तीय वर्ग का है। उसका दर्प तोमरों द्वारा कुचल दिया जाता है पर वह अवसर की प्रतीक्षा करता रहता है। किसी प्रकार भी वह अपनी बपौती को प्राप्त करने के लिए उत्सुक है। स्वयं में उतनी शक्ति न होने के कारण गियास का सहारा लेता है और आखिर उसे प्राप्त करता है। सुरा पान संगीत आदि में उसकी भी रुचि है। कला से प्रेम भी करता है पर जिस कला को प्रसन्न करने के लिए वह नरवर जीतता है वही मंदिरों और मूर्तियों का विध्वंस देख कर उसे छोड़ देती है। राजसिंह जैसे व्यक्ति के लिए इतना दण्ड पर्याप्त है। सामन्तीय वर्ग की सारी प्रवृत्तियाँ उसके चरित्र में विद्यमान है।

निहालसिंह वीर योद्धा पर कुछ अदूरदर्शी है। कला के आकर्षण में फंस कर वह अपनी अदूरदर्शिता ही प्रकट करता है। सामन्तीय प्रवृत्तियों का उभार उसके चरित्र में भी है। निर्भीकता, साहस, अक्खड़पन, उसके चरित्र की विशेषताएँ हैं, उसकी स्पष्ट वादिता और उसका अक्खड़पन ही उसकी हत्या का कारण बनता है।

स्त्री पात्रों में प्रमुख मृगनयनी है। वह उपन्यास की नायिका और कथानक का केन्द्र बिन्दु है। उपन्यासकार ने उसी को प्रधानता देने का प्रयत्न किया है पर बाद को वह लाखी के सम्मुख दब सी जाती है। ग्वालियर पहुँचने से पूर्व तक तो वह हमें आकर्षित करती है परन्तु ग्वालियर जाने के पश्चात् वह राजमहलों की दीवालों में बंध जाती है। उपन्यासकार ने वहाँ भी उसके चरित्र को उभारने का अधिकाधिक प्रयत्न किया है पर वह उतना उभर नहीं पाया! उसकी कर्त्तव्य एवं कला सम्बन्धी बातें व्यवहारिक नहीं जान पड़तीं। गाँव की साधारण जिन्दगी उसे जो स्वच्छता, साहस, निर्भीकता एवं दीप्ति प्रदान किये थी वह राज महलों के जीवन में उसे नहीं मिल पाती भले ही उपन्यासकार इसके लिए अन्त तक संघर्ष करता रहा हो।

मानसिंह की वीरता की चर्चा सुन कर ही वह उससे प्रेम करने लगती है। यद्यपि उपन्यासकार ने उसके ग्राम्य जीवन के प्रति असीम मोह का वर्णन अवश्य किया है, उसे राजमहलों के जीवन के प्रति विरक्ति दिखाते हुए चित्रित किया है पर मानसिंह का स्वप्न देखना मृगनयनी के चरित्र को भी हल्का कर देता है। मानसिंह की वीरता की चर्चा सुनकर ही, उसके बलिष्ठ शरीर के दर्शन करने मात्र से ही, उसका मानसिंह को अपना सर्वस्व दे देना, उपयुक्त नहीं प्रतीत होता! आभास यही होता है

कि उसके हृदय में भी राजसी वैभवों के प्रति मोह अवश्य था और यहीं वह अटल के समान ही हमारी आलोचना का पात्र बन जाती है। भले ही उपन्यासकार ने उसकी इस दुर्बलता पर सफेदी पोतने का प्रयत्न किया हो पर यह हमारी दृष्टि में खटक अवश्य जाती है। ग्वालियर जाते ही उसके जीवन का क्रम बदल जाता है। वह भी अपने को सामन्तीय वैभवों के अनुरूप ही रंग लेती है यद्यपि सुमन मोहिनी की कटूक्तियों से उसकी मुक्ति फिर भी नहीं हो पाती। हमें आश्चर्य होता है, जब हम ग्राम जीवन में विचरण करने वाली अल्हड़ निन्नी की राजमहलों में घूमने वाली मृगनयनी से तुलना करते हैं। लाखी आदि के प्रति उसका प्यार तो वैसा ही रहता है पर ग्वालियर पहुँचने पर उसमें वह तीव्रता नहीं रह जाती, वह तड़प नहीं रह जाती, वह ईमानदारी नहीं रह जाती जो तब थी जब वह राई में उसके साथ एक एक क्षण बिताती थी। एक अजीब गंभीरता उसके चरित्र में प्रवेश कर जाती है। लाखी और अटल के गाँव छोड़ने के समाचार को पाकर, उनकी मृत्यु तक के समाचार को पाकर वह खुल कर रो भी नहीं सकती। ऐसे बन्धन और उन बन्धनों के प्रति मृगनयनी का मोह कहाँ तक उचित है और कहाँ तक उसके चरित्र को बल प्रदान करता है? हम नहीं समझते।

मानसिंह से अवश्य उसे प्रेम है। वह नहीं चाहती कि वे मानसिक उलझनों में फंसें और इसी कारण उसके विरुद्ध सुमन मोहिनी के द्वारा जो भी षड्यंत्र किये जाते हैं उन्हें वह गुप्त रखती है। यहाँ उसकी सहन शीलता का भी आदर्श उपस्थित किया गया है। मानसिंह को उनके कर्त्तव्यों के प्रति भी वह उन्मुख करती है एवं अन्त में विक्रमादित्य के पक्ष में अपने पुत्रों के स्वत्व का बलिदान कर वह साधारण सामन्ती प्रवृत्तियों से युक्त रानियों महारानियों से कुछ ऊपर भी उठ जाती है पर उसका यह सारा त्याग उसके वर्ग के स्वार्थों से सम्बन्धित है, जनसाधारण के लिये उसका कोई महत्व नहीं। वह उसे प्रभावित भी नहीं करता।

हाँ, मृगनयनी के हृदय में जनसाधारण के लिये मोह और सहानुभूति अवश्य है पर उसकी यह सहानुभूति भी महलों की चहारदीवारियों में, बड़े २ भवनों की अट्टालिकाओं में सीमित रह जाती है। राई की निन्नी और ग्वालियर की मृगनयनी में पर्याप्त अन्तर है, यह हमारा दृढ़ मत है।

लाखी अवश्य सजग, गौरवमयी, संघर्षों में कूद जाने वाली स्त्री है और हम उसकी दाद भी देते हैं। उपन्यासकार ने प्रारम्भ में जिस दुबली पतली लाखी के दर्शन हमें कराए हैं वही अन्त तक बलिष्ठ काया वाली मृगनयनी को भी पिछाड़ देती है। लाखी का चरित्र एक अटल चट्टान की भाँति दृढ़ है, वह टूट तो सकता है पर झुकने की सामर्थ्य उसमें नहीं है। लाखी गौरवमयी है, कर्मठ है, दृढ़ है, सामाजिक और

धार्मिक रूढ़ियों को पैर से ठुकरा देने वाली स्त्री है। वह संघर्षों में खेलती है, पल पल पर उसे सजग रहता पड़ता है उस पर, षड़यंत्रों के डोरे डाले जाते हैं पर वह एक जागरूक स्त्री की भाँति समस्त संघर्षों को पार करती हुई अपनी बलि दे देती है उसी राई की गढ़ी की रक्षा के लिए, उसी राई के लिए जहाँ से वह एक बार तिरस्कृत होकर निकाली गई थी।

प्रारम्भ में उपन्यासकार ने उसे मृगनयनी के आगे उभरने नहीं दिया है, जान बूझ कर उसने मृगनयनी को उससे अधिक प्रमुखता दी है पर यह सब शीघ्र समाप्त हो जाता है। मृगनयनी के ग्वालियर पहुँचते ही लाखी चमकती है और अपनी दीप्ति से सबको मलीन कर देती है। वह जन साधारण के वर्ग की स्त्री है और इसी कारण वह अपने इस गौरव को स्थायी रखती है। जनसाधारण के वर्ग की सारी प्रवृत्तियाँ उसके चरित्र में उभर उठी हैं। वह सामन्तीय वर्ग की नहीं है और इसी कारण उसमें सामन्तीय प्रवृत्तियों के प्रति घृणा है। वह युगों से पीड़ित और सामन्तीय चक्र में पिसती साधारण जनता की शक्ति की प्रतीक है। वह अटल से प्रेम करती है। उसका प्रेम मृगनयनी की भाँति केवल किसी की वीरता की चर्चा भर सुन लेने पर आधारित नहीं है। वह अटल को समझती है, उसके साथ रहकर उसकी दुर्बलताओं और सबलताओं को पहचानती है। अटल भी उसी के वर्ग का है और उसके लिए अपना सर्वस्व समर्पण कर देने में भी उसे हिचक नहीं। निन्नी तो ग्वालियर चली जाती जाती है पर लाखी संघर्षों से जूझने के लिए, राई में ही रह जाती है। उसके चरित्र का सूक्ष्मता से अध्ययन करने पर हम इस निष्कर्ष पर भी पहुँचने में नहीं झिझकते कि यदि उसे निन्नी की ही भाँति राजसी वैभवों में जाने का अवसर भी मिलता तो भी वह उन्हें ठुकरा देती।

अटल भी सजग है, रूढ़ियों का विद्रोही है। पर लाखी में यह विद्रोह अधिक क्रियाशील है। वह सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियों का विरोध करने में तनिक भी नहीं हिचकती। अटल से विवाह करती है और इससे उसे सुख मिलता है। उसके विवाह पर टीका टिप्पणियाँ होती है, उसकी निन्दा की जाती है। अटल कुछ २ घबड़ा जाता है और ग्वालियर जाने की बात करता है पर लाखी उसे सजग करती है, उसे धक्के देती है और निर्भीकता के साथ उससे कहती है—हम "ग्वालियर नहीं जायेंगे। अपना निज का कुछ करतब कर दिखलायेंगे तभी ग्वालियर जायेंगे।" अटल कहता है—"मैं समझा नहीं।" वह अटल से गाँव का सारा निन्दाचार सुनाती है और कहती है—"कोई मुझको यदि किसी की चेरी कहे, चाहे वह मेरी निज की ननद ही क्यों न हो तो मैं नहीं सह सकूँगी और न यह सह सकूँगी कि तुमको राजा का दास या रोटियारा कहे। हम लोगों को भगवान ने भुजाओं में बल दिया है और काम करने की लगन।

कुछ करके ही ग्वालियर चलेंगे"। ग्वालियर जाने में भी उसका आकर्षण केवल मृगनयनी और उसकी पारस्परिक ममता ही है। सामन्तीय ठाठ बाट उसे पसन्द नहीं।

वह अटल को साथ लेकर नटों के साथ चल देती है। पिल्ली उसे वस्त्राभूषणों का मोह दिखाकर गियास के प्रति लुभाना चाहती है। लाखी सब कुछ समझती है और उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करती है। अवसर आने पर वह नटों का नाश तो करती ही है नरवर के किले की रक्षा भी करती है।

समाज अब भी उसे गौरव नहीं देता। मानसिंह के साथ वह ग्वालियर चल देती है पर लोग अब भी काना फूसी करते हैं। समाज की यह पतितावस्था जिस दिन सुधरेगी उसी दिन लाखी जैसी स्त्रियों का महत्व भी उसे समझ में आयेगा। लाखी ग्वालियर पहुँचती है और वहाँ उसका मृगनयनी के साथ पुनः साथ होता है। पर अब उपन्यासकार लाखी और मृगनयनी में वह पार्थक्य नहीं दिखा पाया जो राई में उसने जान बूझ कर प्रदर्शित किया था। ग्वालियर में लाखी मृगनयनी से अधिक सजग और सचेष्ट प्रतीत होती है कारण वह मृगनयनी से अधिक संघर्षों में खेल चुकी हैं, उससे अधिक तेज और गौरव से युक्त हो चुकी है। लाखी के बाद के चरित्र चित्रण से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यासकार की भी आंतरिक सहानुभूति उसी के साथ है। मृग-नयनी जो बातें राजमहलों की चहार दीवारियों में मुँह से करती है, चित्रों में व्यक्त करती है, लाखी वही बातें खुले मैदान में करती है, संघर्षों में जूझ कर करती है, अपनी बलि देकर करती है। यहाँ लाखी मृगनयनी को कोसों पीछे छोड़ देती है भले ही उपन्यासकार उसे ठेल ठेल कर आगे बढ़ाने का प्रयत्न करे।

लाखी और अटल राई की गढ़ी में आते हैं। युद्ध होता है। लाखी अपनी बलि दे देती है। लाखी अपने अन्तिम क्षणों में अटल से जो कुछ कहती है वह समाज और धर्म के प्रति एक भीषण व्यंग है, उसके अत्याचारों का इतिहास है। उसकी खुद की सही हुई पीड़ा की अभिव्यक्ति है। लाखी का बलिदान तभी सार्थक होगा जब इस सड़े गले समाज और धर्म में आग लग जायगी—ऐसे समाज और धर्म में जिसने अग-णित मूक स्त्री पुरुषों को अपने अत्याचारों का लक्ष्य बनाया है, उनकी बलि ली है। वह अटल से कहती है—"ब्याह कर लेना अपनी जात में" 'अटल लाखी के उद्देश्य को समझता है। उसकी पीड़ा का अनुमान वही कर सकते हैं जिन्होंने कभी इस प्रकार के अत्याचारों को सहा हो, समाज और धर्म की वेदी में अपनी प्रियतमा की हत्या होते देखी हो।

· खैर, लाखी मर जाती है। अपने संघर्षों का, अपने संकटों का, अपने जीवन, अपने गौरव और अपने साहस का अमर इतिहास लिए वह समाप्त हो जाती है पर

उसकी कहानी कभी न मिटने वाली कहानी है। समाज और धर्म के प्रति किये गये कठोर व्यंग का कभी न मिटने वाला रूप है। भारतीय नारीत्व पूर्ण रूपेण लाखी में प्रतिबिम्बित हो उठा है। उसके संघर्ष उसकी शक्ति हमें युग युग से समाज और धर्म की रूढ़ियों में पिसने वाली नारी जाति की शक्ति का अनुमान देते हैं जो अवसर आने पर उसी प्रकार उठ खड़ी होगी जिस प्रकार लाखी। लाखी 'मृगनयनी' का एक अमर चरित्र है जो जन साधारण के लिये, पिसते हुए जन साधारण के लिए सदैव प्रेरक होगा, सदैव आदर्श रहेगा।

तीसरी प्रमुख स्त्री पात्र है कला। जैसा उसका नाम है वैसी ही कलावन्ती भी वह है। परन्तु उपन्यासकार ने उसका चित्रण कलावन्ती के रूप में नहीं प्रत्युत एक दूती के रूप में किया हैं जो अपने प्रेमी के लिये इस कार्य को करती है। ग्वालियर जाकर वह राजसिंह के लिये महल के नक्शे, सुरंगों के नक्शे आदि तैयार करती है। शीघ्र ही उसके इस षणयंत्र का पता मानसिंह को लगता है और वे उसके साथ कड़ा व्यवहार न कर, उसे धिक्कार कर पुनः राजसिंह के पास भेज देते हैं। राजसिंह को नरवर मिलता है पर उसके सारे मन्दिर व मूर्तियाँ ध्वस्त कर दी जाती हैं। कलावन्ती कला, कला के इस ध्वन्स को न देख सकने के कारण राजसिंह का साथ छोड़ देती है। जिस राजसिंह के लिए वह घृणित से घृणित कार्य करने को तैयार होती है, परिस्थितियाँ अन्त में उसे उससे भी नहीं मिलने देतीं। इस स्थान पर लेखक ने उसकी कला प्रियता पर बल देने का प्रयत्न किया है पर उसके पिछले कार्यों का जो उल्लेख उसने किया हैं वह इस स्थान पर एक Contradiction ही उत्पन्न करता है। जो कला अपने प्रेमी के लिये अपने कलाकार के रूप को मिटा कर एक घृणित दूतिका का रूप धारण करती है। वह अन्त में राजसिंह के साथ उस परिस्थिति में भी रह सकती थी जब कि राजसिंह ने उसे वचन दिया था कि वह इन मूर्तियों, मन्दिरों आदि की स्थापना फिर से करा देगा। पर कला वहाँ पर राजसिंह को छोड़ देती है। कदाचित उपन्यासकार ने यहाँ अपने पहले के उन कार्यों को जो उसने कला से कराये थे कला के कलाकार रूप के सम्मुख महत्वहीन करने का प्रयत्न किया है और कला के कलाकार रूप का महत्व स्थिर रखने की चेष्टा की है पर उसका यह प्रयत्न और उसकी यह चेष्टा विशेष सफल नहीं हो पाई। कला का राजसिंह का साथ छोड़ देना भी तत्कालीन प्रसंग पर स्पष्ट नहीं होता। कला यदि राजसिंह के साथ रह गई होती तब तो उसका जो रूप उपन्यासकार ने प्रारम्भ से प्रदर्शित किया था वह उपयुक्त प्रतीत होता पर राजसिंह से उसका साथ छुड़ा कर उपन्यासकार ने राजसिंह को उचित दण्ड देने का प्रयत्न किया है। एक पत्र में वर्मा जी ने इस प्रश्न पर मुझे सूचित किया कि " जिस नरवर में कला, लालित्य और कोमलता का ध्वंस हुआ उसमें राज्य लोलुप राजसिंह के साथ कलावन्ती

कला चरित्र की ऊँची न होती हुई भी नही रह सकती थी। राजसिंह को वहाँ रहना था और रहा। महल बनवाये जो अब तक उन खंडहरों में खड़े हुए हैं। कला जैसी स्त्री के मुंह से मुझे राजसिंह की भर्त्सना करनी थी। कलावती न होती तो उस प्रकार की भर्त्सना उसके मुंह से असंगत बैठती"।

उपन्यासकार भी कला के चरित्र को उत्कृष्ट नहीं समझता। राजसिंह की भर्त्सना करने के लिये ही उसने कला को उत्कृष्ट कलाकार कहा है अन्यथा यह आवश्यकता न पड़ती। कला के जिन दो रूपों का चित्रण उपन्यासकार ने किया है वे यद्यपि अनुरूप तो नहीं हैं पर ऐसे व्यक्तियों की सत्ता भी समाज में पाई जाती है। सामन्तीय समाज में तो इस प्रकार के कलाकारों का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

सुमन मोहिनी का चरित्र मृगनयनी की प्रतिद्वन्दिता में और भी स्पष्ट होता है। वह निकृष्ट चरित्र वाली स्त्री है परन्तु जो कार्य वह करती है उस वर्ग की स्त्रियों को देखते हुये अस्वाभाविक या अनुचित नहीं प्रतीत होते। सामन्ती राज दरबारों के इतिहास को उठा कर देखा जाय तो इस प्रकार की रानी महारानियों की संख्या गिनना कठिन हो जायगा।

पिल्ली का सम्बन्ध नटों से है। इस वर्ग के साथ हमारी सहानुभूति है। सामन्तीय समाज और शोषक वर्गों ने ही ऐसे वर्गों को जन्म दिया है। सदा से उनकी उपेक्षा की है। यदि हम गहराई से विचार करेंगे तो पायेंगे कि इस प्रकार के वर्गों का शोषण सदा से ही होता आया है। इस वर्ग के चरित्रों में जो भी अधमताएं देख पड़ती हैं उनका उत्तरदायित्व भी शोषक वर्ग पर ही है। अपने स्वार्थों की पूर्ति के हेतु धन के लोभ द्वारा सामन्तों और शक्ति सम्पन्न व्यक्तियों ने ही जन साधारण को सदा ही भ्रष्ट करने का प्रयत्न किया है और भ्रष्ट किया भी है। पिल्ली भी उनके आकर्षण का लक्ष्य बनती है और मारी जाती है। उसमें चारित्रिक दुर्बलताएं हैं अवश्य पर उनका मूल अधिक गहराई में है। उसके चरित्र पर लांछन लगाने से पूर्व हमें शोषक वर्गों की उन प्रवृत्तियों पर कुठाराघात करना चाहिये जिन्होंने पीढ़ी दर पीढ़ी जनसाधारण को भ्रष्ट और पतित कर उनकी नस्ल खराब की है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपन्यास में विविध प्रकार के चरित्र हैं और उनकी अपनी अपनी विशेषताएं हैं। उपन्यासकार ने चरित्र चित्रण में सावधानी से काम लिया है पर कई स्थलों पर उसकी लेखनी डगमगा भी उठी है। कुछ चरित्रों की अनगढ़ता का भागी भी उपन्यासकार है।

भाषा और कथोपकथन सुन्दर, स्वाभाविक, अवसर और पात्रों की प्रवृत्तियों के अनुकूल हैं। भाषा में कहीं कहीं शिथिलता है। कुछ अप्रचलित बुन्देलखण्डी शब्दों का

प्रयोग खटकता भी है। लेखक ने उपन्यास के अन्त में समस्त बुन्देलखण्डीय शब्दों के अर्थ देकर परेशानी को बहुत कुछ दूर कर दिया है।

देशकाल चित्रण में अवश्य लेखक सफल है। तत्कालीन युग की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक दशाएं उपन्यास में पूर्णरूपेण प्रतिबिम्बित हो उठी हैं। युद्धों आदि के वर्णन में भी लेखक ने सतर्कता से काम लिया है। देश की आर्थिक हीनता का संकेत भी स्थान स्थान पर हुआ है। लोगों के रहन सहन, रीति रिवाजों आदि पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। सामन्तीय स्वार्थों की चक्की में सिसकती हुई साधारण जनता के चित्र भी उपन्यास में मिलते हैं। सामन्तों के व्यक्तिगत स्वार्थों की झाँकियां भी उपन्यासकार ने दी हैं। तत्कालीन युग की समस्त प्रवृत्तियाँ भी उपन्यास में उभर उठी हैं। निष्कर्ष यह कि उपन्यास तत्कालीन युग का स्पष्ट चित्र है और वर्मा जी की ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा के अनुकूल है।

[७] टूटे काँटे:—(१९५४)

यह वर्मा जी का नवीनतम् ऐतिहासिक उपन्यास है। हर्ष की बात है कि यह उपन्यास भी उसी परम्परा में है जिसमें वर्मा जी के गढ़ कुण्डार, *विराटा की पद्मिनी, झाँसी की रानी और मृगनयनी आदि उपन्यास हैं। वर्मा जी की कुशल लेखनी ने इसे भी उनकी ऐतिहासिक कृतियों में अमर कर दिया है। सामन्ती अत्याचारों और अन्ध-विश्वासों की वेदी में किस प्रकार जन साधारण की बलि दी जाती थी, वह इस उपन्यास से भली भाँति प्रकट हो जाती है। वर्मा जी की सहानुभूति सदैव जनसाधारण के वर्ग से रही है, उन्होंने सामन्तों और पूंजीपतियों के प्रति सदैव ही घृणा दिखाई है, इस उपन्यास में यह और भी प्रकट हो जाता है। नूर बाई का चरित्र चित्रित करके उन्होंने अपने चरित्रों में एक और जगमगाते रत्न की वृद्धि की है। इसके लिए वर्मा जी को जितनी भी बधाई दी जाय थोड़ी है।

उपन्यास का कथानक बहुत प्राचीन नहीं है, १८ वीं शताब्दी से सम्बन्धित है। देश में अंग्रेजों और पुर्तगालियों के खून से सने हुए चरण पड़ चुके थे। उनका साम्राज्यवादी पंजा भारत को दृढ़ता के साथ दबोचता जा रहा था। दिल्ली में मुहम्मदशाह रंगीले का राज्य था जिसे नाच रंग से ही फुरसत न मिलती थी। देश भर में एक अस्तव्यस्तता छाई हुई थी। दक्षिण में मराठे उबल रहे थे और किसी न किसी प्रकार अपने झण्डे को भारतवर्ष में गाड़ कर एक अखण्ड हिन्दू शासन की नींव डालने के लिए प्रयत्नशील थे, भले ही उसके पैरों के नीचे जनसाधारण पिसता रहा हो। निजाम कमजोर अवश्य था पर अरमान उसके भी बहुत बड़े थे। कुछ भी कर सकने में विवश हो कभी इसे मदद देकर कभी उसे, अपने अरमानों की पूर्ति करना चाहता था। उधर नादिरशाह चारों ओर भीषण कत्लेआम मचाता हुआ भारत की सीमा पर बढ़ा चला आ रहा था। मराठों की सेना बाजीराव के नेतृत्व में उत्तरी भारत को रौंद रही थी। कहने का तात्पर्य यह कि क्या राजनैतिक, क्या सामाजिक, क्या आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन के सभी पक्षों में एक घुटन व्याप्त थी। विश्रृंखलता अपनी पराकाष्ठा पर थी। ऐसे ही अन्ध युग के बीच प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु ने विकास पाया है।

कथानक का प्रमुख आकर्षण नूरबाई नामक एक मुसलमान गायिका और नर्तकी है! नूर बाई जितनी सुन्दर थी, उतनी ही कलावन्त! फारसी गजलों को जब अपने सुरीले कण्ठ से गाती तो मुहम्मदशाह का मीर, बख्शी सादत खाँ झूम उठता। फारसी की गजलों के अतिरिक्त नूर बाई सूरदास, नन्ददास और रसखान के कृष्ण भक्ति

से भीगे गीतों को भी गाती थी। जिस समय ये भजन नूर बाई के कोमल कण्ठ से फूटते रस की एक धारा सी प्रवाहित होने लगती। ऐसी थी नूर बाई। सादत खाँ ने नूरबाई पर अपनी अतुलनीय सम्पत्ति लुटा दी। परन्तु नूर बाई की यह हार्दिक इच्छा थी कि वह एक बार बादशाह के सामने भी नाच गा कर उसे चकाचौंध कर दे। वह उसे भी अपनी कला से विमुग्ध कर देना चाहती थी! कई बार उसने सादत खाँ से अपनी इच्छा व्यक्त भी की पर सादत खाँ अक्सर टाल जाता कारण सादत खाँ मुहम्मद शाह के रंगीले स्वभाव से भली भाँति परिचित था। वह जानता था कि नूर बाई को मुहम्मद शाह के पास भेजना उसे गँवाना है।

नूरबाई मुहम्मदशाह के सम्मुख जाने को प्रयत्नशील थी ही, एक दिन उसके सामने पहुंच ही गई। बादशाह ने उसका नाच देखा, गाना सुना! वह उसकी कला पर रीझ उठा। इसी बीच सादत खाँ और मुहम्मदशाह में अनबन हो गई और सादत खाँ ने नादिरशाह को दिल्ली आने का निमन्त्रण दिया। नादिरशाह अवसर की ताक में था ही, निमन्त्रण आते ही दिल्ली आ धमका। उसके स्वागत में नाच रंग का आयोजन हुआ। नूरबाई नादिरशाह के सन्मुख नाची और वह हृदय हीन पुरुष भी उसकी कला पर रीझ उठा! उसने उसे अपने साथ ईरान ले जाने की इच्छा प्रकट की! मुहम्मद शाह पर नादिरशाह का आतंक था। वह विवश होकर उसकी बात मान गया और नूरबाई को नादिरशाह के साथ जाने की अनुमति दे दी। नादिरशाह ने नूरबाई को ४०००) महीने देने की घोषणा की। मुहम्मदशाह नादिरशाह के साथ नूर बाई को भेज कर उससे पीछा भी छुड़ाना चाहता था। उसने उसे ४००० नर्तकियाँ और भी भेंट कीं।

नादिरशाह का मूल आकर्षण नूरबाई ही न थी। वह और भी कुछ चाहता था। उसने मुहम्मदशाह से बीस करोड़ रुपयों की माँग की। मुहम्मदशाह काँप उठा। इस माँग को पूरा करने में वह असमर्थ था। नादिरशाह ने अपने सैनिकों को दिल्ली लूट लेने का आदेश दिया। सैनिक दिल्ली पर टूट पड़े। इतना भीषण कत्लेआम हुआ कि दिल्ली की सड़कें लाशों से पट गईं। सादतखाँ नूरबाई के वियोग में पहले ही आत्महत्या कर चुका था! नादिरशाह के सैनिकों की प्यास कुछ कुछ बुझ चुकी थी। अपने ४००० नर्तकियों के अतिरिक्त एक अरब रुपयों की सम्पत्ति लूट कर नादिरशाह ने दिल्ली से ईरान के लिये प्रस्थान किया। परन्तु नूरबाई उसके साथ न थी। ईरान जाने की अपेक्षा उसने मृत्यु को श्रेयस्कर समझा। सामन्ती अत्याचारों को वह अपनी आँखों से देख चुकी थी। उसे इन सामन्तों से हार्दिक घृणा हो गई। उसने निश्चय किया कि यदि वह नादिरशाह के पंजे से छूट जाय तो वृन्दावन जाकर वहाँ की धरती में,

कृष्ण भक्ति के गीत गा गा कर अपने को लीन कर देगी। भागने का कोई उपाय न था। आखिर एक रात मोहन नामक एक जाट सैनिक के सहयोग से वह किले से भाग निकली। मोहन ने नूरबाई का साथ न छोड़ा। अनेक विपत्तियाँ झेलते हुए वे किसी प्रकार मथुरा के समीप एक गाँव में पहुंचे। चिन्तामन नामक एक जाट के घर अपने को पति पत्नी कह कर वे किसी प्रकार रहने लगे।

मोहन नूरबाई पर मुग्ध था और नूरबाई भी अपने हृदय का सारा प्रेम इस साधारण सैनिक को दे कर सुखी थी। सामन्तों और कामुकों के बीच में रहने से उसे जो सुख न प्राप्त हुआ था वह उसे मोहन के सानिध्य में प्राप्त हो गया। शाही महलों में ऐश करने वाली नूर बाई, गरीबी में दिन काटते हुए, पानी भरते हुए, कण्डे पाथते हुए, इतना सुख अनुभव करती थी कि जैसे उसे सब कुछ मिल गया। उसके ओठों में मुस्कानें नाच उठतीं।

दिल्ली से चलते हुए नूरबाई ने कुछ बहुमूल्य हीरे जवाहरात साथ में ले लिये थे कि कदाचित वे राह में उसके काम आवें। वे अभी तक उसकी कमर में बँधे हुए थे। चिन्तामन को यह सन्देह हो गया था कि इनके पास पर्याप्त सम्पत्ति है। वह उसे हथियाना चाहता था। नूरबाई और मोहन दोनों सशंकित थे। उसी बीच शुबराती नामक एक घायल मुसलमाल सैनिक भी चिन्तामन के यहाँ आया। मोहन शुबराती को पहचान गया। शुबराती बाजीराव की सेना में था। एक बार उसने मोहन के प्राण बचाये थे। मोहन ने भी जब वह मुगल सेना में था, एक बार शुबराती को प्राणदान दिया था! दोनों में घनिष्ठ मित्रता हो गई! नूरबाई घायल शुबराती की सेवा करती। शुबराती बहुत कुछ स्वस्थ हो गया पर चलने फिरने योग्य न हुआ था। शुबराती को चिन्तामन के आदमी घायल करके पकड़ लाये थे। जब उसे यह पता चला कि यह मराठा सैनिक है तब उसने एक हजार रुपयों की माँग की! शुबराती बाजीराव के पास सन्देशा भिजवा सकता तो उसे एक हजार रुपये मिल जाते पर सन्देशा भिजवाने का कोई चारा न था। मोहन और नूरबाई ने चिन्तामन को एक हजार रुपये देने का वचन दिया। चिन्तामन का सन्देह कि इन लोगों के पास अपार धन है, और पक्का हो गया।

शुबराती के साथ एक दिन मोहन और नूरबाई एक गाड़ी में बैठकर चिन्तामन के घर से चल दिये। जंगल में चिन्तामन व उसके साथियों ने इन पर आक्रमण किया। शुबराती घायल था ही अकेला होने के कारण मोहन भी घायल हुआ! चिन्तामन ने नूरबाई को अधनंगी करके सारे रत्नादि ले लिये। नूरबाई अब भी प्रसन्न थी कारण मोहन के प्राण बच गये थे। तीनों मथुरा पहुंचे। शुबराती अपने दल

में मिल गया। मोहन और नूरबाई ब्रज की धरती में आनन्द विभोर हो घूमने लगे। दोनों की प्रीति बढ़ती गई।

वृन्दावन में मोहन की भेंट उसकी स्त्री रौनी से हुई जिससे लड़-भिड़ कर ही वह मुगलों की सेना में जाकर भर्ती हो गया था। नूरबाई को जब यह पता चला कि रौनी मोहन की स्त्री है, उसने मोहन से उसे अपना लेने का आग्रह किया! मोहन नूरबाई के आग्रह को न टाल सका! इतने पर भी मोहन और नूरबाई का सम्बन्ध ढीला न हुआ। उषा की लालिमा के फूटने से पहले ही नूरबाई मोहनको लेकर यमुना के तीर पहुंच जाती। स्नान करने के पश्चात उस शान्त बातावरण में नूरबाई की थिरक गूँज उठती, उसके कण्ठ से फूटे हुए गीत यमुना की लहरों में उतराने लगते। मोहन उस पर रीझ उठता।

पुरानी नूरबाई मर चुकी थी और जन साधारण में ही मस्त रहने वाली सरूपा (मोहन नूरबाई को सरूपा कहता था) ब्रज की भूमि को अपने गीतों से गुन्जायमान कर रही थी।

संक्षेप में यही 'टूटे काँटे' की कथा है।

जहाँ तक कथानक का सम्बन्ध है वर्माजी ने निस्संदेह तत्कालीन इतिहास से एक रोचक कथानक का चुनाव किया है एवं उसके निर्वाह में भी वे पूर्णरूपेण सफल हुए हैं। कथानक में पर्याप्त आकर्षण है। उसमें नीरसता नहीं दृष्टिगोचर होती। जैसा कहा जा चुका है कथानक का मुख्य आकर्षण नूरबाई है। उससे सम्बन्धित सारी घटनाएँ सुन्दरता पूर्वक चित्रित की गई हैं। प्रारम्भ में मोहन और रौनी का प्रसंग भी सजीव है। बीच बीच में वर्मा जी ने सामन्ती शासन के प्रति अपनी घृणा भी सजीवता से व्यक्त की है। मुहम्मदशाह से सम्बन्धित घटनाएँ, बाजीराव के आक्रमणों का वर्णन, नूरबाई की कथा, नादिरशाह का दिल्ली आगमन, कत्लेआम, नूरबाई का मोहन की सहायता से किले से भाग निकलना मथुरा तक की उसकी यात्रा, ब्रज पहुंच कर एक नवीन जीवन का प्रारम्भ, सभी सुन्दरता एवं सजीवता से वर्णित हैं। सर्वत्र यही ध्यान रखा गया है कि कथानक में नीरसता न उत्पन्न होने पावे।

तत्कालीन प्रत्येक परिस्थिति कथानक में सजीवता के साथ चित्रित की गई है। हम इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि वर्मा जी कथा के मार्मिक अंशों को चुनने और उनके वर्णन में अत्यन्त कुशल हैं। उनके अधिकांश उपन्यासों में हमें कोई न कोई ऐसी घटना अवश्य मिल जाती है जो दीर्घकाल तक पाठकों को याद रहे। कौन कौन से वर्णनों का समावेश कथा में हो, कौन से वर्णन पाठकों के हृदय को कितना छू सकते हैं इन बातों के वर्माजी अपूर्व पारखी हैं। 'टूटे काँटे' उपन्यास में भी इसी प्रकार के अनेक

मार्मिक प्रसंग हैं जिनका वर्णन वर्माजी ने कुशलता से किया है। इस प्रकार के वर्णनों से कथानक में तीव्रता और गति तो आती ही है चरित्र भी निखर उठते हैं। एक लम्बा उदाहरण देने का मोह हम नहीं रोक सकते हैं। जहाँ इस प्रसंग की मार्मिकता पाठकों को प्रभावित करती है वहाँ नूरबाई का चरित्र भी स्फटिक की भाँति निखर आता है।

नूरबाई जाटनी के वेश में मोहन और शुबराती के साथ बैलगाड़ी में बैठी हुई मथुरा जा रही है। उसकी कमर में रत्नों की थैली छिपी है। उसे डर है कि राह में लुटेरे न परेशान करें ? गाड़ी जंगल में पहुंचती है। रास्ता सुनसान था ! शाम हो चुकी थी। सहसा चेहरों पर ढाठियाँ डाले कुछ लुटेरे जिनका नायक चिन्तामन था, उन पर आक्रमण करते हैं। सब घबड़ा उठते हैं। मोहन उनसे प्रार्थना करता है पर डाकुओं का आदेश था—"रख दो कमर में क्या बाँधे हो ? नूरबाई ने घूँघट खोल दिया। वह सकपकाई हुई थी। शुबराती के मन में तड़प उठी, न हुए हम दो या तीन मराठा सवार, सबको बिछा देते। मुँह से कुछ नही निकल रहा था। दाँत पीस रहा था।"

"मेरी कमर में कुछ नहीं है चाहे जिसकी सौगन्ध ले लो" मोहन बोला:—

डाकुओं ने मोहन को घसीट कर गाड़ी के नीचे डाल दिया। उसके ऊपर तलवारें तान दी गईं। शुबराती घायल था, उसने आँखें मूँद लीं।

"नूरबाई घूंघट को बिलकुल उघाड़कर गाड़ी में खड़ी हो गई। धूल और पसीने से शरीर लथपथ था। भँवराले काले केशों में धूलरमी हुई थी होंठ सूखे, आँखें लाल। ऊँचे कंपित स्वरमें बोली—ठहरो गहना मेरे पास है, और तुरन्त उचककर गाड़ी से नीचे कूद पड़ी। कूदने में फटी हुई लग्गी और टूटे हुए खड़े लुए में उसकी चून्हरी अटक कर फट गई। उसका लँहगा उघड़ने को था, वह झुकी जिसके जोर से चून्रही और भी फटी। अपनी लज्जा के लिये उसने चूनरी को बल के साथ झटका दिया सो वह लंहगे की चुन्नट से निकल कर अलग हो गई। अब कमर से ऊपर उसके नंगे शरीर को ढकने के लिये केवल एक चोली थी ! जल्दी जल्दी चलने वाली सांस के साथ उसका उन्नत वक्ष उठ और गिर रहा था।

कठिनाई के साथ सांस को साधकर उसने कहा—मेरी कमर में बंधा है, अभी खोल कर फेंके देती हूं। मेरे मालिक को छोड़ दो उनके पास कुछ नहीं है।

तलवारें आगे नहीं बढ़ीं। लाठियां जहाँ की तहां रह गईं।

नूरबाई घिघियाते से स्वर में बोली—मैं एक पेड़ की आड़ में जाकर लंहगे को ढीला करके बसनी खोले देती हूं।

वे लोग एक दूसरे का मुंह देखने लगे।

उनमें एक जो अगुआ मालूम होता था कर्कश स्वर में फिर कड़का—हूं वहाँ अकेले जाकर कुछ छिपाने की सोचती होगी खोल यहीं, नहीं तो ...... नूरबाई के काँपते हुए अंग फड़क गये जैसे किसी त्याग बलिदान, तपस्या के लिये चंचल हो गये हों। वह तन गई, वक्ष और भी ऊँचा हो गया।

गोरे गोरे कमल जैसे हाथों को ऊँचा करके निष्कंप, ऊँचे पैने स्वर में बोली—क्या करते हो ? मैं तुम्हारे सामने नंगी, बिल्कुल नंगी हुई जाती हूं। आखिर तुम्हारे भी तो मेरी ही जैसी माँ बहिनें होंगी।

मोहन की छाती पर रुपे हुए पैर धीमे पड़े।

नूरबाई ने पीठ फेरली। एक क्षण में उसने नारे को ढीला करके दाँतों से दबाया। नितम्बों के ऊपर बँधी हुई बसनी को खोला। उसकी नंगी पीठ वाला शरीर जान पड़ा मानों जैसे ताजमहल को बनाने वाले कारीगर ने संगमरमर की अप्रतिम प्रतिमा को गढ़ा सँवारा हो। उसी स्थिति में निहुर कर नूरबाई ने गहने की बसनी की गाँठ खोली और एक हाथ से निकालकर उन लोगों की दिशा में फेंक दी और लँहगे को कसकर उन लोगों के सामने मुँह फेर लिया।

पेड़ों की डोलती हुई पत्तियों में होकर सूर्य की किरणें फूट फूट कर नूरबाई के धूल धूसरित चेहरे और बालों पर, तने हुए उरोजों पर, कसी हुई मुट्ठियों पर आ रहीं थीं एक किरण उसकी लाल लाल पूरी खुली हुई आँखों में समा समा कर लौट रही थी मानों उन आँखों के डोरों के साथ खेल रही हो।

उठा लो इसे और मेरे मालिक के पास से हट जाओ। उनको चोट आ गई है। उसने कड़े स्वरों में कहा।

डाकू आभूषण लेकर चलते बने। नूरबाई ने गाड़ीवान और शुबराती की सहायता से मोहन को गाड़ी पर लिटाया। कराहते स्वर में मोहन बोला–तुमको तो नहीं कोई चोट आई ?

वह मोहन पर झुक गई और उसको हिलकी आ गई।

कठिनाई के साथ बोली—भगवान ने तुमको बचा लिया सो मैं भी बच गई, चुपचाप पड़े रहो। मोहन लेट गया।

मोहन के माथे पर अपना मुँह छुलाती हुई बोली—अब सो जाओ।

मोहन ने कहा—एक पल के लिये मेरी छाती पर अपना सिर रख लो।

नूरबाई ने उसकी छाती पर अपना सिर रख दिया और हाथ धीरे से उसके कंधे पर। मोहन ने एक हाथ उसकी पींठ से लेकर कमर तक फेरा।

आश्चर्य से बोला—उघाड़ी हो, चुन्हरी का क्या हुआ ?

उँह, चली गई

कहाँ ?

भगवान के घर।

भगवान के घर, क्या मतलब ? मैं समझा नहीं।

नूरबाई ने संक्षेप में बसनी फेंक देने और चुन्हरी के फटने की कथा सुनाई।

मोहनलाल फफक फफक कर रोने लगा।

नूरबाई ने सामने लिपटी हुई चून्हरी के खण्ड को खोल कर उसके आँसू पोंछते हुए कहा—यह तो है अभी मेरी चून्हरी।

ओफ, तुम्हारा क्या से क्या हो गया ?

मेरा तो सब कुछ बन गया। रोओगे तो जरूर मेरा कलेजा चूर हो जायगा। जो कुछ वे लोग नहीं कर पाये वह तुम्हारे आँसू कर डालेंगे।

अब नहीं रोऊँगा मेरी.........

जो कुछ कहना हो मेरे कान में—

नूरबाई उसके पास सिमट आई"। आदि २ !!

उपर्युक्त घटना जितनी ही मार्मिक है उतनी ही प्रभावशाली ! र बाई का चरित्र तो अत्यधिक उज्वल हो उठा है।

कथानक की ऐतिहासिकता का ध्यान भी पूरी तरह से रखा गया है। नूरबाई और मोहन का प्रसंग यद्यपि कल्पना पर अधिक आधारित है पर उसके लिए भी लेखक के पास ऐतिहासिक आधार है। पात्र, घटनाएँ स्थान एवं अन्य वस्तुएँ भी अधिकांशतः ऐतिहासिक हैं। उपन्यासकार की कल्पना ने कहीं भी सीमा का अतिक्रमण नहीं किया है।

चरित्र चित्रण भी सुन्दर बन पड़ा है। पुरुष पात्रों में प्रमुख मोहन, मुहम्मद शाह, शुबराती आदि हैं। गौण पात्रों में नादिरशाह, सादत खाँ, बाजीराव, चिन्तामन एवं तोता की गणना की जा सकती है। सभी के चरित्र सुन्दर और स्वाभाविक हैं। नादिरशाह, मुहम्मद शाह, बाजीराव आदि का चरित्र उनकी प्रवृत्तियों के अनुरूप ही चित्रित हुआ है। मोहन का चरित्र भी सुन्दर है। उसकी और शुबराती की मित्रता तो एक आदर्श है, धर्म और जाति के बन्धन भी जिसे तनिक भी कम न कर सके ! शुबराती का चरित्र भी उज्वल है। पुरुष पात्रों में सभी के चरित्रों का विकास स्वाभाविक है।

स्त्री पात्रों में प्रमुख दो हैं—नूरबाई और रोनी ! रोनी का चरित्र भी स्वाभाविक है। ग्रामीण स्त्रियों की सारी प्रवृत्तियाँ उसमें विद्यमान हैं। उपन्यास भर में यदि

सबसे दृढ़ और आकर्षक किसी का चरित्र है तो वह नूरबाई का है। नूरबाई अपने त्याग, अपने संघर्ष एवं अपने साहस से हमारी सारी श्रद्धा खींच लेती है। प्रारम्भ की नूरबाई अन्त तक जनसाधारण की सरूपा हो जाती है। व्रज की भूमि में जनसाधरण के बीच घूमने में ही उसे वास्तविक सुख और आनन्द की प्राप्ति होती है। नारी जाति का गौरव उसके चरित्र में साकार हो उठा है। उसकी महानता, उसका निश्छल प्रेम, उसका त्याग सब उसके चरित्र को आकाश की ऊँचाइयों तक ले जाने में समर्थ हैं।

ऐश्वर्यों में विचरण करने वाली, मुहम्मद शाह, नादिरशाह जैसे शहंशाहों की आँखों में भी चकाचौंध उत्पन्न करने वाली नूरबाई,फटे कपड़ों में,अपने स्वाभाविक सौन्दर्य में, अपने निर्धनता में, जनसाधारण से हिल मिल कर जैसे सर्वस्व पा जाती है। अपने पुराने जीवन को तो वह इस तरह से भुला देती है जैसे उसके साथ उसका कभी कोई सम्पर्क ही न रहा हो। यहाँ तक कि उसे नूरबाई नाम तक से घृणा हो जाती है और सरूपा के अतिरिक्त और किसी नाम से अपने को पुकारा जाना नहीं सुनना चाहती। उपन्यास के अन्तिम दृश्य में तो नूरबाई का चरित्र और भी निखर उठा है। देखिये—

नूरबाई मोहन से बोली।

"यमुना किनारे चलो।

मोहन को आश्चर्य हुआ, उसने संकेत में कारण पूछा।

वहीं बतलाऊँगी, चलो।

मोहन मुड़ासे को हाथ में लिये उसके साथ चला। आगे वह थी। पवन के मन्द झोंके उसके मुक्त केश लहरा रहे थे। केशों की उन दो लटों में हीरे और लाल अंगारों की तरह दहक रहे थे। किनारे पर पहुंच कर वे दोनों खड़े होगये। ठीक नीचे यमुना कल कल की आवाज करती हुई चली जा रही थीं।

नूरबाई ने जड़ी हुई सोने की पट्टी को धीरे से बालों से सुलझाया और हाथ में लिये रही। मोहन उसकी ओर बढ़ा।

दृढ़ स्वर में नूरबाई ने वर्जित किया—नहीं! वहीं खड़े रहना नहीं तो यमुना जी की गोद में जाती हूं।

मोहन को जैसे काठ मार गया हो। सन्न से खड़ा रह गया। नूरबाई कुछ और पीछे हटी। नूरबाई बोली—सोने और हीरे के इन टुकड़ों की कहानी कितनी गन्दी है, तुम नहीं जानते। अब यह बतलाओ कि तुम नापाक नूरबाई को चाहते हो जो कबर में गाड़ दी गई या धुली धुलाई सरूपा को जो सामने खड़ी है?

रुँधे से स्वर में मोहन के होंठो से निकला—सरूपा को।

नूरबाई ने जड़ाऊ सोने के उस टुकड़े को पूरे बल के साथ गहरी धार में फेंक दिया। डुब्ब से वह टुकड़ा कहीं समा गया।

नूरबाई गर्दन को जरा सी मोच देकर टुकड़े की डुबकी पर उठे हुए बुद बुदे को देखने लगी। सूर्य की किरणें मुक्त केशों और मुकलित नेत्रों में से कुछ ढूँढ़ सा रहीं थीं।

किसी श्रद्धा में भरा हुआ मोहन गहरी उत्कंठा से उसकी ओर टकटकी लगाए था। उस बुदबुदे ने देखा कि नूरबाई की ग्रीवा की उस लोच, आँख की उस मदभरी स्थिरता, सटे हुए ओंठों की उस शान्ति की भंगिमा को अनन्त ने अपने भीतर मानो अनन्त काल के लिए निहित कर लिया हो।

मोहन बोला—कुञ्ज में चलो।

चलो! नूरबाई की ओठों की मुस्कान पर नाच गया!"

कहने का तात्पर्य यह है कि नूरबाई वर्मा जी के उज्वल चरित्रों की कड़ी में एक और जगमगाता रत्न है। नूरबाई जैसे चरित्र को चित्रित करने के लिए हम वर्मा जी को बधाई देते है। सामन्तीय वैभवों के प्रति जो घृणा नूर बाई को हो जाती है वह तो और भी महान है। जन जीवन के इस समर्थन द्वारा वर्मा जी ने निस्सन्देह अपने महत्व को और भी सुरक्षित कर लिया है।

कथोपकथन भी उपन्यास के अत्यन्त सुन्दर बन पड़े हैं। वे स्वाभाविक प्रभावशाली तथा सार गर्भित है। अवसर और प्रवृत्तियों के अनुकूल कथोपकथनों की शैली भी परिवर्तित हुई है। उनमें कहीं भी अनावश्यक विस्तार नहीं है। यथासंभव लघु कथोपकथनों द्वारा ही लेखक ने इच्छित प्रभाव उत्पन्न किया है। कथोपकथनों की यह स्वाभाविकता भी उपन्यास की महत्ता को स्थिर रखने में बहुत अंशों में सफल हुई है!

भाषा भी सुन्दर और गतिशील है। उसमें प्रभाव और मार्मिकता सभी कुछ है।

देशकाल के निर्वाह में वर्मा जी बहुत बड़ी सीमा तक सफल हुए हैं। तत्कालीन युग की प्रत्येक स्थिति प्रस्तुत उपन्यास में साकार हो उठी है। मराठों का उत्कर्ष, निजाम का निकम्मापन, मुहम्मद शाह की निर्बलता, उसकी विलासप्रियता, नादिरशाह के अत्याचार, सामन्तों के निजी स्वार्थों के बीच पिसती हुई जनता के चित्र सबकी झांकी प्रस्तुत उपन्यास द्वारा हमें मिल जाती है। जनसाधारण के जीवन के चित्र भी उपन्यास में उभर उठे हैं। शासन की निर्बलता व शासक का निकम्मापन किस तरह जनसाधारण की सुख शान्ति को लूटे हुए थे यह नूरबाई पर लुटेरों के आक्रमण से प्रकट हो जाता है।

सामन्तीय अत्याचारों और अंधविश्वासों के बीच भी जनसाधारण चाहे वह किसी भी जाति या वर्ग का हो एक था, इस का प्रमाण मोहन और शुबराती की अभिन्न मित्रता से मिल जाता है। मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के प्रति जनता का झुकाव भी नूरबाई के मथुरा वृन्दावन जाने से प्रकट हो जाता है। इस सम्बन्ध डा० रामविलास शर्मा का यह कथन नितान्त सत्य है—"यह स्वाभाविक था कि वर्मा जी की सहानुभूति मध्यकालीन भारत के भक्ति आन्दोलन से हो। यह जनता का अपना सांस्कृतिक आन्दोलन था। जनजीवन में उसकी कौन सी भूमिका थी, जनता की वह कौन सी प्यास बुझा सकता था जिसे पंडे पुजारी न बुझा सकते थे, इसका विशद चित्रण उन्होंने 'टूटे काँटे' में किया है। वर्मा जी उसी अजस्र सांस्कृतिक धारा की एक लहर हैं जो व्यास और बाल्मीकि से लेकर तुलसी, सूर, कबीर जायसी से होती हुई भारतेन्दु, प्रेमचन्द, निराला तक बहती रही है। निएसन्देह वह हमारी संस्कृति के एक प्रमुख निर्माता हैं।"

प्रस्तुत उपन्यास में वर्मा जी ने इसी भक्ति आन्दोलन और उससे जनता को क्या संतोष मिलता था, इसका चित्रण किया है।

कहने का तात्पर्य यह कि तत्कालीन भारत की प्रत्येक दशा प्रत्येक उथल पुथल इस उपन्यास में उभर उठी है। उपन्यास की ऐतिहासिकता को इससे अकथनीय सहयोग प्राप्त हुआ है। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि प्रस्तुत उपन्यास वर्मा जी की ऐसी सृष्टि है जिसका प्रभाव भी उनके अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों की भाँति दीर्घ कालीन रहेगा।

सामाजिक उपन्यास—

वर्मा जी के ऐतिहासिक उपन्यासों पर संक्षेप में कुछ कह चुकने के पश्चात् हमारी दृष्टि उनके द्वारा लिखे सामाजिक उपन्यासों पर पड़ती है। जैसा पहले कहा जा चुका है, उन्होंने अतीत एवं वर्तमान दोनों को अपनी लेखनी का विषय बनाया है। उनकी अतीत प्रियता के उदाहरण उनके ऐतिहासिक उपन्यास हैं और उनके वर्तमान के प्रति मोह को उनके सामाजिक उपन्यास चरितार्थ करते हैं। इन ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यासों के विषय में हम एक बात का उल्लेख और कर देना चाहते हैं कि इनकी विषय वस्तु बुन्देलखण्ड की धरती तक ही विशेष रूप से सीमित है। ऐतिहासिक उपन्यासों में हम इसे देख ही चुके हैं, सामाजिक उपन्यासों के कथानकों के विषय में भी हम यही बात पायेंगे। 'प्रत्यागत' में अवश्य उनके नायक ने बम्बई और मालाबार तक यात्रा की है वैसे अन्य सामाजिक उपन्यासों में उनका बुन्देलखण्ड के प्रति प्रेम झलक रहा है।

यह स्वाभाविक है कि लेखक वर्तमान को भी अपने कथानकों का विषय बनाता। प्रत्येक जागरूक कलाकार जैसा हम कह चुके हैं अपने युग की समस्याओं एवं संघर्षों से प्रभावित रहता है और अवसर आने पर उन्हें अपनी विवेचना का विषय बनाता है। यही बात वर्मा जी के विषय में भी सत्य है। ऐतिहासिक उपन्यास उन्होंने लिखे और बहुत लिखे पर सामाजिक उपन्यासों की रचना भी उन्होंने लगभग इसी संख्या में की है। इन उपन्यासों में वे आज की अनेक समस्याओं को लेकर चले हैं और उन समस्याओं के समाधान तक प्रस्तुत किये हैं। रोमान्स की ओर उनका आकर्षण प्रारम्भ से ही रहा है। रोमांस की जो धारा हम उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में बहती हुई पाते हैं, वही उनके सामाजिक उपन्यासों में भी प्रवाहित है। उनके सामाजिक रोमांस भी ऐतिहासिक रोमांसों की भाँति अच्छे बन पड़े हैं। विस्तृत विवेचना तो हम आगे के पृष्ठों में करेंगे यहाँ केवल हम उनकी इस प्रवृत्ति को इंगित कर देना चाहते थे। सामाजिक और ऐतिहासिक विषयों को समान रूप से अपनी लेखनी का आधार बना कर वर्मा जी ने अपनी व्यापक दृष्टि का परिचय दिया है। उनके ये सामाजिक उपन्यास भी हमारे लिए उतना ही महत्व रखते हैं जितना उनके ऐतिहासिक उपन्यास। दोनों की समुचित व्याख्या ही हमें वर्मा जी की उपन्यास कला के विषय में कोई निश्चित धारणा बनाने में योग देगी। अब तक उनके जो सामाजिक उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं उनकी तालिका हम आगे देते हैं—

(१) अचल मेरा कोई (१९४८) (२) प्रेम की भेंट (३) कुण्डली चक्र (४) प्रत्यागत (५) लगन (६) संगम (७) कभी न कभी (८) अमर बेल !!

इन उपन्यासों में भी अपनी अपनी विशेषताएँ और दुर्बलताएँ हैं। इनमें से कुछ तो जीवन के व्यापक क्षेत्रों को छूते हैं परन्तु कुछ की परिधि अत्यन्त सीमित है ! जिनका क्षेत्र अधिक व्यापक है, स्वभावतः वे अधिक सुन्दर बन सके हैं। सीमित क्षेत्र वाले उपन्यासों में केवल कथा वस्तु ही विशेष आकर्षक लगती है—अन्य बातें हमें उतना नहीं प्रभावित करतीं ! खैर, यहाँ हम इन सामाजिक उपन्यासों की विवेचना में में नहीं पड़ना चाहते, आगे के पृष्ठों पर उन पर विस्तार से विचार किया गया है। पाठक उसे पढ़ कर स्वयं अपनी धारणा बना सकते हैं ! हमारा प्रमुख उद्देश्य तो इन सामाजिक उपन्यासों की ओर एक संकेत करना था !

(१) अचल मेरा कोई······ [१९४८] :—

प्रस्तुत उपन्यास को यदि हम समस्या प्रधान कहें तो अधिक उपयुक्त होगा ! वर्तमान युग की एक ज्वलंत समस्या जो आज के पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित स्त्री पुरुषों के पारस्परिक जीवन से सम्बद्ध है, इस उपन्यास में उभारी गई है और लेखक ने उसके समाधान की ओर भी इंगित किया है। ग्राम्य जीवन की एक हलकी झलक होने पर भी उपन्यास मुख्यतया शहरी जीवन से सम्बन्ध रखता है और समस्या भी शहरी जीवन बिताने वालों से ही सम्बन्धित है। संक्षेप में उपन्यास की कथा निम्नलिखित है—

अचल एवं सुधाकर मित्र हैं। देश में गाँधी जी के अहिंसात्मक आन्दोलन की एक लहर सी उठ खड़ी हुई थी ! अचल व सुधाकर भी उसमें भाग लेते हैं और फलस्वरूप जेल जाते हैं। जेल से छूटते ही राजनैतिक बंदियों की भाँति इनका भी स्वागत होता है। यूनीवर्सिटी के कुछ छात्र और छात्राएँ भी इस अवसर पर उपस्थित थीं। कुन्ती जो सुधाकर व अचल से अत्यन्त घनिष्ट रूप में पहले से ही परिचित थी, भीड़ में पुष्प हार लिए खड़ी थी। उसने भी दोनों को हार पहिनाए। अचल व सुधाकर दोनों ही कुन्ती की ओर आकर्षित थे। स्वागत समाप्त हुआ और मन में अनेक भावनाएँ लिए हुए सब चले गए। निशा नामक एक लड़की से भी कुन्ती, अचल व सुधाकर का परिचय था ! उसी के यहाँ सबकी भेंट होती थी ! निशा नगर के धनी मानी सज्जन की पुत्री थी। अचल को संगीत कला से पर्याप्त प्रेम था ! कुन्ती व निशा भी संगीत एवं नृत्य कला से पर्याप्त परिचित थीं। निशा के यहाँ ही गायन, वादन नृत्य का कार्य-क्रम चला करता। कुन्ती अचल से संगीत विद्या सीखना चाहती थी ! अपनी इच्छा वह अचल से व्यक्त भी करती है। अचल मान लेता है और कुन्ती को संगीत सिखाने लगता है। घटनाएँ शीघ्रता से बढ़ती रहती हैं। अचल एवं कुन्ती में पर्याप्त घनिष्ठता हो जाती है पर कुन्ती अचल को सदा ही श्रद्धा की दृष्टि से देखती है। कुन्ती के विवाह का प्रश्न उठता है और सुधाकर से उसका विवाह हो भी जाता है। अचल को कुछ व्यथा पहुँचती है पर वह उसे हृदय में ही पी जाता है। वह प्रण करता है। कि जब तक जीवन में वह पूर्ण रूपेण व्यवस्थित न हो जायेगा तब तक विवाह न करेगा।

सुधाकर व कुन्ती का विवाह होता है और उनका जीवन आमोद प्रमोद में बीतने लगता है। दोनों शिक्षित थे। सुधाकर भी स्त्री स्वातंत्र्य का समर्थक था इस कारण

कुन्ती को पर्याप्त व्यक्तिगत स्वतंत्रता देता है। स्वयं भी उसके साथ पार्टियों में सम्मिलित होता है।

घटनाक्रम बढ़ता रहता है। निशा का भी विवाह शहर के किसी युवक से हो जाता है। परन्तु अब कुन्ती और सुधाकर के सम्बन्धों में कटुता का सूत्रपात्र होता है। कुन्ती विवाह के पश्चात भी अचल से उसी प्रकार मिलती जुलती रहती है। सुधाकर को कुन्ती की अत्यधिक स्वतंत्रता अखरती है। पारस्परिक वादविवाद भी होते हैं। पहले तो वह विशेष कुछ नहीं कहता पर बाद को स्पष्ट रूप से उसकी स्वतंत्रता के बीच रोड़ा बनने का प्रयत्न करता है। दोनों में कलह और भी बढ़ती है। वैसे सुधाकर कुन्ती के घूमने फिरने में प्रतिबन्ध नहीं लगाना चाहता था पर कुन्ती को अचल के यहाँ बराबर आते जाते देख उसके हृदय में शंका उत्पन्न होती है। वह अचल और कुन्ती के सम्बन्धों के प्रति गलत धारणा बना लेता है। मुख्यतः यही शंका और यही धारणा ही उनके सम्बन्धों में कटुता का कारण थी।

इसी बीच हिन्दू मुसलमानों में साम्प्रदायिक दंगा होता है। दंगे में निशा का पति मारा जाता है। कुन्ती घर से बाहर जाना चाहती है पर ऐसी साम्प्रदायिक अशान्ति के वातावरण में सुधाकर उसे बाहर जाने से रोकता है। वह उसे निशा के पति की मृत्यु का समाचार भी सुनाता है। कुन्ती को दुख होता है और वह निशा के घर जाने के लिए सुधाकर से हठ करती है। सुधाकर अब भी उसे रोकता है। कुन्ती का क्रोध सीमा का अति क्रमण कर उठता है। उसके हृदय का सारा रोष, प्रकट हो जाता है। वह तीव्र स्वरों में सुधाकर से कहती है—

"पुरुषों को स्त्रियों का भरोसा नहीं है इसीलिए इस तरह की डरपोक पने की बातें करते हैं। जो स्त्रियाँ अपनी रक्षा का दम रखती हैं उनका कोई कुछ नहीं कर सकता।" सुधाकर चुप हो जाता है। कुन्ती निशा से भेंट करती है। निशा की व्यथा का अनुमान कर उसका जी रो उठता है। वह अचल के घर जाती है। कुछ वार्तालाप करने उपरान्त अचानक कुन्ती गम्भीर होकर अचल से कहती है—

"सुनिए, मैं एक प्रण करके आई हूँ।

क्या कैसा ? अचल के स्वर में कम्प था।

कुन्ती बोली—आपने प्रण किया था कि जब तक जीवन में स्थिर न हो जाऊँगा विवाह न करूँगा।

किया था, उसकी याद दिलाने का उद्देश्य ?

कुन्ती ने दृढ़ स्वर में पूछा—आपको क्या प्रेम करने से भी इंकार है ?

कुन्ती ने अचल को सोचने का अवसर न दिया। बोली—आप कुछ त्याग करने को

तैय्यार हैं। अचल सिर नीचा कर के कुछ सोचने लगा।

आप निशा के साथ प्रेम करिये, उसके साथ व्याह करके उसे अपनाइये। केवल यही त्याग और यही प्रण का विसर्जन। कमरे में कुन्ती के खनकते स्वर गूँज गये।"

अचल को कुन्ती की बात माननी पड़ी। कुन्ती को भी सन्तोष था। बोली—"अब मैं सचमुच सुखी हूँ। लगता है जैसे आपके बहुत निकट आगई होऊँ।"

निशा और अचल का विवाह होगया। दोनों सुखी थे। कुन्ती और सुधाकर के सम्बन्ध दिन प्रति दिन और भी कटु होते जा रहे थे। कुन्ती को अभी तक इसका आभास न मिल पाया था कि सुधाकर के हृदय में उसके और अचल के सम्बन्धों को लेकर कौन सी शंका घर कर गई है। जैसे ही उसे इस शंका के विषय में ज्ञात हुआ उसका हृदय धक से रह गया! सुधाकर कुन्ती की व्यथा को समझ गया। एक दिन बात कुछ बढ़ गई। सुधाकर बोला—"मैं स्त्रियों की स्वाधीनता का अब भी वैसा ही पक्षपाती हूँ परन्तु उसकी एक सीमा है।" कुन्ती सुधाकर के संकेत को समझ गई। भभक कर कर बोली "मेरे चरित्र पर शंका है, है न?" सुधाकर शान्त था। उसने कुन्ती से पीने के लिए पानी माँगा। कुन्ती भीतर गई! सुधाकर कुछ सोचने लगा। अचानक भीतर से बन्दूक चलने की आवाज सुन पड़ी। सुधाकर सहम गया। शीघ्रता से भीतर गया। "वहाँ जो कुछ देखा वह अत्यन्त भीषण था। कुन्ती के सिर को फोड़ कर गोली उस पार हो गई थी। वह छटपटा भी नहीं रही थी। बन्दूक एक ओर पड़ी थी। सुधाकर ने धूमिल नेत्रों से मेज पर एक कागज देखा उस पर केवल इतना लिखा था—अचल मेरा कोई······आगे हाथ काँप गया था। केवल एक बिगड़ी हुई लकीर थी।"

यही उपन्यास की कथा है। कथानक से स्पष्ट है कि उपन्यासकार ने आज की एक ज्वलन्त समस्या को उसमें उभारा है और जो अपना समाधान भी शीघ्र ही चाहती है।

पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति ने आज भारतीय जीवन में एक अजीब घुटन पैदा कर दी है। उससे प्रभावित व्यक्ति अधिकांशतः भारतीय संस्कारों को भी अपने मस्तिष्क से हटा नहीं पाते। परिणाम स्वरूप उन भारतीय संस्कारों एवं पाश्चात्य प्रभावों में संघर्ष होता है और उस संघर्ष का जो रूप प्रकट होता है वह बहुत ही अनगढ़ भद्दा एवं विकृत होता है। दुखद घटनाएं घटती हैं, जीवन अन्धकारमय हो जाता है परन्तु संघर्ष नहीं समाप्त होता।

पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति ने स्त्री स्वातंत्र्य आन्दोलन को भी जन्म दिया है। आज स्त्री पुरुष के समान ही अधिकारों की माँग कर रही है। वह भी उतनी ही व्यक्तिगत स्वतन्त्रता चाहती है जितनी कि पुरुष माँगता है। पाश्चात्य सभ्यता और

संस्कृति से प्रभावित पढ़े लिखे युवक भी स्त्रियों की स्वतन्त्रता का समर्थन करते देखे जाते हैं। परन्तु प्रश्न और समस्याएं तब खड़ी होती हैं जब ये ही युवक अपने व्यक्तिगत जीवन में अपने ही विचारों को व्यवहारिक रूप देने में असमर्थ हो जाते हैं। इसके मूल में उनके भारतीय संस्कार हैं, उनकी स्त्री पर पुरुष का जन्मजात अधिकार मान लेने की भावना है। कुछ दिनों तक तो वे बलपूर्वक अपने विचारों को ढोते रहते हैं पर जब उन्हें सीमा टूटती हुई प्रतीत होती है तब वे अपनी ही कही हुई बातों का स्पष्ट विरोध करने लगते हैं। यहीं से दुखद घटनाएं प्रारम्भ होती हैं, दाम्पत्य जीवन के सुख और शान्ति की हत्या होती है।

स्त्रियों की स्वतन्त्रता की माँग जायज होने पर भी उन्हीं के द्वारा विकृत कर दी जाती है। अपने अधिकारों की माँग के साथ साथ स्त्रियों में पर्याप्त उश्रृंखलता भी आ जाती है जो बाद को उनके वैवाहिक जीवन में कटुता उत्पन्न करती है।

विवाह के प्रारम्भ में स्त्री पुरुष दोनों में एक जोश होता है, उन पर एक नशा सा छाया रहता है और उस नशे के प्रभाववश वे स्वयं सीमाओं का अतिक्रमण कर जाते हैं पर जब जोश समाप्त होता है, नशे की खुमारी उतरती है तब उनके सम्बन्धों में दरारें पड़ना प्रारम्भ हो जाती हैं, फलस्वरूप कहीं आत्महत्याएं होती हैं, कहीं सम्बन्ध विच्छेद और कहीं और कुछ !

उपन्यास में लेखक ने इस समस्या का एक समाधान प्रस्तुत किया है। उसके अनुसार स्त्री और पुरुष में तब तक पारस्परिक प्रेम नहीं पनप सकता जब तक उनकी मनोवृत्तियों में सामंजस्य नहीं होगा, उनके विचारों में एकता नहीं होगी, उनमें एक दूसरे के प्रति अपार विश्वास नहीं होगा। नारी की स्वतन्त्रता की माँग पूर्णरूपेण उचित है और हम उसका समर्थन भी करते हैं परन्तु स्वतन्त्रता के आग्रह में उश्रृंखलता को प्रश्रय देना स्त्री समाज के लिये घातक होगा। उश्रृंखल बन कर वे स्वस्थ दाम्पत्य जीवन का भोग नहीं कर सकतीं।

कथानक मुख्यतः चार पात्रों को लिये आगे की ओर अग्रसर होता है — वे हैं- अटल, सुधाकर, कुन्ती और निशा। पंचम और गिरधारी ये दो पात्र कथानक को ग्राम्य जीवन का स्पर्श भी कराते हैं पर उसका कोई महत्व नहीं है।

समस्या कुन्ती और सुधाकर उठाते हैं, समाधान अचल और निशा करते हैं। कुन्ती और सुधाकर एक स्वस्थ दाम्पत्य जीवन नहीं बिता पाते, उनमें कलह होतो है परिणाम कुन्ती की आत्महत्या में प्रकट होता है जब कि अचल और निशा सुख पूर्वक एक दूसरे से असीम प्रेम करते हुए, एक दूसरे की आवश्यकताओं और भावनाओं का आदर करते हुए अपने दाम्पत्य जीवन का निर्वाह करते हैं। इसका कारण क्या है ?

अचल और निशा के सुखी जीवन का रहस्य उनका पारस्परिक विश्वास एक, दूसरे को भली भाँति समझ कर तदनुकूल आचरण करना है। सुधाकर और कुन्ती के कलहपूर्ण, जीवन का कारण उनका एक दूसरे को भली भाँति न समझना है, एक दूसरे के प्रति अविश्वास का होना है।

कुन्ती आधुनिक शिक्षित युवतियों की प्रतीक है यद्यपि उसकी चारित्रिक दृढ़ता पाश्चात्य सभ्यता, शिक्षा और संस्कृति से प्रभावित युवतियों के लिये एक उदाहरण है। सुधाकर भी पाश्चात्य प्रभावों से पूर्ण है पर वह उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो ऊपर से स्त्री स्वतन्त्रता का समर्थन करते हैं, दिखावे के कारण उसको कुछ न कुछ सक्रिय रूप भी देते हैं पर जिनके मन से परम्परागत स्त्री पर पुरुष के अधिकार होने की भावना नष्ट नहीं होती और जो एक दिन बलवती होकर सबको आच्छादित कर लेती है, पुरुष उसी की लपेट में आ जाता है।

समस्या ने कथानक में अच्छा उभार पाया है और उसका समाधान कथानक को और भी पूर्ण बना देता है।

कथानक का विकास शनैः शनैः सधे रूप में होता है, हाँ, अन्तिम भाग में उसमें कुछ तीव्रता भी आ जाती है। पंचम और गिरधारी कथा के सूत्र गाँव तक ले जाते हैं पर जैसा कहा गया है उनका कथानक में कोई महत्व नहीं है। वे अथवा उनसे सम्बन्धित प्रसंग न भी होते तो भी कथानक की गति में, उसके उद्देश्य में कोई अन्तर न आता। पंचम और गिरधारी का प्रसंग लेखक ने बीच से ही छोड़ भी दिया है जो न होना चाहिये था। किसी प्रसंग को उठा कर उसका निश्चित निष्कर्ष बिना बताये उसे छोड़ देना कथाकार की दुर्बलता प्रकट करता है।

अचल और निशा के विवाह ने कथानक में विधवा विवाह की समस्या को भी उभारा है। इस समस्या के समाधान में भी उपन्यासकार सफल है। कथानक को दुखद अंत में परिणित करने का उद्देश्य केवल समस्या को बल प्रदान करना है, उसकी ओर से लोगों को सजग करना है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रस्तुत उपन्यास का कथानक आकर्षक, गतिशील एवं उद्देश्य गर्भित है।

पात्रों का चरित्र चित्रण भी सुन्दर और मनोवैज्ञानिक है।

मुख्य पात्र चार हैं—कुन्ती, अचल, सुधाकर और निशा। गौण पात्रों में पंचम और गिरधारी की गणना की जा सकती है जो महत्वपूर्ण नहीं हैं!

कुन्ती का चरित्र लेखक ने कुशलता पूर्वक उभारा है। वह आधुनिक सभ्यता से प्रभावित होने पर भी चरित्र की दृढ़ है और यही उसकी एक आकर्षक विशेषता है। अचल व सुधाकर दोनों ही से उसकी मित्रता है, हाँ अचल के प्रति उसकी एक विशिष्ट

धारणा है। अचल की चारित्रिक दृढ़ता उसे प्रभावित करती है और वह उसे आदर की दृष्टि से देखती है। स्वतन्त्रता प्रिय होने पर भी वह नारीत्व की मर्यादा को समझती है। सुधाकर से विवाह करने में उसे सुख प्राप्त होता है और वह उसे प्रसन्न रखने में कोई कमी नहीं उठा रखती। सुधाकर भी उसकी भावनाओं का आदर करता है और उसे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता भी प्रदान करता है। दोनों का वैवाहिक जीवन सुख पूर्वक बीतता जाता है परन्तु अचानक उसमें कटुता का प्रवेश होता है। कटुता का कारण सुधाकर का उसकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की राह में रोड़ा बनना था जो वह कतई पसन्द नहीं करती। सुधाकर स्त्री स्वातंत्र्य की कतिपय सीमाएं मानता है जिन्हें कुन्ती पुरुष की कमजोरी व स्त्री पर अधिकार बनाये रहने का बहाना कहती है। जब उसे यह पता चलता है कि सुधाकर को उसके चरित्र पर शंका है वह भभक उठती है और परिणाम उसकी आत्म-हत्या में प्रकट होता है।

कुन्ती की आत्महत्या कहाँ तक उचित है अथवा अनुचित, हमें इस प्रश्न पर नहीं पड़ना है। हम इतना ही कह सकते हैं कि यदि कुन्ती वास्तव में चरित्र भ्रष्ट होती तो वह आत्महत्या न करती; वह चरित्र की बिल्कुल स्वच्छ थी इसी कारण सुधाकर का लांछन उसे गहरा आघात लगाता है जिसे सहन न करने के कारण ही वह आत्महत्या करती है।

सुधाकर कुन्ती के चरित्र के विषय में यह शंका क्यों करता है? कुन्ती विवाह के पश्चात भी अचल से स्वतन्त्रता पूर्वक मिलती जुलती है और सुधाकर इसे नहीं सहन कर पाता! कुन्ती की अचल से यह घनिष्टता ही उसे अचल और कुन्ती के सम्बन्धों के प्रति शंका करने को बाध्य करती है। पर यहाँ हम सुधाकर को दोषी ठहराते हैं। कुन्ती के सम्पर्क में आ कर भी वह उसे पूर्णरूपेण समझ नहीं पाता! उस पर शंका करना यह सिद्ध करता है कि उसे कुन्ती पर विश्वास न था। स्त्री पुरुष के सम्बन्धों में पारस्परिक विश्वास का यह अभाव ही दुखद घटनाओं का कारण बनता है। कुन्ती ने इसे चरितार्थ कर ही दिया है।

हाँ, कुन्ती के चरित्र में कुछ दुर्बलता भी है। वह शिक्षिता थी, जागरूक थी। आत्महत्या करना उसके लिये ठीक न था। उसे सुधाकर के विरोध में खड़ा होकर उसकी शंका को मिथ्या प्रमाणित करना था। आत्महत्या कर के तो वह उसे और भी शंका पूर्ण स्थिति में छोड़ जाती है। सुधाकर जब कमरे में जाता है और कुन्ती को मरा हुआ देखता तो सहम जाता है। मेज पर एक कागज रखा हुआ था जिसमें कुन्ती मरने के पूर्व केवल इतना ही लिख पाई थी कि "अचल मेरा कोई···! आगे लकीर बिगड़ी हुई थी! उसका हाँथ काँप गया था। कुन्ती के इतना लिखने से क्या निष्कर्ष निकाला जा

सकता है ? यदि कुन्ती का वास्तव में , अचल से कोई सम्बन्ध न होता तो वह स्पष्टतः लिख सकती थी कि अचल उसका कोई नहीं है । परन्तु, जो कुछ उसने लिखा उससे यही प्रकट होता है कि अचल के लिये उसके हृदय में पर्याप्त स्थान था । वह अचल को किसी रूप में अपने हृदय में स्थान दिये हो पर उसका अचल के साथ लगाव अवश्य था । सुधाकर सुलझा हुआ न था । वह कुन्ती के इतने लेख से अपने अनुकूल तर्क पा सकता है । यदि वह कुन्ती को पूर्णरूपेण समझता होता तो उसे उसके चरित्र पर शंका करने की कोई आवश्यकता न पड़ती और कुन्ती जो कुछ लिख गई थी उससे भी उसे कोई मानसिक उलझन न हो सकती थी । वह यही निष्कर्ष निकालता कि अचल और कुन्ती में सम्बन्ध है अवश्य पर वह उस प्रकार का नहीं है .जिसकी वह शंका करता है । पर जैसा कहा गया है कि सुधाकर सुलझे हुए विचारों का व्यक्ति न था ! कुन्ती के लिखे ये दो चार शब्द उसे और भी शंका पूर्ण स्थिति में पहुंचा देने के लिये पर्याप्त हैं । कुन्ती की आत्महत्या से यदि सुधाकर का मस्तिष्क साफ हो जाता तो वह सार्थक थी पर जिस स्थिति का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं उससे सुधाकर की शंका बढ़ती ही है अतः कुन्ती की आत्महत्या व्यर्थ ही सिद्ध होती है ।

कुन्ती और सुधाकर के वैवाहिक जीवन में कलह इसीलिये हुई कि न तो सुधाकर ही कुन्ती को समझ सका और न कुन्ती ही उसके अनुरूप अपने को ढाल सकी ! व्यर्थ के भ्रमों, व्यर्थ की शंकाओं एवं व्यर्थ के अविश्वासों ने उनके जीवन को अंधकारमय बना दिया । दोष न कुन्ती का है, न सुधाकर का, दोष उस पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का है जो भारतीय जीवन और संस्कारों के अनुरूप न होने पर भी बुरी तरह उसमें मिला ली गई है और इस प्रकार अनेक दुखद घटनाओं, गृहकलहों को जन्म दे रही है । पाश्चात्य सभ्यता को आश्रय देने वाले पर अपने व्यक्तिगत जीवन में उसे व्यवहारिक रूप देने में असमर्थ व्यक्ति ही इस प्रकार की समस्याओं के शिकार बनते हैं । उन्हें इस पर गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिये ।

कुन्ती का चरित्र उज्जवल है । वह प्रारम्भ से अन्त तक सजग और सचेष्ट रहती है । स्वतन्त्रताप्रिय होने पर भी अपने उद्देश्यों से गिरती नहीं है । यदि वह अचल से विवाह करना चाहती तो कर सकती थी पर वह अचल को श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखती है और सुधाकर को अपना जीवन संगी चुनती है । अचल से उसका सम्बन्ध केवल यहीं तक था कि वह उसकी शिष्या थी । अचल इसे समझता है और इसी कारण उसके और कुन्ती के बीच कभी भी भ्रम नहीं उत्पन्न होता । निशा एक बार कुन्ती से इस सबन्ध में प्रश्न करती है और कुन्ती उसका जो उत्तर देती है

प्रगतिशील रूप के दर्शन भी होते हैं। पहले तो वह यह समझता है कि निशा के साथ विवाह कर उसने त्याग किया है पर निशा के साथ कुछ काल बिताने पर उसकी यह धारणा निर्मूल हो जाती है। वह इसे स्वीकार करता है कि उसने निशा के साथ विवाह करके त्याग नहीं किया वरन निशा ने उसकी जीवन संगिनी बनकर त्याग किया है। विधवाओं के लिये उसके हृदय में अपार श्रद्धा है। निशा भी अपने को अचल की धारणाओं के अनुकूल सिद्ध करती है और इस प्रकार अचल के प्रेम का पात्र बनती है। अचल दाम्पत्य जीवन के रहस्य को समझता है और इसी कारण कभी भी पत्नी की भावनाओं का अनादर नहीं करता। अपना विश्वास उसे प्रदान करता है और उसका विश्वास पाता है। दोनों के निम्नाङ्कित वार्तालाप से जहाँ अचल का चरित्र निखर उठता है वहाँ निशा के चरित्र पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। एक दिन निशा अचल से कहती है—"तुमने मेरे लिये बहुत त्याग किया! तुमको कहीं अच्छी स्त्री मिल सकती थी।'

अचल उत्तेजित हो उठता है और उत्तर देता है—"बकती हो। असली त्याग तुम्हारा है। हमारा समाज अब भी पिछड़ा हुआ है। उसी समाज के लाज संकोच में विधवाएँ अपने हाड़ माँस को गला गला कर और जला जला कर जीवन बिताती हैं। पाखंडियों और धूर्तों की पूजा होती है पर इन यातनाग्रस्त तपस्विनियों को कोई पूछता है? पहले मैं सोचता था मैंने वास्तव में त्याग किया है परन्तु तुमको पाने के कुछ दिन बाद ही समझ में आ गया कि त्याग मैंने नहीं तुमने किया है। अनेक स्त्री पुरुष तुम्हारी कितनी उपेक्षा न करते होंगे? वैसे ही अपने को चिता में जलाती रहती तो ये स्त्री पुरुष कुछ मौखिक आदर दे देते परन्तु उनकी निःशब्द ग्लानि को कितनी विधवाएँ सह सकती हैं! इस पर भी कहती हो कि मैंने त्याग किया।"

निशा उससे पुनः कहती है—"तुमको यदि कुन्ती जीवन संगिनी मिल जाती तो तुम बहुत ही सुखी रहते।" अचल उत्तर देता है—'सम्भव है। मैं उसको चाहता भी रहा हूं! तुमसे छिपाऊँगा नहीं, शायद तुमको मालूम भी हो। कह नहीं सकता, मेरे और उसके समन्वय का क्या रूप होता? तुमको पाकर और कुछ पाने की इच्छा नहीं रही, मैं बहुत सुखी हूं।"

इस प्रकार अपने सुलझे हुए विचारों, दृढ़ चरित्र एवं अपनी प्रगतिशीलता के कारण अचल हमारे अत्यधिक आकर्षण का पात्र बनता है। उसके चरित्र का सबसे आकर्षक गुण उसका अपनी दुर्बलताओं को महसूस करना एवं दूसरे की भावनाओं का आदर करना है। निशा से उसे पूर्ण सन्तोष प्राप्त होता है और अपने व उसके सम्बन्धों का एक आदर्श उपस्थित कर वह कुन्ती व सुधाकर द्वारा उठाई गई समस्या का हल

प्रस्तुत करता है। अचल उपन्यासकार की स्वयं की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है। उसके मुख से उपन्यासकार ने समाज व उसकी समस्याओं के विषय में अपने प्रगतिशील विचारों को स्पष्ट किया है। उसका चरित्र पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता से प्रभावित युवकों के लिये एक आदर्श है!

निशा के विषय में हमें विशेष नहीं कहना। प्रारम्भ में तो उसकी ओर से उपन्यासकार कुछ कुछ उदासीन रहा है हाँ बाद को जब अचल से उसका विवाह होता है तब वह हमारी दृष्टि को अपनी ओर अधिक केन्द्रित करती है। विधवा होकर अचल उसे पति रूप में प्राप्त होता है और अचल की महानता के सम्मुख वह नतमस्तक हो जाती है। अचल की भावनाओं का आदर करते हुए उसकी इच्छाओं और आवश्यकताओं केअनुरूप अपने को ढालकर वह सुखी दाम्पत्य जीवन का निर्वाह करती है। अचल और उसके सुखी जीवन को लेकर एक प्रश्न उठाया जा सकता है! वह यह कि चूंकि वह विधवा थी और अचल उससे विवाह कर उसे अपनाता है इसी कारण निशा अचल के व्यक्तित्व में अपने खुद के व्यक्तित्व को लीन कर देती है और उसके सुख में सुख व दुख में दुख मानती है और यही कारण है कि अचल और निशा के वैवाहिक जीवन में कटुता नहीं उत्पन्न होती। परन्तु यदि वह विधवा न होती और अचल उससे पहले ही विवाह कर लेता तो हो सकता है कि वह भी कुन्ती की ही भाँति अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, अधिकारों आदि के लिये लड़ती या कम से कम अचल के सम्मुख इतनी निरीह न हो जाती और तब उनके दाम्पत्य जीवन में भी उसी प्रकार कटुता आ सकती थी।

अचल और निशा के पीछे उद्धृत किये गये वार्तालाप से उपर्युक्त शङ्का का समाधान हो जाता है। निशा यदि विधवा न भी होती तब भी अचल के साथ उसका जीवन सुख से बीतता। अचल का चरित्र, उसकी मनोवृत्ति अस्थिर न थी! निशा का विधवा न होना उनके सम्बन्धों में कोई नई बात नहीं उत्पन्न करता। वे दाम्पत्य जीवन के सुख के रहस्य को जानते थे और उन्होंने कुन्ती और सुधाकर के सम्बन्धों को लेकर उसे स्पष्ट भी कर दिया है। एक दिन निशा ने अचल को बताया कि कुन्ती और सुधाकर में अनबन सी रहती है। उसने अचल से इसका कारण पूछा, अचल ने उत्तर दिया—"पति पत्नी में कुछ अनबन का हो जाना कुछ आश्चर्य की बात तो है नहीं। मेरे तुम्हारे बीच में भी हो सकती है।"

निशा इसे असम्भव कहती है। परन्तु अचल कहता है—'क्यों असम्भव क्यों?'

निशा पुनः उससे पूछती है—'कैसे?'

अचल उत्तर देता है—"देह की माँग को पूरा करने के लिये आरम्भ में प्यार

दुलार की झड़ी लगा दी। फिर हुआ कुपच ! या देह की माँग का आरम्भ से ही निरोध कर उठे—विदेह प्रेम की उपासना में जो भाग्य से कुछ कम सम्भव है। बस गृह कलह छिड़ी। देह की माँगों और उन माँगों के निग्रह का समन्वय ही उस अनबन को असम्भव बना सकता है। साथ ही एक दूसरे का विश्वास और रक्तगत कमजोरियों की माफी के लिये सबल हृदय की शक्ति !!"

इस प्रकार हम देखते हैं कि चरित्रों के चित्रण और समस्याओं के समाधान में लेखक सफल है। सभी चरित्र अपनी अपनी विशेषताओं और सबलताओं से पूर्ण हैं। निष्कलङ्क भी सभी हैं। हाँ पारस्परिक विश्वास और स्थिर विचार जहाँ एक दम्पति के जीवन को सुखमय बनाते हैं वहाँ पारस्परिक अविश्वास और अस्थिर विचार दूसरे को दुखों के गर्त में ढकेल देते हैं।

उपन्यास सुन्दर और आकर्षक है। वर्मा जी की सफलता असंदिग्ध है। जो तीव्रता और गहराई इस उपन्यास में है वैसी कम पाई जाती है।

(१) प्रेम की भेंट :—[१९५१]

प्रेम में कितनी तीव्रता, जलन और घुटन होती है, इसका अनुमान वर्माजी के प्रस्तुत उपन्यास से मिलता है ! कथा साधारण है जो संक्षेप में निम्नलिखित है—

धीरज एक पढ़ा लिखा नवयुवक है और गाँव में रहकर खेती बारी के कार्य को करता है। अध्ययन और ग्रामीण जीवन की ओर उसकी अत्यधिक रुचि है। गाँव में लगातार दो तीन साल से वर्षा न होने के कारण अकाल पड़ता है। ग्रामवासी गाँव छोड़कर दूसरे स्थानों में चले जाते हैं। धीरज का एक सम्बन्धी कम्मोद तालबेहट गाँव में रहता था। धीरज भी वहीं चल देता है। कम्मोद के यहाँ उसकी पुत्री सरस्वती व दूर के रिश्ते की एक विधवा बहू उजियारी भी थी। दोनों समवयस्क और सुन्दर थीं ! धीरज के तालबेहट पहुँचने पर कम्मोद उससे सहानुभूति प्रकट करता है और उससे वहीं रहकर खेती बारी करने को कहता है। धीरज वहीं रहने लगता है। सरस्वती व उजियारी के विनोदपूर्ण वार्तालाप और उनकी खिलखिलाहटों से घर का वातावरण गुँजायमान रहता है ! धीरज सोचता क्या इन लोगों के पास हँसने के अतिरिक्त और कोई कार्य नहीं है ? परन्तु उसे भी आनन्द आता और सुख मिलता ! धीरज जब कभी पुस्तकों में यह पढ़ता कि अमुक स्त्री अथवा पुरुष ने पारस्परिक प्रेम में असफल हो कर आत्महत्या करली तो उसे हँसी आती ! उसे विश्वास न होता कि कोई ऐसा भी कर सकता है।

एक दिन कम्मोद के यहाँ उसका एक सम्बन्धी नन्दन आता है। नन्दन युवक था और रूपवान भी ! कम्मोद उसे अपनी पुत्री के लिये चुनता है। उसका विशेष ध्यान रखता है। उजियारी नन्दन की चर्चा करके सरस्वती को चिढ़ाती पर सरस्वती सदा ही उसकी बात को टाल जाती ! एक दिन सरस्वती को खेत में काम करते २ मूर्छा आ जाती है, धीरज भी वहीं था ! वह उसे अपनी बाँहों में उठाकर घर लाता है। कम्मोद को धीरज का यह कार्य अखरता है और वह खेत जाने के लिये सरस्वती पर रोक लगा देता है।

धीरज उजियारी को भौजी कहता था ! अत्यधिक परिश्रम के कारण एक दिन उसे ज्वर हो जाता है ! रात्रि को उसने पीने के लिये पानी माँगा ! कोई दबे पाँव आकर पानी का लोटा चुपचाप उसके सिरहाने रख गया। धीरज ने पुकारा 'भौजी !! उत्तर मिला नहीं' !! दिन बीतते जाते हैं। धीरज स्वस्थ हो जाता है। जब धीरज खेतों से लौटता तो अपनी सारी पुस्तकों को सुव्यवस्थित ढंग से रखी हुई पाता। वह

यह जानने का प्रयत्न करता कि उसकी पुस्तकों को कौन सजा कर रख देता है पर कुछ न समझ पाता।

एक दिन धीरज ने खेत से लौटने पर सरस्वती को घर के दरवाजे पर बैठी हुई पाया। उसे लगा जैसे सरस्वती "नन्दन कानन की अधिष्ठात्री हो।" सरस्वती ने भी धीरज को देखा! धीरज ने पुनः नेत्र उठाये पर सरस्वती जा चुकी थी।

धीरज एक दिन झाँसी गया और लौटते समय सरस्वती के लिये एक साड़ी मोल ली जिस पर उसने अपने हाथों से टाँका—प्रेम की भेंट। सरस्वती को देखते ही उसने उसे साड़ी दिया! सरस्वती ने साड़ी के कोने में टँके अक्षर पढ़ लिया और उसे चुपचाप अपनी सन्दूक में रख लिया।

उजियारी धीरज को सरस्वती की ओर झुकता देख कर कुढ़ती है कारण वह भी धीरज को चाहती थी। धीरज उजियारी के प्रेम से बिलकुल अपरिचित था। उजियारी धैर्य खो चुकी थी! एक दिन अकेले में धीरज को पाकर उसने उससे कहा—"मैं केवल हाँ या न में एक प्रश्न का उत्तर चाहती हूं। क्या तुम मुझको चाहते हो या नहीं?" धीरज उजियारी का प्रश्न सुनते ही सहम गया परन्तु बोला—"जो मुझ पर कृपा करते हैं मैं उन सबको चाहता हूं।" उजियारी व्यथित थी! उसने धीरज से कहा—"मुझ अकेली को चाहो......।"

आखिर उजियारी इतना व्यग्र क्यों हुई? नन्दन ने एक प्रणय पत्र सरस्वती को दिया था जिसमें उसने सरस्वती से उसके प्रणय की भीख मांगी थी। सरस्वती ने उस पत्र को पढ़कर रख दिया था। उजियारी को वह पत्र मिल गया और उसने उसे धीरज का पत्र समझा। यही कारण था कि वह भी से स्पष्ट रूप में उसका प्रणय मांग उठी। उजियारी ने कम्मोद से भी आग्रह किया कि वह सरस्वती का विवाह नन्दन से शीघ्राति-शीघ्र कर दे कारण वह अपने व धीरज के बीच सरस्वती को न देखना चाहती थी। कम्मोद को भी धीरज और सरस्वती के सम्बन्धों के प्रति शङ्का हो गई थी। वह धीरज से मन ही मन घृणा करने लगा था! उजियारी को इतने से ही सन्तोष न हुआ! वह सरस्वती को अपनी राह से बिल्कुल हटाना चाहती थी! उसने उसेविष देने का निश्चय किया।

सरस्वती जाँघ में फोड़ा हो जाने के कारण कुछ दिनों से बीमार थी। उसे ज्वर भी आने लगा था। उजियारी ने खीर बनाई और उसमें विष मिल दिया। सरस्वती से खीर खाने का आग्रह किया। सरस्वती की इच्छा खीर खाने की न थी! उजियारी खीर को ढँक कर पड़ोस में चली गई। इतने में ही धीरज भूखा प्यासा खेतों से लौटा। सरस्वती अकेले थी। धीरज उससे कई दिनों से मिल न पाया था!

वह सरस्वती के पास गया! उसकी दशा देख कर उसे बहुत दुख हुआ। भूख भी उसे जोरों से लगी थी! वह चौके में गया और उजियारी द्वारा ढकी खीर खा ली।

जब उजियारी लौटी तो उसने बर्तन में खीर न पाया। सरस्वती से पूछने पर पता चला कि खीर धीरज खा गया है। उजियारी को जैसे काठ मार गया। अपने बचाव के हेतु सरस्वती से बोली—"आजकल गाँव में एक विचित्र ज्वर फैल रहा है—एक रात्रि में ही लोग मर जाते हैं।" उसने खीर के बर्तन आदि साफ करके रख दिये।

विष का प्रभाव धीरज पर पड़ता है। वह ज्वर से तड़पने लगता है। बेहोशी में बार बार सरस्वती का नाम लेता। अपने जीवन के उन क्षणों को याद करता जब उसने सरस्वती को पाने की कल्पना की थी! कम्मोद वहीं था! धीरज के मुँह से सरस्वती का नाम सुनकर जल उठा। उठकर सरस्वती के पास गया। सरस्वती भी ज्वर से तड़प रही थी। वह धीरज की दी हुई साड़ी को छाती से चिपटाए थी। कम्मोद बल पूर्वक साड़ी छीन कर जला डालता है पर सरस्वती के हाथ में साड़ी का वह छोर रह जाता है जिस पर प्रेम की भेंट' टँका हुआ था।

धीरज की दशा बिगड़ जाती है। वैद्य उसे भूमि पर लिटा देने को कहते हैं। उधर सरस्वती चिल्ला रही थी! वह उजियारी से अपनी साड़ी माँगती है। उजियारी के यह कहने पर कि 'वह तो जला दी गई' वह कहती है—"तब तुमको पहिनूँगी। इधर आओ, तुम्हारे शरीर को नोचूँ।" उजियारी घबड़ा कर वैद्य को बुला लाती है! वैद्य के आने पर सरस्वती उससे कहती है—" वह आये? देखो यह साड़ी उन्होंने दी थी—इसमें क्या लिखा है, जानते हो?" वैद्य ने पढ़ा—'प्रेम की भेंट' !! सरस्वती बार बार सबसे यही प्रश्न करती है—वह आये? कब तक आयेंगे? आ गये वह?

धीरज भी शनैः शनैः प्राण छोड़ रहा था। उसने देखा—" घर के बाहर एक विमान खड़ा है। उसमें पहिये नहीं हैं। पंखे लगे हुए हैं। बैठने के लिये आसन बड़ा मुलायम! धीरज ने कहा—सरस्वती! मैं जाता हूं।

वह बोली—मैं भी साथ चलूँगी।

धीरज ने कहा—न, मैं अकेला ही जाऊँगा। उसमें एक ही के बैठने लायक जगह है।

सरस्वती बोली—तुम बड़े स्वार्थी हो। मुझे छोड़कर जा रहे हो? अच्छा जाओ, जब लौटकर आओगे, हृदय से न लगाऊँगी, सिर पर हाथ न फेरूँगी और मन की बात न कहूँगी।" धीरज विमान में बैठ जाता है। खूब उड़ता है और आखिर ऊब कर एक स्थान पर ठहर जाता है। वहाँ फिर सरस्वती को पुकारता है—कहाँ हो?

तुम्हारी प्यारी गोद कहाँ है ? उसमें मुझे अपना सिर रखना है।" धीरज ने देखा — '.अर्ध विकसित कलियों का मुकुट बाँधे और गले में पुष्पों का हार पहने सरस्वती पास ही बैठी है और उसके सिर को आश्रय देने के लिये उसकी जंघा प्रस्तुत है ।

'धीरज ने कहा—तुम्हारा फोड़ा न दुख जाय"।

सरस्वती ने कहा—वह तो कभी का अच्छा हो गया। अब तो केवल उसका चिन्ह है।

धीरजने अपना सिर उसकी जंघा में रख दिया और तृप्त नेत्रों से उसकी ओर देखने लगा। सरस्वती उसके मस्तक पर हाथ फेरने लगी। एक क्षण पश्चात अपने गले का हार उतार कर धीरज के गले में डाल दिया। धीरज का सब कष्ट दूर हो गया।

स्वप्न टूटा।

सरस्वती चीखी—आ गये वह ? 'नन्दन ने कोई उत्तर न दिया। गंगाजल ढूंढ़ कर पौर में (धीरज के पास) ले गया, उसकी जरूरत नहीं पड़ी।

धीरज ने टूटे हुए शब्दों में कहा—स ··· र ··· स ··· व ···ती के ··· च ··· र ··· ण ··· कमलों ··· में में ··· और उसकी हृदय गति बन्द हो गई। सरस्वती अब भी चिल्ला रही थी !

जहाँ तक कथानक का प्रश्न है उसमें कोई भी नवीनता नहीं। वह एक सस्ता प्रेम कथानक है। हाँ, वर्मा जी ने उसके प्रस्तुत करने में कुछ नवीनता अवश्य प्रदर्शित की है। वह नवीनता भी यहीं तक है कि नायक और नायिका के प्रेम का व्यक्तीकरण जब तक कथा चरम स्थिति में नहीं पहुंच जाती, नहीं होता। अन्त में ही हमें नायिका के हृदय में प्रेम की जो तीव्रता थी उसका अनुमान लगता है और तभी नायक के हृदय की तीव्रता का भी। वैसे उपन्यास भर में दोनों संयमित रहते हैं। यदि ऐसा न होता तो कथा बाजारू प्रेम कथा के अतिरिक्त और कुछ न रहती। उजियारी कथा में (Villain) के रूप में कार्य करती है और उसके क्रिया कलाप भी बिल्कुल स्वाभाविक हैं ! प्रेम में कितनी व्यक्तिगत प्रतिहिंसा होती है इसे उजियारी चरितार्थ करती है।

मुख्य पात्र भी चार हैं—कम्मोद, धीरज, सरस्वती और उजियारी। नन्दन कम्मोद और धीरज के बीच के सम्बन्धों में अलगाव तो उपस्थित करता है पर अपने व्यक्तिगत प्रयत्नों से नहीं। कम्मोद उसे देख कर स्वयं धीरज से खिंच जाता है क्योंकि वह उसके साथ सरस्वती का विवाह करना चाहता था। हो सकता है कि यदि नन्दन न आता तो कम्मोद धीरज के साथ सरस्वती को व्याह देता। कम्मोद जो कुछ करता है वह परिस्थितियों और परम्पराओं के अनुकूल स्वाभाविक है। उसके चरित्र में अत्यधिक दुर्बलताएं हैं पर उनका उत्तरदायित्व गाँव के पिछड़े हुए समाज पर है जिसे सर्वथा

उपेक्षित रखा गया है।

धीरज का चरित्र भी हमें आकर्षित नहीं करता। वह भी एक प्रेमी के रूप में ही हमारे सम्मुख आता है जिसे सरस्वती के प्रेम को प्राप्त करने की चिन्ता है। उसी उधेड़बुन में ही वह आदि से अन्त तक पड़ा रहता है। जैसे उसके अतिरिक्त उसका और कोई उद्देश्य ही न हो। सरस्वती के प्रेम को पाने के प्रयत्न में उजियारी की चपेट में धोखे से फंस कर प्राण गंवा देता है। उसके ऊपर हमें दया आती है। हाँ, अपने प्रेम में वह संयमित अवश्य रहता है। उश्रंखलता का अभाव ही उसे साधारण प्रेमियों की श्रेणी से कुछ ऊपर उठा देता है।

स्त्री पात्र दो हैं —उजियारी और सरस्वती।

सरस्वती भी अपने प्रेम में आदि से अन्त तक संयमित रहती है। उश्रंखलता उसमें भी नहीं देख पड़ती। धीरज से भी उसका प्रारम्भ से ही ऐसा व्यवहार रहता है कि कभी कभी तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह धीरज से प्रेम ही न करती थी। धीरज उससे पीने को पानी माँगता है। लोटा देकर चलते समय उससे कह जाती है—पीकर 'चबूतरे पर रख देना' और धीरज सोचता रह जाता है—'इस लड़की का स्वर बड़ा रूखा है, उजियारी का कण्ठ अधिक कोमल है'। धीरज उसके लिए साड़ी लाता है पर वह उसे भी रुखाई के साथ अस्वीकार सा कर देती है —"मैं ऐसी साड़ियाँ कब पहनती हूँ। मुझे अच्छी नहीं लगती हैं। भौजी को दे दो।"

परन्तु उसे अनुभव होता है कि इससे धीरज के हृदय को व्यथा पहुंची है। इस कारण एक दिन जब धीरज कुएं से पानी भर रहा था वह उससे कहती है —

तुमने बुरा किया, साड़ी क्यों लाये?

क्या बुरी है?

बहुत अच्छी है परन्तु लानी नहीं चाहिये थी।

भौजी को क्यों नहीं दे दी! कह देतीं तुम्हारे लिये लाई गई है।

सरस्वती ने निवारण करते हुए कहा — अब पानी मत भरो दुख होता है!!

यहीं हमें पता चलता है कि धीरज के लिये उसके हृदयमें जगह अवश्य है। जब कम्मोद उससे बलपूर्वक साड़ी छीन लेताहै और उसकी धज्जी २ कर देने के लिये कहता है तब वह पिता से भी कहती है —मेरी भले ही कर डालो। यह अमर है, मेरी है। यहीं आ कर उसके प्रेम में तीव्रता आती है।

धीरज के अन्तिम क्षणों में वह उसे देखने के लिये अनुरोध करती है पर रोक दी जाती है। धीरज की मृत्यु हो जाती है और वह चीखती चिल्लाती ही रह जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सरस्वती के हृदय में भी प्रेम की ज्वाला भीषणता से सुलग रही थी।

उसके प्रेम का अंत भी दुखपूर्ण होता है और उसे भी हमारी सहानुभूति ही प्राप्त होती है। अपने संयम के कारण वह भी साधारण प्रेमियों की कोटि से कुछ ऊपर उठ जाती है। उसमें भी दुर्बलताएं हैं और वह उन्हीं का शिकार भी बनती है। और कोई विशेष बात उसके चरित्र में उल्लेखनीय नहीं। झूठी मान मर्यादा की भावना, समाज के परम्परागतत बन्धन किस प्रकार भोले भाले प्रेमी प्रेमिकाओं के जीवन को दुखमय बना देते हैं, इस उपन्यास से हमें उनका स्पष्ट परिचय मिल जाता है।

उजियारी का चरित्र अधिक स्वाभाविक और हमारी सहानुभूति का अधिक पात्र है यद्यपि उसकी प्रतिहिंसा का स्वरूप अवश्य विकृत है। वह बाल विधवा है। समाज की झूठी मर्यादाएं उसे जीवन भर जलने के लिये छोड़ देती हैं। वह उनके सम्मुख झुका दी जाती है, उसकी सारी व्यक्तिगत इच्छाएं, अभिलाषाएं समाज की वेदी पर चूर चूर कर दी जाती हैं। धीरज उसके जीवन में आता है। उसकी अतृप्त वासना जाग उठती है। वह धीरज को अपना सर्वस्व अर्पित करने को प्रस्तुत हो जाती है पर धीरज से भी उसे कोई प्रश्रय नहीं मिलता। धीरज भी उसके प्रेम को स्वीकार करने में हिचकता है। चारों ओर से उपेक्षित उजियारी की प्रतिहिंसा जाग उठती है और वह सरस्वती को अपने मार्ग से हटाना चाहती है कारण धीरज और उसके बीच वही बाधा स्वरूप खड़ी थी। उपन्यासकार ने भी उसके साथ सहानुभूति नहीं प्रदर्शित की और उसने भी उसे दण्ड दिया। जिस धीरज के लिये वह सरस्वती के प्राण लेना चाहती है वही धीरज ही उसके हाथों मारा जाता है। जैसे उपन्यासकार ने भी यही सोच लिया हो कि विधवा को प्रेम करने का कोई अधिकार नहीं है। 'अचल मेरा कोई' में विध-वाओं के प्रति वर्मा जी का जो दृष्टिकोण है उससे उनका यह दृष्टिकोण बिल्कुल विपरीत है, भले ही अनजाने में यह सब कुछ हुआ हो। उजियारी सब ओर से असफल होती है और उपन्यासकार द्वारा जीवन भर पश्चाताप की आग में जलने को छोड़ दी जाती है। यही कारण है कि हमारी सबसे अधिक सहानुभूति उजियारी के साथ है।

प्रस्तुत उपन्यास में वर्मा जी का दृष्टिकोण अत्यधिक सीमित है। व्यक्ति के सुखों और दुखों का वर्णन करके ही वह रह गये हैं। उनकी दृष्टि इससे अधिक कुछ नहीं देख सकी। बाल विधवाओं की समस्या को तो इसमें उन्होंने उजियारी के चरित्र द्वारा उभारा है पर ऐसा प्रतीत होता है जैसे यह समस्या भी अनजाने में ही उभर गई हो क्योंकि न तो समस्या पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई प्रकाश ही डाला गया है और न उजियारी के साथ वर्मा जी की कोई सहानुभूति ही रही है। सीमित दृष्टिकोण और व्यापक जीवन के चित्रण के अभाव ने उपन्यास को साधारण कोटि के उपन्यासों की श्रेणी में ला दिया है। उपन्यास का और कोई महत्व नहीं।
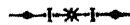
[३] लगन:—(१९५१)

प्रेम की भेंट की तरह यह भी एक छोटा सा उपन्यास है पर इसमें व्यापकत्व अधिक है और आकर्षण भी। पारस्परिक दर्प और अभिमान के फलस्वरूप उत्पन्न प्रतिक्रियाएं और उनका परिणाम एक सीमित कथावस्तु के भीतर कुशलता पूर्वक दिखाया गया है। जातिगत मर्यादा, अभिमान, लोभ और झूठा आत्म सम्मान जो न जाने कितने हृदयों को मिलने से आज तक रोकता आया है इस उपन्यास में भी अपना कार्य करता है परन्तु प्रेम की परिपक्वता, प्रगाढ़ता और साहस उसे सफल नहीं होने देते।

बजटा और बरौल ग्रामों की दूरी तो अधिक न थी, पर दोनों के बीच में बेतवा नदी अवश्य उन्हें अलग किये थी। बरसात में बेतवा की प्रचण्ड बाढ़ दोनों ग्रामों के आवागमन के मार्गों को अवरुद्ध कर देती। बजटा के शिबू माते और बरौल के बादल चौधरी जाति के तो अहीर थे पर धनवान होने के कारण आस पास के गाँवों में उनका रोब था। पशु पालन ही उनका एकमात्र धन्धा था। शिबू माते का लड़का देवीसिंह अपने प्रचण्ड साहस के लिए आस पास के गावों में विख्यात था। ढोर लिये जंगलों २ घूमना ही उसकी दिनचर्या थी। बादल चौधरी के भी एक लड़की थी—रामा, जिसके विवाह की चिन्ता उन्हें परेशान किये थी। घटनाक्रम के अनुसार देवीसिंह और रामा का सम्बन्ध तय हो गया। शिबू माते ने दहेज में १०० भैंसे माँगीं थीं। बादल मान तो गया पर पेट की बात को प्रकट न किया।

बारात बरौल पहुंची! भैंसें न दी गईं। वाद विवाद बढ़ा और शिबू बधू को बिना बिदा कराये ही लौट आया। बादल भी अकड़ गया। उसने भी निश्चय किया कि वह स्वयं भी लड़की नहीं भेजेगा भले ही उसका दूसरा विवाह कर दे। यद्यपि उसे विश्वास था कि शिबू एक न एक दिन लड़की बिदा करा लेगा। दिन बीतते गये पर दोनों की अकड़ न गई। बादल के एक लड़का भी था — बेताली! उसने बहन का विवाह दूसरी जगह कर देने का निश्चय किया। बादल की आन्तरिक इच्छा तो न थी पर मान गया।

देवीसिंह जब से बारात से लौटा था तभी से उद्विग्न था। उसका हृदय रह रह कर विद्रोह कर उठता पर बाप के सम्मुख जबान खोलने का साहस न होता। जब उसे यह पता चला कि रामा का विवाह दूसरी जगह होने वाला है, वह अत्यधिक व्यग्र हो उठा। उसके पिता ने तो साफ कह दिया था कि "अब धरे रहें छाती पर अपनी लड़की

को, चाहे कहीं बिठला दें"। देवीसिंह इसके लिये तैयार न था। उसने सोचा—"मेरे जीते जी दूसरे ठौर बिठाल देने की बात। असम्भव।" देवीसिंह ने गुप्त रूप से बरौल जाकर ठीक ठीक बात पता लगाने का निश्चय किया। एक दिन बेतवा को पार कर बरौल पहुँच गया। बरौल पहुंच कर चुपचाप बादल चौधरी के घर की ओर चल दिया। घर सामने था। देवीसिंह के हृदय में द्वन्द्व मचा हुआ था। ब्याह के बन्दन वार अब भी लटके थे। देवीसिंह ने सोचा—"जब तक यह वन्दनवार नहीं नोचा गया तब तक कहीं दूसरे घर कैसे बिठलाई जायगी? इसी बन्दनवार के नीचे से कई बार इसी घर के भीतर गया था। वह भी इसी के नीचे से नित्य इसी धरती पर निकलती रहती होगी और मैं इस समय यहाँ खड़ा हूँ। कुण्डी खटखटाने की देर है कि भीतर से उत्तर मिलेगा। किसका? जिसने मेरे पिता को गालियाँ दी थीं, जिसने बारात को जूतों से पिटवा कर बरौल से बाहर करने की धमकी दी थी। परन्तु वह मुख! वह लावण्य! वह कोमलता! उसका क्या दोष! उसने क्या किया था जिसका दण्ड दिया जाने वाला है? उसके जी में भी, उसके हृदय के एक छोटे से कोने में भी, क्या मेरे लिए एक छोटा सा स्थान होगा? न हो! न हो! यदि न हो तब कोई बात ही नहीं है और यदि हो! तब उसकी आहुति क्यों करने दी जाय! उसका नाश क्यों अपने हाथों करने दिया जाय!"

देवीसिंह विचलित हो उठा! विवश था, चुपचाप लौट आया।

बरौल के पास के ही एक गाँव के युवक पन्नालाल से बेताली रामा का विवाह करना निश्चित कर चुका था। पन्नालाल चरित्र भ्रष्ट युवक था पर बेताली इसे न जानता था। एक दिन देवीसिंह पुनः बरौल पहुँचा! उसकी भेंट पन्नालाल से हुई पर वह उसे पहचानता न था। परन्तु उसे यह विश्वास हो गया कि हो न हो यह वही व्यक्ति है जिसके साथ रामा का विवाह होने जा रहा है। पन्नालाल चौधरी के घर जा रहा था। देवीसिंह ने उसके लौटने तक उसकी प्रतीक्षा की।

जहाँ देवीसिंह बैठा था वहीं एक नाला था! गाँव की स्त्रियाँ उसमें नहाने आतीं। शाम को रामा भी अपनी सहेली सुभद्रा के साथ वहीं स्नान करने आई। पन्नालाल भी लौट रहा था। उन्हें देख कर ठिठक गया। वह रामा को अपनी ओर आकर्षित करना चाहता था। देवीसिंह एक शिला की आड़ से सब कुछ देख रहा था। वह रामा को पहचान गया। पन्नालाल ने भी देवीसिंह को देख लिया और भड़क उठा। रामा ने देवीसिंह को देखा और उसके हृदय ने कहा—"हो न हो ये वही हैं। देवीसिंह से अत्यन्त स्निग्ध स्वरों में बोली—झगड़ा मत करो। घर जाओ! साँझ हो गई है! मार्ग बीहड़ है।"

देवीसिंह चल दिया। पीछे लौट कर देखा। रामा के नेत्रों से उसके नेत्र टकराये! आज देवीसिंह अत्यधिक प्रसन्न था। वह आगे बढ़ गया।

बरसात के दिन थे! बेतवा उभार पर थी! देवीसिंह चुपचाप उठा और भरी बेतवा पार कर बरौल पहुंचा। रामा के घर के पास पहुंचा कि मन में तर्क वितर्कों की झड़ी लग गई। निश्चय किया बादल जू और उसके लड़कों को जवाब दे लूँगा। "गाँव वालों से बात कर लूँगा। उन्हें भी तो पता चले कि इस विषय में मेरे क्या विचार हैं? कदाचित मेरे विचारों से परिचित न होने के कारण बादल जू इत्यादि इस तरह के संकल्प विकल्प में पड़े हों।" पर दूसरे ही क्षण सोचा "परन्तु बजटा में क्या होगा?"

कुत्ते भौंक पड़े। बादल मकान से निकला और उसने देवीसिंह को पहचान लिया। बोला—"जाओ जाओ, बात अच्छी नहीं है। बुरा किया"। देवीसिंह लौट पड़ा। ऊपर की खिड़की से रामा झाँकी! चलते हुए देवीसिंह ने उसे देख लिया। देवीसिंह हिम्मत न हारा। एक दिन पुनः भीषण बरसात में रामा के घर पहुंचा। उसे मालूम था कि रामा कहाँ सोती है? धीरे से पुकारा। खिड़की खुली! दोनों एक दूसरे को पहचान गये। रामा ने ऊपर से एक धोती लटका दी! देवीसिंह ऊपर चढ़ गया। देवीसिंह डर गया था कि कहीं घर वालों को पता न लग जाय पर रामा निडर थी। उसने कहा—"मुझको इसका क्या भय है? मेरे देवता मेरे पास हैं। मेरा कोई क्या कर सकता है? बहुत होगा अभी २ आपके साथ जाने को कह देंगे। चली जाऊँगी।" रामा देवीसिंह के पैरों पर गिर पड़ी। देवीसिंह चल पड़ा। रामा ने कहा—"कल मत आइयेगा" पर देवीसिंह ने कुछ नहीं सुना!

दूसरे दिन त्योहार था! घर पर पन्नालाल आया हुआ था। देवीसिंह भी बरौल पहुंचा और रामा को खिड़की के नीचे से पुकारा। रामा ने धोती लटका दी। देवीसिंह ऊपर चढ़ गया! देवीसिंह को देख कर उसकी आँखों में आँसू आ गये। बोली—"इतना पानी, ऐसी अंधेरी रात, इतनी पहाड़ियाँ और ऐसा जंगल! न मगरों का डर और न साँप बिच्छुओं का, और मैं अटारी पर यहाँ सुख से बैठी हूं।" देवीसिंह ने उसे धीरज बँधाया! कुछ क्षण उपरान्त चल दिया! चलते समय रामा उसके आलिंगन में बँध गई! देवीसिंह को वैसा सुख कभी न मिला था। सुबह होते २ घर आ गया।

भादों की अमावस्या थी! पानी जोरों से बरस रहा था! पन्नालाल आया हुआ था और रात भर उसने वहीं रुकने का निश्चय किया। वह पौर में लेटा हुआ था पर रामा आज अपनी कोठरी में न लेटी। आधी रात गये पन्नालाल उठ कर

रामा की कोठरी में पहुंचा कि शायद रामा वहीं हो ? रामा को न पाकर वहीं चारपाई पर लेट गया। इतने में ही नीचे से देवीसिंह ने रामा को पुकारा। पलक मारते ही पन्नालाल सब समझ गया। उसने धोती लटका दी! देवीसिंह ऊपर आगया। रामा को भी शंका हुई कि क्यों देवीसिंह न आये। वह भी कोठरी की ओर चल दी। तब तक भीतर सारा भेद खुल चुका था और पन्नालाल देवीसिंह के पैरों में लिपटा शोर मचा रहा था। रामा सन्न रह गई। सब लोग इकट्ठा होगये। बेताली भी ऊपर पहुंच गया। दरवाजे अन्दर से बन्द थे। बेताली ने उन्हें तोड़ना प्रारम्भ किया। बादल चौधरी सब कुछ समझ गये। उन्होंने बेताली को मना किया पर वह न माना। देवीसिंह ने पन्नालाल को खूब मारा! परन्तु अन्दर से वह यही कहता रहा—"मैं साँकल खोले देता हूं, किवाड़ मत फाड़ो।" बेताली न माना! बादल चौधरी को यह क्रोध था कि आखिर पन्नालाल यहाँ क्यों आया ?

दरवाजे खुले और देवीसिंह बाहर आया, तब तक रामा घर से जा चुकी थी। देवीसिंह शीघ्रता से नीचे की ओर जाने को हुआ कि सीढ़ियों पर पैर फिसल गया और वह घायल हो गया। उसे चारपाई पर लिटाया गया! पन्नालाल ने बादल चौधरी से पूछा—यह कौन है ? बादल ने उत्तर दिया—"हमारे दामाद! बजटा वालों के लड़के!" पन्नालाल सहम गया। रामा की खोज प्रारम्भ हुई! देवीसिंह स्वयं उसे ढूँढ़ने जाना चाहता था पर बादल रुंधे हुए गले से बोला "क्या तुमको भी अब हाथ से खोवें ?"

रामा घर से निकल कर नदी की ओर गई! बेतवा बाढ़ पर थी। वह उसमें कूद पड़ी। तैरना जानती थी! उस पार पहुंची और सीधे बजटा जाकर शिवू माते के घर के सामने खड़ी होगई। बजटा में देवीसिंह की खोज हो रही थी। एकलौते बेटे के शोक में माते पागल थे। घूँघट निकाले हुए सामने एक स्त्री को बुरी दशा में देख आश्चर्य चकित होगये। रामा ने संकेत से बताया कि वह देवीसिंह का पता जानती है। शिवू माते ने उसका परिचय पूछा। रामा ने एक लड़के को बुला कर उसे अपना नाम बता दिया और साथ ही देवीसिंह का पता भी। रामा का परिचय पाते ही शिवू प्रसन्नता से भर उठा। रामा को घर के भीतर ले जाकर पास पड़ोस की स्त्रियों को बुला कर कहा—"अरी, आओरी! आओ! देख जाओ! कैसी हीरा सी बहू आई है ? देवीसिंह लिवा लाया है। आज ससुराल में है, कल आ जायगा। बदमाश ने उसे अकेला ही पहुंचा दिया। नदी तैर कर आई है। दुबली पतली है परन्तु बड़ी वीर है। देवीसिंह से एक हजार गुना बढ़ कर है। आज मैं तुम्हारे सामने सौ भैंसें पुण्य करता हूँ। फिर बच्चों की तरह हिलक हिलक कर खूब रोया।"

उसने तुरन्त कुछ आदमी इकट्ठा किये और बरौल पहुंचा। बादल चौधरी से अपने अपराधों की क्षमा माँगी। बादल स्वयं पश्चाताप दग्ध थे। बेताली भी पश्चाताप से भूमि पर गड़ा सा जा रहा था। सबके दिल साफ थे। देवीसिंह को जब मालूम हुआ तो प्रसन्नता से फूल उठा। बादल चौधरी ने तुरन्त दहेज की सौ भैंसें बजटा भेज देने का आदेश दिया। शिबू बोला—"यहाँ वहाँ की सब सम्पति इन्ही लड़के लड़कियों की है। जब जरूरत पड़ेगी माँग लूँगा। अभी क्या अटक है।" पर बादल न माना!! दोनों एक दूसरे से लिपट कर खूब रोये।

कथा साधारण है पर उसमें एक गति, एक तीव्रता अवश्य है जो पाठकों को आकर्षित किये रहती है। 'प्रेम की भेंट' की भाँति इसमें उपन्यासकार का दृष्टिकोण अधिक सीमित नहीं है। प्रेम की भेंट में तो एक समस्या केवल उभर कर ही रह गई थी परन्तु इसमें समस्या उभारी भी गई है और उसके समाधान का स्पष्ट संकेत भी दिया गया है। दहेज की समस्या 'लगन' की प्रमुख समस्या है। दहेज को न दे सकने के कारण या जान बूझ कर न देने के कारण शिबू माते वधू को विदा नहीं कराता और बारात लौटा ले जाता है। ऐसे व्यक्ति समाज में एक नहीं, न जाने कितने हैं जो लोभ और झूठे आत्म सम्मान के मोह में पड़ कर भोले भाले युवक युवतियों के जीवन से खेल जाते हैं। दहेज न दे सकने के कारण माता पिता अपनी लड़कियों को उम्र भर घर में बिठाये रहने को बाध्य हो जाते हैं और परिणाम स्वरूप आए दिन दुखद घटनाएँ घटा करती हैं। यह प्रथा आज हिन्दू समाज में घुन की तरह व्याप्त है। इसका निराकरण होना चाहिए और उसके लिए समाज के प्रगतिशील विचारधारा वाले युवक और युवतियों को आगे आना चाहिए। उपन्यास में देवीसिंह और रामा वातावरण और अपने संस्कारों आदि को देखते हुए अत्यधिक प्रगतिशील हैं परन्तु इतनी प्रगतिशीलता पर्याप्त नहीं है। देवीसिंह और रामा एक तो हो जाते हैं पर उनके मिलन में समाज और रूढ़ियों के प्रति उनके विद्रोह का योग कम है, पारस्परिक आकर्षण ही उन्हें एक करता है। परन्तु गाँवों में जीवन बिताने वाले, तथा-कथित शहर के शिक्षित समाज द्वारा उपेक्षित, ये ग्रामीण इतना ही कर लेते हैं तो हमें उनकी पीठ ठोकनी चाहिये। अनुकूल वातावरण, शिक्षा और प्रोत्साहन इस प्रकार के युवक और युवतियों द्वारा समाज तक को आमूल परिवर्तित करा सकता है। लेखक ने देवीसिंह और रामा के रूप में पर्याप्त सीमा तक प्रगतिशील युवक युवतियों का उदाहरण प्रस्तुत किया है। जैसा हम कह चुके हैं कि आवश्यकता इससे भी अधिक है, आवश्यकता खुले रूप से समाज की जर्जर मान्यताओं और प्रथाओं के विरुद्ध संघर्ष करने की है और तभी देश और समाज की वास्तविक प्रगति हो सकती है।

'प्रेम की भेंट' के सरस्वती और धीरज की तुलना में देवीसिंह व रामा अत्यधिक गतिवान हैं। सरस्वती दुर्बल थी, समाज के विरुद्ध खड़े होने की शक्ति उसमें न थी, धीरज भी उतना ही दुर्बल था! यही कारण है कि दोनों घुट घुट कर अपने प्रेम को दुखमय अन्त में परिवर्तित कर लेते हैं। यदि उनमें साहस होता, समाज की रूढ़ियों के विरुद्ध उठ खड़े होने की शक्ति होती तो वे भी अपने प्रेम को देवीसिंह और रामा की भाँति एक सुख पूर्ण अन्त में परिवर्तित कर सकते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रस्तुत कथानक में जो समस्या उठाई गई है उसका निर्वाह अधिक सावधानी के साथ किया गया है और वह एक निश्चित समाधान की ओर संकेत करती है! लेखक ने समस्या का समाधान प्रगतिशील युवक युवतियों पर ही छोड़ दिया है। रामा और देवीसिंह जो कुछ करते हैं वह एक सीमित प्रयत्न हैं, समस्या अत्यधिक व्यापक है और उसके समाधान के लिए भी उतनी ही व्यापकता से, प्रयत्न भी होने चाहिये।

इस छोटी सी कथा को उपन्यास का रूप देने में लेखक का उद्देश्य यही रहा है कि समाज में फैली उश्रंखलता, उसका खोखलापन, उस समाज में रहने वालों का ही गढ़ा हुआ है और यदि वे इसे दूर करने के लिए ईमानदारी और निष्ठा से प्रयत्न करें तो वह दूर भी हो सकता है।

कथानक का एक अन्य आकर्षण प्रेम की प्रगाढ़ता है। सच्चा प्रेम सारे बंधनों को छिन्न भिन्न करने की शक्ति रखता है भले ही कुछ परिस्थितियों में उसे तत्कालिक सफलता न प्राप्त हो। चरित्रों की दृढ़ता ही प्रेम को परिपक्व करती है। देवीसिंह और रामा इसके उदाहरण हैं।

गाँवों के स्वच्छंद वातावरण में इठलाता हुआ कथानक आगे बढ़ता रहता है और चरम स्थिति पर पहुँच कर समाप्त हो जाता है। वातावरण कथानक की रमणीयता बढ़ाने में अत्यधिक समर्थ हुआ है। कथानक उद्देश्य गर्भित है और उस उद्देश्य को पूरा भी करता है। ग्रामीण जीवन की सुन्दर झलक कथानक को और भी ग्राह्य बना देती है। गाँवों में ही वास्तविक और सच्चा रोमांस होता है इसे भी कथानक ने स्पष्ट कर दिया है।

चरित्र चित्रण के सम्बन्ध में केवल दो बातें कहनी हैं। पात्र तो अनेक हैं पर प्रमुख रामा और देवीसिंह हैं। इन चरित्रों को बादल, शिबू, बेताली और पन्नालाल के चरित्र उत्कर्ष प्रदान करते हैं। बादल और शिबू माते का झगड़ा वास्तविक घटनाओं की सृष्टि करता है जिनकी चपेट में देवीसिंह और रामा आते हैं। देवीसिंह और रामा के बीच में क्षणिक व्यवधान के रूप में पन्नालाल खड़ा होता है। पर ये दोनों उस

व्यवधान को चीर कर पुनः एक हो जाते है ! इनका एकीकरण बादल और शिबू माते का एकीकरण बनता है, इनकी जाति का एकीकरण बनता है ।

देवीसिंह और रामा दोनों के चरित्र दृढ़ हैं । देवीसिंह पत्नी को बिना बिदा कराये लौट तो आता है पर उसका हृदय विद्रोह करता है । परंपरायें और प्राचीन मान्यताएँ उसे हृदय की बात करने को तो रोकती हैं पर वह बंधन में नहीं रह पाता और रामा को अपनाने की ठान लेता है । भीषण बरसात में भरी बेतवा को पार कर बरौल जाता है और रामा से मिलता है ।

रामा भी देवीसिंह के प्रेम का परिचय प्राप्त कर उभरती है । प्राचीन मान्यताएँ और सामाजिक बंधन उसे भी पिता और भाई के सम्मुख मुँह न खोलने के लिए बाध्य करते हैं पर हृदय में वह भी अपने कर्तव्य को निश्चित कर लेती है । उसमें देवीसिंह से अधिक साहस व दृढ़ता है । देवीसिंह उससे चुपचाप मिलने में डरता है पर वह निधड़क थी । देवीसिंह से कहती है—"मुझे इसका क्या भय ?... ... । मेरा कोई क्या कर सकता है ? बहुत होगा अभी २ जाने को कह देंगे । चली जाऊँगी ।" एक दिन सारा भेद खुल जाता है और रामा के सामने ससुराल जाने के अतिरिक्त और कोई उपाय शेष नहीं रहता ! वह भी घर से निकल कर बरसात की बेतवा पार कर अपनी ससुराल पहुँच जाती है जहाँ शिबू उसे हृदय से लगा लेता है । पारस्परिक वैर का अंत होता है और देवीसिंह व रामा विजयी होते हैं ।

बादल चौधरी और शिबू माते परंपरागत रूढ़ियों के पोषक पिताओं के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं, जिनका जातिगत दर्प और अहंकार तथा लोभ दो भोले भाले प्राणियों के जीवन के साथ खेलने को कमर कस लेता है पर उन्हें उन्हीं की सन्तानों द्वारा उचित शिक्षा मिलती है । शिबू और बादल का परिवर्तन शुभ लक्षणों का संकेत करता है । सुबह का भूला हुआ शाम तक घर आ जाये तो उसे भूला हुआ नहीं कहते ! दोष शिबू और बादल का नहीं है, दोष उस दुर्गुण ग्रस्त समाज का है जो परंपरा से लोगों के मस्तिष्क को विकृत करता चला आ रहा है ।

अन्य चरित्र साधारण हैं, जो विशेष उल्लेखनीय नहीं !! भाषा, कथोपकथन आदि भी कथा, पात्रों की प्रवृत्तियों और वातावरण के अनुकूल हैं ।

आकार का छोटा होने पर भी, अपने द्वारा उठाई गई समस्या और उसके उचित निर्वाह के कारण प्रस्तुत उपन्यास हमारे आकर्षण का पात्र है । देवीसिंह और रामा ने उपन्यास में पर्याप्त जीवन डाल दिया है । उपन्यास सुन्दर, आकर्षक और गतिशील है ।

(४) कुण्डली चक्र :—[१९३२]

वर्मा जी का यह उपन्यास सन् १९३२ में प्रकाशित हुआ था! पहले तो यह धारावाहिक रूप से 'सुधा' में निकलता रहा पर बाद को पुस्तक के रूप में इसका प्रकाशन हुआ। इसकी कथा में भी एक रोमांस है परन्तु इस रोमांस की विशेषता यह है कि इसमें हृदय को छूने की शक्ति है। दुर्बलताएँ भी इस उपन्यास में अनेक हैं, कथा का प्रवाह भी शिथिल है पर कथा में कुछ ऐसे भी मार्मिक स्थल हैं जिनकी याद नहीं भूलती और यही कथा का आकर्षण भी है। अपने कुछ स्वच्छ, निर्मल और निष्कलंक चरित्रों के कारण इसका आकर्षण और भी बढ़ गया है और इसकी दुर्बलताएँ उतना नहीं अखरतीं! मुख्य कथा इस प्रकार है—

झाँसी के समीप ही मऊ छावनी में ललित नामक एक धनी युवक अपनी एक मात्र बहिन रतन के साथ रहता है। स्वतंत्र और अपने कुछ निजी और विचित्र सिद्धान्तों पर विश्वास करने के कारण अधिक मिलनसार भी नहीं हो सका। बहिन से उसे अत्यधिक ममता थी। रतन भी भाई को प्राणों से अधिक चाहती थी और भाई की प्रत्येक बात का समर्थन करना अपना कर्त्तव्य समझती थी। ललित कहता "दुर्बल व्यक्ति जीने की पात्रता नहीं रखता" रतन भाई का समर्थन करती उसके प्रेम वश! ललित का परिचय अजित नामक एक युवक से होता है जो नौकरी की खोज में ललित के पास आया था। ललित उससे प्रभावित होता है और रतन के पढ़ाने का कार्य उसे सौंप देता है। पढ़ाई प्रारम्भ हो जाती है। अजित और रतन एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं। ललित को रतन के विवाह की चिन्ता थी पर वह ऐसे वर की खोज में था जो उसके पास ही रहे कारण रतन को वह अपने से अलग नहीं करना चाहता था। वर की तलाश जारी रहती है।

एक दिन भुजबल और शिवलाल नामक दो व्यक्ति ललित के पास आते हैं। भुजबल युवक था और शिवलाल ढलती आयु वाला! भुजबल शिवलाल के लिए दस हजार रुपया ऋण माँगने आया था। ललित ने उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया पर भुजबल हिम्मत न हारा! वह जानता था कि एक मास्टर ललित की बहिन को पढ़ाता है। उसने उसके द्वारा ललित से कर्ज निकालने की योजना बनाई। अजित के यहाँ जाकर भुजबल ने उससे पर्याप्त घनिष्टता बढ़ा ली। भुजबल ने अजित को पास ही मऊ सहानियाँ गाँव चलने का निमंत्रण दिया कारण वहाँ उसकी ससुराल थी! भुजबल बहुधा वहाँ जाया करता था।

भुजबल अजित को मऊ सहानियाँ ले गया ! प्रकृति की गोद में, पहाड़ियों से घिरे गाँव को देखकर अजित प्रसन्न हो उठा। भुजबल की साली पूर्णिमा (पूना) कंडे पाथ रही थी। भुजबल को देखते ही भीतर भाग गई। बोली "जीजा जू अच्छी तरह से हो।" भुजबल ने उत्तर दिया—"हाँ पूना ! तुम लोग मजे में हो ?" अजित ने भी पूना को देखा—"गाँव का अल्हड़ सौंदर्य दरिद्रता से ढका होने पर भी जगमग।" "पूना ने अजित को देखने के लिए सिर निकाला। हिरनी के बच्चे सरीखी बड़ी २ आँखें, गुलाब जैसा मुख और भोली अल्हड़ चितवन।"

खाना खाने के उपरान्त भुजबल सास के पास गया। सास पूना के विवाह के लिए चिन्तित थी ! भुजबल ने अजित की ओर संकेत किया ! बुढ़िया सहमत होगई। कुण्डलियों के मिलने पर ही विवाह संभव था। भुजबल ने चलते समय अजित से शिवलाल और उसके ऋण लेने की भी चर्चा की। पूना पौर में खड़ी अजित की ओर देख रही थी ! रास्ते भर अजित रतन और पूना की तुलना करता रहा—"एक उद्यान का सुन्दर गुलाब और दूसरा कँटीली झाड़ी के भीतर का कुसुम। देखा और काँटों में दृष्टि उलझी। छुआ और चुभे।', अजित को पूना की याद आती पर रतन का चित्र सम्मुख आकर उस याद को मिटा देता।

भुजबल अजित से और भी घनिष्ठता बढ़ाता गया ! एक दिन उसके साथ ललित के घर गया। अजित तो रतन को पढ़ाने चला गया पर भुजबल ललित के पास रुक गया और उसने उसकी प्रशंसा के पुल बाँधने प्रारम्भ किये। उसने ललित से उसका जन्म पत्र माँगा। ललित विवाह न करना चाहता था पर भुजबल के आग्रह ने उसे जन्म पत्र देने को विवश कर दिया। ललित प्रसन्न था ! अजित फोटो ग्राफी जानता था ! रतन को भी सिखलाने की इच्छा हुई। उसने ललित से भी चित्र उतरवाने के लिए कहा। ललित प्रसन्न था ही सहमत हो गया ! रतन ने फोटो खिंचवाई ! अजित प्रसन्न मन घर लौटा।

ललित भुजबल से भी पर्याप्त प्रभावित हुआ था। उसने भी भुजबल से रतन के लिए उसकी जन्म पत्री माँगी। भुजबल प्रसन्नता से फूल उठा। दूसरे दिन जब अजित रतन को पढ़ाने पहुँचा ललित ने उससे रतन के विवाह का जिक्र किया ! भुजबल से जन्म पत्री माँगने की बात भी बताई ! अजित को रतन के विवाह की बात सुन कर अपार वेदना हुई पर दबा गया। रतन से उसका चित्र माँगा। रतन ने कारण पूछा तो अजित की आँखों में अश्रु छलछला आये। रतन ने अपना चित्र उसे दे दिया। अजित भारी मन लिए घर लौटा !

उधर पूना और ललित तथा भुजबल और रतन की जन्म पत्रियाँ परस्पर मेल

खा गई थीं। पर ललित ने विवाह करने से इंकार कर दिया। भुजबल ने भी विशेष जोर न दिया। भुजबल ने ललित से फिर शिवलाल के लिए ऋण की चर्चा की। पर ललित ने स्पष्ट इंकार कर दिया! भुजबल ने निश्चय किया कि वह विवाह के उपरान्त ही ललित से इस प्रश्न पर बात करेगा। अजित रतन के यहाँ पहुंचा! दुखी था! रतन ने दुख का कारण पूछा तो पुनः आँखों से अश्रु निकल पड़े। रतन उसकी वेदना का कारण समझ गई! उसके भी अश्रु निकल आये। ललित सब कुछ देख रहा था! उसने अजित को बुला कर उसका अपमान कर उसे घर से बाहर कर दिया। भुजबल और रतन की सगाई होगई। भुजबल ससुराल पहुंचा और सास से बताया कि ललित विवाह नहीं करना चाहता। सास रो पड़ी। भुजबल ने अजित से पूना को व्याह देने के लिए कहा। अबकी बार सास ने स्पष्ट इंकार कर दिया।

भुजबल और रतन का विवाह होगया! चार दिन पश्चात रतन भाई के यहाँ आ भी गई। उसकी सारी मादकता और लावण्यता न जाने कहाँ विलीन हो गई थी। भुजबल ने अब ललित से पुनः ऋण की चर्चा की पर ललित न माना! भुजबल ने ललित को इस बात पर विवश कर दिया कि वह शिवलाल की जमीदारी खरीद कर रुपया दे दे। अपनी सफलता पर भुजबल मुग्ध था।

रतन के विवाह के उपरान्त अजित बहुत उदास रहने लगा। एक दिन घूमता हुआ मऊ सहानियाँ पहुंचा। वहाँ पूना दिखाई दी पर बोली कुछ नहीं! अजित लौट आया! रतन के लिये उसका हृदय पुकार उठा पर विवश था! चुप रह गया! ललित ने भुजबल से शिवलाल की जमीदारी खरीदने से इंकार कर दिया। वह कुछ नये बँगले बनवाने की सोच रहा था। भुजबल ने फिर भी हिम्मत न हारी।

सिंगरावन गाँव में भुजबल की सास का मायका था! उसकी भाञ्जी का विवाह था। भुजबल और ललित भी निमंत्रित थे! शिवलाल भुजबल के साथ था ही। तीनों सिंगरावन चल दिये। सिंगरावन में ललित ने पूना को देखा। उसके सौंदर्य से पर्याप्त प्रभावित हुआ पर कुछ भी व्यक्त न किया। पूना की मां ने भुजबल से पुनः पूना के विवाह की चर्चा चलाई! भुजबल ने ललित से आग्रह किया पर ललित ने इंकार कर दिया! रतन से भुजबल के विवाह के उपरान्त पूना का ललित से विवाह संभव भी न था। परन्तु ललित ने भुजबल को यह आश्वासन दिया कि वह पूना के लिए वर की तलाश करेगा। शिवलाल भी पूना से विवाह करना चाहता था पर भुजबल ने उसे अस्वीकार कर दिया! शिवलाल के नाम कचहरी से नोटिस निकला। वह घबड़ा गया। भुजबल ने उसे सान्त्वना दी! शिवलाल ने भुजबल से कहा कि यदि वह पूना का विवाह उसके साथ करा देगा तो वह अपनी आधी जायदाद पूना और उसकी मां को

को तथा आधी भुजबल को दे देगा। इसी बीच ललित ने पूना के साथ विवाह करने की अपनी स्वीकृति दे दी। भुजबल पशोपेश में पड़ गया। उसने अपनी सास से दोनों वरों का जिक्र किया पर सास ने इंकार कर दिया। उसने अजित की ओर संकेत किया पर भुजबल ने इंकार कर दिया! भुजबल ने ललित से भेंट की और बताया कि पूना की मां उसके साथ पूना का विवाह करने को सहमत नहीं है। उसने ललित को शिवलाल की जमीदारी खरीदने को राजी कर लिया! शिवलाल को भी पूना के विवाह के संबन्ध में धोखे में रखा।

अजित सहानियां और सिंगरावन की पहाड़ियों में घूमा करता! एक दिन उसे पता चला कि पूना की मां की तबियत बहुत खराब है। वह सिंगरावन पहुँचा। उसने पूना की मां की भरसक सेवा की पर बुढ़िया के दिन आ गये थे। उसने पुकारा— 'मास्टर— पूना।' और फिर कुछ न कह सकी। सबने उसके अन्तिम शब्दों को सुना पर अर्थ न लगा पाये। पूना के मामा ने भुजबल को बुलाना चाहा पर पूना बोली— "मत बुलाओ। कोई अटक नहीं है। दाह करने के लिए गाँव भर है। मास्टर साहब भी हैं ही!" मामा ने जोर दिया। भुजबल को सन्देशा भिजवा दिया गया! दाह क्रिया भी उसके आने तक रोक दी गई! भुजबल आया और अजित को देखते ही क्रोध से भर उठा पर कुछ बोला नहीं। दाह के उपरान्त उसने पूना को अपने साथ ले जाने की इच्छा प्रकट की पर पूना ने मामा के यहाँ ही रहने का आग्रह किया। भुजबल लौटा! वह पूना का विवाह शिवलाल से करने का निश्चय कर चुका था! ललित ने इसका विरोध किया! भुजबल ने पूना से भी जिक्र किया और उसने भी अस्पष्ट शब्दों में अपना विरोध व्यक्त किया पर भुजबल ने उसे डाँट कर चुप कर दिया।

उधर लालसिंह नामक व्यक्ति ने ललित को खबर दी कि भुजबल स्वयं पूना के साथ विवाह कर रहा है। ललित को पहले तो विश्वास न हुआ पर बाद को उसने मान लिया। उधर अजित सिंगरावन की पहाड़ियों में ही घूमता। रतन की याद अब भी उसे आती और उसके नेत्र छलछला उठते। वह कहीं भी रहे, सुखी रहे, यही उसकी इच्छा थी। पूना भी उसे कई बार मिल चुकी थी पर उससे कोई बातचीत न हुई थी! अजित उससे प्रभावित अवश्य था। एक दिन पास के खण्डहरों में उसे सोने की मुहरों से भरा एक घड़ा मिला! उसने शिवलाल से जिक्र किया जो उन दिनों छावनी में ही था। अजित ने घड़े को कचहरी में जमा कर दिया। शिवलाल की वासना एक दिन रात को उसे रतन के यहाँ ले गई। रतन अकेली थी। घबड़ा गई, पर इसी बीच अजित ने वहाँ पहुँच कर शिवलाल को निकाल दिया। रतन अजित के इस कार्य से घबड़ा गई! सोचा—कहीं ललित आगया तो क्या कहेगा। उसने अजित से चले जाने

को कहा। अजित चला गया।

भुजबल ने रतन से पूना के साथ अपने विवाह करने की बात कही! रतन आन्तरिक वेदना को दबा गई और सहमत होगई। शिवलाल अभी धोखे में ही था।

पूना जानती थी कि कुछ लोग उसके जीवन के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। उसने अजित को एक चिट्ठी लिखी और एक व्यक्ति के हाथ उसे अजित के पास भिजवा दी! अजित ने चिट्ठी पढ़ कर अपने पास रख ली। उधर शिवलाल की चालाकियों का पता ललित को लगा! उसने अदालत से वारन्ट निकलवाकर शिवलाल को गिरफ्तार करा दिया! शिवलाल ने भुजबल के रहस्यों का भी भंडा फोड़ कर दिया! जब ललित को भुजबल के कारनामों का पता चला, वह ग्लानि से गड़ गया! भुजबल पूना से विवाह कर रहा था! भीड़ इकठ्ठा हो चुकी थी! अजित भी आ गया था। ललित अजित के गले से लिपट गया और उससे अपने अपराधों की क्षमा मांगी। किसी प्रकार भी भुजबल का विवाह रोकने के लिए उससे आग्रह किया। अजित स्वयं इसी उद्देश्य से सिंगरावन जा रहा था। ललित ने भी जाना चाहा' पर अजित ने उसे रोक दिया।

अजित सिंगरावन पहुँचा। पूना के मामा लालसिंह से उसकी भेंट हुई। लालसिंह सरल हृदय व्यक्ति था। घर में बाजे बज रहे थे! अजित ने कारण पूछा तो लालसिंह ने सब कुछ बता दिया। अजित ने लालसिंह से पूना की व्यक्तिगत इच्छा के विषय में पूछा! भुजबल पास ही एक पेड़ की आड़ से सब कुछ सुन रहा था। सामने आगया और अजित को बीच में पड़ने से रोका! इतने में पूना दीपक लिए निकली। वह पूजा को जा रही थी! मामा ने रोका पर वह न रुकी! अजित भी एक ओर चला गया। उसने गाँव के दो एक विश्वास पात्र व्यक्तियों से भुजबल का विवाह रोकने का अपना विचार बताया। वे सब उसका साथ देने के लिए प्रस्तुत होगये। अजित ने धैर्य से काम लेने का आग्रह किया और फिर पहाड़ियों की ओर चल दिया।

उधर छावनी में रतन के बहुत रोकने पर भी ललित सिंगरावन चल दिया! रतन के बहुत कहनें पर इस बात का वादा किया कि वह विवाह रोकने के अतिरिक्त और कुछ न करेगा।

चारों ओर अन्धकार था। अजित पहाड़ियों के पास पहुंच गया। दूर मन्दिर में उसे प्रकाश दिखाई पड़ा। वह उधर बढ़ा! पास पहुंच कर किसी को कहते हुए सुना—"माँ! अनाथों का इस संसार में कोई नहीं है। न सही! परन्तु उस संसार में तो है। वहाँ भी कोई न हो तो और किस कामना के लिए जिऊँ!!" अजित ने आगे

सुना—"तुम कायर हो। आये भी और कुछ न कर सके········ हाय मैंने चिठ्ठी लिख कर बहुत बुरा किया! व्यर्थ अपनी लाज गँवाई!"

अजित आगे न सुन सका! पुकारा—'पूना'। पूना ठिठकी! उसे भुजबल का शंका हुआ पर अजित ने उसे अपना नाम बताया! पूना ने कोई उत्तर न दिया। उसकी बाहों में गिर पड़ी! अजित उसे गोद में उठाकर तालाब के पास ले गया। जल के छींटे पड़ते ही पूना को होश आ गया वह उसकी गोद से हट कर पास ही बैठ गई। अजित ने उसे हँसाने की चेष्टा की—"देखो मैं और कोई नहीं हूं। वही जिसने मऊ सहानियाँ में हारमोनियम बजाकर रासधारी की पदवी पाई थी। याद है पूना। तो अब डरो मत!" पूना अजित से सिमट गई! बोली—"मुझे अब कोई डर नहीं। माँ ने मेरा रक्षक पहुंचा दिया है। माँ के देहान्त के समय पास खड़े थे। कुछ सुना था—याद है—

याद है! अजित ने उत्तर दिया। मुझको उन्होंने पहचान लिया था।

न, पूना बोली। वह देख कुछ नहीं रहीं थी! देख सकती भी न थीं। उनके मन में जो कुछ था सो उन्होंने कहा था!

मुझको उन्होंने देखा नहीं था। क्या उस समय उनके देखने की शक्ति जाती रही थी।

पूना ने उत्तर दिया—कुछ घंटे पहले ही उनके देखने की शक्ति जाती रही थी परन्तु सोचने की शक्ति उनमें बहुत देर तक बनी रही थी।

मैं अब कहाँ जाऊंगी! पूना ने प्रश्न किया।

तुम कहाँ जाना चाहती हो पूना!

कहाँ जाऊं? संसार कौन बैठा है? इस जल राशि में ढकेल दो।

मैं, मैं इसके लिये थोड़े ही यहाँ आया था पूना।

तब काहे के लिये आये थे? मुझसे पूछते हो कि मैं कहाँ जाऊं?

गांव के लोग पूना को ढूंढ़ते हुए आ रहे थे! पूना ने अजित से कहा—प्रतिज्ञा करो कभी शरण से दूर न करोगे।

प्रतिज्ञा करता हूं!" और वे चकरई की पहाड़ियों की ओट में हो गये। गाँव वाले मशालें लिये आगे बढ़ते आ रहे थे। ललित भी सिंगरावन पहुँच चुका था। भुजबल उसे देखते ही काँप उठा। गाँव वाले ललित के साथ थे। पूना का मामा भी पश्चाताप कर रहा था। ललित ने भुजबल पर व्यंग किया—"वाह क्या बात है, दूल्हा महाराज, जमीदारी, रुपया, व्याह सब एक ही हथकंडे में"। सब को पूना की चिन्ता थी पर ललित को विश्वास था कि वह सुरक्षित होगी।

घोर अन्धकार में तारों के प्रकाश के नीचे पूना अजित की गोद में सिर रखे सो

रही थी। नींद में बुदबुदाई—'मैं नहीं जाऊंगी, मुझे छोड़ नहीं सकोगे।'

'मत जाना, नहीं छोड़ूंगा अजित ने उसको छाती से लगाये काँपते स्वरों में आश्वासन दिया।'

प्रभात हुआ! ललित अजित को ढूंढ़ने निकला। पूना की नींद टूटी। अजित की गोद से हट कर बैठ गई। पूना को एक सुरक्षित स्थान में बिठा कर वह तालाब के पास आया। किसी ने उसका नाम लेकर पुकारा। स्वर परिचित था। अजित बाहर आ गया। ललित ने उसे गले लगा लिया! पूना के विषय में पूंछा। अजित ने कहा कि वह सुरक्षित है। ललित को सन्तोष हुआ। वह अजित को लेकर गाँव आया। लालसिंह को सब कुछ बता दिया। अजित और पूना के विवाह का प्रस्ताव रखा। लालसिंह सहमत हो गया। पूना के माँ की भी यही इच्छा थी। तैयारी होने लगी। अजित से पूना का ठिकाना पूछ कर ललित लालसिंह को साथ लेकर उसे लिवाने चल दिया। भुजबल सब कुछ सुन रहा था पर चुपचाप था।

ललित और लालसिंह पहाड़ियों के पास पहुंचे। पूना को पुकारा। वह निकली। लालसिंह उससे लिपट गया। ललित ने पूना को समझाया। वह उन लोगों के साथ चल दी। घर पहुंच कर स्त्रियों से लिपट कर खूब रोई। ललित ने अपने हाथों अजित को दूल्हा बनाया। विवाह के उपरान्त ललित ने कहा—"जो दो गाँव शिवलाल नाम के एक आदमी ने पूना को लगाये थे वे अदालत के जरिये बैनामा मंसूख कर दिये जाने के कारण निकल गये थे। मैंने उनको अपने लिये नीलाम में फिर खरीद लिया था। वे दोनों मैं पूना को देता हूं और रहने के लिए छावनी का एक मकान।"

फिर भुजबल से बोला—"जो कुछ हुआ उसको भूल जाओ और आगे सावधान होकर चलो। तुमने यह सब क्यों किया, यह सब तुमसे कभी आगे न पूछा जायगा।" भुजबल ग्लानि से पानी पानी हुआ जा रहा था।

ललित छावनी लौटा। रतन उसकी राह देख रही थी। उसने रतन को सब कुछ बताया। दूसरे दिन भुजबल को भी छावनी लिवा लाया। अजित को कचहरी में जमा की हुई मुहरों का आधा भाग मिला। शिवलाल को धोखेबाजी के अपराध में कई वर्ष की सजा हुई। भुजबल प्रमाण न मिलने के कारण छोड़ दिया गया।

उसके पश्चात् ललित का स्वास्थ्य बराबर गिरता रहा। पूना व अजित बहुधा उसके यहाँ जाते। रतन ने ललित से अपनी रुखाई की क्षमा माँगी। अजित ने उसे सान्त्वना प्रदान की। रतन के होठों पर एक क्षीण मुस्कराहट खेल गई। 'वह क्षीण मुस्कराहट किसी अनन्त युद्ध पर किसी अनन्त विजय की ध्वस्त प्राय ध्वजा सदृश जान पड़ती थी'।

जहाँ तक कथा का सम्बन्ध है उसमें विशेष आकर्षण नहीं है। पूना और अजित से सम्बन्धित कथा ही हमारे आकर्षण का कुछ पात्र बनती है। वैसे कथानक में सर्वत्र शिथिलता और नीरसता है। वर्मा जी की कथा कहने की प्रवृत्ति इसमें उभर नहीं पाई। शिवलाल का प्रवेश कथा में बार बार अपने लिये ऋण मांगने को ही कराया गया है और उससे सम्बन्धित जो भी घटनाएं हैं सब शुष्क हैं।

घटनाओं के तीन केन्द्र हैं — मऊ की छावनी, मऊ सहानियाँ गाँव और सिंगरावन छावनी में घटनाओं का जन्म होता है, सहानियाँ उन्हें पर्याप्त विकास प्रदान करता है और सिंगरावन में उनकी चरम स्थिति आ जाती है और वहीं पर कथा की समाप्ति है। सहानियाँ में घटनाओं का आकर्षण पूना है, वही सिंगरावन में भी प्रधान है। छावनी में कथानक का प्रारम्भ होता है, रतन वहाँ पर हमारे आकर्षण का पात्र बनती है। परन्तु सहानियाँ घटनाओं को थोड़ी ही दूर तक अपनी ओर आकर्षित करता है, बाद को सारी घटनाओं का केन्द्र सिंगरावन बन जाता है। इस क्रम को हम इस प्रकार रख सकते हैं — छावनी–सहानियाँ, छावनी–सहानियाँ, सिंगरावन–छावनी–सिंगरावन–छावन !! पूना का आगमन घटनाओं में रमणीयता लाता है और वही उन्हें अंत में मार्मिक भी बना देता है। कथा में रोमाँस की एक धारा प्रारम्भ से ही प्रवाहित होती देख पड़ती है जो पूना के आते ही कुछ तीव्रता धारण करती है और अन्त में चरमोत्कर्ष को पहुँच जाती है। पूना और अजित से सम्बन्धित कथा सच्चा रोमांस है।

घटनाओं की योजना में काफी उलझन भी है। उपन्यासकार उनका विकास उपयुक्त रीति से नहीं कर पाया है। जब भी उसने घटनाओं को मोड़ना चाहा है, मोड़ लिया है। उदाहरण के लिए पहले पूना की माँ अजित के साथ पूना का विवाह करने को तैयार हो जाती, पर बाद को इन्कार कर देती है। फिर ललित के साथ पूना को व्याहने के लिये सहमत होती है और बाद में फिर इन्कार कर देती है। फिर अजित के साथ पूनाके व्याह की इच्छा अन्तिम क्षणों में प्रकट करती है। ललित भी दो तीन बार पूना के साथ विवाह करने को सहमत भी हो जाता है और बाद में इन्कार भी कर देता है। इससे कथा में उलझन ही बढ़ती है। ऐसा लगता है कि कथा को जब भी उपन्यासकार चाहता है अपनी इच्छानुसार मोड़ देता है। चरित्रों में भी इसी कारण अस्थिरता आ गई है।

कतिपय नीरस घटनाएं भी इतना विस्तार और महत्व पा गई हैं कि कथानक में शुष्कता उत्पन्न हो गई है। उपन्यासकार यदि उन्हें चाहता तो संक्षेप में वर्णित कर सकता था। घटनाओं का क्रम भी उपयुक्त नहीं है। जब जिस घटना को उपन्यासकार ने चाहा उसे प्रमुखता दे दी है। ये सब उपन्यासकार की अपरिपक्वता ही सूचित करते हैं। उपन्यास बहुत पहले का है अतः यह अपरिपक्वता स्वाभाविक है।

हाँ, जो घटनाएं मार्मिक हैं उनका वर्णन कुशलता से हुआ है। सिंगरावन में पहुँच कर कथा पर्याप्त आकर्षक हो गई है। चकरई की पहाड़ियों में पूना और अजित का मिलन तो पर्याप्त आकर्षक है। कहने का तात्पर्य यह कि कथानक में सजीवता कम विश्रंखलता और नीरसता अधिक है। कतिपय अलौकिक एवं आकस्मिक घटनाओं का भी समावेश हो गया है जो अखरती हैं। उदाहरण के लिये अजित को सोने की मुहरों से भरा घड़ा मिल जाना, भुजबल का रास्ते से रुपया उठा लेना, प्रेत बाधा की घटना आदि आदि ! !

ये सारी घटनाएं यही सूचित करती हैं कि यह उपन्यास कदाचित वर्मा जी की सबसे प्रारम्भिक कृति है भले ही इसकाप्रकाशन कुछ उपन्यासों के बाद हुआ हो। रोमांस को 'परिस्थितियों का काव्य कहा ही गया है, प्रस्तुत उपन्यास में भी परिस्थितियाँ ही पात्रों की गति विधि को सूचित करती हैं और इसी कारण इसे भी रोमान्स की ही कोटि में रखा जाता है।

समग्र रूप से विचार करने पर हम यही पाते हैं कि कथानक शिथिल, अव्यवस्थित और बिखरा हुआ अधिक है, आकर्षण उसमें कम है और जो है भी उसका श्रेय पूना और अजित से सम्बन्धित कथा को है।

चरित्र चित्रण में भी लेखक सफल नहीं हो सका है। उसमें भी पर्याप्त अस्पष्टता एवं उलझनें हैं। परिस्थितियों का चक्र ही पात्रों के इधर उधर घुमाता है, उनसे संघर्ष कराता है और उन्हें झुकाता है। सब परिस्थितियों के शिकार हैं, स्वतन्त्र व्यक्तित्व का उनमें बहुत कुछ अभाव है। सारे कार्य वे बलपूर्वक, परिस्थितियों द्वारा ढकेले जाने पर ही करते हैं। बहुधा तो उन्हें भविष्य के कार्यक्रम का कोई ज्ञान ही नहीं होता और वे परिस्थितियों द्वारा अनजाने संघर्षों में झोंक दिये जाते हैं। रोमांस में ऐसा होता है पर इस उपन्यास में इसका बहुत कुछ उत्तरदायित्व लेखक पर है। वह स्वयं चरित्रों को संभाल नहीं सका है, उन्हें ठीक तरह उभारना तो दूर रहा, स्वयं उलझनों में पड़ कर विचलित सा हो उठा है। कोई भी चरित्र उपन्यास भर में ऐसा नहीं है जो कुछ अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व भी रखता हो, जिसके चरित्र के विषय में कुछ धारणाएं पाठक बना सकें। सबके सब अस्थिर, अस्पष्ट और विरोधों से पूर्ण हैं। इन सारे चरित्रों के बीच केवल पूना ही पाठक को सबसे अधिक आकर्षित करती है यद्यपि उसके चरित्र का विकास भी ठीक तरह नहीं हो पाया।

मुख्य चरित्रों में हम ललित, अजित, भुजबल, शिवलाल, पूना और रतन की गणना करते हैं।

जहाँ तक ललित का सम्बन्ध है परिस्थितियां उसे भी इधर उधर मोड़ती हैं।

प्रारम्भ का ललित अंत तक बदल जाता है। उसके सम्बन्ध में उपन्यासकार ने 'परिचर्या' में लिखा है—"ललितकुमार सदृश चरित्र समाज में मिल सकते हैं परन्तु वह कल्पित व्यक्ति है।' समाज में वास्तव में ललित सदृश व्यक्तियों की सत्ता असम्भव नहीं है परन्तु उसके चरित्र का जो भी रूप हमें दिखाई पड़ता है उसके अनुसार हम उसमें किसी ऐसी बात को नहीं पाते जो अति मानवीय हो। वह भी एक साधारण मनुष्य है परिस्थितियां जिसे अन्त में कुछ ऊंचा उठा देती हैं।

ललित हमें प्रारम्भ में विशेष प्रभावित भी नहीं करता। न तो वह मिलनसार ही है और न दूरदर्शी। अजित से प्रभावित होता है, बहन को पढ़ने का कार्य उसे सौंप देता है। भुजबल से विवाह करने से इंकार कर देता है पर उसके निरन्तर अनुरोध करने पर उसे अपनी जन्मपत्री देने को विवश हो जाता है। अजित जब उससे अपना चित्र उतरवाने को कहता है तो प्रसन्नता के आवेग में तुरन्त तैयार हो जाता है परन्तु दूसरे ही दिन रतन और अजित की आँखों में एक साथ आँसुओं को देख अजित को अपमानित करके घर से बाहर निकाल देता है। अजित की अपेक्षा भुजबल को वह अपनी बहिन के लिये उपयुक्त वर समझता है और उससे रतन का विवाह भी कर देता है जब कि भुजबल के चरित्र का आभास उसे हो जाता है। यदि यह कहा जाय कि वह भुजबल को नहीं समझता था तब भी बना किसी व्यक्ति के विषय में जानकारी किये बहिन का विवाह उससे कर देना भी उपयुक्त न था। भुजबल के साथ रतन को व्याह कर वह उसे वेदना की आग में सुलगते रहने को झोंक देता है। एक प्रकार से बहिन के प्रति यह अप्रत्यक्ष रूप में किया गया अन्याय ही था भले ही वह उसे अत्यधिक चाहता हो!

शिवलाल रतन के यहाँ घुसकर उसे अपमानित करने का प्रयत्न करता है परन्तु अजित अचानक आकर शिवलाल को बाहर निकाल देता है। ललित शिवलाल पर तो नहीं अजित पर इतना क्रोधित हो जाता है कि उस पर अदालत में 'घर में अनाधिकार प्रवेश' का दावा तक कर देता है। कई बार भुजबल से, पूना के साथ विवाह करना स्वीकार कर लेता है पर कई बार फिर इंकार कर देता है। ललित के इन कार्यों से स्पष्ट है कि उसके सारे कार्य जल्दबाजी और में बिना सोचे समझे किये गये, कारण शीघ्र ही उसे अपने कृत्यों पर पश्चाताप भी होता है। भुजबल के हथकण्डों का ज्ञान होते ही वह ग्लानि से गड़ जाता है। अजित के प्रति किये गये अपने व्यवहार पर भी उसे ग्लानि हो आती है और वह उससे क्षमा भी माँगता है। जिन्दगी की यही ठोकरें उसे अन्त तक बिलकुल परिवर्तित कर देती हैं यद्यपि अन्त में भी उसका चरित्र विशेष उभर नहीं सका! अजित और पूना को उसने गाँव इसलिये दिये कि अजित ने पूना के साथ विवाह किया, भुजबल के हाथों से पूना की रक्षा की। भुजबल ललित की बहन रतन का पति था इस

कारण एक प्रकार से अजित ने रतन को दुखों की आग में और अधिक सुलगने से बचाया। भले ही उपर्युक्त तर्क ललित की भावनाओं से मेल न खाता हो पर तर्क में बल अवश्य है। ऐसी बात न भी हो तब भी ललित का दो गाँव पूना को दे देना विशेष महत्व पूर्ण नहीं है। भुजबल को वह इसलिये क्षमा करता है कि वह उसका बहनोई था! क्षमा न करता तो उसके सम्मुख और कोइ उपाय ही न था। बहिन ने उससे पहले ही वचन ले लिया था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि ललित का चरित्र अन्त में कुछ उत्कर्ष को प्राप्त अवश्य हुआ है पर हमें फिर भी उतना प्रभावित नहीं करता। उसके चरित्र की इन दुर्बलताओं का उत्तरदायित्व उस पर नहीं प्रत्युत उपन्यासकार पर है। उपन्यासकार ने ही उसके चरित्र में ये उलझनें भरी हैं। यदि उपन्यासकार उसके चरित्राङ्कन में सावधानी से काम लेता तो उसका चरित्र अस्पष्टताओं और उलझनों से रहित हो सकता था!

अजित के चरित्र के सम्बन्ध में भी यही बात है। प्रारम्भ से लेकर अन्त तक वह हमारे सम्पर्क में रहता है परन्तु फिर भी हमें प्रभावित नहीं कर पाता! इसका कारण भी यही है कि उसके भी चरित्र में न जाने कितनी अस्पष्टता एवं अस्थिरता है। उसके सारे कार्य जबर्दस्ती के किये प्रतीत होते हैं। न जाने किस प्रेरणावश वह उनको करता जाता हैं इसका उसे स्वयं पता नहीं रह पाता।

प्रारम्भ में उसका सम्पर्क रतन से होता है और वह उसकी ओर आकर्षित होता है। रतन के साथ उसका जो प्रेम सम्बन्ध चलता है उसका बहुत कुछ रूप आधुनिक है। रतन भी उसकी ओर कम आकर्षित नहीं थी पर उनका यह सम्बन्ध क्षणिक रहता है। ललित के हाथों उसे अपमानित होना पड़ता है और वह घर से बाहर निकाल दिया जाता है। इसके पहले ही वह पूना से मिल चुका था परंतु तब उसके पास रतन थी इस कारण न तो वह पूना की ओर विशेष आकर्षित ही होता है। और न उसे महत्व ही देता है, पूना उसकी दृष्टि में गँवार और फूहड़ ही रहती है। रतन से सम्बन्ध टूटते ही वह पागल और विक्षिप्त सा इधर उधर मारा मारा फिरता है। उस समय हमें उसके ऊपर सहानुभूति कम दया अधिक आती है। आधुनिक प्रेमियों का बहुत कुछ रूप इस समय वह स्पष्ट कर देता है। पूना के प्रति भी उसके हृदय में कभी आकर्षण रहा था, ऐसा हमें कहीं भी प्रतीत नहीं होता; हां रतन की याद उसे क्षण २ में विचलित करती है। उसी पर प्रभाव डालने के हेतु वह उसके घर में घुसकर शिवलाल को निकालता है पर वहां भी उसे अवहेलना ही मिलती है। ऐसी परिस्थितियों में पूना और उसकी भेंट, पूना का आग्रह और उसका उसे स्वीकार करना; यह सब ऐसा प्रतीत होता है मानों वह जबर्दस्ती सब कुछ कर रहा है। पूना को भुजबल के पंजे से छुड़ाने

का प्रयत्न वह अवश्य करता है परन्तु पूना के प्रति उसका वास्तविक आकर्षण था, यह स्पष्ट नहीं हो पाता। चकरई की पहाड़ियों में जब पूना उसके आश्रय में आती है और उससे बार बार शरण देने का आग्रह करती है, वह 'हाँ' तो कर देता है पर प्रतीत यही होता है कि वह उसके हृदय से निकली ध्वनि नहीं है परन्तु वह दबाव वश ही उसे अपनी शरण में लेने को प्रस्तुत होता है। पूना उसकी गोद में सिर रखे सो रही है पर अजित भाँति भाँति की उलझनों में फँसा सोच रहा है—"पैलू क्या सोचेगा? लोग क्या कहेंगे? जब देखेंगे कि पूना के साथ अखण्ड सम्बन्ध स्थापित करने जा रहा हूं। अब कोई कुछ कहे। एक बार अंगीकार किया तो सदा के लिये किया! भगवान जानते हैं कि मैंने इस तरह की बात को हृदय में स्थान नहीं दिया। लोग दिल्लगी उड़ाएँ, भले उड़ालें—परन्तु आज से, इस समय से, पहले मेरे मन ने पूना के विषय में और बात नहीं सोची। यहाँ तक तो पूना की रक्षा हो गई परन्तु अब कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।"

स्पष्ट है कि अजित ने कभी पूना को हृदय में स्थान नहीं दिया! उसने उसे संरक्षण क्यों दिया? इसीलिये कि वह उसकी शरण में आ गई थी और यह उसका कर्तव्य था कि वह उसे शरण देता, उसे अपनाता। यही कारण है पूना और अजित का प्रेम एकपक्षीय व प्रभावहीन सा हो गया है। हाँ, रतन अवश्य अजित को प्रभावित करती है और अन्त तक वह उसे चाहता है। पूना तो जबर्दस्ती उपन्यासकार द्वारा उसके गले में बाँध दी जाती है।

अजित की चारित्रिक, अस्पष्टताएँ, उलझनें और अस्थिरताएँ हमें यह कहने को वाध्य कर देती हैं कि उपन्यासकार उसके चरित्र को भी जैसा वह चाहता था उभार नहीं सका। वह निष्क्रिय, परिस्थतियों का दास और अस्थिर चित्त सम्पन्न है!

भुजबल निकृष्ट चरित्र है। उसका स्वार्थ ही उसे ललित के पास ले जाता है। ललित से रुपया न पाने पर वह अजित के द्वारा अपनी स्वार्थसिद्धि करना चाहता है। स्वार्थ सिद्धि का माध्यम पूना को बनाता है। उसका आकर्षण देकर ही ललित व अजित को अपनी ओर करने का प्रयत्न करता है। शिवलाल को भी धोखे में रखता है और बाद को लोभवश अजित, ललित व शिवलाल सबके साथ घात कर स्वयं पूना से विवाह करने को प्रस्तुत हो जाता है। घटनाओं का विकास होता है। उपयुक्त समय पर पूना की रक्षा होती है। भुजबल अपने अपराधों के कारण ग्लानि से गड़ जाता है। रतन जैसी स्त्री से भी वह विश्वासघात करता है, और इस कारण हमारी घृणा का और भी पात्र बन जाता है। उसे जो दण्ड मिलता है उससे हमें प्रसन्नता होती है।

शिवलाल का चरित्र उल्लेखनीय नहीं ! वह भी निकृष्ट पात्र है जिसे उसके कर्मों के अनुरूप ही दण्ड मिलता है ।

स्त्रीपात्र दो हैं । पूना और रतन !!

पूना के चरित्र को भी उभारने में लेखक असफल रहा है। स्वार्थी और लोलुप व्यक्तियों के जाल में फँसी निरीह स्त्री का उदाहरण हम पूना में पाते हैं। बाद को उसमें कुछ दृढ़ता आती है पर वह दृढ़ता भी परिस्थितियों और स्वार्थी पुरुषों से संघर्ष करने के प्रति नहीं प्रत्युत जान पर खेल जाने की है । वह आत्मघात करने को प्रस्तुत हो जाती है पर इतनी शक्ति नहीं ला पाती कि खुल कर सबके विरोध में खड़ी हो जाय और सबके सम्मुख अपनी व्यक्तिगत इच्छा प्रकट कर दे । इसमें भी दोष पूना का नहीं है, समाज का है जिसने स्त्रियों को पुरुषों के हाथों की कठपुतली बना दिया है, परम्परागत सड़े–गले संस्कार और झूठे नारीत्व की दुहाई देकर स्त्रियों को निष्क्रिय कर दिया है। पूना सँभलती है पर उसे आत्मघात के अतिरिक्त और कोई उपाय अपनी रक्षा का नहीं देख पड़ता । परिस्थितियों का चक्र उसकी रक्षा करता है और उसे शरण मिलती है । वह अपना इच्छित वर प्राप्त करती है ।

पूना हमारी सहानुभूति अवश्य खींच लेती है। उसी का चरित्र अन्त तक पहुंचते २ सबसे अधिक उत्कर्ष प्राप्त करता है पर उपन्यासकार की कलम उसे जैसा चाहिये था उभार नहीं सकी अन्यथा पूना भी कुमुद, तारा, और रामा की ही भाँति हमें सदा याद रहती ! उपन्यासकार की यह असफलता क्षम्य नहीं है ।

रतन का चरित्र भी उलझनों और अस्पष्टताओं से पूर्ण है । जीवन भर 'वेदना की आग में सुलगने पर भी वह हमारी दया की पात्र ही रहती है । प्रारम्भ में वह अजित की ओर आकर्षित होती है और पर्याप्त सीमा तक आकर्षित प्रतीत होती है पर अजित के अपमानित किये जाने पर चुप होकर बैठ जाती है। भाई के कार्य कितने ही अन्यायपूर्ण क्यों न हों, रतन उन सबका समर्थन करती है, इसे भाई के प्रति ममता कहा जाय या उसके चरित्र की दुर्बलता । ममता अथवा दुर्बलता ही उसे तब भी चुप किये रहती है जब ललित उसे भुजबल के गले में बाँध देता है। वह वेदना को सहती है, भीतर ही भीतर झुलसती है पर उफ्त क नहीं करती कारण उसका विवाह उसके भाई ने किया था और भाई द्वारा किये गये विवाह के प्रति अपना क्षोभ प्रकट कर वह भाई को दुखी नहीं करना चाहती ! दूसरे उपन्यासकार उसे एक आदर्श भारतीय नारी की पदवी देना चाहता है और आदर्श भारतीय नारी का यह धर्म है कि पति चाहे उसके ऊपर जितने भी अत्याचार करे पर वह चुपचाप उन्हें सहती रहे । उनका विरोध करना उसके लिये उचित नहीं कारण इससे उसके पतिव्रत धर्म

को आघात लगेगा। यही कारण है कि जहाँ हमें रतन की दुर्बलताओं पर तथा उन सामाजिक रूढ़िवादी बन्धनों पर जिसने उसे इतना निष्क्रिय और निरीह बना दिया है, क्रोध और क्षोभ होता है वहाँ उनकी शिकार रतन पर दया आती है। उपन्यासकार भी रतन के साथ उचित न्याय नहीं कर पाया। ललित भी रतन को चाहता था! यदि रतन उससे स्पष्ट शब्दों में भुजबल से विवाह न करने को कहती तो ललित कभी उसकी इच्छा को न टालता पर वह चुप रहती है जैसे कसाई के खूंटे में बंधी गाय हो!

रतन और भुजबल का विवाह हो जाता है। रतन उदास रहती है पर फिर भी उसका आदर्श उसे चुप रहने को बाध्य करता है। शिवलाल रतन के घर में घुसकर उसे अपमानित करने का प्रयत्न करता है। अजित शिवलाल को घर से निकालता है। रतन कदाचित उसके प्रति कुछ कृतज्ञ भी होती है परन्तु न जाने क्या सोचकर वह अजित से कहती है—"मास्टर साहब, आप भैया के पास बहुत दिनों से कभी नहीं आते पर यह जो अभी यहाँ से चले गये हैं उनके मिलने जुलने वालों में से मालूम पड़ते हैं। एक जरा सी बात के लिये आपको अपने मन में बतंगड़ नहीं खड़ा करना चाहिये था।" अजित के यह पूछने पर कि क्या 'तुम सुखी हो?' रतन उत्तर देती है— "यह सब बात करने की आपको कोई जरूरत नहीं है। इस समय न मेरे भाई यहाँ हैं न और लोग। फिर नौकरानी से यह कहकर भीतर चली गई किवाड़–अच्छी तरह बन्द करके आजाओ।"

रतन का यह व्यवहार बहुत कुछ सीमा का अतिक्रमण कर जाता है। उसका भाई उस पर अटूट विश्वास करता था! वह उसे अत्यधिक चाहता भी था! रतन को यदि वह कमरे में अजित के साथ देख भी लेता तो वहाँ नौकरानी थी और रतन के स्पष्ट रूप से सारी परिस्थिति बता देने पर वह उस पर अविश्वास नहीं कर सकता था। उसकी इस सीमा तक रुखाई उसके चरित्र को ही दुर्बल करती है।

रतन भुजबल से भी इस घटना का जिक्र करती है। यह कदाचित इस कारण कि यदि कभी भुजबल को इस घटना का पता किसी तरह लग जाता तो रतन उसके अविश्वास और क्रोध का पात्र बनती! इसी कारण वह पहले ही भुजबल को सारी बातों से परिचित करा देती है। इससे जहाँ एक ओर यह पता चलता है कि रतन भुजबल से आतंकित और भयभीत रहती है वहाँ रतन का चरित्र भी उत्कर्ष नहीं पाता। अवसर पाकर भुजबल से कहती है—"परसों की बात सुनी है?

क्या?

आपके जमीदार मित्र संध्या समय आपसे मिलने के लिये आये। कमरे में अँधेरा था! हम लोग भीतर थे। वह बैठे रहे। नौकरानी अंधेरे में किवाड़ लगा आई!

आहट मालूम होने पर हम लोग लालटेन लेकर गये। उनको देखकर घबराए। पूछताछ की। इतने में मुझे पहले जो एक मास्टर पढ़ाते थे-नाम याद नहीं आता (यह भी आश्चर्य की बात है) किवाड़ों को ठोककर हल्ला मचाने लगे। किवाड़ खुलने पर अण्ड-बण्ड बकने लगे। आपके मित्र तो चले गये पर वह बैठक में अचल से हो गये। हम लोगों ने कहा सुनी की तब हटे। आप नौकरानी से पूछना"। अन्तिम वाक्य से बिलकुल स्पष्ट हो जाता कि रतन भुजबल के सामने अपनी सफाई दे रही है। यही कारण है कि उसका चरित्र यहाँ गिर गया है।

पता नहीं उपन्यासकार ने पात्रों की मनोवृत्तियों का उभार और उनका विकास किस प्रकार किया है कि किसी भी पात्र में स्थिरता अथवा दृढ़ता नहीं देख पड़ती। पूना थोड़ी ही देर में हमें प्रभावित कर लेती है, रतन अन्त तक नहीं कर पाती! थोथा आदर्श किसी काम का नहीं। रतन के चरित्र को प्रस्तुत कर उपन्यासकार ने नारी जाति के सम्मुख, पुरुष की सत्ता और अत्याचारों के सामने सदा झुक जाने का उदाहरण रखा है। यदि उसका उद्देश्य रतन के चरित्र द्वारा आदर्श भगिनी और आदर्श पत्नी का उदाहरण रखना था तो इसके लिये भी हम उपन्यासकार का तीव्र विरोध करते हैं। स्त्रियों की निरीहता का दिग्दर्शन कराना आदर्श की स्थापना करना नहीं प्रत्युत संकीर्णता को आश्रय देना है।

रतन के चरित्र की इन दुर्बलताओं के कारण ही हम उससे प्रभावित नहीं होते यद्यपि उसका जीवन ही सबसे अधिक दयनीय और वेदना ग्रस्त है। अपने जीवन को इस प्रकार दयनीय बनाने में जितना हाथ रतन का है उतना ही उपन्यासकार का भी है।

निष्कर्ष यह कि चरित्रों के चित्रण और उनके विकास में लेखक बुरी तरह असफल हुआ है। सारे चरित्र विरोधों, अस्पष्टताओं एवं उलझनों से पूर्ण हैं। इन सब में पूना का चरित्र अवश्य अन्त में कुछ उत्कर्ष प्राप्त कर जाता है।

भाषा और कथोपकथनों में भी पर्याप्त शिथिलता है। प्रस्तुत उपन्यास में सच्चे रोमान्स की झलक ही पाठकों को कुछ आकर्षित कर सकती है वैसे, उसमें और कोई भी आकर्षण नहीं है!

(५) प्रत्यागत :—

प्रस्तुत उपन्यास वर्मा जी के प्रारम्भिक उपन्यासों की कोटि में आता है। इसके द्वारा वर्मा जी ने हिन्दू समाज की रूढ़ि वादिता को स्पष्ट कर उस पर कड़े प्रहार किये हैं। यही उपन्यास का मुख्य आकर्षण भी है वैसे कथानक में कोई नवीनता नहीं है। कथा निम्नलिखित है—

मंगलदास बाँदा के प्रतिष्ठित ज्योतिषी पं० टीकाराम का पुत्र था। पं० टीकाराम धनी थे अतः उन्होंने कभी भी पुत्र के भविष्य की चिन्ता नहीं की! मंगल स्वतंत्र विचारों वाला युवक बन गया। उन दिनों देश में खिलाफत आन्दोलन का जोर था! बाँदा में उसका सूत्रधार मंगल ही था। पं० टीकाराम भी उस पर गर्व करते थे पर एक दिन तनिक सी बात पर उन्होंने मंगल को खूब डाँटा फटकारा, उससे निकल जाने को कहा! मंगल को उस दिन अपने निकम्मे पन पर क्षोभ हुआ और माँ और पत्नी के बहुत कुछ रोकने पर भी वह स्टेशन पहुंच कर एक अपरिचित स्थान को चल दिया। गाड़ी छूटने को ही थी कि उसका नौकर हरीराम उसे एक चिट्ठी और कुछ रुपये देने के लिए लाया पर मंगल ने रुपये लेना अस्वीकार कर दिया! चिट्ठी उसने अवश्य लेली पर पढ़ा नहीं। सोचा—फुरसत में पढ़ेगा।

गाड़ी में उसकी भेंट रहमत उल्ला नामक एक मुसलमान से हुई। वह मालाबार का रहने वाला था। मालाबार में खिलाफत आन्दोलन प्रगति पर है—यह सुन कर मंगल भी उसके साथ मालाबार चल दिया। मंगल मालाबार पहुँच गया। रहमत उसे अपने साथ मस्जिद में ले गया जहाँ हजारों सशस्त्र मुसलमान एकत्र थे। नमाज प्रारंभ हुई! रहमत ने मंगल से भी आग्रह किया कि वह भी उसका अनुकरण करे जिससे लोग उसे हिन्दू न समझ बैठें। पेशइमाम समझ गया। नमाज समाप्त होने पर उससे मुसलमान बनने को कहा गया! इच्छा न होने पर भी मंगल को बलपूर्वक मुसलमान बना लिया गया। नाम रखा गया—मंगल खाँ उर्फ पीरमुहम्मद!

मुसलमानों की भीड़ बलवा करने जा रही थी! मंगल भी मरने मारने को उद्यत था कारण धर्म परिवर्तन के पश्चात वह जीवित न रहना चाहता था। रहमत ने उसे अपने घर का पता बता कर वहाँ जाने को कहा ताकि वह उसके बीबी बच्चों की देख रेख कर सके। मंगल चल दिया! उधर शहर में भीषण कत्ले आम हुआ! बलवाइयों ने रहमत का घर भी घेर लिया। रहमत की बीबी ने अपने प्राणों की परवाह न कर मंगल की रक्षा की। मंगल बच तो गया पर ज्वर ने उसे दबा लिया।

अकस्मात उसे चिठ्ठी की याद आई और वह उसे पढ़ने लगा— । चिठ्ठी सोमा की थी । उसमें लिखा था—

प्राणनाथ—

मैं नहीं जानती थी कि ऐसी आसानी के साथ रूठ जाओगे । मैंने कुछ नहीं कहा था तो भी आप बुरा मान गये । मुझे ढीठ आपने ही तो बनाया है । पर आगे के लिए प्रण करती हूं कि कभी जी दुखाने वाली बात न कहूंगी । जाते समय एक बार मुड़ कर भी न देखा । ऐसा आपने पहले कभी न किया था । यदि मैं स्वतन्त्र होती तो बाहर निकल कर आप का हाथ पकड़ लेती और फिर मेरी आपकी यह हालत न होती⋯⋯ । मेरे कारण ही आपको यह सब व्यथा हुई है ।⋯⋯क्या आप मुझे क्षमा नहीं करेंगे⋯⋯। यदि हृदय में कुछ दया हो तो हरीराम के साथ तुरन्त लौट आइये । बहुत लाज तोड़ कर हरीराम के हाथ यह चिठ्ठी भेजी है ।⋯⋯और बहुत कुछ लिखना चाहती हूँ पर आप कहीं दूर न निकल जायँ इसलिये इस चिठ्ठी को यहीं समाप्त करती हूं ।"

भिखारिणी—सोमा !!

मंगल का हृदय रो उठा पर खेल समाप्त हो चुका था ! मुँह ढके पड़ा रहा ।

मालाबार के दंगे और बलपूर्वक धर्म परिवर्तन का समाचार बाँदा भी पहुँचा । पं० टीकाराम मंगल के लिए चिन्तित थे ! उसका कोई समाचार उन्हें न मिला था । धर्म परिवर्तन के विषय को लेकर समाज में टीका टिप्पणी हुई । अधिकांश व्यक्ति मुसलमान बनाये गये हिन्दुओं को पुनः धर्म में शामिल करने के पक्ष में नहीं थे ! पं टीकाराम मंगल की चिन्ता में व्यथित चुपचाप बैठे थे ! उनके नेत्र छलछला उठते ! बाँदा के यही व्यक्ति प्रति वर्ष धनुष यज्ञ का आयोजन भी करते थे । इस बार ठाकुर और अहीरों के प्रश्न पर कुछ वाद विवाद होगया । फलस्वरूप दो स्थानों पर धनुष यज्ञ का आयोजन हुआ ।

मंगल बुखार में पड़ा था ! पुलिस पता लगाते हुए उसके पास आई और उससे प्रश्न किये ! मंगल ने जान बूझ कर इधर उधर के उत्तर दिये ! उसके पास की चिठ्ठी भी पुलिस ने रख ली ! मंगल को थाने ले जाया गया । थाने में उससे पूछा गया कि वह बलपूर्वक तो मुसलमान नहीं बनाया गया है पर मंगल ने अपने हिन्दू होने से इंकार कर दिया । परन्तु छान बीन करने से सारा रहस्य खुल गया । उसे घर जाकर पुनः धर्म में शामिल हो जाने को कहा गया । पर मंगल निराश था । वह जानता था कि अब वह पुनः धर्म में न लिया जा सकेगा ! वह मरना चाहता था । परन्तु पुलिस आफीसर ने उसे सुरक्षा के साथ बाँदा पहुँचा दिया । पुलिस के सिपाहियों ने मंगल के

घर पर सूचना भेज दी ! सब लोग प्रसन्नता से पागल हो उठे ! पं० टीकाराम मंगल से मिलने गये । मंगल ने उन्हें सारी बात बता दी ! पं० टीकाराम पर तो जैसे बज्र पात होगया । माँ भी मूर्छित होगई ! मंगल के लिये एक अलग मकान का प्रबन्ध कर दिया ! पं० टीकाराम मंगल को इस शर्त पर जाति में शामिल करने को सहमत हुये कि जाति वाले उसे स्वीकार करें और वह प्रायश्चित करे ! पं० टीकाराम तो जाति वालों के पास प्रायश्चित का विधान पूछने चले गये, मंगल अपनी मां से मिला ! मां मंगल के गले से लिपट गई ! कुछ देर पश्चात उसने सोमा को भेजा ! सोमा ने मंगल का स्पर्श न किया । प्रायश्चित होने तक उसने धैर्य धारण करने को कहा । मंगल सोमा के व्यवहार पर जल उठा । पर सोमा अचल थी !

प्रायश्चित के विषय में जाति वालों में मत भेद हुआ ! पं नवल बिहारी और उनके समर्थक विरोध में तथा ठा० हेतसिंह और पीतराम आदि पक्ष में थे । प्रायश्चित हुआ ! भोज भी हुआ ! भोज में ठा० हेतसिंह और पीतराम तो सम्मिलित ही हुए पं० नवल बिहारी के समर्थकों के लड़के भी शामिल हुए !

अब मंदिर में मूर्ति पूजा शेष थी ! पं० नवलबिहारी ने इसमें भी अड़चन डाली । मंगल की मां ने उनसे प्रार्थना भी की पर वे न माने ! लड़कों ने यहाँ भी मंगल का समर्थन किया ! आवेशपूर्ण वातावरण में यह कार्य भी समाप्त होगया । पं नवल बिहारी ने बदला लेने की ठानी ! मूर्ति को रात में उन्होंने उल्टी खड़ी कर दिया और प्रातःकाल सबसे कहा कि बल पूर्वक मंदिर अपवित्र किये जाने के कारण ही मूर्ति रुष्ट होगई है । सबने इसमें पं० नवलविहारी की ही चाल समझी ! उन्हें मूर्ति का अपमान करने वाला अपराधी घोषित किया ! सभा हुई । और उसमें 'दोषी' और 'निर्दोषी' के पर्चे डाले गये ! पं० नवलबिहारी दोषी सिद्ध हुये । सबके सम्मुख वे ग्लानि से गड़ गये ! मूर्ति की पुनः प्रतिष्ठा की गई । मंगल पुनः जाति में शामिल कर लिया गया । सब लोग प्रसन्न थे ।

कथानक का अध्ययन करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि वह बिल्कुल साधारण है । इसमें एक समस्या उठाई गई है और उसका समाधान भी किया गया है । समस्या यह है कि यदि किसी का धर्म बलपूर्वक परिवर्तित करा लिया जाय तो वह व्यक्ति इच्छानुसार पुनः अपने धर्म में शामिल हो सकता है या नहीं ? इस समस्या का समाधान मंगल के पुनः हिन्दू धर्म में ले लिये जाने से स्पष्ट है । कथानक का और कोई उद्देश्य नहीं है । इसी समस्या के समाधान के हेतु ही यह उपन्यास लिखा गया । मंगल के पुनः धर्म में लिये जाने पर समाज के ठेकेदार अड़चनें डालते हैं पर प्रगतिशील विचार धारा वाले कुछ व्यक्तियों और लड़कों के कारण वे सफल नहीं हो पाते । हिन्दू

समाज कितना खोखला और दुर्गुण ग्रस्त है इसका भी आभास इस उपन्यास से हो जाता है। कथानक में और कोई आकर्षण नहीं है।

चरित्र चित्रण भी साधारण है। पं० टीकाराम व नवलबिहारी के चरित्र उनकी प्रवृत्तियों के अनुरूप हैं। नवलबिहारी धर्म के ठेकेदारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अन्त में उनकी जो छीछालेदर हुई है वह इस वर्ग के व्यक्तियों को देखते हुए बहुत कम है। टीकाराम विशेष रूढ़िवादी तो नहीं पर हैं इसी वर्ग के! मंगल के स्थान पर यदि दूसरे युवक के विषय में यह समस्या उठी होती तो हमारा दृढ़ मत है कि टीकाराम भी विरोधियों में सबसे आगे होते। मंगल उनका पुत्र था इसी कारण वे झुके अन्यथा वे भी नवलबिहारी का साथ देते।

ठा० हेतसिंह, पीतराम, रामसहाय वैद्य के चरित्र भी स्वाभाविक हैं। इस प्रकार के लोग भी समाज में बहुतायत से पाये जाते हैं। ये लोग प्रतिदिन भांति २ की समस्याएँ खड़ी किया करते हैं परन्तु इनके हृदय उतने मलीन नहीं हैं जितने कि उस पाखन्डी वर्ग के जो अपने को धर्म का और जाति का ठेकेदार कहता है।

रहमतउल्ला का चरित्र भी उसकी प्रवृत्तियों के अनुकूल है। मंगल की बातों से वह उसे भाँप जाता है और उसे मालाबार ले जाकर मुसलमान बनाता है। वह एक रूढ़िवादी मुसलमान है और उसी के अनुकूल ही उसके कार्य हैं। बीबी बच्चों की चिन्ता न कर खिलाफत की वेदी में प्राण दे देता है।

मंगल का चरित्र उभर नहीं सका! प्रारम्भ में तो उसमें बड़ी तेजी देख पड़ती है। बाँदा से निकलते ही उसका जोश धीमा पड़ता है और मालाबार पहुँचते २ तो ठण्डा हो जाता है। मुसलमान बनने के पश्चात तो वह निष्क्रिय हो जाता है। रोता है, पीटता है, पश्चाताप करता है। साहस के साथ परिस्थितियों का सामना करने की शक्ति ही उसमें नहीं रह जाती। यहाँ हमें उसके चरित्र में दुर्बलताएँ ही दुर्बलताएँ देख पड़ती हैं। वह धर्म भीरु, निकम्मा, दुर्बल और भयभीत ही प्रतीत होता है। ये सारी दुर्बलताएँ अन्त तक उसके साथ रहती हैं। उसका चरित्र कदापि अनुकरणीय नहीं है। वह एक मृत पात्र है।

हरीराम का चरित्र नौकर के रूप में उपन्यासकार ने सुन्दरता से चित्रित किया है। वही सारे पुरुष पात्रों से अधिक प्रगतिशील भी है! वह मंगल के साथ खुशी से खाता भी है। उसकी बिरादरी वाले उसे अलग कर देते हैं पर उसे कोई चिन्ता नहीं! वह कहता है—"मेरा उन ससुरों ने क्या बिगाड़ लिया। मुझे कौन लड़के लड़की ब्याहना हैं। मैंने तो अपनी जाति के कुछ पंचों से अभी २ कहा है कि तुमने मुझे बिरादरी से अलग नहीं किया बल्कि मैंने तुम लोगों को जाति से खारिज किया।"

शराब पिलाकर पंचों को खुश करने के विधान पर कहता है—"महाराज ! मैं शराब नहीं पीता और न पंचों को खुश करने के लिए मेरे पास दो रुपये फालतू हैं।"

हरीराम का चरित्र ही सबसे श्रेष्ठ है और वही हमारी बधाई का पात्र भी है।

स्त्री पात्रों में दो प्रमुख हैं। मंगल की माँ और पत्नी सोमवती ! मंगल की माँ का चरित्र वास्तव में सुन्दर है। वह एक ममता मयी माँ है और मंगल के लिए कुछ भी करने को तत्पर रहती है। उसका चरित्र हमें आकर्षित करता है।

सोमा मंगल की पत्नी है पर समाज की रूढ़िवादी मान्यताओं की शिकार है। पति को अत्यधिक चाहती है पर फिर भी बगैर प्रायश्चित हुए वह उसका स्पर्श नहीं करती है। लेखक ने उसे आदर्श हिन्दू नारी के रूप में चित्रित करने का प्रयत्न किया है पर उसका यह रूढ़िवादी चित्रण हमारी सराहना का पात्र नहीं बनता। हमें सोमा के चरित्र का यह पक्ष अत्यधिक अखरता है और अपने इस मत पर हम दृढ़ हैं। लेखक ने उसके चरित्र को उसकी रूढ़िवादिता का सहारा लेकर अत्यधिक भव्य दिखाने का प्रयत्न किया है। जब मंगल उससे अपने स्पर्श न किये जाने का का कारण पूछता है तब सोमा उत्तर देती है—'आपकी स्त्री नहीं,' आपकी धर्म पत्नी हूँ। ब्राह्मण की कन्या और ब्राह्मण की धर्म पत्नी। शान्त होकर बैठिये और धैर्य धरिये। सोमवती ने गंभीर परन्तु शान्त स्वर में कहा और कहने के साथ ही उसके मुख के चारो ओर तेज का एक मण्डल सा खिंच गया।"

उपन्यासकार को भले ही उसके मुख के चारो ओर तेज का मण्डल खिंचा दिखा हो पर हमारी दृष्टि में तेज का वह मण्डल उसकी रूढ़िवादिता और सड़ी गली मान्यताओं को प्रश्रय देने वाला मण्डल है। यहाँ उपन्यासकार की रूढ़िवादी विचार धारा का भी स्पष्ट परिचय प्राप्त होता है जिसे हम कतई प्रश्रय नहीं दे सकते।

प्रायश्चित हो चुकने के पश्चात वह मंगल के चरणों पर अवश्य गिर पड़ती है पर उसकी रूढ़िवादी विचार धारा तब भी उसके साथ रहती है।

इस प्रकार जहाँ हम सोमवती के पति प्रेम की सराहना करते हैं वहाँ उसकी रूढ़िवादी विचारधारा का उतना ही विरोध करते हैं। उसकी रूढ़िवादिता भले ही और लोगों की दृष्टि में उज्वल हो, हम उसकी तसदीक नहीं कर सकते !

रहमतउल्ला की बीबी का चरित्र भी सुन्दर है। उसमें भी ममता मयी नारी के दर्शन हमें होते हैं।

भाषा और कथोपकथन साधारण होते हुए भी उपन्यास इस कारण आकर्षक है कि इसमें लेखक ने अपने प्रगतिशील विचारों का परिचय दिया है। हाँ सोमवती के चित्रण में उसकी रूढ़िवादिता अवश्य नहीं छूट पाई। लेखक के ये दो रूप हमें उलझन में डाल देते हैं पर अपनी इतनी ही प्रगतिशीलता के लिए वह हमारी बधाई का पात्र है। उपन्यास उद्देश्य प्रधान है और अपने उद्देश्य को कतिपय सीमाओं में बंध कर पूरा करता है। बाद के उपन्यासों में लेखक अधिक प्रगतिशील दृष्टिकोण लेकर हमारे सम्मुख आया है।

ही पाल पोस कर बड़ा किया था। जानकी के विवाह की उसे बहुत चिन्ता थी। उसका विवाह कहीं निश्चित भी होता तो गाँव वाले भड़का देते। विवाह न होता। धनीराम परेशान था। न जाने कितनी बार बारातें गाँव आ आ कर लौट गईं। धनीराम कई सहस्त्र रुपया भी खर्च करने को तैयार था पर जानकी का विवाह न होने पाता था। लालमन डाकू जानकी का मामा लगता था और उसे भी जानकी के विवाह की चिन्ता थी पर डाकू होने के कारण वह खुले रूप से प्रकट न हो सकता था। विवाह टलता जा रहा था।

बड़ी कठिनाइयों के पश्चात जानकी का विवाह झाँसी के ही एक दरिद्र पर कुलीन ब्राह्मण पं० भिखारीलाल के पुत्र सम्पतलाल से निश्चित हुआ। भिखारीलाल का मुख्य आकर्षण दहेज ही था जिससे वे अपने ऋण के चुकाने के मन्सूबे बांधे हुए थे। बराती कम थे इस कारण पं० सुखलाल को भी आमन्त्रित किया गया। वे गये भी। रामचरण भी बरात में सम्मिलित हुआ। पं० सुखलाल को रामचरण की उपस्थिति से कुछ क्षोभ हुआ कारण वे जाति वालों से एकदम नाता तोड़ना भी न चाहते थे और इसी कारण वह भी रामचरण को कुछ २ हेय दृष्टि से देखते थे। बारात बरुआ-सागर पहुँच गई पर लड़की के जेवर अभी तक न आये थे। भिखारीलाल ने दो तीन दिन के लिये किसी से उधार मांग लिये थे। जेवरों को लाने का कार्य नन्दराम अहीर नामक एक विश्वास पात्र व्यक्ति को सौंपा गया था। उसी का इन्तजार हो रहा था। नन्दराम शाम ढले बरुआ सागर पहुँचा। मार्ग में उसे एक व्यक्ति मिला था जिसने उसे अपना नाम रामचन्द्र अड़जरिया बताया था। नन्दराम को उससे भय था पर उसे राह में कोई कठिनाई न पड़ी। अड़जरिया लड़की वालों की ओर से विवाह में सम्मिलित होने जा रहा था।

भांवरें पड़ने के पूर्व ही वर और वधू पक्षों में कतिपय बातों के कारण मन मुटाव हो गया। किसी प्रकार भाँवरें पड़ीं। धनीराम ने एक पैसा भी दहेज में न देने का निश्चय किया। भोजन करते समय दोनों पक्षों में मार पीट भी हो गई। रामचन्द्र अड़जरिया वधू पक्ष की ओर से लड़ने वालों में प्रमुख था। नन्दराम को पर्याप्त चोट लगी। पं० सुखलाल रामचन्द्र अड़जरिया को देखते ही पहचान गये पर चुप रहे। बात बढ़ चुकी थी। धनीराम ने लड़की को गौने तक बिदा करने से इंकार कर दिया। भिखारी-लाल पर तो जैसे वज्रपात हो गया। मँगनी के सारे जेवर लड़की के शरीर पर थे। उधर नन्दराम ने लोगों के मना करने पर भी पुलिस में रिपोर्ट की। उसने रामचन्द्र अड़जरिया का नाम भी रिपोर्ट में लिखवाया। भिखारीलाल ने सुखलाल से खुशामद की कि वे धनीराम से लड़की को बिदा करने के लिये कहें। बहुत कुछ कहने सुनने पर

लड़की विदा हुई। पुलिसवालों को कुछ रुपया देकर रिपोर्ट भी रद्द कराई गई। रामचंद्र अड़जरिया वास्तव में लालमन था और सुखलाल उसे पहचान गये थे! इसी कारण धनीराम कुछ दब गया था। गांव की रिपोर्ट तो रद्द हो गई पर नन्दराम अटल था। उसने शहर जाकर रिपोर्ट करने का निश्चय किया। शहर में मामला दायर हो गया! नन्दराम सुखलाल को भी गवाह बनाना चाहता था पर उन्होंने इन्कार कर दिया। नन्दराम ने सुखलाल से ही मामला दायर करने के लिये ऋण भी लिया था और सुखलाल ने उसे रुपया भी इसी शर्त पर दिया था कि वे और रामचरण धनीराम के विरुद्ध अदालत में न खड़े होंगे। नन्दराम को पण्डित सुखलाल के सम्मुख झुकना पड़ा। अभियुक्तों के विरुद्ध वारन्ट निकाले गये। धनीराम भी अभियुक्तों की सूची में था! सुखलाल को क्षोभ हुआ!

उधर भिखारीलाल व उनकी पत्नी ने जानकी को कष्ट देने प्रारम्भ किये। राजाबेटी अवश्य जानकी के पास आजाती थी जिससे उसे बड़ा सन्तोष प्राप्त होता था। धनीराम को जब नन्दलाल द्वारा मुकदमा दायर करने की बात पता चली तब वह पं० सुखलालसे मिला। सुखलालने उसे वचन दिया कि वे उसके विरुद्ध गवाही न देंगे और नन्दराम से समझौता करने के लिये कहेंगे। यदि नन्दराम न माना तो वे उसके विरुद्ध अपने रुपयों के लिये कचहरी में दावा कर देंगे। भिखारीलाल नन्दराम की ओर थे। सुखलाल ने नन्दराम के ऊपर ५०० रुपयों की नालिश करदी! नन्दराम मुकदमा हार गया। भिखारीलाल सुखलाल से और चिढ़ गये। अपने घर में उनकी पुत्री राजा बेटी का भी उन्होंने अपमान किया। राजाबेटी ने पिता से सब कुछ कहा। सुखलाल नन्दराम को ही सारी बातों की जड़ समझते थे। उन्होंने उसके नाश का प्रण किया।

सावन आया पर जानकी मायके न भेजी गई! राजाबेटी भी अब उसके पास न आती थी! उसे बड़ा दुख हुआ। सुखलाल और भिखारीलाल का सम्बन्ध भी टूट गया था और शत्रुता काफी बढ़ चुकी थी। जानकी किसी प्रकार ससुराल में अपने दिन काटने लगी। इधर झांसी में एक ब्राह्मण सम्मेलन का आयोजन हुआ। रामचरण झांसी आकर पिता के यहां ठहरा करता था पर अबकी बार पण्डित सुखलाल ने उससे धर्मशाला में ठहरने को कहा कारण वे जानते थे कि यदि रामचरण उनके यहां ठहरा तो सम्मेलन में उनके ऊपर और भी फबतियां कसी जांयगी। सम्मेलन समाप्त हो गया। रामचरण घर न आया। चलते समय राजाबेटी से मिलने की इच्छा से घर पहुंचा पर राजाबेटी ने भी उसका अपमान किया। वह शान्त प्रवृत्ति का था। पुनः कभी घर न आने का निश्चय कर चुपचाप वहां से चल दिया।

धनीराम ने भी भिखारीलाल और नन्दराम से बदला लेने का निश्चय किया। उसने इन लोगों पर झूंठा मुकदमा दायर करने के कारण न्यायालय में दावा दायर

किया। नन्दराम व्याकुल हो उठा! वह पण्डित सुखलाल के ही रुपये न चुका सकता था, इस मुकदमें से कैसे बचता? पेशी के दिन वह नहीं गया! भिखारीलाल धनीराम से एक तो वैसे ही चिढ़े थे इस मुकदमें के कारण और भी चिढ़ गये। सम्मत भी जानकी के विरुद्ध हो गया।

आस-पास प्लेग जोरों पर था! झांसी में भी उसका आंतक था। लोग शहर छोड़ कर भाग रहे थे। रामचरण स्कूल की नौकरी छोड़ कर झांसी चला आया था और एक दुकान में मुनीम हो गया था! पण्डित सुखलाल भी राजाबेटी और गंगा को लेकर ढिमरौनी चले गये, हाँ एक दो दिन में गंगा के साथ झांसी आकर मकान को अवश्य देख जाते थे। नन्दराम पण्डित सुखलाल से इतना अधिक चिढ़ चुका था कि उसने उनसे प्रतिशोध तक लेने का प्रण किया! जानकी के बहुत कहने पर सम्मत उसे बरुआ सागर भेज आया। बरुआ सागर में धनीराम ने सम्मत से क्षमा मांगी! उसके पैरों पर गिर पड़ा। पिछली बातें भूल जाने को कहा। सम्मतलाल चुपचाप झांसी लौट आया। भिखारीलाल ने शहर न छोड़ा था! झांसी में रामचरण प्लेग से पीड़ित व्यक्तियों की दिन रात सेवा कर रहा था। उसकी निस्वार्थ सेवा से लोग दंग थे! सुखलाल ने भी उसके विषय में सुना पर चुप रहे।

एक दिन सुखलाल शाम ढलने पर झांसी से गंगा को लिये लौट रहे थे कि मार्ग में किसी ने उन पर बन्दूक चलाई। बैल अकेली गंगा को लिये भाग गये। सुखलाल की लाश तक का पता न लगा। उनका एक पुत्र व पुत्रबधू भी प्लेग के शिकार बन चुके थे। रामचरण और उसका मित्र केशव सुखलाल के उस पुत्र की सेवा के लिये पहुँचे अवश्य थे पर अपमान का ख्याल करके रामचरण भीतर नहीं गया। राजाबेटी को इससे गहरा आघात लगा।

पण्डित सुखलाल की जायदाद का झगड़ा उठा! रामचरण अहीरिन का लड़का था, उसे जायदाद मिल नहीं सकती थी, वह इस झगड़े में पड़ना भी न चाहता था। राजाबेटी उनकी विधवा लड़की थी, उसे भी जायदाद न मिल सकती थी। मौका देख कर भिखारीलाल ने अपने हक के लिये कचहरी में प्रार्थना पत्र दिया।

पं० सुखलाल के कत्ल की जाँच भी हो रही थी। कुछ लालमन पर, कुछ नन्दराम पर और कुछ व्यक्ति रामचरण पर सन्देह करते थे। रामचरण और सुखलाल का विरोध स्पष्ट था। राजाबेटी को भी रामचरण पर ही सन्देह था कारण भाई की बीमारी में वह घर के भीतर भी न आया था। रामचरण पर पुलिस का भी सन्देह था। वह गिरफ्तार कर लिया गया। दिन कट रहे थे। जानकी अब तक धनीराम

के साथ तीर्थ यात्रा को निकल चुकी थी। भिखारीलाल को जायदाद का मुकदमा लड़ने के लिये रुपयों की आवश्यकता थी। सम्पत ने एक उपाय सोचा। एक मनुष्य की सहायता से उसने एक पञ्जाबी व्यक्ति को ५००) की एक स्त्री बेंच दी। पञ्जाबी यह कार्य करता था। औरत लेकर वह चल पड़ा। भिखारीलाल रुपया पाकर हर्षित हुये।

रामचरण की जमानत हो चुकी थी। उसकी ओर से भी जायदाद का मुकदमा लड़ा जा रहा था। रामचरण को किसी कार्य में दिलचस्पी शेष न रह गई थी। एक घटना इसी बीच काफी मनोरंजक घटी। पन्जाबी जो औरत खरीद कर लिये जा रहा था उसके ऊपर रेल के डिब्बे में बैठी अन्य स्त्रियों को शक हुआ। रिपोर्ट हुई और भण्डाफोड़ हो गया। उस औरत के वेष में स्वयं सम्पतलाल ही पन्जाबी को धोखा दे रहा था। धनीराम व जानकी भी उसी डिब्बे में थे। जानकी ग्लानि से गड़ गई। सम्पत तो पृथ्वी में समा जाना चाहता था। जानकी यह आघात न सह सकी, मूर्छित हो गई। पश्चाताप दग्ध सम्पत भी अचेत हो गया! धनीराम ने सम्पत की पूरी सहायता की। उसे झाँसी लाया! सम्पत के नये जीवन का प्रारम्भ हुआ। जानकी ने भी सम्पत को क्षमा कर दिया।

रामचरण राजाबेटी से मिलने पहुंचा कारण दूसरे ही दिन मुकदमा था। रात को वह वहाँ रह गया। सामने ही पं० सुखलाल का मकान था जिसमें भिखारीलाल द्वारा अदालत की ओर से ताला डलवा दिया गया था। रामचरण सो गया। स्वप्न में उसने लालमन को देखा! वह उसके प्रति घृणा से भर उठा। उसकी आँख खुल गई। देखा सामने मकान में दो व्यक्ति ताला खोल रहे हैं। एक व्यक्ति लेटा भी हुआ है। वह तैयार हो गया। जैसे ही वे दो व्यक्ति उस तीसरे को मकान में लिटाकर लौटे रामचरण ने एक पर लाठी से वार कर उसे वहीं धराशायी कर दिया। दूसरा भी घायल हुआ। वह वास्तव में लालमन था। उसने रामचरण को पटक दिया और उसे बन्दूक के कुन्दे से मारना प्रारम्भ किया। अब तक राजाबेटी व गंगा भी घटना-स्थल पर आ चुकीं थीं। गंगा ने लालमन को रोका। वह न माना। गंगा घायल राम-चरण के ऊपर लेट गई। बन्दूक के कुन्दे उस पर पड़ते रहे पर वह न हटी। लालमन भी अचेत हो गया। गंगा, रामचरण, लालमन अस्पताल लाये गये। मकान के भीतर जो लेटा हुआ था वह वास्तव में सुखलाल था जिसे लालमन ने जब वह गोली लगने के कारण घायल हुआ था, बचाया था और उसकी सेवा की थी। लालमन दो दिन पूर्व राजाबेटी व गंगा से कह भी गया था कि वह सुखलाल को मकान में छोड़ जायगा। लालमन ने अपने सारे अपराध मान लिये पर बच न सका। घावों से

उसकी मृत्यु हो गई। रामचरण व गंगा स्वस्थ हो चुके थे। सुखलाल का रामचरण के प्रति सोया हुआ वात्सल्य भाव जाग उठा। राजाबेटी ने रामचरण से क्षमा माँगी। उसने उसे पं० सुखलाल का कातिल समझ लिया था। सुखलाल जीवित ही थे। भिखारीलाल जीता हुआ मुकदमा हार गये। कारण अब जायदाद का कोई प्रश्न ही नहीं था।

एक रात नन्दराम ने मजिस्ट्रेट के बँगले में अचानक प्रवेश कर अपने सारे अपराध बता दिये। सुखलाल के ऊपर गोली उसी ने चलाई थी और इसका कारण यह था कि वह सुखलाल को ही अपनी तबाही का कारण समझता था। नन्दराम गिरफ्तार कर लिया गया। रामचरण के विरुद्ध जो भी अभियोग थे सब हटा लिये गये। सुखलाल ने तीर्थ यात्रा का निश्चय किया। जाते समय आधी जायदाद रामचरण को और आधी राजाबेटी को दी। रामचरण से अनुरोध किया कि वह गंगा के साथ विवाह करले। रामचरण सहमत हो गया। जाति वाला प्रश्न सामने रखा पर जीवन के अनुभवों ने सुखलाल को बहुत कुछ सिखा दिया था। उन्हें किसी जाति वाले की चिन्ता न थी। विवाह हुआ। उसमें थोड़े ही लोग सम्मिलित हुये। सम्मिलित होने वालों में मुख्य केशव और सम्पत थे। सम्पत बिल्कुल बदल चुका था। अदालत ने भिखारीलाल पर जायदाद के लिये झूठा अधिकार पेश करने के लिये मुकदमा चलाने का निश्चय किया पर सुखलाल ने उसे बचा लिया। नन्दराम को दस वर्ष की सजा हुई। उसका वह मकान जो पं० सुखलाल की डिग्री के कारण नीलाम होने वाला था बच गया। पं० सुखलाल ने उसे नीलाम नहीं कराया। सारे कार्य समाप्त कर वे तीर्थ यात्रा को चल पड़े।

यहीं पर कथा की समाप्ति है। कथानक में कोई आकर्षण नहीं है केवल घटनाओं की ही भरमार है। परिचय में वर्मा जी ने उन आधारों का उल्लेख कर दिया है जिन पर कथावस्तु टिकी हुई है। केवल रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिये कल्पना से कार्य लेने की आवश्यकता उन्हें पड़ी है। उपन्यास पूर्णरूपेण घटना प्रधान है। कोई भी चरित्र इसमें ऐसा नहीं है जो हमें विशेष आकर्षित कर सके। जो दो एक हैं भी उन्हें भी उपन्यासकार उभार नहीं पाया। नीरस घटनाओं का एक ताँता सा खड़ा कर उसने आगे बढ़ने का प्रयत्न किया है जो पाठकों को तनिक भी प्रभावित नहीं करतीं। ये सारी दुर्बलताएं कदाचित इसीलिये हैं कि यह उपन्यास भी वर्मा जी की प्रारम्भिक कृतियों में से है। सामाजिक उपन्यासों में वैसे भी वर्मा जी विशेष सफल नहीं हो सके। इस उपन्यास में, इस क्षेत्र में उनकी असफलता सबसे अधिक है। उनके दूसरे सामाजिक उपन्यासों में घटनाओं का तांता अवश्य है पर उनमें चरित्रों का चित्रण भी बहुत सुन्दर हुआ है पर

इस उपन्यास के विषय में हम ऐसा नहीं कह सकते। इसमें केवल एक नीरस कथा है, अन्य तत्व बिलकुल ही नहीं उभर पाये हैं। कथावस्तु का क्षेत्र भी अत्यन्त सीमित है। कुछ व्यक्तियों के पारस्परिक द्वेष विद्वेष और उसके परिणामों को लेकर ही कथा वस्तु ने विकास पाया है। बीच बीच में अवश्य उपन्यासकार ने समाज की कतिपय सड़ी गली मान्यताओं, कुरीतियों पर प्रकाश डाला है। उनके भले बुरे परिणाम दिखा कर उसने अपने उद्देश्य की पूर्ति करने का प्रयत्न किया है पर उपन्यास का दायरा इतना सीमित है कि हमारे ऊपर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ पाता।

कथा का अधिकांश भाग मुकदमे बाजी से सम्बन्धित है। मुकदमेबाजी से सम्बन्धित सारी बातें यथा तथ्य ही उपस्थिति की गई हैं। यह मुकदमेबाजी ही सबसे अधिक उबाने वाली सिद्ध हुई है। उपन्यास की घटनाओं का विकास भी इसी मुकदमे बाजी से ही होता चला है। एक मुकदमा दूसरे मुकदमे को जन्म देता है और दूसरा तीसरे को। इसी प्रकार आगे का घटना चक्र निर्मित होता चलता है। वर्मा जी का एडवोकेट होना इस उपन्यास से पूरी तरह से प्रमाणित हो जाता है। यहाँ उनका कलाकार रूप पीछे हो गया है। वे पहले एडवोकेट देख पड़ते हैं बाद को उपन्यासकार! कुछ स्थल ऐसे हैं जिनमें वर्मा जी की तूलिका ने कतिपय सुन्दर चित्र देने का प्रयत्न किया है पर वे मुकदमे बाजी के कारण दब से गये हैं। वर्मा जी के अन्य उपन्यासों में कोई न कोई घटना ऐसी अवश्य रहती है जो पाठकों को याद रहे पर इस उपन्यास में यह बात भी नहीं है। उपन्यास समाप्त हो जाता है पर न कोई घटना ही हमें प्रभावित करती है न कोई चरित्र। निष्कर्ष यही कि प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु बिल्कुल ही साधारण है और वह उनके अन्य उपन्यासों की कथावस्तु से बहुत पीछे है।

चरित्र चित्रण के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। जहाँ वर्मा जी के अधिकांश उपन्यास कथावस्तु और सुन्दर चरित्रों के लिये प्रसिद्ध हैं, यह उपन्यास दोनों में से किसी बात को चरितार्थ नहीं करता। चरित्र चित्रण बिल्कुल साधारण कोटि का है। कुछ चरित्र ऐसे अवश्य थे जिन्हें यदि सावधानी से उभारा जाता तो वे पर्याप्त सुन्दर बन सकते थे पर वर्मा जी उनके चित्रण में भी असफल ही रहे हैं। ऐसा लगता है कि उपन्यासकार को घटनाओं के वर्णन से ही अवकाश नहीं मिल पाया। चरित्रों में न तो कोई विशेष गति है न आकर्षण! सब दुर्बल हैं, किसी में भी संघर्ष की शक्ति नहीं देख पड़ती। परिस्थितियों के सम्मुख सारे चरित्र झुक गये हैं और उन्हीं में उलझ कर रह गये हैं। कुछ परिस्थितियों की चोट से सुधर गये हैं और कुछ उनकी चपेट से छूट ही नहीं पाये। कहने का तात्पर्य यह कि परिस्थितियों के उतार चढ़ाव ने ही चरित्रों को बिगाड़ा सुधारा है। उपन्यास की घटनाएं चरित्रों के ऊपर इस तरह से हावी हो गई हैं

कि चरित्र उभर ही नहीं पाये ।

पुरुष पात्रों में मुख्य पं० सुखलाल, धनीराम, रामचरण, नन्दराम, भिखारीलाल सम्पत और लालमन हैं तथा स्त्री पात्रों में प्रमुख राजा बेटी, जानकी और गंगा हैं ।

पं० सुखलाल का चरित्र साधारण है यद्यपि बाद में वह उत्कर्ष को प्राप्त हुआ है ! परिस्थितियाँ ही उनके चरित्र को उत्कर्ष प्रदान करती हैं । भिखारीलाल का चरित्र भी साधारण ही है । वह प्रारम्भ से अन्त तक समान रूप से लोभी और संकीर्ण मनोवृत्ति वाला ही बना रहता है । धनीराम का चरित्र इन दोनों से अधिक आकर्षक है । उसका अक्खड़पन ही इस आकर्षण का मुख्य कारण है । उसके चरित्र में दृढ़ता भी है और यह दृढ़ता ही उसके चरित्र को उभारती है। रामचरण का चरित्र पर्याप्त प्रभावशाली बन सकता था पर उपन्यासकार उसे उभार नहीं पाया । उसके चरित्र में भी दृढ़ता है और सब ओर से निराश्रय होने पर भी वह अपने पथ पर बढ़ता चलता है । अपने जीवन की चिन्ता न कर वह प्लेग से पीड़ित व्यक्तियों की सेवा करता है । जिस राजा बेटी ने उसका अपमान किया था, उसी के अधिकारों को लेकर वह भिखारीलाल से मुकदमा भी लड़ता है, यद्यपि उसमें उसका कोई निजी स्वार्थ न था । राजा बेटी उसे पिता का हत्यारा समझने लगती है पर वह निर्दोष था । सारे आघात सह जाता है । घटनाएँ बदलती हैं । उस पर लगाये गये लांछन अपने आप मिट जाते हैं । सुखलाल, राजा बेटी सब अपने कृत्यों पर पश्चाताप करते हैं । गंगा से विवाह कर अपने जीवन को सुखी बनाता है । रामचरण के चरित्र द्वारा उपन्यासकार ने युवक समाज के लिये एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। उस जैसे युवकों की आज सबसे अधिक आवश्यकता है ।

सम्पत परिस्थितियों का दास है । परिस्थितियाँ उसे अन्त तक बिल्कुल बदल देती हैं और वह भी अपना नया जीवन प्रारम्भ करता है । अन्त तक वह हमारी सहानुभूति अवश्य प्राप्त करता है ।

सबसे अधिक सहानुभूति का पात्र नन्दराम है । सब लोग उसे अपना अपना लक्ष्य बनाते हैं और उसे पीस डालते हैं । इसका प्रमुख कारण यही था कि वह निर्धन था और सुखलाल और धनीराम जैसे धनवानों से लोहा लेने में वह बिलकुल असमर्थ था । सब उसकी निर्धनता से लाभ उठाते हैं और उसे मिटा देते हैं । परिस्थितियाँ उससे सुखलाल की हत्या का प्रयत्न करवाती हैं । उसे दस वर्ष की सजा होती है । भिखारीलाल, सुखलाल और धनीराम का झगड़ा उसे पीस देता है । जिस मुकदमे बाजी का बीज उसी ने बोया था वही उसका नाश कर देती है । प्रारम्भ से अन्त तक नन्दराम हमारी सहानुभूति का पात्र रहता है इसमें कोई सन्देह नहीं । परिस्थितियों और उस पर होने वाले अत्याचारों को देखते हुए उसका प्रत्येक कार्य उचित प्रतीत होता है

यहाँ तक कि सुखलाल की हत्या का प्रयत्न भी। नन्दराम उसके लिये कतई दोषी न था दोषी स्वयं सुखलाल था जिसने नन्दराम को मिटा देने में कोई कसर न बाकी रखी थी।

लालमन का चरित्र भी साधारण कोटि का है। उसमें कोई आकर्षण नहीं देख पड़ता। उसकी प्रवृत्तियों के अनुसार उसके चरित्र का चित्रण हुआ है और उन्हीं के अनुरूप उसका अंत भी है।

केशव का चरित्र रामचरण के बहुत निकट है। वह भी युवक समाज के लिये एक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

स्त्री पात्रों में जानकी प्रमुख है पर प्रारम्भ में हम उसके विषय में जो धारणा बनाते हैं उसके अनुकूल वह अन्त तक नहीं हो पाती। उसका चरित्र भी साधारण है। राजा बेटी का चरित्र भी बिल्कुल साधारण है। दुर्बलताएँ उसमें इतनी अधिक हैं कि वह हमें तनिक भी प्रभावित नहीं कर पाती। संकीर्णता में सुखलाल से वह भी कम नहीं है। परिस्थितियाँ ही उसके चरित्र को भी गिराती हैं। अन्त में वह भी रामचरण से क्षमा माँग कर अपने ऊपर लगी हुई कालिमा को धो देती है।

स्त्री पात्रों में सबसे आकर्षक चरित्र गंगा का है यद्यपि उपन्यासकार ने उसे बहुत कम उभारा है। अन्य दो स्त्री पात्रों से वह अधिक दृढ़, अधिक विवेक शील एवं अधिक सजग है। जब राजा बेटी रामचरण को पिता का हत्यारा कहती है तब वह उसे समझाती है पर उसकी बातों का राजा बेटी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। बाद को जब सारी बातें खुल जाती हैं तब राजा बेटी को अपने ऊपर ग्लानि होती है। रामचरण के लिये भी गंगा के हृदय में पर्याप्त स्थान था। जब राजा बेटी और सुखलाल उसे अपमानित करते हैं तब उसका हृदय कचोट उठता है पर वह विवश थी, चुप रह जाती है। बाद को रामचरण और लालमन के द्वन्द्व में अपने जीवन की चिन्ता न कर वह रामचरण की रक्षा करती है। यहाँ उसका साहस हमें सबसे अधिक आकर्षित करता है। बलिष्ठ लालमन के प्रहार उसकी पीठ पर होते हैं पर वह उफ तक नहीं करती। रामचरण के लिये उसके हृदय में जो स्थान था वह अन्त तक बना रहता है। रामचरण की जीवन संगिनी बनने की सामर्थ्य उसमें थी और वह उस पद को प्राप्त करती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपन्यास के सम्पूर्ण चरित्रों में रामचरण और गंगा ही प्रमुख हैं और वही सबसे अधिक दृढ़ और गतिशील हैं पर उनका भी जो चित्रण होना चाहिए था वह नहीं हो पाया परन्तु फिर भी उनकी गरिमा में विशेष कमी नहीं आती। शेष सारे चरित्र साधारण कोटि के हैं। नन्दराम अवश्य उपर्युक्त दोनों चरित्रों के साथ ही हमारे मस्तिष्क में ठहरा रहता है।

उपन्यास की भाषा और कथोपकथनों के सम्बन्ध में भी कोई बात उल्लेखनीय नहीं है। भाषा साधारण और चलती हुई है और कथोपकथन भी। अदालती शब्दों की भरमार ने भाषा को हलका करने में कोई प्रयत्न नहीं उठा रक्खा। पर कथानक को देखते हुए यह दोष भाषा पर नहीं लादा जा सकता।

समस्याओं को सुन्दरता पूर्वक उभारा गया है और उपन्यासकार ने उनके विषय में अपना मन्तव्य भी प्रकट किया है। समस्याओं के चित्रण और निर्वाह में उपन्यासकार का दृष्टिकोण पर्याप्त प्रगति शील है। समाज की कुरीतियों और सड़ी गली मान्यताओं पर उसने कड़े प्रहार किये हैं और अपनी खुद की मान्यताओं को भी प्रकट किया है जो प्रगतिशील हैं! अपने अधिकांश उपन्यासों में वर्मा जी ने समाज की सड़ी गली मान्यताओं के प्रति अपनी प्रगतिशील विचार धारा का परिचय दिया है। इससे स्पष्ट है कि वे युग और उसकी बदली हुई परिस्थितियों की दौड़ में पीछे नहीं हैं। आज इसी प्रकार की प्रगतिशील विचारधारा वाले साहित्यकारों की आवश्यकता है। वर्मा जी का यह प्रगतिशील रूप निश्चय ही प्रभावशाली है। प्रस्तुत उपन्यास में कोई वस्तु हमें भले ही उतना आकर्षित न करे उपन्यासकार के प्रगतिशील विचार हमें अत्यधिक प्रभावित करते हैं।

(७) कभी न कभी :—

प्रस्तुत उपन्यास में वर्मा जी की दृष्टि मेहनतकशों के जीवन की ओर गई है। यह इसका एक आकर्षण है। रोमांस केवल उच्च और कुलीन व्यक्तियोंके जीवन में ही नहीं इन मजदूरों, मेहनतकशों के जीवन में भी पाया जाता है और यहाँ उसका स्वरूप भी तथा-कथित उच्च और कुलीन वर्ग के व्यक्तियों के रोमांस से भिन्न होता है। मेहनतकशों, नंगे और भूखों के जीवन में रोमांस देखने के लिए, हमें उनके बीच में जाने की आवश्यकता है, उनके जीवन को निकट से, आत्मीयता से और गहराई से देखने की आवश्यकता है। 'परिचय' में वर्मा जी ने लिखा है — "जीवन में रोमांच (रोमांस) है। जीवन में उसका स्थान और आकर्षण है। ढूंढ़ने पर मजदूर जीवन में भी उसकी सरसता मिल सकती है। कुदाली फावड़े से यदि चिनगारी उत्पन्न हो सकती है तो उनसे रोमांस का उद्भव भी सम्भव है। आँखों देखा है।"

मेहनतकशों के जीवन के इसी एक मधुर पक्ष का चित्रण वर्मा जी ने प्रस्तुत उपन्यास में किया है। घटना का आधार सत्य है। उसमें आकर्षण भी पर्याप्त है। कथानक निम्नलिखित है—

लछमन और देवजू दोनों मजदूर थे। दोनों मित्र थे। मित्रता इतनी थी कि एक प्राण और दो शरीरों की बात कहना तनिक भी अत्युक्ति न थी। दिन भर ईंट गारा ढोते, कड़ी धूप में शरीर का खून पसीना करके बहाते और शाम को तीन चार आने पैसे मजदूरी के पाकर पेट भरते। फिर भी उन्हें सुख था। लछमन देव जू को बड़ा भाई मानता और देव जू लछमन को छोटा भाई समझ कर उस पर प्राण तक अर्पित कर देने को तत्पर रहता। सब यही समझते थे कि वास्तव में ये दोनों सगे भाई हैं। दिन बीतते जाते हैं। दोनों एक दूसरे के दुख दर्द में साथ साथ रोते हैं और हंसी खुशी के अवसरों पर साथ २ हँसते हैं। लछमन चाहता है कि देव जू का विवाह हो जाय पर देव जू लछमन से विवाह का आग्रह करता है। लछमन देव जू को मनाने में सफल हो जाता है कारण देव जू बड़ा था और पहले उसी का विवाह होना चाहिये था।

इन्हीं दिनों हरलाल नामक एक व्यक्ति अपनी युवती पुत्री लीला को लेकर शहर, काम खोजने आता है। लछमन और देव जू से उसकी भेंट होती है। लछमन उन दोनों को भी अपने साथ ही काम दिला देता है। चारों में अत्यधिक घनिष्ठता हो जाती है! लछमन लीला को देव जू के लिये उपयुक्त समझता है। वह हरलाल से इस बात का जिक्र भी करता है पर हरलाल बात टाल जाता है। लछमन हिम्मत नहीं

हारता। वह गाँव जाकर अपने कई नातेदारों से देवजू के विवाह का जिक्र करता है पर कोई भी देवजू के साथ अपनी पुत्री का विवाह करने को तत्पर नहीं होता कारण देवजू संसार में अकेला था! न नातेदार, न मित्र, न घर, न द्वार! निराश लछमन गाँव में बीमार पड़ जाता है। गाँव में ही उसे तार मिलता है कि देवजू अत्यधिक घायल होकर अस्पताल में पड़ा है। वह तुरन्त शहर पहुँचता है। अस्पताल जाकर प्राणपण से देवजू की सेवा करता है। देवजू स्वस्थ तो हो जाता है पर ठीक तरह चल नहीं पाता।

लछमन पुनः हरलाल से देवजू के साथ लीला का विवाह कर देने को कहता है। हरलाल सहमत नहीं होता, हाँ वह लछमन के साथ लीला का विवाह कर देने को प्रस्तुत था! लछमन अपना विवाह न करना चाहता था। परन्तु लछमन ने आशा न छोड़ी! उसे विश्वास था कि वह हरलाल को मना लेगा। उसने हरलाल से लीला की जन्मपत्री मांग ली। देव जू के पास उसकी जन्मपत्री न थी। लछमन पंडित के यहाँ गया और उससे दो जन्मपत्रियाँ बनाने को कहा—एक देव जू की, दूसरी अपनी। उसने उसे यह आदेश भी दिया कि वह ऐसी जन्मपत्रियाँ बनाये कि देवजू की जन्मपत्री तो लीला की जन्मपत्री से मेल खा जाय पर उसकी विपरीत हो। उसे यह विश्वास था कि जब हरलाल देखेगा कि उसकी जन्मपत्री लीला की जन्मपत्री से नहीं मिलती तब वह लीला का विवाह देवजू से कर देगा। उसने देवजू को उसकी जन्मपत्री दिखाई। अपनी जन्म पत्री की बात वह छिपा गया। उसने हरलाल को तीनों जन्म पत्रियाँ दे दीं। अपनी जन्मपत्री को व्यर्थ बताया कारण वह लीला की जन्मपत्री से मेल न खाती थी! उसने हरलाल से देवजू की खूब प्रशंसा की।

हरलाल जन्मपत्रियाँ लेकर ठेकेदार मेट के पास गया जो ज्योतिष जानने का ढोंग रचे था। उसने उसे तीनों जन्मपत्रियाँ दिखाईं। मेट स्वयं लीला के सौंदर्य पर मुग्ध था। विवाह की तो उसे आशा ही न थी पर वह यह जानता था कि देवजू स्वाभिमानी प्रकृति का है। यदि उससे लीला का विवाह होगया तो वह उसे लेकर अन्यत्र चला जायगा फिर उसे लीला के दर्शन भी न होंगे। लछमन सीधा था। मेट जानता था कि यदि उसके साथ लीला का विवाह हो गया तो लीला वहीं रहेगी और उसे भी संतोष रहेगा। उसने हरलाल को सलाह दी कि वह लीला का विवाह लछमन के साथ ही करे। लछमन ने हरलाल को बहुत समझाया पर वह न माना। देवजू लंगड़ाने के कारण काम पर न आता था। लछमन और लीला से खूब बातें होतीं। लीला भी लछमन की ओर ही आकर्षित थी! लछमन ने अन्त में निश्चय किया कि यदि हरलाल देवजू के साथ लीला का विवाह न करेगा तो वह स्वयं लीला से विवाह कर लेगा पर उसे अन्यत्र न जाने देगा। घटनाएँ घटती गईं। लछमन ने

देवजू को सारी परिस्थिति बता दी ! अपनी जन्मपत्री वाली बात भी बताई। देवजू को शंका हुई ! वह न समझ पाया कि जब लछमन विवाह ही न करना चाहता था तब उसने अपनी जन्म पत्री क्यों बनवाई, उसे हरलाल को क्यों दिया और फिर जन्म पत्री अनमेल क्यों बनवाई ? वह निराश होगया ! लछमन को उसने आशीर्वाद दिया। लछमन ने देवजू को समझाया। वह मुस्करा दिया। उसके हृदय में घोर अन्तर्द्वन्द मचा था।

मेट की वासना एक दिन बलवती हो उठी ! उसने लीला को धोखा देकर रात को काम पर बुलवाया ! लीला घर पर अकेली थी पर उसके छल में आगई। देवजू भी घटनावश डेरे पर ही पहुँचा ! मेट लीला को अपमानित कर रहा था ! देवजू ने उपयुक्त अवसर पर पहुँच कर उसकी रक्षा की ! वह मेट को ठिकाने लगाना चाहता था पर लीला व्यर्थ का बवंडर न उठाना चाहती थी। उसने देवजू को रोक दिया। देवजू लीला को लेकर हरलाल और लछमन के पास पहुँचा। उसने सारी घटना दोनों को बताई पर लीला ने उनसे जो कुछ कहा उससे यही प्रकट होता था कि बात साधारण थी, देवजू ने व्यर्थ में ही उसे तूल दिया। देवजू वहाँ न भी पहुंचता तो भी वह मेट को शिक्षा देने के लिये पर्याप्त थी। लछमन को देवजू की यह व्यर्थ का बवंडर उठाने वाली प्रवृत्ति खराब लगी ! उसने देवजू से कहा भी ! देवजू को लीला की ही बातों से काफी आघात पहुँचा था, लछमन की बातों से उसे और भी चोट लगी। वह चुप रह गया। उसने समझ लिया कि उसके और लछमन के बीच में एक दीवार खड़ी हो गई है। वह जानता था कि मेट अपने अपमान का बदला लेगा और लीला का विवाह हो जाने पर कुछ न हो सकेगा। उसने हरलाल को विवश किया कि वह उसी रात लीला का विवाह लछमन से कर दे ! सारे प्रबन्ध का उत्तर दायित्व उसने अपने ऊपर ले लिया। रात ही रात मण्डप गाड़ा गया।

"कुछ क्षण के लिए देवजू और लछमन एक स्थान पर एकत्र होगये। देवजू के चेहरे पर दृढ़ता की छाप लगी हुई थी और लछमन के मुँह पर उत्साह की कोई झलक न थी।

देव जू ने कहा—लछमन तुमको उदास न रहना चाहिये। यह हर्ष की घड़ी है।

लछमन बोला—और बड़े, क्या तुमको मुख पर ऐसा फीकापन रहने देना चाहिये।

देवजू ने मुस्कराने की चेष्टा की।

लछमन ने कहा—ऐसा नहीं, खिलखिला कर हंसो।

देवजू और अधिक मुस्कराकर बोला—कभी न कभी मुस्करा कर भी हंसूँगा। भगवान मेरी लाज रखेंगे।

लछमन ने कहा—ऐसा जान पड़ता है जैसे कोई अन्तर बीच में आ गया हो।
देवजू—नहीं तो।
लछमन—जान पड़ता है जैसे कुछ हो।
देवजू का गला भर्रा गया। जो कुछ भी हो मैं तो तुमको आनन्द में देखना चाहता हूं।
लछमन—हम सब एक होंगे। एक होकर रहेंगे।
देवजू—क्या।
लछमन—मन तो यही कहता है।
देवजू—मन जैसा चंचल तो संसार में कुछ है नहीं ?
लछमन को बुरा लगा-बोला—मैं अब भी पीछे हट जाने को तैयार हूं।
देवजू—मुँह दिखाने को भी जगह न रहेगी। सब कुछ सामने तैयार है। अब पीछे हटना कैसा ?
लछमन—तुमको सुख मिलेगा ?
देवजू—हां, कभी न कभी।"

लछमन और लीला का विवाह हो गया। लछमन खुश था और कदाचित देवजू भी।

कथा वस्तु साधारण है। रोमाँस की झिलमिलाती रेखाओं के कारण उसमें अवश्य कुछ आकर्षण आ गया है। कथा वस्तु मुख्यतः चार पात्रों से सम्बन्धित है—लछमन, देवजू, हरलाल और लीला। घटनाओं में कोई तीव्रता नहीं है। अन्त में वे अवश्य कुछ तीव्र हो उठी हैं। कथावस्तु मुख्यतः निम्नांकित सूत्रों पर ही टिकी हुई है—

(१) लछमन और देवजू का पारस्परिक सम्बन्ध। उनकी अटूट मित्रता दिखाकर उपन्यासकार ने अन्त को मार्मिक बनाने का प्रयत्न किया है। प्रारंभ से अन्त तक की उनकी अभिन्नता और अन्त में उनके संबंधों में खिंचाव का आ जाना, दोनों ही पर्याप्त प्रभावशाली हैं।

(२) लछमन और देवजू की हरलाल और लीला से भेंट!

(३) लछमन की देवजू और लीला का विवाह कराने की इच्छा।

(४) देवजू का भी लीला की ओर झुकाव पर हरलाल का इंकार, लीला भी देवजू की ओर आकर्षित न थी।

(५) लछमन का लीला से विवाह करने का निश्चय! हरलाल का सहमत होना, लीला का भी लछमन की ओर झुकाव!

(६) देवजू और लछमन के सम्बन्धों में आन्तरिक खिचावट। लछमन और लीला का विवाह !!

विवाह सम्बन्धी जटिलता ही कथानक का मुख्य आकर्षण है। कुछ मनोवैज्ञानिक गुत्थियाँ भी घटनाओं को तीव्र करती हैं। संक्षेप में कथा वस्तु साधारण है।

चरित्र चित्रण भी साधारण है। देवजू और लछमन के चरित्रों का विकास सुन्दर है। लछमन देवजू को सुखी बनाने के लिए आदि से अन्त तक प्रयत्न करता है और देवजू लछमन को! लीला का आगमन उनके जीवन में परिवर्तन का भागी बनता है। लछमन के हृदय की दुर्बलता आखिरकार उसे लीला के साथ विवाह करने को बाध्य करती है पर यह दुर्बलता भी स्वाभाविक है। लीला के कारण उसका देवजू से खिंच जाना भी स्वाभाविक है। देवजू का लछमन के ऊपर शंका करना भी स्वाभाविक है यद्यपि शंका की बात न थी। दोनों के सम्बन्धों में इस पार्थक्य का मूल कारण लीला है। देवजू लछमन को प्रसन्न करने के लिए अपनी इच्छा का त्याग करता है। उसका यह त्याग परिस्थिति जन्य होते हुए भी सुन्दर है। लछमन भी लीला के साथ विवाह करने के कारण दोषी नहीं ठहराया जा सकता। तात्पर्य यह कि दोनों के चरित्र स्वाभाविक और सुन्दर हैं।

हरलाल का चरित्र साधारण कोटि का है। लीला के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। लछमन की ओर उसका आकर्षित होना भी स्वाभाविक है कारण लछमन के साथ उसे रहने और बातें करने का अधिक अवसर मिला था। उसके चरित्र में कोई भी गुत्थी नहीं है, वह बिल्कुल स्पष्ट है।

भाषा और कथोपकथन आदि भी साधारण कोटि के हैं।

निष्कर्ष में हम यही कह सकते हैं कि प्रस्तुत उपन्यास साधारण कोटि का है। उसमें कोई विशेष आकर्षण नहीं है यद्यपि पढ़ने में जी भी नहीं ऊबता।
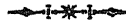
(८) अमरबेल :—[१९५३]

प्रस्तुत उपन्यास की रचना उपन्यासकार ने वर्तमान समाज की पतन की ओर जाती हुई प्रवृत्ति के प्रतिक्रिया स्वरूप की है। आज समाज में एक घुन सा लग गया है। स्वार्थ, छल प्रपञ्च, छीना झपटी, अनाचार उसे जर्जर किये हुए हैं। नगरों की कौन कहे गाँवों तक में पारस्परिक फूट, दलबन्दी और अनाचारों का बोलबाला है। भ्रष्टाचार इतना बढ़ चुका है कि उसकी कोई सीमा नहीं देख पड़ती। 'अमर बेल' समाज में फैले हुए इसी भ्रष्टाचार का, कोढ़ का दिग्दर्शन मात्र है। परिचय में वर्मा जी ने स्वयं लिखा है—"अमर बेल का परिचय कुछ तो उन पेड़ों पर लिखा रहता जिस पर छाई रह कर यह पेड़ के रस, टहनी और हरियाली को नष्ट करती रहती है और कुछ उस कहावत में व्यक्त है जो लगभग सब कहीं प्रचलित है "आँखों के अन्धे, नाम नैन सुख" !! बाकी परिचय हमारे मन को ग्रसे हुए अन्धाग्रह, दुराग्रह और पूर्वाग्रह दे सकते हैं—यदि हम उन्हें देख पावें तो .... । अनीति से रुपया कमाने की धुन गाँवों तक में व्यापक रूप से फैली हुई है। साहूकारी, खेती, किसानी सब में। समाज में यह घुन की तरह लगी हुई है जैसे हरे-भरे पेड़ में अमर बेल। ईमानदारी का श्रम किये बिना दुस्साहसपूर्ण प्रयत्नों से रात भर में लखपती बन जाने की प्रवृत्ति थोड़े से असाधारण मनुष्यों तक सीमित नहीं है जो नगरों में रहते हैं। अफीम के अवैध रोजगार के समाचार और मुकदमें बहुधा पत्रों में छपते रहते हैं। इनके नायक उसी प्रवृत्ति के जन्तु हैं जो गाँवों में भी पाये जाते हैं।"

वर्मा जी के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान समाज की पतनोन्मुख प्रवृत्ति और भ्रष्टाचारों के प्रतिक्रिया स्वरूप ही उन्होंने प्रस्तुत उपन्यास लिखा है। अफीम के अवैध रोजगार को लेकर कथा का संगठन किया है जो बाद को विकसित होती हुई समाज की अन्य सड़ी गली चीजों पर भी प्रकाश डालती है। उपन्यास की कथा का केन्द्र गाँव हैं जहाँ शहर की छूत काफी फैल चुकी है। इस छूत ने गाँवों के सरल, स्वाभाविक और नैसर्गिक जीवन को खोखला कर दिया है। प्रस्तुत उपन्यास में केवल अफीम के रोजगार की ही घटना नहीं, गाँवों की अन्य समस्याएँ भी वर्णित हैं जो शीघ्र ही अपना समाधान चाहती हैं। नई पीढ़ी के अधकचरे पढ़े लिखे युवक जिनका गाँवों में प्रभुत्व होता है किस प्रकार अपने कर्मों से ग्राम्य जीवन को कलुषित बना देते हैं, देशराज इसका प्रतीक है। जमींदारी गई तो क्या, उसके पास धन पैदा करने के अनेक हथकण्डे हैं। सामान्यरूप से आज जमींदार इस प्रकार के अवैध कार्यों को कर

धन के बल पर ग्रामों में अपनी प्रतिष्ठा को स्थिर रखने का प्रयत्न कर रहा है, देशराज उसके एक प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

दलबन्दी जिसे कि गाँव का जमीदार वर्ग अपने स्वार्थों की सिद्धि के हेतु प्रोत्साहन देता है, किस प्रकार गाँव के शान्तिमय जीवन को नष्ट कर भोले-भाले ग्रामीणों को विपत्तियों में झेल रही है इसका भी व्यापक चित्रण उपन्यास में हुआ है। लाठियाँ चलती हैं, आए दिन झगड़े होते हैं पर लोग नहीं चेतते! इसका कारण और कुछ नहीं व्यक्तियों की स्वार्थपरता है।

सहकारी रूप में काम न करने का फल आज गाँव वालों को बुरी तरह भोगना पड़ रहा है। नेता कहलाने वाले लोग गांवों की इस दुर्दशा को देखकर किस प्रकार आंखें मूंदे बैठे रहते है इसका भी आभास प्रस्तुत उपन्यास द्वारा बहुत कुछ मिल जाता है।

जहाँ तक उपन्यास की कथावस्तु का प्रश्न है, उसमें कोई नवीनता नहीं है। उसके प्रस्तुत करने में भी वर्मा जी ने कोई नवीनता नहीं प्रदर्शित की इस कारण वह पाठकों को प्रभावित करने में पूर्णतया असमर्थ रहती है। ग्राम्य जीवन से सम्बन्धित प्रश्नों को लेकर ही कथा आगे बढ़ती है। देशराज और उसकी सहयोगिनी अंजना का अफीम बेचने वाला अवैध रोजगार कथा में कुछ कौतूहल और गति उत्पन्न करता है पर यह कौतूहल जासूसी उपन्यासों से अधिक कुछ नहीं है। विषय को रोचक ढंग से प्रस्तुत न करने का ही परिणाम यह है कि बार बार सहकारी समितियों की स्थापना का उपदेश देने पर भी ऐसा प्रतीत होता है मानों इस बात में कुछ जान नहीं है, वरन् तबियत ऊबने लगती है! उपन्यास शुष्क और नीरस है इसमें हमें कोई सन्देह नहीं। न तो कथा में ही आकर्षण है और न कोई चरित्र ही ऐसा है जो प्रभावशाली हो और न उन समस्याओं में ही कोई व्यापकता है जो उपन्यासकार ने उभारी हैं और इसका सारा दोष उपन्यासकार पर है। समस्याएँ व्यापक थीं, उनके वर्णन में उपन्यासकार सफल नहीं हुआ।

प्रेमचन्द ने भी ग्राम समस्याओं को अपने उपन्यासों में उभारा है, उनमें भी गाँवों में फैले भ्रष्टाचारों फूट, दलबन्दी, आदि का वर्णन है पर उनमें जो सजीवता, जो व्यापकता और जो जीवन है प्रस्तुत उपन्यास में उसका एक अंश भी नहीं है। आकार इतना दीर्घ है कि पाठक ऊब जाता है। इसे यथा सम्भव छोटा करके भी उपन्यासकार अपना उद्देश्य पूरा कर सकता था। अनावश्यक विस्तार ने भी उपन्यास के महत्व को बहुत कुछ कम कर दिया है। कथा के अन्त तक देशराज और अंजना के अफीम के अवैध रोजगार का भण्डाफोड़ होता है, गांववालों में एकता का सूत्रपात होता है,

सहकारी समिति की स्थापना होती है और एक बार सबके जीवन में पुनः हँसी खुशी के दिन आजाते हैं। छल प्रपञ्च, बेईमानी से किया गया कार्य सदा सफल नहीं होता, हमें समाज में फैले हुए इस कोढ़ से दूर रहना चाहिये, गाँवों से तो इस छूत को बिलकुल ही निकाल देना चाहिये, यही उपन्यास की मुख्य सीख है, जिसको न जाने कितना विस्तार देकर उपन्यासकार ने व्यक्त किया है ।

वर्मा जी के अन्य उपन्यासों से यह बिलकुल भिन्न है। दीर्घ आकार का होने पर भी इसमें प्रभाव नहीं आ पाया है। लेखक का उपन्यास लिखने में एक उद्देश्य था और उसी के हेतु उसने अन्त तक प्रयत्न भी किया है पर उपन्यास की नीरसता ने उस उद्देश्य की प्राप्ति को भी अवरुद्ध करने का प्रयत्न किया है। अमर बेल की भांति समाज में जो भ्रष्टाचार फैला हुआ है और उसे चूस चूस कर खोखला और नीरस किये दे रहा है, उसका उन्मूलन आवश्यक है यही उपन्यासकार का उद्देश्य था, वह सफल हुआ है अथवा असफल, यह संदिग्ध है !

विविध :—

(१) सोना :—[१९५२]

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने एक प्रयोग किया है, इसी कारण हमने इसे न तो ऐतिहासिक उपन्यास ही माना है और न सामाजिक ही !! लेखक का प्रयोग नवीन है और इस कारण वह बधाई का पात्र है। बुन्देलखण्ड क्या, संसार के प्रत्येक भू भाग में लोक कथाएँ प्रचलित हैं जो सुनने वालों में कौतूहल और आनन्द उत्पन्न करती हैं। उनकी सम्भवता असम्भवता पर ध्यान दिये बिना ही लोग उन्हें सुनते हैं और आनन्द उठाते हैं। लेखक के मत से यदि इन कहानियों को तर्क, युक्ति और स्वाभाविकता की संगति में उपस्थित किया जाय तो इनका प्रभाव और रूप बहुत कुछ सुन्दर हो सकता है कारण इन लोक कथाओं में भी जीवन की प्रगति और सुख के कुछ ऐसे तत्व निहित रहते हैं जो वास्तव में अनुकरणीय और ग्राह्य होते हैं। प्रस्तुत उपन्यास लेखक का इसी ओर किया गया एक प्रयास है और लेखक की हार्दिक इच्छा यह है कि यदि यह उपन्यास 'पाठकों को रुचा तो इस प्रकार के उपन्यास और भी लिखूंगा'। एक बात और, मूल कथाओं में जो बातें स्थिर रखने के योग्य हैं लेखक ने उन्हें उसी रूप में रखने का प्रयत्न किया है। उपन्यास की कथा निम्नलिखित है—

डुधई नामक एक गाँव था। उसमें सोना और रूपा दो बहनें रहती थीं—सुन्दर, आकर्षक और स्वस्थ्य ! दोनों सुबह होते ही अपने खेतों में चली जातीं और शाम होते ही, दिन भर के परिश्रम से थकी हुई, अनाज की गड्डियाँ सिर पर रखे, हँसती इठलाती अपने घर को लौटतीं ! एक दिन गाँव के लोग खेत काट रहे थे। सोना और रूपा भी थीं। सोना आगे थी, रूपा उसके पीछे। काटने वालों में उसी गाँव का एक युवक चम्पत भी था जो सोना को चाहता था। सोना और चम्पत एक दूसरे को देखकर मुस्कराते हैं और पुनः काम में जुट जाते हैं। कुछ बातें भी उनमें होती हैं। शाम होते ही सब लोग चल पड़े। रूपा पहले ही जा चुकी थी। राह में चम्पत सोना से विवाह का प्रस्ताव रखता है। रूपा वहीं छिपी थी ! दोनों की बातें सुन कर कुढ़ गई। घर आकर उसने मामा से जिसके यहाँ वे रहती थीं सब कुछ कह दिया। मामा को उन दोनों के विवाह की चिन्ता हुई। पास में पैसा था नहीं फिर भी उसने वरों की तलाश प्रारम्भ की ! रूपा यद्यपि छोटी थी पर पहले उसी के लिये वर मिला। वर का नाम अनूपसिंह था। रूपा अनूप से ब्याह दी जाती

है। वर यद्यपि निर्धन था पर फिर भी रूपा प्रसन्न थी। सोना के लिये कोई वर नहीं मिल पाता! उसका मामा चम्पत के साथ सोना का विवाह करने के विरुद्ध था। आखिर सोना का विवाह देवगढ़ के राजा धुरन्धरसिंह से तय हुआ जो उतरती अवस्था का अत्यन्त कुरूप व्यक्ति था। वह एक पैर से लंगड़ा भी था। रूपा किसी कारणवश विवाह में नहीं आ पाती पर अनूपसिंह विवाह में शामिल हुआ। तड़क-भड़क देखकर मन मसोसकर रह गया! सोना का पति यद्यपि कुरूप था पर फिर भी धनी था। घर आकर अनूप ने रूपा से सारी बातें बताईं। रूपा ने पति से लक्ष्मी पूजन का आग्रह किया कारण उसे विश्वास था कि लक्ष्मी यदि प्रसन्न हो गईं तो उसे धनी बना देंगी। लक्ष्मी पूजन होता है। घर का आंगन खोदा गया। खोदने पर धरती के नीचे ग्यारह हौज निकलते हैं जिनमें मुहरों और रत्नों से भरे कलसे थे। रूपा भी धनवान हो गई और भली भांति रहने लगी। वह फूलों की सेज पर सोने लगी। पर्याप्त द्रव्य व्यय हो गया। कुछ रत्न बचे थे उन्हें लेकर अनूप जब बाजार में बेचने गया तो पता चला कि वे सब काँच के थे। उसके हृदय को आघात लगा। रूपा भी दुखी हो गई। उसने परिश्रम से धनोपार्जन का निश्चय किया। रात में उसने स्वप्न देखा कि उसकी सेज के फूलों में एक सांप है जो उसके वक्षस्थल में चढ़ने का प्रयत्न कर रहा है, वह चीख उठी! अनूप ने उसे समझा बुझाकर शान्त किया। वह फिर सो गई पर स्वप्न फिर दिखाई पड़ा—वह आंगन में एक गड्ढे के पास खड़ी है। पास ही दीपक जल रहा है। दीपक की लौ तेज होती है। दिया बोलता है—"सांप समय और जीवन का चिन्ह है। अनन्त का रूप है। वह दिखलाई नहीं पड़ता है पर है हर जगह। गरीब काम करते हैं और उन्हें भर पेट खाना नहीं मिलता। तुम लोग कोई काम नहीं करते, धन सम्पत्ति का नाश करते चले जाते हो। मिहनत, सच्चाई और कला की उपासना से ही जीवन को सच्चा बड़प्पन मिलता है, उस तरह के जीवन से नहीं जिसमें तुम सिर के बल दौड़े जा रहे हो। तुम अगर किसी मन्दिर के बनाने के काम पर तसले से गारा चूना ढोने की मजदूरी करो तो तुमको जीवन की कदर मालूम हो और तभी यह जान पड़े—मजदूरी का तसला ज्यादा आराम देता है या फूलों की सेज। करके देखो, कितना सुख मिलता है। एक ही पखवारे करके देखलो! यदि नहीं करते हो तो सत्यानाश हो जावेगा, समय और जीवन का सांप डसेगा और तुम्हारा चौपट कर देगा। सावधान!!"

रूपा ने मन में निश्चय कर लिया वह स्वप्न के आदेश को पूर्ण करेगी। उसने अनूप से भी अपनी इच्छा व्यक्त की। उसको उदासीन देखकर एक दिन घर से अकेले ही निकल पड़ी। देवगढ़ में राजा धुरन्धरसिंह एक मन्दिर का निर्माण करा रहे थे। पहले रूपा बहन के यहां जाने से हिचकी पर बाद में उसने निश्चय कर लिया कि वह

नाम बदलकर चुपचाप उस मन्दिर में मजदूरी करेगी। रूपा नन्हीबाई के नाम से उस मन्दिर में मजदूरी करने भी लगी! चम्पत भी, जो एक गाने बजाने की मण्डली में काम करता था उन दिनों देवगढ़ आया हुआ था कारण वहाँ एक उत्सव होने वाला था। उसने रूपा को देखते ही पहचान लिया पर रूपा ने उससे आग्रह किया कि वह किसी पर कुछ भी प्रकट न करेगा। चम्पत उसकी बात मान गया।

राजा धुरन्धरसिंह ने एक दिन रूपा को देखा और उसे देखते ही उनकी कामुकता जाग पड़ी। छल से रूपा को एक खण्डहर में बुलवाया गया जहाँ धुरन्धरसिंह उपस्थित था। रूपा चिल्लाई पर उसकी आवाज किसी ने न सुनी। चम्पत को प्रारम्भ में ही राजा की दूषित मनोवृत्ति का आभास मिल चुका था। उसने सोना से सब कुछ कह दिया। ठीक समय पर सोना ने खण्डहर में जाकर रूपा का उद्धार किया। सोना और रूपा का मिलन हुआ। धुरन्धर ग्लानि से गड़ गया। रूपा ने सोना से स्वप्न से लेकर देवगढ़ आने तक का सारा वृतान्त बता दिया।

अनूप भी रूपा को खोजते २ देवगढ़ पहुँचा। कुछ दिनों तक सब सोना के यहाँ मेहमान बनकर रहे। बाद में सोना ने रूपा को पर्याप्त वस्त्राभूषण देकर बिदा किया। श्रम का महत्व रूपा की समझ में आ गया था। अनूप ने भी परिश्रम से जीविकोपार्जन करने का व्रत लिया। रूपा ने उसे पुनः सचेत किया—"फूलों की सेज और श्रम का संग कभी नहीं हो सकता और कभी हुआ तो काँच की गुरियों के सिवा और कुछ नहीं रहने का।"

उपन्यास की कथा इतनी ही है। कथा में विशेष आकर्षण तो नहीं पर लेखक ने जिन लोक कथाओं को मूल में रखकर कथावस्तु का विस्तार किया है उसमें वह सफल है। लेखक का मुख्य उद्देश्य परिश्रम से जीविकोपार्जन की महत्ता को प्रतिपादित करना है। आराम से बैठकर तो खाना सभी जानते हैं पर परिश्रम से अर्जित किया हुआ धन ही सच्चा और सार्थक धन है। इसी उद्देश्य की पूर्ति लेखक ने उपन्यास में की है। विभिन्न प्रकार के चरित्रों को प्रस्तुत कर लेखक ने कथा वस्तु को आगे बढ़ाया है और ऐसे अवसर भी उपस्थित किये हैं जिनसे उसे अपनी उद्देश्य पूर्ति में सहायता प्राप्त हो सके।

लोक कथाएँ सभी सुनते हैं और सभी ने सुनी होंगी पर सब उनके कौतूहल में ही निमग्न हो जाते हैं। दादी नानी की कहानियाँ भी सारगर्भित होती हैं। उनकी तह में घुसकर जीवन की प्रगति के तत्व ढूँढ़ लेना ही बुद्धिमानी है। लेखक अपने इस प्रयोग में बड़ी सीमा तक सफल हुआ है पर उसका यह प्रयोग कहाँ तक इच्छित परिणाम देगा, यह नहीं कहा जा सकता।

उपन्यास के कथोपकथनों और भाषा के विषय में हमें कुछ नहीं कहना । वे स्वाभाविक और कथा के अनुरूप हैं । बुन्देलखण्डी शब्दों के प्रयोग ने भाषा को स्वाभाविक बना दिया है । लेखक ने प्रयोग सुन्दर किया है पर हमारे विचार से उसका यह प्रयोग उसी के उपन्यास तक सीमित होकर रह जायग । हिन्दी में अभी तक इस प्रकार के उपन्यासों को लिखने की ओर ध्यान नहीं दिया गया, इस कारण लेखक का प्रयत्न श्लाघ्य है । यदि अन्य लेखक भी इस ओर प्रयत्न करें तो उपन्यासों की यह धारा भी समृद्ध हो सकती है । वर्मा जी ने राह दिखाई है—आगे क्या होगा, कुछ कहा नहीं जा सकता ? !!

—उपन्यास-शिल्प—

अः-कथावस्तु :—

"वर्मा जी इस युग के सबसे अच्छे कहानी कहने वाले हैं। जहाँ और उपन्यासकार कथानक की ओर उदासीन रहने लगे हैं और रस के लिए तरह तरह की रसिकता का सहारा लेने लगे हैं वहाँ वर्मा जी अपनी सरस कथा से पाठक का मन बाँधे रहते हैं और अन्त तक उसकी उत्सुकता ताजी रखते हैं।" डा० रामविलास शर्मा का यह कथन बहुत अंशों तक सत्य है। वास्तव में वर्मा जी इस युग के श्रेष्ठ कथाकार हैं। उनके पास कथानकों का जो भण्डार है वह अनुपम है। उनके विचार से यदि उपन्यासकार के पास सुन्दर कथानक न हुआ तो वह आगे बढ़ने में असमर्थ होगा, उसको अपने उद्देश्य पालन के लिए इच्छित आधार नहीं मिल पायेगा और यही कारण है कि वे उपन्यास में सबसे अधिक महत्व कथानक को देते हैं। उनके पास एक रोचक कथा होती है और यही उनका सर्वस्व बन जाती है। उपन्यास के अन्य उपकरण तो कथानक के साथ २ अपने आप ही विकसित होते चलते हैं। उनके लिए उन्हें विशेष ध्यान नहीं देना पड़ता! घटनाएँ एक क्रम से घटती रहती हैं और उन्हीं के बीच २ में ऐसी परिस्थितियों की योजना होती चलती है जो अन्य घटनाओं को भी जन्म देती रहती हैं। कथानक की यही रोचकता वर्मा जी के उपन्यासों का प्रधान गुण है। यदि हम अन्य दृष्टियों से वर्मा जी के उपन्यासों को न भी पढ़ें तो भी उनके कथानक में ही हमें ऐसा रस प्राप्त होगा जो कि आदि से अन्त तक हमें अपने में लीन किये रहेगा!

उनके गढ़ कुण्डार, विराटा की पद्मिनी, झाँसी की रानी, मृगनयनी, प्रेम की भेंट, लगन, कुण्डली चक्र आदि लगभग सारे उपन्यास उपर्युक्त कथन के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। उनमें जो भी कथा है वह पाठकों को अपने में लीन कर लेने के लिए पर्याप्त है। कथानक में भले ही कोई नवीनता न हो पर उसके प्रस्तुत करने में उपन्यासकार ने अवश्य नवीनता प्रदर्शित की है। कदाचित ही उनके दो एक उपन्यास इस कथन के अपवाद निकलें। कथानक की रमणीयता, उसकी रोचकता और सरसता ही वर्मा जी के उपन्यासों की महत्ता का एक प्रमुख कारण है। वर्मा जी की यह निधि वास्तव में अत्यधिक महत्वपूर्ण है जो उन्हें आज के अधिकांश उपन्यासकारों से पर्याप्त आगे खड़ा कर देती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि वर्मा जी के पास कथानकों की जो यह निधि है उसका आधार क्या है?

कोई भी कथाकार क्यों न हो जब वह कथा लिखने बैठता है तब उसकी दृष्टि या तो अतीत की ओर जाती है या वर्तमान की ओर, और इन्हीं में से उपयुक्त कथानक का चुनाव कर वह अपनी लेखनी को गतिशील करता है। अतीत और वर्तमान ही वे मुख्य आधार हैं जिन पर कथानक का भवन खड़ा किया जाता है। वर्मा जी ने भी अपने कथानकों के लिये इन्हीं की ओर निहारा है। यह कथाकार की अपनी प्रवृत्ति होती है कि वह अतीत को अपनी कथा का आधार बनाये अथवा वर्तमान को। कुछ को अतीत ही लुभाता है और कुछ वर्तमान के संघर्षों में ही जूझना अधिक पसन्द करते हैं। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो अतीत और वर्तमान दोनों को ही अपनी लेखनी का विषय बनाते हैं। वर्मा जी की अतीत और वर्तमान दोनों पर सम दृष्टि रही है। अतीत ने भी उन्हें आकर्षित किया है और वर्तमान ने भी और यही कारण है कि उन्होंने दोनों का ही आधार अपने कथानकों के लिये चुना! उनकी अतीत प्रियता के उदाहरण हैं। गढ़ कुण्डार, विराटा की पद्मिनी, झाँसी की रानी, कचनार, मुसाहिब जू, मृगनयनी और टूटे काँटे आदि उपन्यास तथा उनकी वर्तमान प्रियता अचल मेरा कोई......, कुण्डली चक्र, लगन, प्रत्यागत, प्रेम की भेंट, संगम, कभी न कभी, अमर बेल आदि उपन्यासों से स्पष्ट है। अतीत और वर्तमान के प्रति इसी सम दृष्टि ने ही वर्मा जी के उपन्यासों की महत्ता को और बढ़ा दिया है। वर्मा जी के सम्मुख उनके जाने पहिचाने बुन्देलखण्ड का विस्तृत इतिहास था, उन्होंने उसका गहन अध्ययन किया था, उन्होंने उसमें वीरता और शौर्य की अनेकानेक घटनाओं की सत्ता पाई थी जो उनकी रूचि के अनुकूल थीं और इसका परिणाम यह हुआ कि बुन्देलखण्ड का गत इतिहास उनके उपन्यासों में साकार हो उठा! इसके अतिरिक्त उपन्यासकार जिस युग में जन्म लेता है उस युग का प्रभाव भी उस पर अवश्यंभावी है। वर्तमान युग ने भी इसी कारण वर्मा जी को प्रभावित किया और उन्होंने आज की ज्वलंत समस्याओं को लेकर भी अपने उपन्यासों के कथानकों का निर्माण किया। अतीत और वर्तमान दोनों कालों की पृष्ठभूमि पर वर्मा जी की कथाएँ उभरी हैं और उनके साहित्य को समृद्ध करने में सफल हुई हैं।

वर्मा जी के कथानकों के विषय में एक बात अत्यधिक आकर्षक है। वह यह कि उनमें से अधिकांश की आधार शिला या तो कोई इतिहास प्रसिद्ध घटना है अथवा कोई जनश्रुति या किम्वदन्ती! उनके बहुत से उपन्यास सत्य घटनाओं पर भी आधारित हैं। (ऐतिहासिक उपन्यासों में मुख्य कथा का आधार तो ऐतिहासिक होगा पर अनेक छोटी छोटी प्रासंगिक कथाओं की सृष्टि किम्वदन्तियों अथवा जनश्रुतियों को आधार मान कर की गई होगी। जहाँ इतिहास चुप है अथवा धूमिल है वहाँ भी कल्पना और

किम्वदन्तियों तथा जनश्रुतियों से ही सहायता ली गई होगी! कहीं कहीं तो वर्मा जी ने उपन्यास का सम्पूर्ण भवन ही किम्वदन्तियों और जनश्रुतियों के आधार पर खड़ा किया है। 'विराटा की पद्मिनी' ऐसा ही उपन्यास है। गढ़ कुण्डार में भी किम्वदन्तियों से पर्याप्त सहायता ली गई है। 'मृगनयनी' में अटल और लाखी की कथा किम्वदन्तियों पर ही आधारित है। इसके अतिरिक्त और भी ऐसी घटनाएँ हैं जहाँ उन्होंने किम्वदन्तियों तथा जनश्रुतियों का सहारा लिया है।

यही बात उनके सामाजिक उपन्यासों के विषय में भी सत्य है। कुण्डली चक्र, प्रेम की भेंट, लगन, कभी न कभी, संगम, आदि उपन्यासों की कथा वस्तु बहुत कुछ सत्य घटनाओं पर आश्रित है। इन उपन्यासों के परिचयों में वर्मा जी ने इनका जहाँ तहाँ उल्लेख कर दिया है। यही कारण है कि इन कथाओं में अधिक आकर्षण आगया है। ज़रा सा सूत्र मिला नहीं कि घटनाओं का जाल उपन्यासकार ने निर्मित कर लिया। यह कार्य आसान नहीं है, इसके लिए प्रतिभा की आवश्यकता है। वर्मा जी के पास यह प्रतिभा थी और उन्होंने इसका उपयोग किया। कल्पना से भी कार्य लेने की उन्हें यत्रतत्र अत्यधिक आवश्यकता हुई है। बिखरी घटनाओं का सम्बन्ध सूत्र उन्होंने कल्पना की सहायता से ही तैयार किया है यही कारण है कि उन्हें अधिकांश उपन्यासों में यह कहना पड़ा है कि 'उपन्यास की सारी घटनाएँ सत्य हैं केवल स्थान और समय का हेर फेर है।' इधर उधर बिखरी घटनाओं का तारतम्य स्थापित कर उन्हें एक सुन्दर कथा के रूप में परिवर्तित कर देने में वर्मा जी अत्यधिक कुशल हैं। उनके अधिकांश उपन्यास इसके साक्षी हैं।

इतिहास, कल्पना, जनश्रुतियों, किम्वदन्तियों एवं वर्तमान काल की कुछ सत्य घटनाओं का आधार लेकर वर्मा जी के उपन्यासों में कथानकों के जिस सौन्दर्य की सृष्टि की गई है वह आकर्षक तो है ही, प्रभावशाली भी पर्याप्त है।

प्रासंगिक कथाओं का सौंदर्य भी वर्मा जी के उपन्यासों में अनुपम है। उनके प्रत्येक उपन्यास में प्रायः एक मुख्य कथा होती है जिससे अनेक प्रासंगिक कथाएँ फूट निकलती हैं। इन प्रासंगिक कथाओं की सृष्टि भी उद्देश्य गर्भित रहती है। ये एक तो मुख्य कथा को बल प्रदान करती हैं और दूसरे कथा वस्तु में रोचकता और प्रभावशालिता की भी सृष्टि करती हैं। इनकी यह प्रभावशालिता कभी २ तो इतना बढ़ जाती है कि मुख्य कथा भी उनके सम्मुख फीकी पड़ जाती है। उदाहरण के लिए हम 'मृगनयनी' उपन्यास को ले सकते हैं। इसमें मुख्य कथा मानसिंह और मृगनयनी से सम्बन्धित है। प्रासंगिक कथाएँ हैं तो अनेक पर सबसे बलशाली अटल और लाखी की कथा है। अटल और लाखी की इस कथा में इतनी तीव्रता, इतना आकर्षण है

कि यह स्पष्टतः मृगनयनी और मानसिंह की कथा को मद्धिम कर देती है। उपन्यास के अन्त में भी हमारे नेत्रों के सम्मुख केवल अटल और लाखी की ही कथा घूमती है, मानसिंह और मृगनयनी की कथा का स्थान उसके बाद में आता है।

गढ़ कुण्डार में भी अनेक छोटी छोटी प्रासंगिक कथाएँ हैं। मुख्य कथा खंगारों और बुन्देलों के पारस्परिक मानापमान के कारण होने वाले युद्ध और खंगारों के नाश से सम्बन्धित है पर दो तीन प्रासंगिक कथाओं की सृष्टि ने कथा वस्तु में और भी आकर्षण ला दिया है। तारा दिवाकर की प्रेम कथा, मानवती अग्निदत्त की प्रेम कथा, नागदेव हेमवती की प्रेम कथा, ऐसी ही प्रासंगिक कथाएँ हैं जो अपनी सुन्दरता में अछूती हैं। इन्हीं प्रासंगिक कथाओं द्वारा लेखक ने मुख्य कथा का विकास भी किया है। अग्निदत्त और मानवती का प्रेम, उनकी असफलता, अग्निदत्त का नाग के हाथों अपमानित होना ही खंगारों के नाश की पहली भूमिका बाँधता है जो उपन्यासकार का मूल उद्देश्य है।

विराटा की पद्मिनी में कुमुद कुञ्जर की कथा तो चलती ही है, गोमती और देवीसिंह की कथा, गोमती और रामदयाल की कथा भी कम आकर्षक नहीं है।

मृगनयनी में अटल और लाखी की कथा का उल्लेख हम कर ही चुके हैं, कला और राजसिंह की कथा, नटों की कथा, नसीरुद्दीन, महमूद बघर्रा, गयासुद्दीन, सिकन्दर लोदी से संबन्धित कथाएँ भी कम आकर्षक नहीं है और ऐसा भी नहीं है कि वे मुख्य कथा से उखड़ी हुई प्रतीत हों वरन् उनका मुख्य कथा से सम्बन्ध है और उनके बिना मुख्य कथा में उभार आना भी कठिन था।

'कचनार' उपन्यास में दलीपसिंह और कचनार की कथा के अतिरिक्त मानसिंह–कलावती की कथा, डरू और मन्ना की कथा ऐसी ही छोटी २ कथाएँ हैं जो प्रमुख कथा को आकर्षण और विकास प्रदान करती हैं।

'झाँसी की रानी' में ये प्रासंगिक कथाएँ अत्यधिक मनोरम हैं। जुही–तात्या टोपे की कथा, मोती बाई–खुदाबख्श की कथा रघुनाथसिंह और मुन्दर की कथा, नारायण शास्त्री और छोटी भंगिन की कथा, झलकारी–पूरन कोरी की कथा, आदि ऐसी ही कथाएँ हैं जो उपन्यास के आकर्षण को द्विगुणित कर देती हैं। मुख्य कथा को तो उनका सहयोग रहता ही है, अपने स्वतंत्र रूप में भी वे रमणीय हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि मुख्य कथा के साथ २ प्रासंगिक कथाओं का आकर्षण भी वर्मा जी के उपन्यासों की एक विशेषता है। इन प्रासंगिक कथाओं की उत्पत्ति भी अपने आप नहीं हो जाती और न ही इन्हें लेखक केवल पाठकों को चमत्कृत करने के लिए ही रखता है वरन जैसा कहा जा चुका है उपन्यास में इनका अपना महत्व है।

मूल कथानक के साथ ये उसी प्रकार जुड़ी रहती हैं जिस प्रकार वृक्ष के तने के साथ पेड़ की अगणित शाखाएँ !

इन प्रासंगिक कथाओं की सृष्टि में वर्मा जी का एक और उद्देश्य रहा है और वह उद्देश्य है युग की समस्याओं का चित्रण ! जहाँ मूल कथा में समस्याओं का अंकन आसान रहा है वहाँ उसी में उन्हें गूँथ दिया गया है पर जहाँ मूलकथा में यह बात न थी वहाँ इन प्रासंगिक कथाओं में उन्हें उभारा गया है। गढ़कुण्डार में तारा–दिवाकर, अग्निदत्त–मानवती, नागदेव–हेमवती की प्रेम कथाओं में असवर्ण विवाह की समस्या घुसी हुई है और उससे कथानक में पर्याप्त तीव्रता भी आगई है। झाँसी की रानी में भी खुदाबख्श–मोती बाई, जुही–तात्या टोपे, नारायण शास्त्री और छोटी भंगिन की प्रेम कथाओं में असवर्ण विवाहों की समस्या उभरी है। हिन्दू मुस्लिम ऐक्य का तो इससे सुन्दर उदाहरण अन्यत्र मिलना पर्याप्त कठिन है। 'मृगनयनी' में अटल और लाखी की प्रेम कथा में भी असवर्ण विवाह की समस्या को गूँथा गया है और समाज की सड़ी गली मान्यताओं पर कड़े प्रहार भी किये गये हैं।

प्रासंगिक कथाओं के अतिरिक्त मुख्य कथाओं में भी आज की अनेक समस्याओं का चित्रण हुआ है। सामाजिक उपन्यासों के अतिरिक्त ऐतिहासिक उपन्यासों में भी जिन समस्याओं का चित्रण किया गया है, उनके मूल में भी लेखक की आधुनिक विचार-धारा ने ही कार्य किया है, हाँ उसने जो समस्याएँ उठाई हैं वे उस युग से भी उतना ही संबन्धित हैं जितना आज के युग से। इन समस्याओं की सत्ता ने वर्मा जी के उपन्यासों की कथा को और भी ग्राह्य बना दिया है। आज की लगभग सभी ज्वलंत समस्याएँ हमें उनके उपन्यासों की कथा वस्तुओं में गुँथी हुई मिलेंगी भले ही वे ऐतिहासिक हों अथवा सामाजिक ! इसका एक कारण और है। कलाकार जिस युग में जन्म लेता है उस पर उस युग का प्रभाव पड़ना अवश्यंभावी होता है। समाज के नागरिक होने की हैसियत से उसका यह कर्त्तव्य भी हो जाता है कि वह उसके दुख दर्दों की ओर से आँख न मूँदे। यही कारण है कि जागरूक कलाकार अतीत की पृष्ठ भूमि में भी वर्तमान के संघर्षों को मुखरित करता है। प्रसाद जी इसके उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। अतीत युग से संबन्धित होने पर भी उनके नाटक वर्तमान समस्याओं के चित्रण के कारण 'अतीत के पट पर वर्तमान के चित्र' कहे जाते हैं। इस कार्य के लिए प्रतिभा आपेक्षित है। प्रसाद में यह प्रतिभा थी और वर्मा जी भी ऐसी ही प्रतिभा वाले कलाकार हैं।

जिन समस्याओं का चित्रण उन्होंने अपनी कथावस्तुओं में किया है वे समस्याएँ आदि काल से ही अपना अस्तित्व सुरक्षित रखे हैं। जो असवर्ण विवाह की समस्या

अटल और लाखी, तारा और दिवाकर के समय में उठी होगी वह आज भी अपने उसी रूप में वर्तमान है। यही बात अन्य समस्याओं के विषय में भी कही जा सकती है। वर्मा जी के उपन्यासों में आने वाली इन समस्याओं का वर्णन हम अलग से कर चुके हैं यहाँ केवल इतना बताना ही आपेक्षित था कि विभिन्न समस्याओं की सत्ता के कारण उनके उपन्यासों की कथावस्तु और भी आकर्षक और ग्राह्य होगई है। वर्मा जी ने उनका निर्वाह भी कथावस्तु में सफलता से किया है।

यह कहा जा चुका है कि वर्मा जी कहानी कहने की कला में अत्यधिक पटु हैं। यही कारण है कि वे घटनाओं का चुनाव इस खूबी के साथ करते हैं कि उनमें पाठकों को प्रभावित करने की अद्भुत क्षमता होती है। कथा के मार्मिक स्थलों की पहचान में भी उनका सानी कोई नहीं है। विभिन्न घटनाओं के जाल से वे ऐसी घटनाएँ चुन लेते हैं और उन्हें ऐसे स्थान में, इस तरह से रख देते हैं कि उनका पाठकों पर इच्छित प्रभाव तो पड़ता ही है, दीर्घकाल तक वे पाठकों की स्मृति में ताजी भी रहती हैं। डा० रामविलास शर्मा ने भी इसी बात को इस तरह कहा है—"कथा का विस्तार करने में वर्माजी सबसे प्रभावशाली दृश्यों को आखिर के लिये रखते हैं। क्लाइमैक्स रचने की दृष्टि से उनका कौशल सराहनीय है।" यह बात नितान्त सत्य है। उनके प्रत्येक उपन्यास में हमें कोई न कोई घटना ऐसी अवश्य मिलेगी जो मार्मिक होने के साथ साथ इतनी प्रभावशाली होती है कि पाठक उसमें लीन हो जाता है। कथानक में भी इससे अनुपम सौन्दर्य आ जाता है। उदाहरण के लिये सबसे पहले हम 'गढ़ कुण्डार' को लेते हैं। तारा दिवाकर से प्रेम करती है। दिवाकर बन्दी हो जाता है और उसे एक तलघरे में डाल दिया जाता है। युद्ध के भीषण वातावरण के बीच तारा पुरुष वेश में दिवाकर को छुड़ाने पहुँचती है। उसके सम्मुख प्रश्न यह उपस्थित होता है कि वह दिवाकर को निकाले कैसे? उसे एक उपाय सूझता है—" अंगरखे को उतार कर दूसरी ओर डाल दिया। साड़ी उतारने को हुई कि शरीर की लज्जा का ख्याल आ गया। तारा ने मन में कहा—यह देह किसी दिन भस्म हो जायगी। अब और किस काम आना है और वे आंखें ऐसी उद्धत हुईं जैसे होम कुण्ड में प्रवेश करने के पहले आहुति! यज्ञ की लौ के समान तारा के नेत्र उस चांदनी में जगमगा उठे। और उसने साड़ी को कमर तक पहिने रह कर बीच से फाड़ लिया और कमर में घुटने तक कछोटा कस लिया। फटी हुई साड़ी को मुड़ासे से बांध कर नीचे उतर गई।"

इससे भी अधिक प्रभावशाली अन्त का वह दृश्य है जहाँ अग्निदत्त युद्ध के भीषण वातावरण के बीच गर्भवती मानवती की रक्षा में अपने प्राणों की बलि दे देता है। मानवती अग्निदत्त की प्रेमिका थी! उसका विवाह दूसरे से कर दिया जाता है। अपमानित

अग्निदत्त खंगारों से प्रतिशोध लेने का प्रण करता हैं। युद्ध होता है। मानवती जो उसी समय बच्चा जनने वाली थी युद्ध क्षेत्र में पड़ी कराह रही थी! अग्निदत्त उस ओर पहुंचता है और मानवती के कराहने की आवाज सुनता है। मानवती अग्निदत्त को पहचान नहीं पाती! उससे कहती है—"मुझे मारो मत! मेरे आभूषण ले लो। मैं गर्भवती हूं और मेरे स्वामी न जाने कहाँ हैं?" अग्निदत्त मानवती को पहचान जाता है। मानवती उससे उसका परिचय पूछती है। अग्निदत्त उसे अपना परिचय देता है। मानवती विश्वास नहीं करती कि अग्निदत्त भी ऐसा कर सकता था। अग्निदत्त भी पश्चाताप करता है, अपने को धिक्कारता है। उसी समय कुछ बुन्देला सैनिक खंगारों की खोज में उधर आते हैं। इसके पहले ही अग्निदत्त जान गया था कि वह बच्चा जनने वाली हैं। "उसने अपना कवच और कपड़े उतार कर बिछा दिये, केवल धोती पहने रहा। रोना चाहता था परन्तु हृदय में आंसू की एक बूँद भी न थी। उसी समय मानवती ने बच्चा जना जिसको अग्निदत्त ने अपने पहले से बिछाए हुए कवच और कपड़ों पर लिटा लिया। मानवती अचेत हो गई। बच्चा रोने लगा।"

बच्चे के रोने की आवाज बुन्देले सैनिकों को वहाँ तक खींच लाती है। दलपति बुन्देला तुरन्त ही कहता है—"मारो इस खंगार को। उतार लो आभूषण इस स्त्री के।" अग्निदत्त घायल था पर उसमें न जाने कहाँ से अद्भुत बल आ जाता है। वह मानवती और उसके पुत्र की रक्षा में तलवार खींच लेता है। अग्निदत्त और भी घायल हो जाता है। "गोरे साँवले शरीर पर एकाध घाव से रक्त रेखाओं में बहकर फैल गया था। छिटकी हुई चाँदनी में उसका चमचमाता हुआ खड्ग और दमकता हुआ लोहू लुहान नंगा शरीर ऐसा मालूम पड़ा जैसे कोई तारा पृथ्वी पर टूट कर गिरा हो।"

दलपति फिर भी अग्निदत्त को नहीं छोड़ता। कहता है—मैं तो "इस जनी के गहने और इस बेईमान सिपाही के प्राण लेकर ही यहाँ से जाऊँगा।" अग्निदत्त मारा जाता है। बुन्देलों की विजय होती है। किले से बुन्देलों की जयजयकार की आवाजें आती हैं और इधर मृत प्राय अग्निदत्त के समीप शिशु चीखता है।"

यह दृश्य इतना प्रभावोत्पादक है कि नेत्रों के सम्मुख अटल रहता है। जहाँ इससे एक ओर सामन्तशाही का घृणित रूप प्रकट होता है वहाँ वर्मा जी की मानवतावादी विचारधारा भी व्यक्त हो जाती है। गढ़ कुण्डार के उपर्युक्त दोनों दृश्य अपनी प्रभावोत्पादकता में अपूर्व हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

अब 'विराटा की पद्मिनी' को लीजिये। युद्ध हो रहा है। दाँगी अपनी सारी शक्ति से अलीमर्दान की सेनाओं से जूझ रहे हैं। कुन्जर भी कुमुद से आखिरी बार मिलने के

लिये जाता है। देवीत्व का आवरण छिन्न-भिन्न कर वह उसके गले में जंगली फूलों की एक माला डाल देती है। कुन्जर उधर जाकर देवीसिंह से भिड़ जाता है और मृत्यु को प्राप्त होता है और इधर अलीमर्दान कुमुद का पीछा करता है। कुमुद चल देती है सामन्तीय स्वार्थों की शिकार बनकर आत्महत्या करने। वह "शान्त गति से ढालू चट्टान के छोर तक पहुँच गई। अपने विशाल नेत्रों की पलकों को उसने ऊपर उठाया। उंगली में पहनी हुई अँगूठी पर किरणें फिसल पड़ीं। दोनों हाथ जोड़कर उसने धीमें स्वर में गाया—

"मलिनिया फुलवा ल्याओ नन्दन बन के।
बीन बीन फुलवा लगाई बड़ी रास
उड़ गये फुलवा रह गई बास !!"

इधर तान समाप्त हुई उधर उस अथाह जल राशि में पैंजनी का छुम्म से शब्द हुआ। धार ने अपने वक्ष को खोल दिया और तान समेत उस कोमल कण्ठ को सावधानी से अपने कोष में ले लिया। ठीक उसी समय वहाँ अलीमर्दान भी आ गया। घुटना नवाकर उसने कुमुद के वस्त्र को पकड़ना चाहा परन्तु बेतवा की लहर ने मानों उसे फटकार दिया। मुट्ठी बांधे खड़ा रह गया।"

उपन्यास समाप्त हो जाता है, धीरे २ सारी घटनाएँ भी स्मृति पटल से विलीन हो जाती हैं पर सामन्ती व्यवस्था की वेदी में कुमुद का यह आत्म बलिदान पाठकों को कभी नहीं भूलता।

'झांसी की रानी' में भी इसी प्रकार के अनेक चित्र हैं। हरदी कूं कूं के उत्सव पर रानी का झांसी की सामान्य स्त्रियों के साथ वार्तालाप, हँसी मजाक करना स्मृति में सदैव ताजा रहता है। युद्ध के अवसर पर जुही, मोतीबाई, रानी का बलिदान, रानी की मृत्यु पर गुलमुहम्मद की चीख, ये सारी घटनाएँ मन में सदैव हरी रहती हैं। जूही और मुन्दर के बलिदानों का एक चित्र देखिये।

युद्ध होता है। अंग्रेजी सेना पीछे हटती है। रानी जूही की वीरता पर मुग्ध थीं। उस दिन का युद्ध तो समाप्त हो गया था, दूसरे दिन कीं तैयारी की जाती है। रानी जूही से कहती हैं—"आज तेरी सुगन्ध ऐसी बरसे कि बैरी बिछ जाय।

जूही प्रसन्न होकर बोली—आज मैं जो कुछ कर सकूं, कह नहीं सकती परन्तु आंख खुलते ही जो कुछ प्रण किया है उसके अनुसार अवश्य काम करूंगी।

रानी—परन्तु जो कुछ करे, ठण्डक के साथ करना, केवल उत्तेजना से बहुत सहायता नहीं मिलेगी।

जूही—तभी तो सरकार मैं हँस रही हूं। एक हसरत मन में रह जाती है, आपको गाना नहीं सुना पाया।
रानी—किसी दिन सुनूंगी।
जूही—हां, सरकार, अवश्य! जूही जरा ज्यादा हँस पड़ी—
रानी—तेरी हँसी आज कुछ भीषण है—
जूही—काम इससे भी अधिक भीषण होगा सरकार,

और दूसरे ही दिन हुजर सवार जूही के तोपखाने पर जा टूटे। जूही तलवार से भिड़ गई, घिर गई और मारी गई। मरते समय उसने 'आह' तक नहीं की। घिर गई थी परन्तु शत्रुओं की तलवार चीरने में, जिस बात में असमर्थ रही वह थी जूही की क्षीण मुस्कराहट जो उसके ओठों पर अनन्त दिव्यता की गोद में खेल गई।"

अब मुन्दर के बलिदान की कहानी सुनिये—

मुन्दर और रघुनाथसिंह अन्तिम युद्ध करने जा रहे हैं। रानी की रक्षा का प्रश्न सामने था!

मुन्दरबाई—रघुनाथसिंह ने कहा—रानी साहब का साथ एक क्षण के लिये भी छूटने न पाये। वे आज अन्तिम युद्ध लड़ने जा रही हैं।

आप कहां रहेंगे?

जहां उनकी आज्ञा होगी। वैसे आप लोगों के समीप ही रहने का प्रयत्न करूंगा।

मैं चाहती हूं आप बिलकुल निकट रहें। मुझे लगता है मैं आज मारी जाऊंगी। आपके निकट होने से शान्ति मिलेगी।

मैं भी नहीं बचूंगा, रानी साहब को सुरक्षित रखना है। मैं तुम्हें तुरन्त ही स्वर्ग में मिलूंगा। केवल आगे पीछे की बात है।

वह जरा सूखी हंसी हंसा। मुन्दर ने रघुनाथसिंह को आंसू भरी आंखों से देखा। कुछ कहने के लिये ओठ हिले। रघुनाथसिंह को मस्तक नवाकर प्रणाम किया और उसने ओट में जल्दी से आंसू पोंछ डाले। रघुनाथसिंह ने मुन्दर को नमस्कार किया।

और फिर युद्ध में एक अंग्रेज सवार ने मुन्दर पर पिस्तौल दागी। उसके मुख से केवल यह शब्द निकले—बाई साहब मैं मरी...मेरी देह...भगवन, अन्तिम शब्द के साथ उसने एक दृष्टि रघुनाथसिंह पर डाली और वह लटक गई। रघुनाथसिंह फुर्ती से घोड़े से उतरा। अपना साफा फाड़ा, मुन्दर के शव को पीठ पर कसा और घोड़े पर सवार होकर आगे को बढ़ा।

भारत की नारियों के बलिदान की इन्हीं कहानियों ने सदा से साम्राज्य वादियों के छक्के छुड़ाये हैं। उनके ये बलिदान कभी भी व्यर्थ नहीं गये।

'मृगनयनी' में अटल और लाखी का बलिदान भी सदैव अमर रहेगा। लाखी के मृत्यु के समय कहे गये शब्द समाज और धर्म के ठेकेदारों की आँख खोलने के लिये क्या पर्याप्त न होंगे ?

लाखी गढ़ी के ऊपर अकेले ही पहरा दे रही है। दुश्मन के सिपाही गढ़ी में चढ़ने की कोशिश कर रहे हैं। लाखी भाँप गई। एक तीर चलाया। दुश्मनों में भगदड़ मच गई। एक तीर उधर से भी चला और लाखी की पसलियों के जोड़ में घुस गया ! 'उसे खाँसी आ गई और खाँसी के साथ मुंह से रक्त की फुहार छूट पड़ी।' रक्त बराबर निकल रहा था। उसने पुकारा। मशाल वाले दौड़ पड़े। लाखी के मुंह से कराह के साथ निकला—'मेरे स्वामी को, स्वामी को बुला दो।' अटल आ गया और लाखी से लिपटने को हुआ। 'लाखी ने उठी हुई गदेली को हिलाकर वर्जित किया मानों रक्षा करने वाले नाग ने फन हिलाया हो। पतली सी मुस्कान फूटकर वहीं विलीन हो गई। कुछ नहीं-एक भीख मांगती हूँ। दे दो। ब्याह कर लेना-अपनी जात पांत में। ···अटल की आँख में आया आंसू भी नहीं था। आकृति भयंकर थी। उसने चिता के हाथ जोड़े और मन में कहा-मैं ब्याह अवश्य करूँगा, बहुत जल्द ही करूँगा।

"प्रातः काल पौ फटी। उसकी रेखायें साँक नदी की लहरों पर मचलीं और एक तीर अटल की आँखों में धँसकर अटक गया। अटल गिर पड़ा। थक तो गया ही था इसलिए घाव ने बहुत कम क्लेश पहुंचाया। एक कल्पना झिलमिला गई। मैं ब्याह करूँगा उसी के साथ जहाँ वह गई है और मैं जा रहा हूं।" अटल के प्राण निकल गये।

अटल और लाखी का बलिदान उज्वल अक्षरों में इतिहास के पन्नों पर अंकित हो गया। ये ही वे दृश्य हैं जो भुलाये नहीं भूलते और वर्मा जी जिन्हें कथा को मार्मिक बनाने के लिये, उसे उपयुक्त क्लाइमैक्स पर पहुँचाने के लिये सुरक्षित रख लेते हैं। सारा उपन्यास स्मृति से ओझल हो जाय पर इन चित्रों के रंग अमिट हैं, वे कभी नही धुल सकते वरन् समय के साथ साथ उनमें और भी चमक आती रहती है।

'प्रेम की भेंट' में दुर्बल हृदया सरस्वती अन्त तक साड़ी के उस टुकड़े को लिये रहती है जो कम्मोद के फाड़ने से बच गया था और जिसमें लिखा था-प्रेम की भेंट ! समाज की रूढ़ियाँ सरस्वती और धीरज को एक नहीं होने देतीं, समाज के

रूढ़िगत संस्कार उन्हें खुल कर सामने आने की शक्ति नहीं प्रदान करते पर उनका मूक बलिदान समाज की धज्जियाँ उड़ाकर रख देता है।

इसी प्रकार 'कुण्डली चक्र' में पूना और अजित चकरई की पहाड़ियों में मिलते हैं! उनका यह मिलन भी कम प्रभावोत्पादक नहीं है।

'लगन' में रामा भीषण आँधी बरसात में भरी बेतवा उसी प्रकार पार करती है जैसे काले काले बादलों से होकर चन्द्रमा जा रहा हो। उसका साहस भी अद्वितीय है।

'टूटे काँटे' में भी नूरबाई के त्याग का उल्लेख हम पीछे कर ही चुके हैं। कथा के ये ही स्थल पाठक धरोहर के रूप में अपने हृदय में रख लेते हैं। ये ही वर्मा जी के उपन्यासों की कथावस्तु को जगमगा देते हैं। इस प्रकार के अन्य भी न जाने कितने उदाहरण वर्मा जी के उपन्यासों में भरे पड़े हैं, विस्तार के भय से जिनका उल्लेख नहीं किया जा सकता!

वर्मा जी के उपन्यासों की कथावस्तु में घटनाओं की बहुलता होती है। घटनाओं का एक जाल सा बिछा होता है जिसे चीरता हुआ पात्र अपना रास्ता तय करता है। उनके सारे उपन्यास घटना प्रधान हैं यद्यपि उनका चरित्र चित्रण भी कम महत्व का नहीं और यही बात वर्मा जी के उपन्यासों को प्रारम्भ के घटना प्रधान उपन्यासों से भिन्न कर देती है। घटनाओं का निर्माण परिस्थितियाँ करती हैं जो अचानक ही पात्रों के ऊपर टूट पड़ती हैं जब कि पात्र इसके लिये तैयार नहीं होता! पात्र परिस्थितियों से संघर्ष करता है और सफल असफल होता है। रूमानी कथानकों में सदा ही घटनाओं का निर्माण ये ही परिस्थितियाँ करती हैं और ये ही पात्रों के चरित्रों को भी निखारती हैं। वर्मा जी के उपन्यासों में भी इन्हीं परिस्थितियों और उनसे प्रसूत घटनाओं की प्रधानता होती है। इन सब के योग से कथावस्तु इतनी रोचक हो जाती है कि उसका पाठकों के साथ शीघ्र ही साधारणीकरण हो जाता है। पाठक कथावस्तु में अपने को लीन कर देता है, यहाँ तक कि उसकी इच्छा यह भी होने लगती है कि कहीं वह स्वयं पात्र रूप में इन परिस्थितियों का सामना कर रहा होता तो कितना अच्छा होता। रूमानी कथानकों की सफलता का यही रहस्य है। वर्मा जी के उपन्यासों की कथावस्तु इस अंश तक सफल है।

वर्मा जी में एक और गुण है जो विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके उपन्यासों में घटनाएँ इधर उधर बिखरी रहती हैं परन्तु फिर भी उनमें अलगाव नहीं देख पड़ता! बिखरी घटनाओं को एक सूत्र में पिरोये रखने में भी वे अत्यन्त सिद्ध हस्त हैं। डा० रामविलास शर्मा के इस कथन से मैं पर्याप्त सहमत हूं कि "वह सामन्त वर्ग और जनसाधारण दोनों का चित्रण करते हैं। इसलिए उन्हें दो या इससे अधिक पात्रों को

अलग अलग अपना केन्द्र बिन्दु बनाना पड़ता है। कथा के अनेक सूत्र बिखरे हुए और फिर भी एक दूसरे से जुड़े हुए चलते हैं। कुछ लोग इसे दोष समझते हैं। उन्हें यह दोष प्रेमचन्द में भी दिखाई देता है। लेकिन हरिप्रसन्न और सुनीता या शैला और हरीश की प्रेम कहानियाँ लिखना जितना आसान है उतना कथा के अनेक सूत्र बिखेरना और समेटना नहीं। कथा की एक सूत्रता के लिए कुछ आलोचकों का हठ वैसे ही है जैसे एलिजाबेथयुगीन नाटकों में समय और स्थान की पाबन्दी। कथानक की बहुसूत्रता से वर्मा जी उपन्यासों में वह वैचित्र्य, सरसता और चित्रण की विविधता ला सके हैं जो तथा कथित सुगठित कथानकों में असंभव होती।"

बात ठीक है। कथानक के बिखरे हुए सूत्रों और फिर भी उन्हें एक तारतम्य में पिरोए रहने से वर्मा जी के कथानकों में आश्चर्यमयी गति आगई है। ऐसा तब न हो सकता यदि कथानक ऊपर कहे गए सुगठित कथानकों के आधार पर विकसित किया जाता! बिखरे हुए कथानकों में जो दोष बहुधा आ जाते हैं वे वर्मा जी के कथानकों में नहीं आ पाये हैं इसी कारण उनकी आलोचना करना हमारा ध्येय नहीं रहा!

उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त वर्मा जी के उपन्यासों की कथावस्तु में दोष भी हैं, जिन्हे अस्वीकार नहीं किया जा सकता! वर्मा जी के उपन्यासों का विवेचन करते समय हमने प्रत्येक की कथावस्तु में आये दोषों की ओर स्पष्ट संकेत किया है, यहाँ अनावश्यक विस्तार अभीष्ट नहीं है। कुछ उपन्यासों की कथावस्तु तो बिलकुल ही साधारण, यहाँ तक कि नीरस होगई है। अमरबेल, संगम, प्रत्यागत आदि ऐसे ही उपन्यास हैं। 'अमरबेल' का कथानक तो इतना नीरस है कि पढ़ने में जी ऊब जाता है। और भी अनेक दोष हैं जो इन कथावस्तुओं में पाये जाते हैं और जिनका वर्णन प्रत्येक उपन्यास का अलग से विवेचन करते समय किया जा चुका है। हाँ, इन दोषों की संख्या अवश्य ही वर्मा जी के उपन्यासों की कथावस्तु की विशेषताओं के सम्मुख न्यून है!

आ :—

चरित्र चित्रण:-

चरित्रों के चित्रण में भी वर्मा जी की सफलता असंदिग्ध है। उनके उपन्यासों में विविध प्रकार के चरित्रों की सृष्टि देख पड़ती है। उच्च सामन्तीय वर्ग से लेकर, जनसाधारण के वर्ग तक के पात्रों की सत्ता उनके उपन्यासों में वर्तमान है और अपनी कुशल लेखनी द्वारा उन्होंने इन सभी चरित्रों का चित्रण इतने सधे रूप से और इतनी व्यापकता से किया है कि एक अद्भुत सौन्दर्य उपस्थित होगया है। एक बात जो विशेष ध्यान रखने के योग्य है, वह यह कि इन सभी चरित्रों के साथ ऐसा प्रतीत होता है, मानो उपन्यासकार का कोई सम्बन्ध हो। चाहे चरित्र राजाओं और सामन्तों की कोटि का हो या वह जनसाधारण से सम्बन्ध रखता हो, उपन्यासकार का सम्बन्ध दोनों से ही अत्यन्त घनिष्ट प्रतीत होता है। इसका प्रधान कारण यही है कि उपन्यासकार को उस विशेष भू भाग का गहन ज्ञान है जिसके इतिहास का अथवा जिसके वर्तमान कालीन समाज का चित्रण उसने अपने उपन्यासों में किया है। इसी से चरित्रों में इतनी अधिक स्वाभाविकता देख पड़ती है कि वे शीघ्र ही हमारे अत्यधिक निकट आ जाते हैं!

चरित्रों की इस बहुरंगी सृष्टि में विभिन्न मनोवृत्तियों वाले पात्रों की सत्ता है। परन्तु सभी का चित्रण, सबकी मनोवृत्तियों का उभार, उनकी चारित्रिक विशेषताओं, दुर्बलताओं, सबलताओं का चित्रण इतनी व्यापकता और गहराई के साथ हुआ है कि जान पड़ता है कि उपन्यासकार उनसे भलीं भाँति परिचित है और इसी कारण उनकी सूक्ष्म से सूक्ष्म वृत्तियों को उभार सका है। कुछ चरित्र तो स्पष्टतः लेखक के जाने बूझे हुए हैं। लगन का देवीसिंह, गढ़ कुण्डार का अर्जुन कुम्हार ऐसे ही चरित्र हैं। अर्जुन कुण्डार तो दुर्जन कुम्हार का प्रति रूप ही है जैसा कि उपन्यास के परिचय में वर्मा जी ने स्पष्ट कर दिया है! इनके अतिरिक्त और भी ऐसे अनेक चरित्र हैं जिनका उपन्यासकार के साथ परिचय है और वे उसके उपन्यासों में भी अपना अस्तित्व रखते हैं! एक बात और, सामन्तों और जनसाधारण के वर्ग के पात्रों में वर्मा जी की सहानुभूति सदैव जनसाधारण के साथ ही रही है। उन्होंने सामन्तीय चरित्रों की आलोचना अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में की है। मानसिंह अवश्य आदर्श सामन्ती शासक के रूप में चित्रित किया गया है परन्तु उसके प्रति भी एक आध व्यंग ऐसे किये गये हैं जो तीक्ष्ण हैं। जनसाधारण से एक जागरूक कलाकार की सहानुभूति होना स्वाभाविक ही है!

इन चरित्रों के विषय में एक बात और भी उल्लेखनीय है। सभी का अपना अपना व्यक्तित्व है। कोई भी पात्र, एक आध अपवादों को छोड़ कर, ऐसा नहीं है जो स्वयं के व्यक्तित्व के अभाव में दूसरे के ही ढकेलने से आगे बढ़ता हो। सारे पात्रों में अपनी २ विशेषताएँ हैं। सब में अपनी निजी दुर्बलताएँ भी हैं और इन्हीं विशेषताओं और दुर्बलताओं को ओढ़े हुए वे रंग मंच पर अपना अभिनय करते हैं। उनमें निष्क्रियता नहीं है। वे गतिवान हैं। अपने विशेष आदर्शों और स्वार्थों की पूर्ति के लिए वे सतत् प्रयत्नशील रहते हैं भले ही उन्हें प्राप्त करने में वे सफल हों अथवा असफल! पात्र चाहे आदर्श हो अथवा दुष्ट, कर्म करने में वह आगे ही रहता है, भले ही उसके कार्य घृणित और जन विरोधी हों अथवा जन हित के हों। दुष्ट पात्रों की अपने ध्येय के प्रति यह निष्ठा, उनके वर्ग की सारी दुर्बलताओं को हमारे सम्मुख और भी खोल देती है। सामन्तों के घृणित क्रिया कलाप कभी भी हमारी सराहना के पात्र नहीं बनते, हाँ उनसे उनके वर्ग की कलई अवश्य खुल जाती है। उपन्यासकार ने जान बूझ कर सब प्रकार की कोटि के पात्रों के क्रिया कलापों का विस्तार से वर्णन किया है।

जैसा हम कह चुके हैं कि दुष्ट पात्रों में भी एक गति है। वे भी संघर्ष में उसी प्रकार जूझते हैं जिस प्रकार आदर्श पात्र! परिस्थितियों की चपेट में फँस कर छटपटाते हैं परन्तु छूटने पर पुनः अपने गन्तव्य की ओर चल देते हैं। गढ़ कुडार के नागदेव, विराटा की पद्मिनी के अलीमर्दान, झाँसी की रानी के दूल्हाजू, पीरअली, मृगनयनी के गियास, सिकन्दर, ख्वाजा मटरू, कुण्डली चक्र के भुजबल और शिवलाल आदि के चरित्र इसी प्रकार के हैं! अन्य उपन्यासों में भी इस प्रकार के बहुतेरे चरित्र देख पड़ते हैं जिनका अपना व्यक्तित्व और जिनकी अपनी गति है।

पात्रों के चरित्रों को उठाने और गिराने में परिस्थितियों का प्रमुख हाथ रहता है। पीछे हम कह चुके हैं कि वर्मा जी के उपन्यासों की कथा वस्तु में परिस्थितियाँ ही सब कुछ हैं और यही परिस्थितियाँ पात्रों को भी अपनी लपेट में लेकर उनके चरित्रों को उठाती और गिराती हैं। पात्र परिस्थितियों के लिए तैयार नहीं होता, परिस्थितियां उस पर अचानक ही टूट पड़ती हैं, यदि पात्र में शक्ति हुई तो बचकर निकल जाता है अन्यथा परिस्थितियों की चपेट में पिस जाता है। स्टीवेन्सन ने रोमान्स को 'परिस्थितियों का काव्य' कहा है। वर्मा जी के उपन्यास 'रोमान्स' की कोटि में ही आते हैं और इसी कारण उनमें परिस्थितियों का वैभव देख पड़ता है! गढ़कुण्डार में परिस्थितियों का चक्र ही कथावस्तु को विकसित करता है और वही चरित्रों को निखारता है। युद्ध में दिवाकर बन्दी होता है। तारा उसे बाहर निकालती है। अग्निदत्त मानवती का अपहरण करने जाता है, उसे मिलता है नागदेव जो उसका अपमान करता है और

निकाल देता है। अग्निदत्त खंगारों से प्रतिशोध लेता है। खंगारों का नाश होता है। परिस्थितियों ने ही कथावस्तु को विकसित किया और उन्होंने ही पात्रों के चरित्र को उठाया और गिराया! अग्निदत्त स्वप्न में भी न सोचता होगा कि उसे ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा पर परिस्थितियाँ आती हैं और अग्निदत्त उनसे जूझता है। यही बात तारा के विषय में भी सत्य है। दिवाकर के प्रेम का उदय भी परिस्थितियों के संयोग से होता है और परिस्थितियां ही उसके चरित्र को भी उत्कर्ष प्रदान करती हैं।

'विराटा की पद्मिनी' में भी हम यही बात पाते हैं। कुमुद, कुञ्जर, अलीमर्दान, गोमती, रामदयाल, देवीसिंह सभी के चरित्र परिस्थितियों की चपेट में ही उत्कर्ष अथवा अपकर्ष को प्राप्त होते हैं। एक छोटा सा उदाहरण लीजिए—देवीसिंह को क्या पता था कि वह दलीप नगर की गद्दी पर भी बैठेगा? वह जा रहा था अपना विवाह करने! परिस्थितियां अपना कौशल दिखाती हैं। युद्ध होता है। देवीसिंह राजा नायकसिंह का कृपा पात्र बन जाता है। दरबारियों के षणयंत्र उसे राजा बना देते हैं। देवीसिंह का चरित्र परिवर्तित होता है। वह गोमती को भूल जाता है, कुञ्जर का स्वत्व छीन लेने पर भी उसे कोई चिन्ता नहीं होती और अन्त में कुञ्जर उसी के द्वारा मृत्यु को भी प्राप्त होता है। इसी प्रकार उपन्यास भर में परिस्थितियों का संघर्ष ही देख पड़ता है।

'प्रेम की भेंट' में भी यही बात है। 'कुण्डली चक्र' में भी पूना और अजित के चरित्रों को निखारने में परिस्थितियाँ ही प्रमुख हैं। 'टूटे काँटे' में नूरबाई और मोहन का चरित्र भी परिस्थितियों के प्रभाववश ही धुल कर साफ हो जाता है। वर्मा जी के अधिकांश उपन्यासों में हम यही बात पाते हैं। अनजानी परिस्थितियों में पड़ जाने से ही पात्रों में साहस की भावना का भी उदय होता है और वे उनसे पूरी शक्ति के साथ जूझ जाते हैं। कुछ ऐसे भी पात्र हैं जो परिस्थितियों के सम्मुख सर झुका देते हैं परन्तु इससे उनकी दुर्बलता भी स्पष्ट हो जाती है। परिस्थितियों की यह व्यापकता और उसके द्वारा पात्रों के चरित्रों का चित्रण वर्मा जी के उपन्यासों की एक विशेषता है जो कम महत्वपूर्ण नहीं!!

वर्मा जी के उपन्यासों में चाहे वे ऐतिहासिकहों अथवा सामाजिक चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर उनकी प्रवृत्तियों को उभारा जाता है। इस मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के फलस्वरूप पात्रों की सूक्ष्म से सूक्ष्म आन्तरिक प्रवृत्तियां झलक उठती हैं और हमें उनके सम्बन्ध में एक निश्चित धारणा बना लेने में कठिनाई नहीं होती! इसी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के कारण कहीं २ पात्रों का अन्तर्द्वन्द भी मुखर हो उठा है। वर्मा जी ने अपने जिन उपन्यासों में चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है, उनमें प्रमुख कचनार, मृगनयनी, विराटा की पद्मिनी, अचल मेरा कोई, प्रेम की भेंट आदि हैं!

'कचनार' में दलीपसिंह का चरित्र देखने से ही पता चल जाता है कि उसे उभारने में मनोविज्ञान का कितना सहयोग रहा है। कलावती ब्याह कर घर आती है। मानसिंह उसकी ओर आकृष्ट होता है। कलावती भी उसकी ओर क्यों ढुलक जाती है? इसका कारण यही था कि मानसिंह उसे अपने अधिक निकट लगा! दलीपसिंह का व्यवहार उस पर एक आतंक के समान छाया रहा! मानसिंह ने उसकी इस दशा को पहचाना और वह उसे भाँति भाँति की सान्त्वनाएँ देकर उसे अपनी ओर खींचता रहा। कलावती और मानसिंह एक हो गये! मानसिंह और डरू के वार्तालाप में भी वर्मा जी ने मानसिंह की दमित वासनाओं को खूब उभारा है। मानसिंह बार २ उससे मन्ना के बारे में बातचीत करता है। उससे मन्ना के विषय में पूछता है। डरू यद्यपि सशंकित अवश्य हो जाता है पर मानसिंह की दमित वासनाएं भी पूर्णतया उभर उठती हैं जो उसके चरित्र के विषय में प्रारम्भ से ही हमारी एक निश्चित धारणा बना देती हैं!

'विराटा की पद्मिनी' में राजा नायकसिंह का चरित्र मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अधिक सुन्दर बन पड़ा है। वे वीर भी उतने ही हैं जितने विलासी! उदारता भी उनमें है पर सनकीपन भी कम नहीं। इन सबका योग नायकसिंह के चरित्र को बिल्कुल ही उभार देता है। कुमुद के विषय में सुनते ही राजा नायकसिंह की कामुकता जग उठती है। आज्ञा देते हैं—"उसे हमारे डेरे पर भिजवा दो लोचनसिंह, हम उसकी रक्षा करेंगे।" लोचनसिंह जानता था कि राजा रोगी हैं। उन्हें वर्जित करता हुआ कहता है— "हकीम जी से महाराज पूंछ लें कि महाराज को ऐसी बातों की ओर ध्यान नहीं देना चाहिये।" राजा भभक उठते हैं। तुरन्त आज्ञा देते हैं।—"मेरी दो आज्ञाएँ हैं।" जनार्दन शर्मा पूछता है। राजा उत्तर देते हैं—"एक तो यह कि जो मुसलमान सेना यहाँ आई है उसे किसी प्रकार यहाँ से हटा दो...।" "दूसरी यह कि लोचनसिंह को इसी समय मरवाकर झील में फिकवा दो!" लोचनसिंह राजा का स्वभाव जानता था! उसने राजा के सामने तलवार रख दी! राजा का क्रोध शान्त हो गया!

'मृगनयनी' में भी इसी प्रकार अनेक स्थलों पर पात्रों के चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। स्वयं मृगनयनी के चरित्र को ही कई स्थलों पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा गया है। लाखी और निन्नी की पारस्परिक अठखेलियों, बातचीत आदि में दो समवयस्क युवतियों की अल्हड़ता पूर्ण बातचीत का स्पष्ट आभास मिल जाता है। इसके लिये भी मनोवैज्ञानिक ज्ञान आवश्यक है। पिल्ली के चरित्र को चित्रित करने में मनोविज्ञान का पर्याप्त सहयोग रहा है। उसकेप्रारम्भ से अन्त तक के कार्यों के

हृदय की गिनी गिनाई गतियों को,राई रत्ती तौले हुये वासना प्रसूनों को,रेशम की पोटली में गाँठ लगाकर बाँधे हुए कामना परिमल को,और मुट्ठी में कैद की हुई लालसा-सुगन्धि को थोड़ा थोड़ा करके कुन्ती पर न्योछावर करता रहूँगा।"

इसी प्रकार एक स्थान पर जब निशा अचल से पूछती है कि स्त्री पुरुष के सम्बन्धों में थोड़े दिनों पश्चात बहुधा जो दरार पड़ जाती है उसका क्या कारण है? अचल उत्तर देता है- "देह की मांग को पूरा करने के लिये आरम्भ में प्यार दुलार की झड़ी लगा दी। फिर हुआ कुमच। या देह की मांग का आरम्भ से ही निरोध कर उठे-विदेह प्रेम की उपासना में जो भाग्य से कुछ कम संभव है। बस गृह कलह छिड़ी। देह की माँगों का और उन मांगों के निग्रह का समन्वय ही उस अनबन को असंभव बना सकता है। साथ ही एक दूसरे का विश्वास और रक्त गत कमजोरियों की परस्पर माफी के लिये सबल हृदय की शक्ति।"

'अचल मेरा कोई' का यह मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ही उसकी विशेषता है। इस मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की सहायता से ही उपन्यासकार ने आज के पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित युवक युवतियों के संबंधों की व्याख्या की है और अपनी इस व्याख्या में एक बहुत बड़ी सीमा तक वह सफल भी हुआ है। उपर्युक्त उपन्यासों के अतिरिक्त वर्मा जी के अन्य उपन्यासों में भी उनके चरित्र चित्रण सम्बन्धी इस मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की झलक पाई जाती है। चरित्र चित्रण में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का गहरा हाथ रहता है। इससे चरित्रों की सूक्ष्म से सूक्ष्म आन्तरिक प्रवृत्तियाँ, उनकी सबलताएँ दुर्बलताएँ उभर उठती हैं। वर्मा जी ने इस मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से यथावसर पूरा लाभ उठाया है और अपने मनोविज्ञान के व्यापक अध्ययन का परिचय दिया है।

पात्रों का द्वन्द्व भी उनके चरित्रों को खूब उभारता है। वे वाह्य संघर्ष से तो ग्रसित होते ही हैं अन्तर्संघर्ष भी उन्हें कम नहीं व्यथित करता। वाह्य और अन्त-संघर्ष के योग से पात्रों का चरित्र पाठकों के सम्मुख स्पष्ट हो जाता है। प्रसाद जी पात्रों के इस अन्तः संघर्ष के उभारने में अत्यधिक सफल रहे हैं। वर्मा जी ने भी यथास्थान पात्रों के अन्तर्संघर्ष की झलक देकर उनके चरित्रों को स्पष्ट किया है। उनके लगभग सभी उपन्यासों में पात्रों के इस अन्तर्संघर्ष के दर्शन हो जाते हैं। वाह्य और अंत-र्संघर्ष दोनों में ही ग्रसित पात्र हमारे हृदय पर अमिट प्रभाव उत्पन्न करते हैं। कतिपय उदाहरण इसे और भी स्पष्ट कर देंगे। 'गढ़ कुण्डार' का नाग हेमवती का प्यार पाने में असफल होता है। वाह्य संघर्ष में तो फँसा ही था उसके हृदय में भी एक संघर्ष हो रहा था। देखिये,उपन्यासकार के शब्दों में उसके इस आंतरिक संघर्ष का रूप -"नाग की वह रात बड़ी कठिनाई से कटी। एक ओर सामन्त नाग, दूसरी ओर आहत वर्ग

नाग। एक ओर मनुष्य नाग, दूसरी ओर दर्पयुक्त नाग। एक ओर राजकुमार नाग, और दूसरी ओर प्रणयोन्मत्त नाग। एक ओर वीर नाग, दूसरी ओर उद्धत नाग। एक ओर नागदेव और दूसरी ओर नाग राक्षस। देवता पर राक्षस विजय पा चुका था और खंगारों का सूर्य अस्ताचल की ओर जा चुका था।

'बिराटा की पद्मिनी' में भी कुमुद के हृदय का द्वन्द्व अधिकांश स्थलों पर उभर उठा है। यही बात 'कचनार' के पात्रों में भी हमें देख पड़ती है। 'मृगनयनी' में इस अन्तर्द्वन्द्व ने कुछ अत्यन्त सुन्दर चित्र उपस्थित किये हैं। मानसिंह राजा है शक्ति, सम्पन्न है पर गृह कलह को मिटाने में वह भी असफल होता है। वह उद्विग्न हो उठता है। लेखक ने उसकी इस उद्विग्नता का सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। 'उसका अभिमान कहता था-इतने बड़े राज्य की व्यवस्था करने वाला क्या आठ स्त्रियों का भी शासन नहीं कर सकेगा? उसके विवेक ने बतलाया-एक स्त्री का शासन ही पुरुष के लिये कठिन काम है, आठ तो आठ ग्वालियर राज्यों की समस्या के समान हैं। फिर क्या करूँ? करूँ क्या, विनय शील और मृदुलता से काम लो, व्यंग्य, गाली और कटूक्तियां सब हँसी के साथ सहो। इसी में कल्याण है। मानसिंह ने सोचा।"

इसी प्रकार ब्याह कर ग्वालियर के राज भवनों में आई हुई मृगनयनी की मानसिक उथल पुथल का सुन्दर चित्र नीचे की पंक्तियों में मिलता है।

"मृगनयनी भवन के भीतर पहुंची। दास दासियों की मनुहारें पर मनुहारें बरस उठीं। अरे तो क्या मैं थोड़ी देर के लिये अकेली न रह पाऊँगी?

नेगचार के बाद पान इलायची इत्र आदि सत्कार की सामग्री, नाना प्रकार के भोजन, सिर झुकाये दासियां, स्वच्छ वायु के लिये भवन में खिड़कियां। बैठने के लिये कालीन, मसनद, तकिए, लेटने के लिये मखमली गद्दे का, चांदी की पतियों जड़ा पलंग।

वह मचान, वह चाँदनी रात जिसमें लहराते हुये अनाज का खेत जैसे किसी ललक के साथ बात करना चाहता हो, साँभर, चीतल की बोलियां, बगल में रखा हुआ धनुष बाण, लाखी की ठठोली, क्या सब सदा के लिये हाथ से छुटक गये? क्या मैं जा नहीं सकूँगी? क्या यहीं बन्द होकर रहना पड़ेगा?...... निन्नी ने झरोखे के बाहर दृष्टि डाली। मन चाहा कि उठें और झाँक कर देखें। ये लोग क्या कहेंगी? मन में कहेंगी गाँव की गँवार है। ये सब पढ़ी लिखी हैं। मैं अपढ़ हूं। मैं कुछ गा लेती हूं पर इन सबने बरसों का अभ्यास किया होगा। जब रात में, सबेरे और संध्या समय चिड़ियां बोलेंगी और मैं गाना चाहूंगी तो क्या कोई रोक लेगी? नहीं भी रोकेगी तो मन में क्या कहेगी? इन सबसे अच्छा गा सकूँगी तब कुछ नहीं

कह सकेंगी। और यह निशाने बाजी कैसी करती होंगी? इसमें तो सबको पछाड़ दूँगी। महाराज को भी। अपने पति को? वह पति हैं, परन्तु लक्ष्यवेध तो विद्या है इसमें हारजीत की क्या बात? .....मैं जब अपने गाँव में फिर आऊँगी तब पढ़ लिख कर यह सब सीखकर जाऊँगी। लाखी को भी सिखलाऊँगी! कहूंगी भौजी! सीख मुझसे। क्या कर रही होगी इस समय मेरी प्यारी लाखी? कितना रोई थी वह? मैंने कभी कभी उसके साथ ओछा व्यवहार किया है। अब कभी नहीं करूँगी। मृगनयनी की आंखों में एक आंसू आ गया। दासियों ने नीची निगाहों ही देख लिया। सोचा देर तक देखते रहने के कारण आंखें गीली हो गई होंगी।

मृगनयनी की मनः स्थिति उपर्युक्त पंक्तियों में भली भाँति व्यक्त हुई है। ऐसा प्रतीत होता है मानों जंगलों में स्वच्छन्दता से विचरण करने वाले पक्षी को किसी ने सोने के पींजड़े में बन्द कर दिया हो। इस प्रकार के और भी न जाने कितने चित्र 'मृगनयनी' में भरे पड़े हैं।

प्रेम की भेंट, झांसी की रानी, कुण्डली चक्र, लगन आदि उपन्यासों में भी कतिपय स्थलों में पात्रों की मानसिक उथल पुथल का सुन्दर वर्णन हुआ है। 'अचल मेरा कोई' में तो यह बात अत्यधिक स्पष्ट है। जैसा कहा जा चुका है इस प्रकार के वर्णन पात्रों की आंतरिक वृत्तियों को उभार कर रख देते हैं, केवल आवश्यकता इस बात की रहती है कि उनका वर्णन कुशलता पूर्वक किया जाय। ऊपर के उद्धरणों से हमें यह अनुमान हो जाता है कि वर्मा जी इस कला में कितने दक्ष हैं। भाषा की कमी, उसकी शिथिलता अवश्य खटक उठती है-अन्यथा इन वर्णनों की सुन्दरता अपूर्व है।

वर्मा जी के ऐतिहासिक उपन्यासों के चरित्रों के विषय में एक बात बता देना और आवश्यक है। उनके इन उपन्यासों में हमें तीन प्रकार के चरित्र देख पड़ते हैं— पहले वे जो पूर्णतः ऐतिहासिक हैं। दूसरे वे जो ऐतिहासिक नहीं हैं परन्तु जिनके मूल में कोई जनश्रुति अथवा किम्वदन्ती है और कभी कभी तो उस जनश्रुति अथवा किम्वदन्ती में पात्रों का नाम तक वर्णित रहता है जो कि उपन्यासों में भी सुरक्षित रख लिया गया है। तीसरे प्रकार के चरित्र पूर्णतः काल्पनिक हैं और लेखक ने उन्हें ऐतिहासिक चरित्रों के बीच में ही घुला मिला दिया है। इन तीनों प्रकार के चरित्रों को चित्रित करने में वर्मा जी ने समान रूप से परिश्रम किया है और यही कारण है कि उनमें तनिक भी अस्वाभाविकता नहीं आ पाई। कल्पित पात्र भी ऐतिहासिक पात्रों में घुल मिलकर ऐतिहासिक ही प्रतीत होने लगे हैं। 'विराटा की पद्मिनी' का विवेचन करते समय हम यह बता चुके हैं कि वह पूर्णतः कल्पित है। उसकी कथा भी ऐतिहासिक नहीं प्रत्युत किम्वदन्तियों और जनश्रुतियों पर आधारित है। परन्तु उसमें जो भी

पात्र हैं तत्कालीन ऐतिहासिक वातावरण में इस तरह घुल मिल गये हैं कि न तो हमें कथावस्तु ही कल्पित लगती है और न पात्र ! ऐतिहासिक उपन्यासकार की यह एक बहुत बड़ी सफलता है।

सामाजिक उपन्यासों में चरित्र सभी कल्पित हैं पर उनका कोई न कोई आधार है। उस प्रकार के व्यक्ति समाज में एक दो नहीं अनेक हैं। उन्हें हम प्रति दिन अपने आस पास देखा करते हैं। अपने उपन्यासों के इन चरित्रों का चित्रण उपन्यासकार ने अधिकतर अभिनयात्मक प्रणाली का आश्रय लेकर ही किया है। स्वयं भी उसने पात्रों के विषय में कहा है पर अधिकतर उन्हें नाटक के पात्रों की भाँति रंगमन्च पर छोड़ दिया है और वे अपने कार्यों से ही अपनी दुर्बलताओं, सबलताओं को प्रदर्शित करते हुए आगे बढ़े हैं। जैसा कहा जा चुका है उपन्यासकार ने भी यथावसर पात्रों के चरित्रों पर टीका टिप्पणी की है और इससे उसको पर्याप्त सहायता भी मिली है। उपन्यासकार को चरित्रों का चित्रण करने में यह सुविधा विशेष रूप से प्राप्त रहती है और सभी इसका उपयोग करते हैं। वर्मा जी भी इसका उपयोग करने में नहीं चूके हैं ! अभिनयात्मक प्रणाली का आश्रय ग्रहण करने के कारण पात्रों में एक तीव्रता भी आ गई है और आसानी से ही उनका चरित्र उभरता गया है एवं पाठकों को तुरन्त ही उनके विषय में धारणाएँ बनाते रहने में आसानी हुई है। जहाँ पाठक उलझन में पड़ा है वहाँ उपन्यासकार के विवेचन ने उसकी उलझन को शान्त कर दिया है।

इसके अतिरिक्त पात्रों के स्वगत कथनों, कथोपकथनों एवं उनके कार्यों ने भी उपन्यासकार को उनके चरित्रों को चित्रित करने में सहायता प्रदान की है। परन्तु इस सहायता का उपन्यासकार अधिक ऋणी नहीं है। सबसे अधिक सहायता तो उसे पात्रों की आकृतियों के वर्णन ने प्रदान की है। पात्रों की आकृति का वर्णन चरित्रों को उभारने में बहुत योग देता है। वर्मा जी इस कला में बहुत पटु हैं। अपने प्रत्येक उपन्यास में उन्होंने पात्रों की आकृतियों को उभार कर चरित्रों का चित्रण किया है। दो एक उदाहरण पर्याप्त होंगे। 'मृगनयनी' में निन्नी और लाखी के विषय में उपन्यासकार का यह संक्षिप्त कथन ही उनके विषय में हमें काफी बातें बता देता है— "वे दोनों समवयस्क थीं, आयु लगभग पन्द्रह सोलह वर्ष परन्तु निन्नी बलिष्ठ और पुष्ट काया की, लाखी दुबली और छरेरी"। यही दुबली लाखी जब अपना बलिदान देती है तब जैसे हमारी सारी श्रद्धा खींच लेती है।

अटल का रेखाचित्र देखिये—"अटल हट्टा-कट्टा युवक था। आंसें भींग चुकी थीं। सिर के बाल लम्बे थे, इसलिये सारी आकृति में भीमता आ गई थी। कई साल के कठोर जंगली जीवन ने उसके लम्बे चेहरे की लम्बी नाक को कुछ और लम्बा

कर दिया था। अपनी बहन निन्नी को सुखपूर्वक और सुरक्षित रखने में उसने कोई कसर नहीं लगाई थी।"

महमूद बघर्रा का एक चित्र—"महमूद बघर्रा साढ़े तीन हाथ से अधिक ऊँचाई का था परन्तु चौड़ा इतना था कि बौना मालूम होता। इस समय आयु उसकी लगभग पैंतालीस वर्ष की थी। मूछें इतनी लम्बी कि सिर पर उनकी गाँठ बांधता था और दाढ़ी नाभि के नीचे तक फटकार मारती थी।"

'कचनार' में कलावती का एक चित्र—"मानसिंह कनात का परदा हटाकर घुस गया। दुलहिन घूंघट खोले थी, रंग गेहुँए से जरा ज्यादा गौर, आँखें बड़ी, बरौनियाँ लम्बी, नाक सीधी, चेहरा गोल। एक सहेली खरे गोरे रंग की थी, बहुत सुन्दर, दूसरी जरा सांवले रंग की, आँखें बड़ी परन्तु नाक कुछ चपटी, नथने फूले हुए। दोनों खटोलिया गोंड़ !!" लाखी और मृगनयनी का शिकार को जाते समय का एक चित्र देखिये—कितना सुन्दर और कितना मौलिक है—"जंगल में धीरे धीरे आहट लेती हुई दोनों बढ़ रही थीं। लू के झकोरोंसे भूमि के बारीक कंकड़ और बिछे हुए सूखे पत्ते उड़-उड़ कर निन्नी के तपे हुए गोरे और लाखी के साँवले गालों पर पड़ पड़ जा रहे थे। उन दोनों ने ओढ़नी को सिर से लपेट रखा था। घुटनों तक मोटे लंहगों का कच्छ, उरोज कंचुकी से ढके हुए, पीठ से लगे हुए पेट उघाड़े। गले में मूंगी और कांच के छोटे बड़े दानों की माला। कलाइयों पर काँच की दो दो चूड़ियाँ, पैरों में कांसे या पीतल तक का कड़ा नहीं !" आदि आदि !!

गढ़ कुण्डार में नागदेव हेमवती के विषय में सोचता है—"कोमल अंग है, उछलती हुई बड़ी आँखें हैं, गरबीली ठोढ़ी है, सीधी नाक है······आदि आदि !!"

इसी प्रकार गढ़ कुण्डार का एक रेखाचित्र और दर्शनीय है—"एक की आयु सत्रह या अठारह वर्ष से अधिक न होगी। प्रशस्त ललाट, कुछ लम्बाई लिये गोल चेहरा, आँखें कुछ बड़ी और बादाम के आकार की हलकी काली, नाक सीधी और होंठ लाल, ठोढ़ी आधार में एक हलके से गढ़ेवाली और जरासी आगे की ओर झुकी हुई और गर्दन सुराहीदार। केश पीछे गर्दन तक लम्बे और बिलकुल काले और उन पर कहीं कहीं रेत के कण। भौंहें, पुतली, लम्बी और खिची हुई और पलक दीर्घ। सीना चौड़ा और कमर बहुत पतली, बाहु लम्बे और हाथ की उंगली पतली। मूंगिया रंग के कपड़े पहने हुए छोटी सी ढाल और तरकस पीठ पर और कन्धे पर कमान। भाल पर लगा हुआ रोरी का तिलक किसी समय हाथ पड़ जाने से पुछ गया था। इस आरक्त वक्र रेखा ने, मुख के हलके गेहुंए रंग को और भी तेजोमय बना दिया था।"

उपर्युक्त उद्धरणों से हमारा तात्पर्य केवल वर्मा जी की आकृतियों को स्पष्ट करने

की कला को दिखाना था। उसने समान रूप से स्त्री और पुरुष पात्रों की आकृतियों के ये चित्र दिये हैं। इससे एक तो पाठक पात्र के विषय में अपनी धारणा बना लेता है दूसरे उपन्यासकार को भी चरित्रों के चित्रित करने में सहायता मिलती है।

'विराटा की पद्मिनी', प्रेम की भेंट, झाँसी की रानी, 'लगन' आदि उपन्यासों में भी इस प्रकार के बहुतेरे चित्र हैं।

"कुमुद चट्टान की टेक पर खड़ी हो गई। ऐसा जान पड़ा मानों कमलों का समूह उपस्थित हो गया हो। जैसे प्रकाश पुञ्ज खड़ा कर दिया गया हो। पैरों की पैंजनी पर सूर्य की स्वर्ण रेखाऐं फिसल रही थीं। पीली धोती मन्द पवन के धीमे झकोरे से दुर्गा की पताका की तरह धीरे धीरे लहरा रही थी! उन्नत भाल मोतियों की तरह भासमान था। बड़े २ काले नेत्रों की बरौनियाँ भौंहों के पास पहुंच गईं थीं। आँखों से झरती हुई प्रभा ललाट पर से चढ़ती हुई उस निर्जन स्थान को आलोकित सा करने लगी। आधे खुले हुए सिर पर से स्वर्ण को लजाने वाली बालों की एक लट गर्दन के पास जरा चंचल हो रही थी!" (विराटा की पद्मिनी)!!

रामा का एक सौन्दर्य चित्र—"वही छरेरा शरीर। —गोल जरा लम्बा मुख! सोने का रंग। सांचे में ढला हुआ सिर। उन्नत सुडौल माथा। पद्म जैसा हाथ सीधी नासिका! पतले लालिमामय अधर पल्लव और ठोड़ी के बीच में बहुत छोटा सा गढ्ढा! आंखें बड़ी बड़ी और स्निग्ध। बरौनियां लम्बी और भौंहे धनुष जैसी! (लगन)!! एक चित्र और—"वही स्वर्ण गुलाब का सा मुख। बड़ी बड़ी प्रभामयी आंखें। सहजमंद मुस्कराहट। उन्नत चिकना ललाट। काले काले बाल और लाल होंठ जिनकी सम्पत्ति वह सहज स्वाभाविक मुस्कराहट थी! गोल सुन्दर ग्रीवा बिजली के प्रकाश में देखी थी और वीणा की झन्कार सदृश स्वर मेह की रिमझिम में स्पष्ट सुन लिया था!" (लगन)!!

पात्रों के कार्य व्यापारों ने भी उनके चरित्रों को बहुत बड़ी सीमा तक उभारा है। 'गढ़-कुण्डार' में ही तारा को सांप काट लेता है, सब लोग खड़े हैं पर घाव को चूसने का साहस किसी को भी नहीं होता! दिवाकर आगे बढ़कर तारा का घाव चूसता है। इस कार्य से जहाँ एक ओर उसका तारा के प्रति प्रेम झलकता है वहां उसका साहस, भी झलक उठता है। कुञ्जर-कुमुद के प्रेम सम्बन्धों में भी ऐसे अवसर उपस्थित होते हैं। अन्य उपन्यासों में भी इस प्रकार के कई उदाहरण हैं जहां पात्रों का आचरण पर्याप्त सीमा तक उनके चरित्रों को उभारने में समर्थ हुआ है। ये ही वे साधन हैं जिनके द्वारा कुशल उपन्यासकार अपने उपन्यासों के पात्रों के चरित्रों को चित्रित करते हैं और हर्ष की बात है कि वर्मा जी ने भी उनका अत्यन्त सफलतापूर्वक उपयोग किया है।

वर्मा जी के उपन्यासों में चरित्रों की जो बहुरंगी सृष्टि है उसमें यदि सबसे अधिक किसी का भी चरित्र हमें आकर्षित करता है तो स्त्री पात्रों विशेषकर नायिकाओं का ! वर्मा जी के उपन्यासों की नायिकाएँ इतनी प्रभावशाली होती हैं कि उनके सम्मुख अन्य सारे चरित्र मद्धिम पड़ जाते हैं। इसका कारण और कुछ नहीं केवल यही है कि वर्मा जी ने अपनी कथाओं के लिये जो भी विषय चुना है वह इसी प्रकार की रमणियों के उपयुक्त है। उनके चरित्रों के चित्रण में वर्मा जी को जो विशेष सफलता मिली है वह भी इसीलिये कि उन्हें प्रेम और वीरता से भरी गाथाओं के इन संघर्षशील स्त्री पात्रों से एक विशेष सहानुभूति रही है। उनकी यह सहानुभूति भी स्थान स्थान पर व्यक्त हुई है। 'गढ़ कुण्डार' से लेकर 'टूटे काँटे' तक हम उनके अधिकांश उपन्यासों में नायिकाओं को अपूर्व ज्योति से उज्वल पायेंगे। नायिकाएं तो उज्वल रहती ही हैं उनके सम्पर्क से अन्य स्त्री पात्रों में भी एक अकथनीय आभा देख पड़ने लगती है। डा० रामविलास शर्मा ने इन नारी पात्रों के लिये बिल्कुल ठीक ही कहा है कि "ये नारी पात्र लक्षण ग्रन्थों की नायिकाएँ नहीं हैं। उनका अपना व्यक्तित्व है, मान अपमान की भावना है। वे प्रेम करना जानती हैं और प्रेम के लिए मर मिटना भी जानती हैं। यह प्रेम की समस्या उपन्यासों में घटनाओं के विचित्र ऊहापोह खड़ी कर देती है।

'गढ़कुण्डार' की तारा, विराटा की पद्मिनी की कुमुद, 'कचनार' की कचनार, 'मृगनयनी' की मृगनयनी और लाखी, 'लगन' की रामा, 'कुण्डली चक्र' की पूना, 'टूटे काँटे' की नूरबाई, 'झाँसी की रानी' की रानी, जुही, सुन्दर, मुन्दर, काशीबाई, मोतीबाई, झलकारी, बख्शिन, ऐसी ही स्त्रियाँ हैं जो तलवार की धार और बन्दूकों की गोलियों के बीच भी मुस्कराती हैं और उस समय उनकी मुस्कराहट में एक अजीब ज्योति होती है। ये स्त्रियाँ अपने कार्यों से उपन्यास के सम्पूर्ण वातावरण को देदीप्यमान कर देती हैं। इनमें से अधिकांश के भीतर प्रेम की धारा भी प्रवाहित रहती है पर वह उश्रृंखल नहीं अपितु शान्त होती है। उसमें अतृप्ति नहीं प्रत्युत एक विराट गति होती है जो निरन्तर आगे बढ़ती हुई अन्त में फूट पड़ती है।

'गढ़कुण्डार' की तारा को ही लीजिए ! धीर, शान्त एवं कुसुमों से भी अधिक कोमल तारा अवसर आने पर समस्त सामाजिक रूढ़ियों का तिरस्कार कर अपने प्रेमी को बचाने के हेतु युद्ध के भीषण वातावरण में भी उसके पास पहुँच जाती है। शरीर की परवाह न कर वह उसे बन्दी गृह से निकाल कर अपने दृढ़ प्रेम का परिचय देती है।

कुमुद में सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह करने की उतनी शक्ति न थी फिर भी वह अन्याय का सक्रिय प्रतिरोध करती है। पालर वाले उसे देवी समझते हैं। आस पास भी वह देवी के रूप में ही विख्यात है। कुञ्जर भी और यहाँ तक कि अक्खड़ी

लोचनसिंह तक उसे देवी समझता है। पर वह स्वयं अपने को देवी की दासी मानती है। कुञ्जर उसे प्यार करता है और वह भी प्राण पण से उसे चाहती है पर अन्त तक उसका प्यार व्यक्त नहीं हो पाता यद्यपि उसका क्षीण आभास अवश्य कुछ स्थलों पर मिलता है। वह कुञ्जर को अपने स्वत्व को प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती है। अन्तिम दृश्य में उसके भीतर मचलता हुआ प्रेम सीमाओं को तोड़ कर फूट निकलता है। वह कुञ्जर को बिदा करती है—युद्ध क्षेत्र के लिये ! कुञ्जर उससे कहीं और चलने को कहता है पर वह कुञ्जर को उसके कर्तव्य पथ से विचलित नहीं करती ! कुञ्जर देवीसिंह से जूझ जाता है और कुमुद सामन्तीय वासना से अपने त्राण के लिए आत्म हत्या करती है। उसका जो भी चरित्र उपन्यासकार ने चित्रित किया है, वह अपूर्व है।

इसी प्रकार 'कचनार' में कचनार भी मानसिंह की वासना का लक्ष्य बनने के बजाय दर दर ठोकरें खाना अधिक उपयुक्त समझती है। किले से भाग कर वह गोसाइयों के आश्रम में पहुँचती है जहाँ उसे दलीपसिंह के रूप में सुमन्तपुरी मिलता है। मानसिंह के प्रलोभनों को वह ठुकरा देती है। उसके एक एक प्रश्न का अकाट्य उत्तर देती है।

'मृगनयनी' में मृगनयनी और लाखी दोनों के चरित्र अत्यन्त सुन्दर हैं। लाखी का चरित्र तो अमर चरित्र है। मृगनयनी भी सामाजिक रूढ़ियों और अनाचारों का विरोध करती है परन्तु लाखी उससे कहीं आगे है। वह जीवन भर संघर्षों में खेलती है, परन्तु आत्माभिमान नहीं छोड़ती ! अन्त में राई की गढ़ी की रक्षा करते समय प्राण छोड़ देती है। वह भी अटल से प्रेम करती है और जानती है कि उसकी राह में बाधाएँ हैं पर उन सबकी चिन्ता न कर वह अटल के साथ सदा के लिये सम्बन्ध जोड़ लेती है। लोगों में उसकी निन्दाएँ होती हैं परन्तु वह दृढ़ता के साथ अटल से कहती है—"उतर पड़ो संसार में कमर कस कर और सिर उठाकर निन्दाचारे का सामना करो।"

ऐसी ही स्त्रियाँ देश और समाज का नेतृत्व करने का दम रखती हैं। 'लगन' में एक रामा है—उतनी ही दृढ़ जितनी वर्मा जी के उपन्यासों की अन्य नायिकाएँ ! उसका श्वसुर उसे बिदा कराके नहीं ले जाता, घर वाले उसकी दूसरी शादी करने की योजना बनाते हैं पर वह दृढ़ थी ! अपने पति के लिए उसके हृदय में अपार प्रेम था ! जब परिस्थिति पर्याप्त बिगड़ जाती है, तब भीषण आंधी बरसात में अथाह बेतवा में कूद पड़ती है और उसे पार कर अपनी श्वसुराल पहुँचती है। रामा का साहस दो परिवारों के वैर को मिटाता है, वह और भी देदीप्यमान रूप लेकर हमारे नेत्रों में पैठ जाती है। रामा से ही कुछ मिलती जुलती 'कुण्डली चक्र' की पूना है। उसकी अल्हड़ता

भी अपूर्व है। अजित से प्रेम करती है पर अजित उसकी ओर विशेष ध्यान नहीं देता! अन्त में जब उसकी इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह भुजबल से किया जाता है, घर छोड़ कर वह चकरई की पहाड़ियों में निकल जाती है। वहीं उसे अजित मिलता है और उसे अपनी जीवन संगिनी बनाता है।

'टूटे काँटे' की नूरबाई तो अत्यन्त ही दीप्त है। सामन्ती भोग विलासों को लात मार कर वह एक साधारण सैनिक के साथ चल देती है। अनेकानेक कष्टों को सहन करने पर भी उसके ओठों से मुस्कान नहीं दूर होती! डाकुओं से अपने प्रेमी की रक्षा करते समय अपने अपूर्व त्याग का परिचय देती है और वृन्दावन पहुँच कर स्वच्छन्दता से विचरण करते हुए कृष्ण भक्ति में लीन हो जाती है। सामन्तों की नूरबाई जनसाधारण की सरूपा बन जाती है। उसका त्याग, उसकी दृढ़ता बलात् हमें आकर्षित कर लेती है।

'झाँसी की रानी' में तो स्त्री पात्रों की सृष्टि ही रंगीन है। उसमें अनेक स्त्री पात्र हैं और सबके सब अपूर्व दीप्ति से दीप्ति! रानी के विषय में विशेष कहना हम उपयुक्त नहीं समझते। उन्होंने तो भारतीय इतिहास को ही अमर कर दिया है। उन्हीं के सम्पर्क से नाटकों में काम करने वाली अभिनेत्रियाँ जूही, मोतीबाई आदि अमर हो जाती हैं। रानी की सहेलियाँ सुन्दर मुन्दर का बलिदान हमारी आंखों में भारतीय नारी की सारी विभूतियों को जगमगा देता है। जूही रानी के साथ युद्ध करती हुई अंग्रेजों की तलवार का लक्ष्य बनती है। मर जाती है पर उसके ओठों से अंग्रेज उसकी मुस्कराहट नहीं छीन पाते! उसकी मुट्ठियों में बंधी तलवार नहीं छूट पाती! मोती बाई भी रानी की गोद में ही देश की स्वाधीनता के लिए लड़ते २ प्राण दे देती है। झलकारी कोरिन तो इतनी साहसी है कि अंग्रेजों की छावनियों में घुस जाती है और रानी को बचाने के लिए अपने को ही रानी घोषित कर देती है। अंग्रेज उसकी चाल में आजाते हैं पर देश द्रोही दूल्हाजू उसके किये कराये पर पानी फेर देता है। बख्शिन किले में लड़ती हुई मारी जाती है। बख्शी उससे ज्यादा रानी और झाँसी को समझता है। सब देखते हैं कि रानी धूल में बख्शिन के शव को लिए बैठी है। रानी के सम्बन्ध में गुलमुहम्मद् की यह उक्ति कि 'हमारे पीर का, वह बौत बड़ा बली था' हमारे सामने रानी के सारे शौर्य को स्पष्ट कर देती है। इन नारियों ने झांसी की रक्षा के लिये अंग्रेजों से लोहा लिया था। झांसी तो अंग्रेजों ने जीत ली थी पर भारतीय नारियों की महानता उनके दिलों में भी पैठ गई थी। उनके आत्माभिमान, उनके गौरव को वे न रौंद सके। इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्मा जी के उपन्यासों के नारी चरित्र अपूर्व हैं। उनके चित्रण में लेखक ने अपनी अद्भुत क्षमता का परिचय दिया है।

पुरुष पात्रों में भी वह गति नहीं है जो इन उपन्यासों के नारी चरित्रों में है। इन उपन्यासों की नारियों ने यह दिखा दिया है कि भारत की नारी कितनी गौरवमयी, कितनी साहसी और कितनी आत्माभिमानिनी होती है। अत्याचारों का सक्रिय प्रतिरोध करने में वह किसी से पीछे नहीं है। धर्म और समाज की रूढ़िगत मान्यताएँ उसे अधिक दिनों तक अपने शिकंजे में जकड़े नहीं रख सकतीं! उसमें उठ खड़े होने की क्षमता है और जब वह उठेगी तब समाज और धर्म की सड़ी गली मान्यताएँ उसके पैरों के नीचे दिखाई देंगी।

अपने उपन्यासों में कहीं २ वर्मा जी ने चरित्रों का तुलनात्मक विश्लेषण भी किया है। चरित्र चित्रण की दृष्टि से इसका भी कम महत्व नहीं है। 'मृगनयनी' में तो मृगनयनी और लाखी से संबन्धित इस प्रकार के कई छोटे २ प्रसंग आये हैं, अन्य उपन्यासों में भी दो पात्रों को लेकर उन्होंने उनकी विवेचना की है। 'कचनार' का एक उदाहरण देखिये—

"दुलैया जू का स्वर सारंगी सा मीठा है कचनार का कण्ठ मीठा होते हुए भी चिनौती सा देता हुआ। दुलैया जू कमल है, कचनार कंटीला गुलाब। जिस समय दुलैया जू को हल्दी लगाई गई मुखड़ा सूरजमुखी सा लगता था। उनकी आंखों में मद था, कचनार की आँखें ओले सी सफेद और ठण्डी। उनकी मुसकान में ओठों पर चांदनी सी खिल जाती है, कचनार की मुसकान में ओठ व्यंग्य सा पैदा करते हैं। दुलैया जू की एक गति; एक मरोड़ न जाने कितनी गुदगुदी पैदा कर देती है। कचनार जब चलती है, ऐसा जान पड़ता है किसी मठ की योगिन है। बाल दोनों के बिल्कुल काले और रेशम जैसे चिकने हैं, दोनों से कनक की किरणें फूटती हैं। दोनों के शरीर में सम्मोहन जादू भरा सा है। दोनों बहुत सलोनी हैं। दुलैया जू को देखते और बातें करते कभी जी नहीं अघाता। अत्यन्त सलोनी हैं। घूँघट उघाड़ते ही ऐसा लगता है जैसे केसर बिखेर दी हो। कचनार को देखने पर ऐसा जान पड़ता है जैसे चौक पूर दिया हो।"

उपर्युक्त उदाहरण से कलावती और कचनार दोनों की चारित्रिक और स्वभावगत विशेषताओं का अनुमान लग जाता है। कचनार की दृढ़ता ही उसे मानसिंह का लक्ष्य बनने से रोक देती है, कलावती की सरलता ही उसे मानसिंह के आकर्षण में बांध देती है।

'गढ़कुण्डार' और 'प्रेम की भेंट' तथा 'अचल मेरा कोई' में भी इस प्रकार के उदाहरण हैं।

कुछ लोगों ने वर्मा जी के उपन्यासों के चरित्रों को आदर्श और दुष्ट इन

कोटियों में भी विभाजित किया है पर यह तो प्रत्येक उपन्यास के चरित्रों के विषय में सत्य है। सबमें दो प्रकार के पात्र होते हैं। एक, जो उपन्यासकार की विचारधाराओं और मान्यताओं के अनुकूल होते हैं और इसके कारण उसकी सहानुभूति भी उनके साथ होती है, दूसरे वे जो उपन्यासकार की मान्यताओं के प्रतिकूल उपन्यास की कथा वस्तु में अच्छे पात्रों की जड़ें खोदते हैं, उनके सामने बाधाएँ बनकर उपस्थित होते हैं और अपने किये के अनुसार फल भोगते हैं। वस्तुतः उपन्यासों क्या, किसी भी कथा में विरोधी विचारधाराओं, विरोधी आदर्शों एवं विरोधी भावनाओं वाले पात्रों का होना आवश्यक है अन्यथा कथा में गति ही न रह जाय! कथा के सब पात्र आदर्श ही हों तो कथा में आकर्षण काहे का? अथवा कथा में सभी चरित्र दुष्ट ही हैं तब भी कथा नीरस होगी! अतएव हम इन कोटियों में पात्रों का वर्गीकरण करना उचित नहीं समझते! इन्हीं दो प्रकार के पात्रों को साथ २ रख कर ही उपन्यासकार अपने ध्येय की पूर्ति करता है। यदि कालिमा संसार में हो ही नहीं तो सफेदी का क्या मूल्य? बुरा न हो तो अच्छे की कसौटी क्या? उपन्यासकार इसी लिये दो प्रकार के विरोधी विचारधारा और क्रिया कलाप वाले पात्रों को रख कर चरित्रों का चित्रण करता है। इससे अधम पात्रों की अधमताएँ स्पष्ट होती चलती हैं और अच्छे पात्रों की विशेषताएँ भी उनकी तुलना में उभर उठती हैं।

'मृगनयनी' में सुमन मोहिनी भी मानसिंह की रानी है और मृगनयनी भी! दोनों के क्रिया कलाप एक दूसरे के चरित्र को स्पष्ट करते हैं। सुमन मोहिनी मृगनयनी की राह में भांति २ के रोड़े अटकाती है, उसके प्राण तक लेने का प्रयत्न करती है पर मृगनयनी उसकी सारी नीचताओं को सहन करती जाती है। इससे जहाँ एक ओर मृगनयनी का चरित्र निखरता है वहाँ सुमनमोहिनी का और भी गिर जाता है। मानसिंह और राजसिंह के बारे में भी यही बात कही जा सकती है। यही कारण है कि हमारी दृष्टि में चरित्रों को इस प्रकार की कोटियों में विभाजित करना समीचीन नहीं। इस प्रकार के चरित्रों की सत्ता प्रत्येक कथा में पाई जाती है। उपन्यासकार उपन्यास रचना के समय अपने मस्तिष्क में ही कतिपय धारणाएँ और पात्रों के बारे में कतिपय निष्कर्ष निकाल लेता है और उन्ही के अनुसार वह चरित्रों का चित्रण भी करता है। आदर्श और दुष्ट पात्र भी इसी से उत्पन्न होते जाते हैं।

वर्मा जी के सारे उपन्यासों में उनकी ये ही विचार धाराएँ और निष्कर्ष कार्य करते हैं। उनके उपन्यासों के सारे चरित्रों को एक साथ रखने से यह स्पष्ट हो जायगा कि उनमें एक समानता है। प्रत्येक उपन्यास में लेखक को चरित्रों के विषय में विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ा! कुछ हेरफेर के साथ सभी चरित्रों की सत्ता प्रत्येक उपन्यास

में विद्यमान हैं। यह बात जैसा कि हम देख चुके हैं उनके उपन्यास के नारी चरित्रों में विशेष कर नायिकाओं में भली भाँति लागू होती है। तारा, रामा, कुमुद, पूना, सरस्वती, कचनार, मृगनयनी, लाखी सभी में अनेक ऐसी बातें हैं जो समान हैं। जो कुछ भिन्नता है वह इसलिए कि वे जिस कथावस्तु में चित्रित की गई हैं वह अन्य उपन्यासों की कथावस्तु से कुछ भिन्न है। वैसे उनमें एक समानता है, जो कि स्पष्ट ही देख पड़ती है।

पुरुष पात्रों में यह समानता उतनी नहीं है कारण पुरुष पात्रों विशेष कर नायकों के चरित्रों में स्त्री पात्रों से अधिक भिन्नता है। उनमें भी बहुत सी बातें समान हैं पर यह तो स्वाभाविक है ही! उपन्यास का जो भी मुख्य पात्र होगा और जिसे उसकी सहानुभूति मिली होगी उसमें कुछ बातों का समान होना स्वाभाविक ही है। दिवाकर, कुञ्जरसिंह, अजित, देवीसिंह, अटल आदि पात्र ऐसे ही हैं जिनके साथ उपन्यासकार की सहानुभूति है और जो तथा कथित 'आदर्श' पात्रों की कोटि के हैं। इस कारण उनकी चारित्रिक विशेषताओं की समानता हमारा ध्यान विशेष रूप से नहीं आकर्षित करती! इसी प्रकार दुष्ट कहे जाने वाले पात्रों में भी एक समानता देख पड़ेगी! इसका कारण भी उपन्यासकार की निजी विचारधाराएँ और निष्कर्ष ही हैं।

वर्मा जी के उपन्यासों में किये गये चरित्र चित्रण का इतना विवेचन कर चुकने के पश्चात् हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यद्यपि उनके उपन्यासों में घटनाओं की प्रधानता है परन्तु फिर भी उनमें चरित्र चित्रण का भी अत्यन्त सुन्दर रूप देख पड़ता है। उनके उपन्यासों की यही विशेषता उन्हें सामान्य घटना प्रधान उपन्यासों से भिन्न कर देती है। उपन्यासकार ने विविध साधनों से चरित्रों का चित्रण किया है और कुछ ऐसे चरित्रों की सृष्टि की है जो अमर हैं। वर्मा जी प्रतिभावान कलाकार हैं और उनकी प्रतिभा की साया चरित्रों का चित्रण करते समय भी ओझल नहीं हो पाई! उनके उपन्यासों में चरित्र चित्रण का जो भी रूप हमें देख पड़ता है वह आज के तथाकथित बड़े २ उपन्यासकारों के उपन्यासों के चरित्र चित्रण से कहीं सुन्दर है जो यथार्थवाद और प्रगतिवाद के नाम पर नायिका भेद वाली परम्पराओं को पुनः जीवित कर रहे हैं। आलोचक उनके चरित्रों के चित्रण को, मनोवैज्ञानिक, यथार्थवादी आदि न जाने कितने विशेषणों से युक्त करके उनका डंका पीट रहे हैं परन्तु वर्मा जी के ये चरित्र जितने सुन्दर, जितने अपूर्व, जितने मनोवैज्ञानिक और जितने यथार्थ हैं उनके सामने उनकी मनोवैज्ञानिकता और यथार्थवादिता दम तोड़ती हुई नजर आती है।

हाँ, वर्मा जी के चरित्र चित्रण की विशेषताओं के साथ २ हम उसकी कमजोरियों का दिग्दर्शन करना भी न भूलेंगे। उपन्यासों का अलग २ विवेचन करते समय हम

वर्मा जी की चरित्र चित्रण सम्बन्धी दुर्बलताओं पर भी प्रकाश डालते गये हैं, विस्तार भय से हम यहाँ उनकी सूची नहीं देना चाहते ! हाँ, कुछ मोटी २ बातें हम अवश्य कहेंगे। वर्मा जी के चरित्रों में बहुत से चरित्रों का चित्रण अस्पष्ट है, उपन्यासकार उन्हें उभार नहीं पाया ! कला का चरित्र ऐसा ही चरित्र है। 'अचल मेरा कोई' में पंचम और गिरधारी के चरित्र भी ऐसे ही हैं। पंचम और गिरधारी से सम्बन्धित सारी घटना को ही हम व्यर्थ समझते हैं। उसकी कोई आवश्यकता न थी। कुछ चरित्रों को उभारने में विशेष पक्षपात से काम लिया,गया है। उजियारी का चरित्र चित्रित करते समय वर्मा जी की प्रगतिशील विचारधारा कदाचित सो गई थी इसी कारण उन्होंने उसे एक Villain (खलनायिका) के रूप में उपस्थित किया है। 'विराटा की पद्मिनी' में इसी प्रकार कुञ्जर के चरित्र को भी वे अच्छी तरह नहीं उभार पाये ! अन्य उपन्यासों के चरित्रों में भी बहुतों के विषय में यही बात कही जा सकती है। जैसा हमने कहा, उपन्यासों का अलग २ विवेचन करते समय हम यह सब कह चुके हैं।

कहीं २ मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि का अभाव भी वर्मा जी में पाया जाता है। जहाँ कुछ चरित्र मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सुन्दर बन पड़े हैं वहाँ कुछ को उसका आधार उपन्यासकार नहीं दे पाया। कुछ चरित्रों को तो उपन्यासकार ने स्वयं ही ढकेल ढकेल कर आगे बढ़ाया है और उनके ऊपर हावी रहा है यद्यपि उनमें स्वयं आगे बढ़ने की शक्ति थी ! यह दोष अखरने वाला है। अटल का चरित्र ऐसा ही चरित्र है। उपन्यासकार उसे जब चाहे जैसी परिस्थितियों में डालता चला गया है। उसके चरित्र का जो विकास होना चाहिये था उसे वह नहीं दिखा सका।

और भी दुर्बलताएँ हैं जिनका वर्णन करना हम यहाँ पर अभीष्ट नहीं समझते कारण उन पर पहले ही विचार किया जा चुका है।

इतना अवश्य कहा जा सकता है कि घटनाओं की बहुलता होने पर भी वर्मा जी के उपन्यासों में चरित्र चित्रण भी अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है। इसका सारा श्रेय उपन्यासकार की प्रतिभा को ही है।

इ:—

भाषा शैली—

वर्मा जी सर्व प्रथम एक कहानीकार हैं तत्पश्चात् और कुछ। उनका प्रमुख ध्येय केवल अपनी कहानी को सरलता पूर्वक, सीधे सादे ढंग से कहते चलना है। भाषा, भाव, चरित्र चित्रण आदि के चक्कर में न पड़कर वे सीधे अपनी कहानी कहना आरम्भ कर देते हैं। उनकी कहानी अबाध गति से आगे की ओर अग्रसर होती रहती है, विभिन्न पात्रों की उत्पत्ति भी साथ में ही होती चलती है एवं उनके चरित्र के उत्थान, पतन की रेखाएँ भी स्पष्ट होती जाती हैं। कहानी कहने में उन्हें इतना अवकाश ही नहीं रहता कि भाषा को अलंकृत करें अथवा पात्रों के चरित्रों की विशेषताओं, उनकी सबलताओं और दुर्बलताओं की गणना करायें। उनका कहानी कहने का यह सीधा सादा ढंग ही उपन्यास में अपूर्वता ला देता है। भाषा आदि का स्वरूप तो बिना उनके परिश्रम किये ही निर्मित होता चलता है।

यही कारण है कि उनके उपन्यासों में प्रयुक्त भाषा सीधी, सरल और सरस है। उसे पढ़ते ही हम यह अनुमान लगा लेते हैं कि वह स्वतः ही उपन्यासकार की लेखनी से प्रसूत हुई है, उपन्यासकार ने उसे सजाने संवारने का कोई प्रयत्न नहीं किया है। जहाँ इस प्रकार की भाषा से उनके उपन्यासों का सौन्दर्य बढ़ा है वहाँ भावों के उपयुक्त व्यक्तीकरण में शिथिलता का समावेश भी हुआ है, इसे भी हम अस्वीकार नहीं कर सकते। उनके प्रारम्भिक उपन्यासों में तो इस सीधी सादी भाषा ने सौन्दर्य के स्थान पर शिथिलता की ही सृष्टि की है। बाद के उपन्यासों में इतनी शिथिलता अवश्य नहीं दृष्टिगोचर होती पर इससे यदि यह मान लिया जाय कि उपन्यासकार ने बाद को उसे सजाने सँवारने में परिश्रम किया है तो भी हम इसे नहीं मानते। बाद को उसमें जो भी सुन्दरता देख पड़ी है वह भी अप्रयत्न साध्य ही है। समय के परिवर्तन ने ही भाषा में भी परिवर्तन उपस्थित किये हैं, उपन्यासकार उसकी ओर से बाद में भी वैसा ही उदासीन रहा है जैसा वह आरम्भ में था। कथा के आकर्षण ने भाषा की शिथिलता को बहुत ढक लिया है, यही कारण है कि पाठक को भाषा की शिथिलता ने कम आकृष्ट किया है।

हाँ, इस शिथिलता के बावजूद भी उसमें सरलता और सीधेपन का एक आकर्षण है, यह हम पहले ही कह चुके हैं। कहीं कथा के साथ २ उपन्यासकार भाषा का भी

उतना ही धनी होता तो हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि उसके उपन्यासों की भव्यता आज द्विगुणित होकर साहित्य में छा गई होती। और भाषा का सरल, सीधा और सरस रूप उपन्यासों से ओझल नहीं हुआ है, इस कारण वर्मा जी के उपन्यास आज भी हमारे लिये अपूर्व-रमणीयता की सृष्टि करते हैं। संगम, कभी न कभी, प्रत्यागत आदि उपन्यासों में भाषा अधिक शिथिल है जब कि, विराटा की पद्मिनी, गढ़ कुण्डार, झाँसी की रानी, लगन, अचल मेरा कोई, टूटे काँटे, मृगनयनी आदि में भाषा का प्रौढ़ स्वरूप देख पड़ता है यद्यपि भाषा की प्रौढ़ता के आज के मानदण्डों के अनुसार इन उपन्यासों की भाषा भी प्रौढ़ नहीं है। हमें प्रौढ़ता के ये आज के मानदण्ड ग्राह्य नहीं है इस कारण हमें इन उपन्यासों की भाषा में कुछ स्थलों को छोड़कर शिथिलता नहीं देख पड़ती। हम जनप्रिय, सर्व साधारण को बोधगम्य, स्वतः प्रवाहमयी भाषा के पक्षपाती हैं और वर्मा जी के इन उपन्यासों में भाषा का यह स्वरूप सुरक्षित है।

वर्मा जी की भाषा का स्वरूप तीन प्रकार के शब्दों से निर्मित हुआ है! उनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्द भी हैं, तद्भव शब्दों का भी उसमें प्राचुर्य है एवं स्थानीय शब्दों की भी उसमें सत्ता है। इन तीनों के मेल ने उनकी भाषा को रचा है जो सुन्दर ही कही जा सकती है। बुन्देल खण्डीय वातावरण के आग्रह के कारण भाषा में बुन्देल खण्डीय शब्दों का प्राचुर्य है जिससे स्वाभाविकता की अपूर्व सृष्टि हुई है। इन बुन्देल खण्डीय शब्दों के विषय में हम आगे विस्तार से कहेंगे।

पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग वर्मा जी की एक विशेषता है। इसके कारण स्वाभाविकता को तो आश्रय मिला ही है, भाषा में गति भी आ गई है। वर्मा जी के हिन्दू पात्र संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्दों से युक्त भाषा का व्यवहार करते हैं, जबकि ग्रामीण पात्रों की बोली में स्थानीय और ग्रामीण शब्दों का प्राचुर्य हुआ है। मुसलमान पात्रों की भाषा ने उर्दू और फारसी के शब्दों को सहेजा है जो नितान्त स्वाभाविक है! भाषा में एक अजीब चलतापन भी इसी कारण आ गया है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—जब निशा अचल से कहती है कि उसे ब्याह कर उसने त्याग किया है तब अचल उसे जो उत्तर देता है, उस समय उसकी भाषा में संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्दों का ही प्राचुर्य है—

"असली त्याग तुम्हारा है। हमारा समाज आज भी पिछड़ा हुआ है। उसी समाज के लाज संकोच में विधवाएँ अपने हाड़ माँस को गला गला कर और जला जला कर जीवन को बितातीं हैं। पाखण्डियों और धूर्तों की पूजा होती है पर इन यातना ग्रस्त तपस्विनियों को कोई पूछता है? पहले मैं सोचता था मैंने वास्तव में त्याग किया है परन्तु तुमको पाने के कुछ ही दिन बाद में समझ में आ गया कि त्याग मैंने नहीं

तुमने किया है। अनेक स्त्री पुरुष तुम्हारी कितनी उपेक्षा न करते होंगे? वैसे ही अपने को चिता में जन्म भर जलाती रहती तो ये स्त्री पुरुष कुछ मौखिक आदर दे देते परन्तु उनकी निः शब्द ग्लानि को कितनी विधवाएँ सह सकती हैं? इस पर भी कहती हो कि मैंने त्याग किया?

'गढ़कुण्डार' के अग्निदत्त का यह कथन भी देखिये—

"मैं वही पापी, राक्षस हूं, सर्वद्रोही, सर्वहन्ता। मुझे मारो। भिक्षा माँगता हूं। मेरे हृदय में इतनी शक्ति नहीं है कि आत्मघात कर सकूँ?"

ग्रामीण पात्रों की भाषा का भी स्वरूप देखिये—'कुण्डली चक्र' की पूना का निम्नांकित कथन—

"मत बुलाओ, कोई अटक नहीं है, दाह के लिए गाँव भर है। मास्टर साहब हैं ही।"

पूना जब पहली बार अजित को देखती है तब कहती है—'छावनी से रासधारी आये हैं। अथए कैं रास हुईहै।"

और भी—मां! मैं जाती हूं। मेरे किये न किये पाप क्षमा हों। यदि हृदय में तुम्हारी और अपने देव के सिवा किसी और की मूर्ति हो, तो तुम साखी हो।"

जो पात्र ठेठ देहाती हैं वे तो बुन्देलखण्डी में ही बातचीत करते हैं—'गढ़कुण्डार' के अर्जुन कुम्हार की भाषा का एक उदाहरण देखिये—"अर्जुन कों बान खाके कोऊ राम को नांव लो नईं लै पाउत।" विराटा की पद्मिनी में एक किसान कहता है—

"ऐसी का जल्दी परी दाऊजी। जो कछू लटौ दूबरा, कनूका हमाए गांठ में है, सो नजर है। हमसे ऐसी का बिगरी कि अबई जावो हो जैय?" !!

मुसलमान पात्र अधिकतर उर्दू फारसी मिश्रित भाषा का व्यवहार करते हैं—

'मृगनयनी' के गियासुद्दीन खिलजी की भाषा का नमूना देखिये—

गयास ने सरूर के लहजे में बतलाया—मोर खूबसूरत चिड़िया है सो आप लोगों में से मोर कोई भी नहीं। उसको देखते ही आप लोगों को अपनी कमी डस डस लेगी। घोड़े का सिर्फ सिर दिखलाया गया है, इसलिए आपको याद आता रहेगा कि आप आधे घोड़े हैं और आधे कुछ और। बन्दर की तसवीर पेश करने में मसलहत की हद कर दी उन कारीगरों ने। आप सब असल में बन्दर हैं—बिल्कुल बन्दर। खिलाओ तो चपड़ चूं चूं और न खिलाओ तो भी वही करे। न भले को ठिकाने से रहने दे और न बुरे को।"

'झांसी की रानी' से भी एक दो उदाहरण देखिये—पीर अली की मोतीबाई से निम्नांकित बात चीत में मुसलमान पात्रों द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली भाषा का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है—

मैं तो फर्ज और शौक दोनों के लिए मौजूद रहूंगा। उस्ताद मुगल खां के धुरपद से जब जी भर जाये तब आप का ख्याल और नाटक के गीत ही मौज पैदा कर सकते हैं। सच पूछिये तो न दिन भर का समय हो और न मुगल खां साहब को सुना जा सके।'

मोतीबाई नवाब से आगे चल कर कहती है—"हुजूर–मोतीबाई बोली, आदत पड़ गई थी। अब भी बिल्कुल नहीं छूटी है। गुजर के लिए पर्दे को कम कर दिया है, लेकिन बिल्कुल तो न छोड़ सकूँगी। बहुत लोगों ने अंग्रेज सरकार की नौकरी कर ली है। मुझे तो कोई नौकरी मिल नहीं सकती, इसलिए गाने बजाने से पेट भरना तै कर लिया है। आप सरीखे कुछ रईसों को खुश करना ही मेरी गुजर के लिए काफी होगा।"

गुलमुहम्मद पठान की भाषा भी उसी के वर्ग के लोगों की सी है—'बस. बाई! अब बन्दूक या कोई हथियार नहीं छुयेगा। अम खुदा पाक की याद में बाकी जिन्दगी खतम करेगा।" एक अंग्रेज सवार उससे रानी के मजार के विषय में पूछता है—यह किसका मजार है साईं साहब! गुलमुहम्मद उत्तर देता है–अमारे पीर का। वो बौत बड़ा बली था।"

इस प्रकार पात्रानुकूल भाषा के प्रयोग के न जाने कितने उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनसे स्वाभाविकता की वृद्धि हुई है।

अलंकृत भाषा के भी उदाहरण वर्मा जी के उपन्यासों में पर्याप्त हैं। ऐसे स्थल पर उनकी शैली भावात्मक हो उठी है। दो एक उदाहरण कथन को स्पष्ट कर देंगे।

'अचल मेरा कोई' में कुन्ती नाच रही है। उस समय वर्मा जी की भाषा पर्याप्त अलंकृत हो उठी है—"झीनी चादर के भाव को व्यक्त करने के लिये कुन्ती ने अपनी साड़ी का एक छोर, जरा सा, बहुत थोड़ा सा, उंगलियों को कमल का आकार देकर पकड़ा और ताना। दूसरे हाथ से उसने झीनी बतलाने के लिए वृत्त बनाये। वक्ष स्थल उभर उठा। फिर ताल के ठमक ने उसकी सारी देह को लहरा दिया। वह लहर सिर तक जाकर लौटी और वक्ष स्थल पर जाकर सिमटी और हिल गई।······कुन्ती ने नाचे हुए नाच को दुहराया ·····। वही लहर, देहलता उसी तरह हिली कमल के पत्तों पर जैसे कमल लहरा जाय उसी प्रकार उसके उभरे हुए अंग लहराये!"

पूना चकई की पहाड़ियों से होती हुई गाँव की ओर जा रही है। भाषा का स्वरूप देखिये—"पूना के कोमल गौर पद सिरे पर महावर से रँगे थे। जिस समय कंकड़ों पर निहित होते थे, ऐसा जान पड़ता था मानों गुलाब के फूल बिखेर दिये गये हों। और दिवाकर की रपटती हुई किरणों की आभा उनसे आलोकित सी हो उठती

थी। जब पूना गाँव में पहुँची स्त्रियाँ घूँघट काढ़े किवाड़ों के पास से अपनी प्रच्छन्न मुस्कराहट द्वारा आशीर्वाद सी बरसा रही थीं। इधर उधर लाठी लिए गाँव वाले उस महिमा की रक्षा के लिए सन्नद्ध से जान पड़ते थे। परन्तु पूना लाज में डूबी सी जा रही थी। मुख अरुण और पसीने में लतपत। चमकती हुई धूप में मुंह पर स्वेद विन्दु मुक्तामणि से जान पड़ते थे।"

'गढ़ कुण्डार' में भी एक स्थान पर वर्मा जी की भाषा अत्यधिक भावात्मक हो उठी है। दिवाकर बंदी है। तारा का स्मरण उसे अब भी नहीं भूलता। उसे नींद आजाती है, वह स्वप्न देखता है—"दिवाकर ने स्वप्न देखा कि वह भोजन कर रहा है। तारा लम्बा कछोटा मारे परोसने को आई। एक बार परोसा और फिर परोसने लगी! कहा—अब बस करो। न मानी। हंस कर कहा, तारा, तंग मत करो। चली गई। देर तक न आई। भोजन सामग्री समाप्त होगई। और माँगी। कोई न आया। चिल्ला कर मांगी। तब आई तारा। उदास थी। बोली—तुम तो रुष्ट होगये। तारा से रुष्ट! असंभव!! किसने तुमसे कहा? तारा मुस्कराई। कहा—तुम रुष्ट होगई थीं या मैं? अच्छा, अब भूख नहीं है, पास बैठ जाओ। तुमको देखता रहूंगा। आजन्म, जन्म जन्मान्तर! अनन्त काल तक। उसकी आंखों में कृतज्ञता की तरलता लक्ष हुई। कृतज्ञ नेत्र! सुन्दर, मनोहर और हृदय हारी। किसने बनाये? क्यों बनाये? आत्मा के गवाक्ष! पवित्रता के आकाश! प्रकाश के पुञ्ज। फिर उसके चारो ओर आभा का एक मण्डल सा खिंच गया। जैसे गढ़ के चारो ओर दीवार सी खिंच गई हो। दिवाकर ने प्रभामण्डलावृत्त तारा की ओर अपने हाथ फैलाये! फैलाता गया। तारा मुस्कराती रही। पृथ्वी ने क्षितिज की सहायता से नभ का स्पर्श किया। मेघ आया, बूंद गिरी। भूमि का छोटा सा पर्वत बूँद के सहारे आकाश गंगा की निर्मल धारा को छू गया। प्रकति और पुरुष, पुष्प और सुगन्ध, वर्ण और सुवर्ण, नेत्र और ज्योति, आशा और पुरुषार्थ, स्नेह और मृदुलता, मोह और प्रीति, देह नाशवान है, रूपान्तरमयी, परन्तु आत्मा अमर। प्रकाश वृत्त बढ़ा,। ज्योतिर्मयी तारा और अन्धकाराच्छादित दिवाकर। परन्तु प्रकाश मण्डल और बढ़ा, अन्धकार कम हुआ, उसका अन्त हुआ। तारा की ज्योति में दिवाकर तारामय होगया। जैसे भास्कर और ऊषा, रवि और रश्मि, दोनों एकाकार, एक आत्मा का दूसरे में समावेश। आत्मा का लयकार। अच्छिन्न,अभिन्न,अखण्ड। इतना प्रकाश इतनी दीप्ति! दिवाकर ने देखा—प्रकाश तापमय है। प्रकाश के साथ ताप बढ़ा। बढ़ता चला गया। शीतल तारा और उत्तप्त प्रकाश। प्रचण्ड प्रकाश और प्रचण्ड ताप! दिवाकर की देह जलने लगी। आँख खुल गई। माथे पर और गले पर बहुत पसीना आगया था!"

इसी प्रकार के कतिपय स्थलों को छोड़कर अन्यत्र भाषा का स्वरूप एकदम सरल, सीधा और चलता हुआ है। उसके लिए उदाहरण देने की कोई आवश्यकता नहीं!

उपमाओं आदि की सृष्टि के लिए भी वर्मा जी पर्याप्त प्रसिद्ध हैं। आप कहीं २ इतनी सुन्दर उपमाएँ दे जाते हैं कि पढ़ते ही बनता है। उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं आदि का सौन्दर्य अपना इच्छित प्रभाव उत्पन्न करता है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

"कुन्ती ने नाचे हुए नाच को दुहराया। वही लहर, देहलता उसी तरह हिली कमल के पत्तों पर जैसे कमल लहरा जाये, उसी प्रकार उसके उभरे हुये अंग लहराये !!" (अचल मेरा कोई)

"तारा अपने प्रयत्न में फलीभूत होकर कुछ मुस्कराई और चली गई जैसे सुन्दर मयूरी एक डाल से दूसरी डाल पर चली जाय।" (गढ़ कुण्डार)

"तारा खूब जोर से हंस कर भीतर भाग गई। पैरों की पैंजनी से मृदुल झंकार हुई। ऐसे भागी जैसे बौरे हुए आम के पेड़ पर से बोलकर कोकिला धीरे से कहीं उड़ जाय !! (गढ़ कुण्डार)

"कुमुद ने अंगूठी वाले हाथ में गेंदे का फूल ले लिया। हाथ, सोने, हीरे और गेंदे के फूल के रंगों में आधे क्षण के लिये स्पर्धा सी हो उठी !" (विराटा की पद्मिनी) !!

"पहाड़ों की कन्दराओं में घुसे हुए, उनको आच्छादित किये हुये बादलों में होकर वह वकुलावलि छिपती हुई सी मालूम पड़ी और फिर तितर बितर हुई जैसे हिलती हुई सांवली सलोनी चादर में टंके हुये सितारे।" (झाँसी की रानी) !!

"रानी फिर हंसी। बगुलों की सफेदी से रानी के दाँतों ने तुरन्त होड़ लगा दी।" (झाँसी की रानी) !!

"अग्निदत्त ऐसे स्वर में बोला जैसा फूटे घड़े से निकलता है।" (गढ़ कुण्डार) !!

"गोरे सांवले शरीर पर एकाध घाव से रक्त रेखाओं में बहकर फैल गया था। छिटकी हुई चाँदनी में उसका चमकता हुआ खड्ग और दमकता हुआ लोहू लुहान नंगा शरीर ऐसा मालूम पड़ा जैसे कोई तारा पृथ्वी पर टूट कर गिरा हो।" (गढ़ कुण्डार) !!

"लाखी के रूखे ओंठों पर मुस्कान आई जैसे गरमियों के सूखे नाले में पहली छिछली वर्षा की पतली धार आई हो।" (मृगनयनी) !!

ये उपमाएँ इतनी उपयुक्त और सुन्दर हैं कि उपन्यासकार की कल्पना की भव्यता का सहज अनुमान हो जाता है!

कहीं २ उपमाओं की झड़ी लगा देने से अवश्य सौन्दर्य के स्थान पर अस्वाभाविकता की सृष्टि हुई है। हाँ, अलग २ देखने पर उन उपमाओं की उपयुक्तता भी वैसी ही है जैसी उनकी जिनका उदाहरण हम दे चुके हैं। वर्मा जी की कल्पना की

सराहना यहाँ भी हमें करनी पड़ती है। क्या ही अच्छा होता यदि इन उपमाओं को वे एक ही स्थान पर एक साथ न प्रयुक्त करते! 'प्रेम की भेंट' में धीरज सरस्वती को देखता है। उसे वह ऐसी मालूम पड़ती है "जैसे नन्दन कानन की अधिष्ठात्री हो। मानो अर्ध विकसित कुसुम की अक्षय सुगंधि हो। जैसे प्रभात कालीन नक्षत्र का चिर प्रकाश हो। जैसे स्वर्गीय संगीत के मनो मुग्धकारी स्वरों ने नील आकाश में दूसरी चन्द्रिका खड़ी कर दी हो। जैसे अनन्त प्रकाश पुञ्ज से अखण्ड धारा बह निकली हो!!"

उपमाओं की झड़ी ने वर्णन का सारा सौन्दर्य नष्ट कर दिया है। इसी प्रकार मृगनयनी में भी महमूद बघर्रा से संबन्धित उपमाएँ जहाँ अलग २ लेने पर अतीव सुन्दर हैं वहाँ एक ही स्थान पर उनके जमघट ने अस्वाभाविकता उत्पन्न कर दी है।

"बघर्रा ने खाना शुरू किया......क्या है यह? बघर्रा ने पूछा जैसे कोई पेड़ टूट कर गिरा हो।"

लाओ इधर, बघर्रा ने पाव भर का एक ग्रास मुंह में डालते हुए मिठास के साथ कहा—जैसे पेड़ की डाल टूट पड़ी हो।"

.........बहुत खूब! बघर्रा के मुंह से निकला, जैसे किसी पहाड़ पर से चट्टान टूट कर लुढ़की हो।"

पिल्ली बघर्रा के सम्मुख आती है। बघर्रा उससे कुछ कहता है।

"पिल्ली के कानों को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे किसी बड़े हौज में भैंसा कूदा हो। बारीक स्वर में बोली—सरकार, माँडू के पास के एक जंगल के रहने वाले हैं हम लोग। "कहाँ जा रहे हो तुम? जैसे कोई चट्टान फटी हो, सरकार मेवाड़ की तरफ! क्यों? जैसे लोहे के दो गोले आपस में टकरा गये हों।"

× × × ×

"अच्छा है! मरेगा! और आगे? बघर्रा बोला जैसे जमीन के नीचे से दरार में होकर भूकम्प बोला हो।"

"ह! ह!! ह!!! ह!!!! बघर्रा हंसा। दरबारियों को वह हंसी ऐसी जान पड़ी जैसे धरती फट पड़ी हो।"

"पेट में हाथ फेर कर बघर्रा ने एक लम्बी डकार ली जैसे बरसात में कोई कच्चा मकान गिरा हो। बघर्रा ने फिर डकार ली जैसे कोई बड़ी धोंकनी फट कर बोल गई हो।"

बघर्रा से संबन्धित इस प्रकार की और भी उपमाएँ हैं। इनसे बघर्रा की भीषणता का तो अनुमान होता है पर इनका जमघट जैसा कि हम कह चुके पूर्ण अस्वाभाविक है!!

बुन्देलखण्डी बोली ने उपन्यासों में पर्याप्त सजीवता उत्पन्न की है। वर्मा जी के अधिकांश उपन्यास बुन्देलखण्ड से ही सम्बन्धित हैं और प्रत्येक में कोई न कोई पात्र ऐसा अवश्य है जो पूर्णतया बुन्देलखण्डी बोली ही बोलता है। उस समय, उस पात्र के मुंह से बुन्देलखण्डी बोली पर्याप्त स्वाभाविक, सजीव व सुन्दर प्रतीत होती है। बुन्देलखण्डी शब्दों का प्राचुर्य तो वर्मा जी की भाषा में है ही! 'मृगनयनी' उपन्यास में तो बाद को 'परिशिष्ट' जोड़ कर बुन्देलखण्डी शब्दों के अर्थ भी दिये गये हैं। डा० रामविलास शर्मा इस सम्बन्ध में लिखते हैं—"बुन्देलखण्ड की कहावतें, मुहावरे, लोकगीत आदि वर्मा जी के उपन्यासों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि हैं। उन्होंने अनेक ग्रामीण शब्दों का अपने गद्य में प्रयोग करके भाषा को समृद्ध किया है। सकारना, कदाच, अनखाये, डिड़कार, निहोरा, डाँग, अधपर, हौंका, रौंरा, चेंथरीं, रावलो, गेंवड़े, करमीले आदि शब्दों के प्रयोग की सार्थकता इसमें भी है कि उपन्यास में स्थानीयता का रंग निखर उठता है। पाठक आंखों से प्रेम और वीरता के दृश्य ही नहीं देखता वहाँ की बोली बानी भी सुनने लगता है। प्रेमचन्द की तरह वर्मा जी के पात्र भी खड़ी बोली का ही प्रयोग करते हैं, लेकिन उनकी खड़ी बोली बुन्देलखण्डी के रंग में रंगी होती है। उसे सुनकर ऐसा लगता है कि गाँव के लोग खड़ी बोली बोलेंगे तो ऐसे ही। लेकिन जहाँ वर्मा जी अपने पात्रों को बुन्देलखण्डी में ही बोलने देते हैं वहाँ के संवादों की सरसता का क्या कहना..............। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई में झलकारी के दो बोल अमर हैं। रानी नाम पूछती है—जवाब मिलता है—सरकार, झलकारी दुलैया। इस दुलैया के आगे देव, बिहारी, मतिराम सब हेय हैं। उस शब्द की व्यंजना शक्ति को उनके सवैया घनाक्षरी नहीं पा सकते। और जब झाँसी अंग्रेजों के आधीन हो जाती है तब झलकारी दुलैया बुन्देलखण्ड की जनता का अपार क्षोभ इस वाक्य में उड़ेल देती है—"छाती बर जाय इन अंगरेजन की, गुटक लई झाँसी।"

वास्तव में वर्मा जी की भाषा में बुन्देलखण्डी का जो भी पुट है वह अत्यन्त सुन्दर है। 'झाँसी की रानी' उपन्यास की विवेचना करते समय हम उस स्थल को उद्धृत कर चुके हैं जब हरदी कूं कूं के उत्सव पर रानी झाँसी की सामान्य स्त्रियों के साथ बुन्देलखण्डी बोली में ही बात चीत करती हैं। उस समय उनकी बातचीत में भाषा की जो मधुरता दृष्टिगोचर होती है वह अपूर्व है। पीछे गढ़ कुण्डार के अर्जुन कुम्हार और विराटा की पद्मिनी के एक किसान की बातचीत में हम बुन्देलखण्डी बोली की मधुरता का दिग्दर्शन करा चुके हैं।

पूना के वे दो बोल जो वह अजित को प्रथम बार देख कर कहती है अपनी मधुरता में अद्वितीय हैं—छावनी से रासधारी आये हैं। अथए कैं रास हुई है!!" पूना

की अल्हड़ता के साथ २ बुन्देलखण्डी बोली की सरसता भी इस वाक्य में छलक उठी है! इस प्रकार की बातचीत ग्रामीण पात्रों के मुख से ही कराई गई है इस कारण स्वाभाविकता भी स्थिर रही है।

दो शब्दों को एक साथ प्रयुक्त कर कथन में बल देने की प्रवृत्ति सुन्दरता उत्पन्न करने के स्थान पर खटकने वाली ही सिद्ध हुई है। 'मृगनयनी' से एक दो उदाहरण देखिये—। लाखी और निन्नी शिकार के लिए जंगलों में घुस रही हैं—

"ऊँची २ छातियाँ पत्थरों और करघई के मोटे काँटों से टकरा टकरा जा रही थीं।" "करघई की टेढ़ी मेढ़ी डालें सिर से बंधी हुई ओढ़नी में अटक अटक जा रही थीं।" "लू के झकोरों से भूमि के बारीक कंकड़ और बिछे हुए सूखे पत्ते, उड़ उड़ कर निन्नी के तपे हुये गोरे और लाखी के सांवले गालों पर पड़ पड़ जा रहे थे।"

अन्य उपन्यासों में भी इस प्रकार के अनेक उदाहरण हैं, जिनके उद्धरण देकर हम प्रसंग को विस्तार नहीं देना चाहते! हमारा उद्देश्य केवल वर्मा जी की भाषा सम्बन्धी एक प्रवृत्ति की ओर लक्ष्य करना ही था।

वर्मा जी के उपन्यासों में भाषा सम्बन्धी दोष भी अनेक हैं। सबसे पहला दोष जो इस संबंध में हमारा ध्यान आकर्षित करता है वह है भाषा की कमी के कारण भावों के उपयुक्त व्यक्तीकरण का अभाव! पाठक उनके उपन्यासों को पढ़ते हुये कई स्थानों पर यह अनुभव करता है कि उनके पास भाव हैं पर भाषा की कमी उन भावों का उपयुक्त व्यक्तीकरण नहीं होने देती। जहां ऐसा है, वहाँ वाक्य विन्यास भी शिथिल है। उदाहरण के लिये हम वह स्थल लेते हैं जहां 'मृगनयनी' में वे शिव के ताण्डव की विवेचना करते हैं। वर्णन शैली यहां गम्भीर हो उठी है पर भाषा की अस्तव्यस्तता के कारण वाक्य विन्यास भी अत्यधिक शिथिल हो गया है।

"जैसे सूखे काठ में अग्नि विद्यमान है उसी प्रकार शिव शक्ति जड़ और चेतन में निहित है। शिव अपने ताण्डव नृत्य से उस शक्ति को जड़ और चेतन में स्पंदित और स्फुरित करते हैं। जीवन और आकार प्रकार में शिव की नृत्य लीला प्रकट होती है। विश्व की समूची क्रिया को अनादि शिव का ताण्डव व्यक्त करता है। चार हाथ चारों दिशाओं में अखिल व्यापकता, डमरू नाद और शब्द जिससे विश्व का विकास बना, वरद हस्त रक्षा, अग्नि विश्व व्याप्त शक्ति, चौथा हाथ नृत्य के लिये उठे हुए चरण के प्रति उठे हुए हाथ के शरणदान को प्रकट करने वाले। अर्ध चन्द्र जगते हुये ध्यान केन्द्र की और नाग धारण की स्थिति को बतलाने वाले, सत के साथ संबंध इसी साधना द्वारा संभव! शिव के हिमालय से आने वाली गंगा भारत को समृद्धि और श्रद्धा देने वाली।... आदि २।

'विराटा की पद्मिनी' का एक उदाहरण देखिये। भाषा की अस्तव्यस्तता के कारण वाक्य विन्यास शिथिल है।

"एक आध बार कुन्जर सिंह ने सोचा—स्त्री थी, मनोहर थी, लज्जावती थी, एक बार स्नेहकी दृष्टि से देखा भी था। परन्तु यह भाव थोड़ी देर मन में टिकता था। उसके मानस पटल पर जो चित्र बना था, वह स्पष्ट दृष्टि वाली, अपरिमित शालीनतामय, नेत्रों वाली, कठिनाइयों के सामने अपनी कोमल गोरी भुजा की एक छोटी सी उँगली के संकेत से अनन्त लहरावलि की प्रबलताओं को जगमगाने वाली दुर्गा का था। स्वप्न सच्चा था, अनूठा था, शान्तिदायक था। अथवा कदाचित उत्साह मात्र दान करने वाला। परन्तु 'उस समय के चिन्ताजनक और शून्य से उस काल में उस आलोक की दिव्यता मात्र की स्मृति ही थी।"

कहीं कहीं अंगरेजी के ढंग के वाक्यों के कारण भी शिथिलता उत्पन्न हो गई है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित वाक्यों को देखिये—

"व्यथा थकित अतीत कालीन दिव्य मुख के फीके मंडल की संकुचित मुस्कराहट संहार की एक दुस्सह दुर्घटना है। (कुण्डली चक्र)

"कर्म विधि की कोई अन्तिम कड़ी अनिश्चित और अस्पष्ट भविष्य के धुँधलेपन में उसकी सारी शक्तियों के प्रयोग का आवाहन कर रही थी।" (कुण्डली चक्र)

व्याकरण संबंधी अशुद्धियाँ भी भाषा में यत्र तत्र देख पड़ती हैं। कुण्डली चक्र में ही एक स्थान पर वे लिखते हैं—"हरित भरित प्रकाशमय फूलों से लदा हुआ विस्तृत दूर्वादल कुन्ज।" यहाँ 'हरित भरित' प्रयोग अशुद्ध है। इसके स्थान पर 'हरे भरे' का प्रयोग होना चाहिये। 'सुपात्र लड़की,' 'वयस्क पात्र लड़की' आदि प्रयोग भी व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध हैं। एक आध स्थलों पर लिंग दोष भी पाया जाता है। उदाहरण के लिये 'विराटा की पद्मिनी' में उन्होंने लिखा है—"सकरी रास्ता बना ली।" रास्ता शब्द पुलिंग है, उसका स्त्रीलिंग में प्रयोग अशुद्ध है। 'मृगनयनी' में आखिर में जब मानसिंह मृगनयनी से पूछते हैं कि अब किस बात की कमी रह गई, तब वह उत्तर देती है—"देश के स्वाधीनता की।" यहाँ 'के' के स्थान पर 'की' शब्द होना चाहिये। इसी प्रकार ढूँढ़ने में व्याकरण सम्बन्धी अन्य अशुद्धियाँ भी मिल सकती हैं।

उपमाएँ भी वर्मा जी ने कहीं कहीं पर अँग्रेजी ढंग पर दे दी हैं जिनसे अर्थ का अनर्थ हो गया है। 'प्रेम की भेंट' में वे लिखते हैं—'स्वर्ण सदृश कृष्ण केश।' काले बाल और वे भी स्वर्ण के समान। अंग्रेजी कविताओं में बालों की सुन्दरता

उनका सुनहला पन अवश्य माना गया है पर भारतीय सुन्दरता तो काले बालों में ही मानी जाती है। उपर्युक्त उपमा में तो विरोधाभास की पराकाष्ठा है जो सर्वथा अनुपयुक्त है।' 'विराटा की पद्मिनी' में भी एक स्थान पर उन्होंने केशों की सुन्दरता, सुनहलेपन में ही मानी है ! 'स्वर्ण को लजाने वाली बालों की एक लट' को अंग्रेज भले ही सुन्दर मानें, भारतीय तो काले बालों में ही सुन्दरता देखते हैं।

पूरा उद्धरण निम्नलिखित है। जहाँ यह उद्धरण वर्मा जी की सुन्दर भाषा के उदाहरण में प्रस्तुत किया जा सकता है, वहाँ केवल एक अनुपयुक्त उपमा ने इसका बहुत कुछ सौंदर्य नष्ट कर दिया है !

"कुमुद चट्टान की टेक पर खड़ी हो गई ! ऐसा जान पड़ा मानो कमलों का समूह उपस्थित हो गया हो। जैसे प्रकाश पुन्ज खड़ा कर दिया गया हो। पैरों की पैंजनी पर सूर्य की स्वर्ण रेखाएँ फिसल रहीं थीं। पीली धोती मन्द पवन के धीमे झकोरों से दुर्गा की पताका की तरह धीरे धीरे लहरा रही थी, उन्नत भाल मोतियों की तरह भासमान था। बड़े बड़े काले नेत्रों की बरौनियां भौहों के पास पहुंच गईं थीं। आंखों से झरती हुई प्रभा ललाट पर से चढ़ती हुई उस निर्जन स्थान को आलोकित सा करने लगी। आधे खुले हुए सिर पर से स्वर्ण को लजाने वाली बालों की एक लट गर्दन के पास जरा चंचल हो रही थी। उस विस्तृत विशाल जंगल और नदी की उस ऊँची चट्टान के सिरे पर खड़ी हुई कुमुद को देखकर कुंजर का रोम रोम कुछ कहने के लिये उत्सुक हो उठा।"

कहीं कहीं अंग्रेजी कहावतों के अनुवाद भी वर्मा जी ने ज्यों के त्यों कर दिये हैं जो उपयुक्त नहीं प्रतीत होते ! कुण्डली चक्र में ललित कहता है—दुर्बल व्यक्ति जीने की पात्रता नहीं रखता। 'पात्रता न रखना' अँग्रेजी के Does not deserve का अनुवाद है ! कुण्डली चक्र में ही उन्होंने भुजबल के लिये लिखा है-"भुजबल उन लोगों में से न था जो घास को थोड़ी देर भी पैरों तले उगने देते हों।" 'घास को पैरो तले न उगने देना' स्पष्ट ही अँग्रेजी की 'Not to allow the grass to grow under one's feet' कहावत का अनुवाद है। 'विराटा की पद्मिनी' में एक स्थान पर उन्होंने लिखा है—"मेरे पैरों की अँगुलियां एँड़ी में नहीं लगीं हैं।" यह भी अँग्रेजी की कहावत 'My toes are not in my heels' का अनुवाद है। इसी प्रकार 'महत्वाकाँक्षा के क्षितिज' 'Horrizon of ambitions' का अनुवाद है। और भी उदाहरण इस प्रकार के हैं। परन्तु ये बातें अधिकतर उनके प्रारम्भिक उपन्यासों में ही पाई जाती हैं। बाद के उपन्यासों में इस प्रकार के प्रयोग

ढूँढ़ने से मिल ही सकते हैं! समय के साथ साथ इन दोषों का निवारण हो गया है जिनसे वर्मा जी की भाषा को पर्याप्त बल मिला है।

शैली के क्षेत्र में वर्मा जी ने वर्णनात्मक शैली को ही प्रश्रय दिया है। उपन्यासों में अधिकतर इसी का प्रयोग होता है। शैली के गुणों की ओर जब हम दृष्टि डालते हैं तो उसकी रोचकता और धाराप्रवाहिकता ही हमारा ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करती है। वर्मा जी की शैली में इन दोनों गुणों की सत्ता है। वे और किसी बात के फेर में न पड़कर सीधे अपनी कहानी कहना प्रारम्भ कर देते हैं और उसी से उपर्युक्त दोनों गुणों की सत्ता भी स्पष्ट हो जाती है। उनका कोई भी उपन्यास हम उठा लें, हम प्रारम्भ से ही कहानी का सीधे ढंग से वर्णन पायेंगे। 'मृगनयनी' में उपन्यासकार प्रारम्भ में ही कहानी कहना प्रारम्भ कर देता है और उससे पूर्व और पश्चात का वातावावरण तक स्पष्ट हो जाता है। देखिये—

"आस पास और दूर तक के गाँव उजड़ चुके थे। खेती का नाम निशान तक न बचा था। बीच में जंगल भी काट डाला गया था। पर कटे हुये पेड़ों की जड़ों से नई शाखाएँ फूट निकलीं थीं और भूमि इन शाखों से ढक गई थी। गांव उजड़े और उनके बहुत से निवासी या आक्रमण कारियों की तलवार के घाट उतर गये या भूखे प्यासे मर गये। जो बचे वे तितर बितर हो गये। ग्वालियर पर पन्द्रहवीं शताब्दी में अनेक आक्रमण हुए। उतने ही बार गाँव निर्जन हुए। पुराने कुछ कुछ आबाद हुये! जंगलों में, नदियों नालों के किनारे. थोड़े से नये बसे। भस्म हो जाने और भस्म से नये पौधों के उगने का क्रम बना रहा। बहलोल लोदी ने फिर उसके उत्तराधिकारी सिकन्दर ने सब तरह के उपाय किये किन्तु ग्वालियर का किला हाथ न लगा।"

जितनी सीधी सादी भाषा है, उतनी ही सीधी सादी शैली भी। तत्कालीन परिस्थिति भी इतने ही वर्णन से स्पष्ट हो गई है। बहलोल और सिकन्दर के आक्रमण, उससे उत्पन्न परिस्थितियाँ, उनके द्वारा किया गया विनाश, ग्वालियर के निवासियों की वीरता, सब का अनुमान हमें हो जाता है। यह भी पता चल जाता है कि इन आक्रमणों को हुये पर्याप्त समय भी बीत चुका है और गाँव वालों ने पुनः अपने अपने गाँवों का जीर्णोद्धार कर लिया है। वर्णन शैली की यही सजीवता, यही रोचकता, कथा को गति प्रदान करती है।

यही बात 'कचनार' में भी है। प्रारम्भ में ही कहानी प्रारम्भ हो जाती है और बहुत कुछ घटनाएँ हमारे सम्मुख स्पष्ट हो जाती हैं। यहाँ प्रारम्भ पारस्परिक वाद विवाद से हुआ है—

"दिन डूबने में अभी कम से कम तीन घण्टे की देर है-मानसिंह ने कहा

डरू ने प्रस्ताव किया – एक घण्टा और आराम करलो। धामौनी कोस डेढ़ कोस के ऊपर नहीं है। दिन डूबने के पहले पहुँच जायेंगे।

सोने साह ने प्रतिवाद किया तैयार होते २ तो यों ही एक घण्टा लग जायगा। तुम लोगों का तो यह हाल है कि जहाँ मिलीं दो, वहीं रहे सो।

मानसिंह को यह प्रस्ताव अच्छा नहीं लगा।

बोला—दिन-भर धूप में सिंके तब पानी और छाया से भेंट हुई। दुलैया जू रात भर की जागी हैं और दोपहर की धूप खाई हुई हैं। उनको थोड़ा सा विश्राम अब मिला है। थोड़ी देर में चलते हैं। सोने साह ने तीव्र स्वर में कहा—राव साहब बाट जोह रहे होंगे। स्त्रियाँ अपने नेगचारों के लिये उतावली हो रहीं होंगी। यहां तुम लोगों को ऐसा क्या मिल रहा है जिसके लिए पैर फैलाए पड़े हो।"

उपर्युक्त वार्तालाप से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये लोग बरात से लौटने वाले व्यक्ति हैं। धामोनी जा रहे हैं जहां के राव साहब का विवाह हुआ है। वधू साथ में ही है। आगे चलते ही और भी घटनाएँ स्पष्ट हो जाती हैं।

गढ़ कुण्डार में भी प्रारम्भ से ही कहानी चलने लगती है—"तेरहवीं शताब्दी का अन्त निकट था। महोबे में चन्देलों की कीर्ति पताका नीची हो चुकी थी। जिसको आज बुन्देल खन्ड कहते हैं उस समय उसे जुझौति कहते थे। जुझौति के बेतवा, सिंध और केन द्वारा सिंचित और विदीर्ण एक वृहत् भाग पर कुन्डार के खंगार राजा हुरतमसिंह का राज्य था।"

'झाँसी की रानी' में भी 'प्रस्तावना' के पश्चात ही 'उदय' से तुरन्त कहानी शुरू हो जाती है। शैली वही वर्णनात्मक है—

"वर्षा का अन्त हो गया था। कुँवार उतर रहा था! कभी कभी झीनी झीनी बदली हो जाती थी। परन्तु उस संध्या के समय आकाश बिल्कुल स्वच्छ था। सूर्यास्त होने में थोड़ा सा विलम्ब था। बिठूर के बाहर गंगा के किनारे तीन अश्वारोही तेजी के साथ चले जा रहे थे। तीनों बाल्यावस्था में। एक बालिका, दो बालक। एक बालक की आयु १६, १७ वर्ष, दूसरे की १४ से कुछ ऊपर! बालिका की तेरह साल से कम।" आदि २।

'विराटा की पद्मिनी' में भी कहानी बिल्कुल प्रारंभ से ही गतिशील हो गई है।

यही बात सारे. उपन्यासों के सम्बन्ध में कही जा सकती है। वर्मा जी की यह वर्णनात्मक शैली आखेटों और युद्धों के वर्णन में विशेष रूप से निखर उठी है। इन

वर्णनों में वर्मा जी जितने सफल हुए हैं कदाचित हिन्दी का कोई भी उपन्यासकार आज तक उस सफलता को नहीं प्राप्त कर सका। आखेटों के वर्णन में वर्मा जी की सफलता का मुख्य कारण उनका निज का अनुभव है। वे स्वयं एक निपुण शिकारी हैं। इस कारण उनके ये वर्णन सुनी सुनाई बातों पर नहीं आधारित हैं वरन् उनके स्वयं के अनुभवों ने ही इनमें इतनी रोचकता ला दी है। युद्धों के वर्णन में वर्मा जी की सफलता का कारण है उनका बुन्देल खण्ड के इतिहास का विस्तृत ज्ञान। उन्होंने स्वयं घूम फिर कर बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक स्थलों का निरीक्षण किया है, किलों के भग्नावशेषों को देखा है, गहरे गहरे खाँई खड्डों को पार किया है। इस सम्बन्ध में उनका एक एक वर्णन सजीव है, एवं एक चित्र सा हमारे नेत्रों के सम्मुख खींच देता है। चित्र खींचने की यह क्षमता वर्णन को निखार देती है। 'मृगनयनी' में युद्ध और आखेट दोनों का वर्णन हुआ है। एक एक उदाहरण दोनों का ही यहाँ दिया जाता है।

निन्नी और लाखी शिकार खेलने के लिए जा रही हैं। वर्णन की सजीवता यहाँ देखने योग्य है—"निन्नी झाड़ी में धंस गई। वह लाखी को पछेड़ना चाहती थी। खड़े होकर, या झुक कर चलने की भी गुञ्जाइश न थी। बैठ कर और कहीं लेट कर ही बढ़ा जा सकता था। वे दोनों कहीं २ बैठ कर, कहीं २ लेटकर रेंगने लगीं। ऊँची छातियाँ पत्थरों और करघई के मोटे काँटों से टकरा टकरा जा रही थीं। परन्तु मानों उनमें पत्थरों और काँटो से भी लड़ जाने का दम हो। करघई की टेढ़ी मेढ़ी डालें सिर से बंधी हुई ओढ़नी में अटक अटक जा रही थीं। गोरी सलोनी भुजाओं में काँटे खंरोंचे कर रक्त की पतली लीकें निकाल रहे थे। धूल और धूप उनको सुखाकर मरहम का सा काम कर रही थी। उन दोनों ने करघई की डालों में उलझी हुई ओढ़नी को सावधानी के साथ सुलझाया और कमर से कस लिया। बिना तेल के लम्बे काले केश कुन्तलों में आंधी के एक दो झोंकों ने ही धूल और करघई के छोटे मोटे सूखे पत्ते भर दिये। वे दोनों अबाध गति से धीरे धीरे बढ़ कर पहाड़ी की चोटी पर पहुंच गईं। करघई के एक झाड़ के नीचे खड़े होने योग्य स्थान था। दोनों तीर कमान साध कर खड़ी होगईं। इधर उधर आँखें दौड़ाईं परन्तु टटोल में कुछ नहीं आया। घुटने छिल गये थे। हवा लगने से कुछ कसक जागी। झुक कर उनको पोंछा फटकारा। सोचने और सुस्ताने के लिए बैठ गईं। कान लगाये थीं। पवन नदी की ओर बह रहा था। पेड़ों की खरखराहट आंधी की मंद या द्रुतगति के साथ दुर्बल या तीव्र सुनाई पड़ती थी। कुछ क्षण के उपरान्त नदी की दिशा में पत्थर की ठोकर का शब्द सुनाई पड़ा। दोनों चौंक सी पड़ीं। उझक कर देखा। कुछ नहीं दिखाई पड़ा। खड़ी हो गईं। देखा नदी की ओर दो बड़े बड़े सुअर चले जा रहे हैं। थोड़ी देर बाद वे दोनों नदी के

भरके में उतर गईं।"

उपर्युक्त वर्णन पढ़ कर नेत्रों के सम्मुख शिकार का एक चित्र सा खिंच जाता है। जंगल का सुनसान वातावरण, लाखी और निन्नी की शिकार के प्रति उत्सुकता, एक ओर हवा के तेज झकोरों का चलना, आदि दृश्य एक दम सजीव हो उठे हैं।

युद्ध सम्बन्धी एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है। लाखी रात के निस्तब्ध वातावरण में राई की गढ़ी के ऊपर तीर कमान लिये पहरा दे रही है। रात का भयावना दृश्य, युद्ध की भूमिका में कितना सजीव हो उठा है:—

"थोड़ी देर बैठी रह कर वह खड़ी हो गई। कंगूरों के झरोखों में होकर नीचे की ओर देखा। अतुल अन्धकार! निविड़ बन का कोई अंश नहीं दिखलाई पड़ रहा था। ऊपर तारे छिटके हुये थे। दूर की पहाड़ियाँ लम्बी तानें सोती जान पड़ती थीं। टेढ़ी तिरछी बहती हुई सांक नदी की पतली रेखा जरूर झांई सी मार रही थी। दूरी पर घेरा डालने वालों के डेरों की आग सुलग कर राई की गढ़ी के संकट को जगा जगा दे रही थी। वैसे राई की डाँग में नाहर इत्यादि जंगली जानवर रात में प्रायः बोला करते थे परन्तु आक्रमण कारियों की रौंदा रौंदी के मारे वे बहुत दूर खिसक गये थे। सिवाय झींगुरों की चीं चीं के और कुछ नहीं सुनाई पड़ता था। सुनसान को छेदती हुई कभी २ गढ़ी के भीतर 'जागते रहो, जागते रहो' की पुकारें भर सुनाई पड़ जाती थीं।"

यहाँ भी एक चित्र सा उपस्थित हो गया है। युद्धों के वर्णनों में तो सजीवता की पराकाष्ठा है। 'गढ़ कुण्डार' के युद्ध, 'विराटा की पद्मिनी' के युद्ध, 'मृगनयनी' और 'झांसी की रानी' के युद्ध, 'टूटे काँटे' के युद्ध सभी उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। इन युद्धों में किले बाजी आदि के वर्णन तो अत्यन्त ही सुन्दर हैं।

पात्रों के मानसिक द्वन्दों और उनके हृदयगत भावों को साकार करने के स्थलों पर शैली भावात्मक हो उठी है। 'मृगनयनी' में इस प्रकार की शैली के अनेक उदाहरण हैं। निन्नी अपने खेत की मचान पर बैठी विविध कल्पनाओं में लीन है।

"जहाँ भी रहूं इस प्यारी नदी की दमकती हुई कल्लोलिनी धार को अपने पास में रखूँ। बाहर जाऊँ तो क्या इसको बाँध कर, समेट कर नहीं ले जाया जा सकता? ऊँघती लहराती बालों को किसी कागज पर उतार लिया जाय। पहाड़ों की ऊँचाइयों को एक स्थल पर ही क्यों न इकठ्ठा कर लूँ? बड़े बड़े पेड़ों के बन्दन वार बना लिये जायँ और डालियों पत्तों के साजों के झरोखे। उनमें से चाँदी की कड़ियों वाली लहरों को नाचता हुआ देखा जाय और फिर गाऊँ—जाग परी मैं पिया के जगाये!!"

'प्रेम की भेंट' के अन्तिम दृश्यों में भी शैली भावात्मक हो उठी है। इस प्रकार भावात्मक शैली के उदाहरण सभी उपन्यासों में यत्रतत्र हैं। गढ़ कुण्डार के

दिवाकर का स्वप्न उद्धृत किया जा चुका है। उपर्युक्त दो प्रकार की शैलियों के अतिरिक्त वादविवाद के अवसरों पर विश्लेषणात्मक शैली के उदाहरण भी उपन्यासों में हमें मिल जाते हैं। इसी प्रकार कहीं २ शैली व्यंग्यात्मक भी हो उठी है।

विविध भाषा शैलियों की सत्ता के कारण ही उपन्यासों में पर्याप्त सजीवता है। जहाँ जैसा अवसर आया है भाषा शैली ने भी अपना रूप सहज ही परिवर्तित कर लिया है। गंभीर स्थलों पर भाषा भी शैली के साथ ही गहन हो उठी है एवं भावात्मक स्थलों पर वह भी भावना प्रधान हो गई है। वर्मा जी की भाषा में यह गुण सर्वत्र ही देख पड़ता है जहाँ शैली के अनुरूप भाषा ने भी अपनी गतिविधि को संवार लिया है। भाषा और शैली की चित्रमयता ने उपन्यासों की कथावस्तु को और भी सजीव कर दिया है।

शैली में ओज, प्रसाद और माधुर्य गुण तीनों की सत्ता देख पड़ती है। प्रसाद गुण सारे उपन्यासों में व्याप्त है। इसका सम्बन्ध व्यापकता से होता है जो उपन्यासों के लिए अनिवार्य होती है। वर्मा जी के उपन्यासों में भी प्रसाद गुण की भव्यता दर्शनीय है। ओज और माधुर्य गुणों की सत्ता भी सारे उपन्यासों में यथावसर देखी जा सकती है। ओज पूर्ण भाषा शैली के निर्वाह में भी लेखक बहुत बड़ी सीमा तक सफल हुआ है। ऐतिहासिक उपन्यासों में तो यह और भी निखर उठी है। गढ़ कुण्डार, विराटा की पद्मिनी, झाँसी की रानी, मृगनयनी, सभी में ओज पूर्ण भाषा शैली की व्यापकता दृष्टव्य है। 'झाँसी की रानी' में रानी का सरदारों के समक्ष निम्नांकित भाषण ओज से पूर्ण है। रानी का एक एक शब्द मानो अंग्रेजों को चुनौती देने को प्रस्तुत हो—

"मानलो कि पेशवा की सेना न आती तो क्या हम लोग हथियार डाल कर झाँसी के मुख पर कालिख पोतते? अपने पुरखों का स्मरण करो। स्वराज्य की स्थापना में कितने खप गये। यह आवश्यक नहीं है कि स्वराज्य की स्थापना हम अपने जीवन काल में ही देख लें। सीढ़ी के डंडे पर पैर रखते ही हम छत पर नहीं पहुँच जाते। एक ही त्याग, एक ही मरण से स्वराज्य नहीं मिलता है। स्मरण रक्खो, हमको केवल कर्म करने का अधिकार है, फल पर नहीं। दृढ़ उद्देश्य और निरन्तर कर्म, हमारा केवल ध्येय यह है। जीवन कर्तव्य पालन का नाम है, कर्तव्य पालन करते हुए मरना जीवन का दूसरा नाम है। जो लोग अंग्रेजों से डरते हों, मौत से डरते हों वे हथियार रख कर आराम के साथ अपने घर चले जायँ। जो लोग स्वराज्य के लिये प्राण विसर्जन करना चाहते हों वे मेरे पास बने रहें।"

रानी के ओजयुक्त उद्‌गार प्रस्तुत उपन्यास में भरे पड़े हैं जिनसे आज भी

उतनी ही प्रेरणा ली जा सकती है जितना लोगों ने उस समय ली होगी।

आवेशपूर्ण भाषा का एक उदाहरण उस समय अटल प्रस्तुत करता है जब वह लाखी की मृत्यु के बाद अपने सैनिकों को ललकारता है—

"जिनको अपने प्राण प्यारे हों वे जाकर सो जायँ, जिनको तोमर, भदौरिया और गूजर नाम प्यारा हो, केसरिया बाना पहन लें। शत्रु की पातों को चीर फाड़ कर निकल गये तो कल ग्वालियर में।"

'विराटा की पद्मिनी' में भी नरपति युद्ध में जाने से पहले कुमुद के सम्मुख नाच उठता है—"मैं कदापि न जाऊँगा। मैं भी दाँगी हूं। मैं भी अपने कपड़ों को हल्दी में रंगता हूं। हम सब दाँगियों को अपना अन्तिम आशीर्वाद दो। हम थोड़े हैं और दरिद्र हैं। तुम एक हो। शक्ति हो, अनेक हो शक्ति शालिनी हो। हमें वरदान दो जिसमें पुरुषों की तरह मरें। फिर आँखें फाड़ फाड़ कर प्रखर स्वर में ऊपर की ओर देख कर बोला—दुर्गे देवी! हम थोड़े से दाँगियों ने अपने अन्तिम रक्त कण से आपके देवालय की रखवाली की है। हमारे हृदय को अब इतना बल दो कि अन्त समय हमारे भीतर किसी तरह की हिचक न आवे और हम सब हंसते हंसते तुम्हारे झूले की डोर पकड़ कर पार हो जायँ! मां! मां आशीर्वाद दो! 'दो दो'—की अन्तिम गूँज उस खोह में कई बार गूँजी। नरपति का शरीर थिरकने लगा। वह प्रमत्त होकर गाने लगा और ताली बजाने लगा—मलिनिया फुलवा.....................।"

इस प्रकार के उदाहरणों की वर्मा जी के उपन्यासों में कमी नहीं है। हमने केवल उनकी झलक भर दी है।

सम्पूर्ण विवेचन से हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यद्यपि वर्मा जी के पास भाषा के भण्डार की कमी अवश्य है पर वह कभी उनके उपन्यासों में कभी हावी बनकर नहीं झलकी! जो कुछ भाषा उनके पास है, उसी से उन्होंने इतने सजीव वर्णन किये हैं कि उनके उपन्यासों की रोचकता द्विगुणित हो उठी है। उनकी सीधी सादी, बुन्देलखण्डी मिश्रित खड़ी बोली ने ही यथेष्ट प्रभाव उत्पन्न किया है। यदि उनके पास कही और परिष्कृत भाषा होती तो जैसा हम कह चुके हैं उनके उपन्यासों की सुन्दरता को कोई छू न पाता।

वर्मा जी के उपन्यासों का महत्व इससे भी कम नहीं हुआ है। अपनी कथा, अपने चरित्रों, अपनी भाषा शैली में वे आज भी अपूर्व हैं, आज भी उनमें वह मोहकता है जो पहले थी! उनके गढ़ कुण्डार, विराटा की पद्मिनी आदि उपन्यासों को लिखे हुए यद्यपि पचीस वर्ष से अधिक हो गये पर उनकी प्रौढ़ता की समता करने वाले उपन्यास आज भी नहीं हैं। भाषा का जो स्वरूप उनमें देख पड़ता है वह भी वर्मा जी का अपना है।

उनकी भाषा में उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। आज भी उनकी भाषा का स्वरूप लगभग वही है। उसमें परिष्कार अवश्य हुआ है। दिन प्रति दिन उनकी भाषा और भी प्रौढ़ रूप में हमारे सम्मुख आ रही है। आज उनके उपन्यासों की भाषा अधिक सुव्यवस्थित, अधिक निर्दोष एवं अधिक प्रवाह मयी है। अपनी निजी भाषा शैली के लिए वर्मा जी हमारी बधाई के पात्र हैं। उनके उपन्यासों की भाषा में उनके व्यक्तित्व की छाप यहाँ तक है कि जरा सा अंश पढ़ कर कोई भी कह सकता है कि यह वर्मा जी की भाषा है।

ई :—

कथोपकथन :—

कथोपकथनों का प्रयोग उपन्यास में कई उद्देश्यों को दृष्टि में रख कर किया जाता है, जिनमें से दो प्रमुख हैं। सर्व प्रथम तो उपन्यासकार कथा को गतिशील, सरस और सजीव बनाये रखने के लिए कथोपकथनों का प्रयोग करता है और दूसरे उपन्यास में आये पात्रों का चरित्र उभारने के लिये ! पात्रों के कथोपकथन उनके चरित्र की सारी रेखाएँ उभार देते हैं, जो कुछ शेष रह जाती हैं उन्हें उपन्यासकार अपने कथन द्वारा स्पष्ट कर देता है। नाटकों में कथोपकथनों का महत्व अत्यधिक होता है कारण वहाँ नाटककार को अपनी ओर से कुछ भी कहने का अवसर नहीं प्राप्त होता। उपन्यासों में यह बात तो नहीं होती फिर भी उपन्यासकार का प्रयत्न यही होता है कि वह अपनी ओर से जितना कम कहा जा सके, उतना ही कहे, अन्य रीतियों से ही चरित्रों को उभारे। सुन्दर, सजीव और स्वाभाविक कथोपकथन उपन्यास को भी अत्यधिक आकर्षक बना देते हैं। भले ही उपन्यास अन्य दृष्टियों से कुछ शिथिल भी हो परन्तु यदि उसमें सुन्दर और सजीव कथोपकथनों की सत्ता है तो वे उस शिथिलता को बहुत कुछ ढक लेते हैं। उपन्यास की सफलता बहुत बड़ी सीमा तक सुन्दर और स्वाभाविक कथोपकथनों पर भी आश्रित रहती है।

कथोपकथनों का एक आवश्यक गुण उनका संक्षिप्त और सारगर्भित होना है। जो प्रभाव लम्बे कथोपकथनों से नहीं उत्पन्न हो पाता वह कुशल उपन्यासकार संक्षिप्त कथोपकथनों द्वारा उत्पन्न कर देता है। उनका सारगर्भित होना इस प्रभाव को और भी अक्षुण बना देता है। लम्बे और अस्पष्ट कथोपकथन जहाँ इच्छित प्रभाव उत्पन्न करने में असमर्थ होते हैं वहाँ उनसे नीरसता की सृष्टि भी होती है और संक्षिप्त तथा सारगर्भित कथोपकथन प्रभाव तो उत्पन्न करते ही हैं, नीरसता को भी दूर रखते हैं। वर्मा जी के उपन्यासों की एक विशेषता उनके संक्षिप्त और सारगर्भित कथोपकथन हैं। पात्र थोड़ी सी बात चीत में ही अपना उद्देश्य कह डालता है और उसकी वह बात चीत नीरस भी नहीं प्रतीत होती। दो एक उदाहरणों से विषय स्पष्ट हो जायगा। कचनार, और कलावती राव दलीपसिंह के पास प्रार्थना करने जाती हैं कि मन्ना की जायदाद जब्त किये जाने का जो आदेश दिया गया है उसे वापस ले लिया जाय। दलीपसिंह गोंड था, हठी था ! कचनार जरा सी बात चीत में ही उसे निरुत्तर कर उससे अपनी इच्छा पूर्ण करा लेती है।

दलीपसिंह—पाप करने वाले को दण्ड न देना धर्म को पतित करना है।

कचनार—मन्ना ने क्या पाप किया है?

दलीप—उसको मैं क्या दण्ड दे रहा हूं?

कचनार—बैजनाथ ने कौन सा पाप किया था?

दलीप—उसने काकाजू के मारे जाने में साहायता की थी।

कचनार—आपने अच्छी तरह छान बीन कर ली थी?

दलीप—मुझको विश्वास है कि उसने अपराध किया।

कचनार—क्या विश्वास कर लेने पर फिर गवाही, साखी, प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं रहती?

दलीपसिंह चुप होगया।

कुछ क्षण बाद बोला—तो क्या डरू को छोड़ दूँ?

कचनार—यह मैं नहीं कहती। परन्तु यह सुनती आई हूं कि गोंड लोग बिना जाँच पड़ताल और छान बीन के किसी को प्राणदण्ड नहीं देते और उनके राज्य में वह अंधेर और अन्याय नहीं होता जो बुन्देलों के राज्य में होता है।

दलीपसिंह सन्नाटे में आ गया। सोचने लगा।

कचनार ने कहा—मन्ना के पास आज के खाने को भी गांठ में कुछ नहीं है। उसके ढोर छीन लिए गये हैं। उनको किसी ने पानी भी न पिलाया होगा। कुल जायदाद पर पहरा बिठला दिया गया है।

दलीप—क्या करूँ मैं अब?

कच—न्याय! जिससे राजगोंड नाम पर बट्टा न लगे। भाट लोग अपयश न फैलाते फिरें।

दलीपसिंह ने कहा—मन्ना के ढोर इत्यादि अभी मुक्त करता हूं। बैजनाथ का मारा जाना ठीक हुआ या नही इसका मुझको संशय है। परन्तु डरू अपराधी है, इसमें मुझको कोई सन्देह नहीं। तो भी मैं इस समय सब ओर से ध्यान समेट कर किले की, और जनता की, रक्षा का प्रबन्ध करने जाता हूं। आप लोगों की कुछ और मर्जी है?

कचनार ने आँखें नीची कर लीं। कलावती पूरा घूँघट खोल कर मुस्करा दी!!"

संक्षिप्त बातचीत जो न अस्पष्ट है न विषय से परे, अपना प्रभाव डाल देती है जो कचनार की लम्बी वक्तृता न डाल सकती थी!

"कचनार' से ही एक उदाहरण और दिया जाता है। दलीपसिंह कचनार को देखते ही उस पर मोहित हो जाता है। एकान्त में उसका हाथ पकड़ लेता है। उसकी और कचनार की संक्षिप्त बात चीत जहाँ एक ओर दोनों के चरित्रों पर प्रकाश डालती है वहाँ सजीव भी है।

दलीपसिंह ने वैसे ही उसका हाथ पकड़े हुये मुस्करा कर कहा—कहो क्या बात है? जो माँगोगी दूँगा! मेरे पिता बहुमूल्य वस्त्रालंकारों का भण्डार छोड़ गये हैं। जिसकी इच्छा करो, दूँगा और देता रहूंगा।

कचनार बोली—मुझको वस्त्रालंकार कुछ नहीं चाहिये! मैं गोंड कन्या हूं। वृक्षों की छाल से अपना शरीर ढक सकती हूं।

तब जो कुछ माँगोगी वही दूँगा—दलीपसिंह ने आश्वासन दिया।

कचनार थोड़ा मुस्कराई! दलीपसिंह ने ऐसी मुस्कराहट कभी नहीं देखी थी। प्रमत्त हो गया।

कचनार ने कहा—बदल न जाइएगा।

दलीपसिंह झूमकर बोला—कभी नहीं! कचनार के नेत्रों में तेज बढ़ा।

उसने कहा-मेरे साथ भाँवरें डालिये। मुझको अपनी पत्नी की प्रतिष्ठा दीजिये। अपनी जीवन सहचरी बनाइये। वचन दीजिये। मैं आपके चरणों में अपना मस्तक रख दूँगी।

थोड़ी बात चीत और होती है। दलीप निरुत्तर हो जाता है। कचनार से पीने को पानी माँगता है। "कचनार पानी लेने चली गई। दलीपसिंह ने माथे का पसीना पोंछा!"

इस प्रकार के अन्य भी न जाने कितने उदाहरण वर्मा जी के उपन्यासों में भरे पड़े हैं। संक्षिप्त और सारगर्भित कथोपकथनों का प्रयोग उनकी एक विशेषता है।

कथोपकथनों का एक गुण चरित्रों का उभारना भी है। उपर्युक्त कथोपकथन दलीपसिंह और कचनार के चरित्रों को उभार देता है। यह गुण तो कथोपकथनों में सर्वत्र ही होना चाहिये। यही मुख्य सम्बल है जिसका आधार लेकर उपन्यासकार अपने चरित्रों का चित्रण करता है। मृगनयनी का एक उदाहरण इस कथन को और भी स्पष्ट कर देगा। बैजू कलाकार है, कला की आराधना के अतिरिक्त उसे किसी भी वस्तु से तात्पर्य नहीं! राजसिंह कला और बैजू को ग्वालियर इस कारण भेजता है कि वे ग्वालियर की गुप्त बातों की सूचना उसे लाकर दें। बैजू ग्वालियर आते ही संगीत में इतना बेसुध हो जाता है कि उसे याद ही नहीं रहता कि वह किस उद्देश्य को लेकर चन्देरी से चला था। कला ग्वालियर के राजमहलों की सारी गुप्त सूचनाएँ एकत्र कर लेती है और एकान्त में बैजू के पास जाकर उसे उसके उद्देश्य की याद दिलाती है। निम्नांकित बातचीत में जहाँ उपन्यासकार का प्रमुख उद्देश्य बैजू के चरित्र को चित्रित करना रहा है, वहाँ कला और मानसिंह तथा राजसिंह की चारित्रिक दुर्बलताएं सबल-

ताएं भी निखर उठती हैं। निम्नोंकित कथोपकथन का प्रयोग इतनी सजीवता के साथ हुआ है कि उसमें नाटकीयता तो आ ही जाती है, पात्रों की चारित्रिक प्रवृत्तियाँ भी अपने आपही उभर उठती हैं। बैजू वीणा लेकर राग अलापने में मस्त है।

"अ हा हा ? ओ हो हो! उसके मुंह से निकला और वह खिलखिला कर हंस पड़ा।

आज बावलेपन की मात्रा कुछ अधिक है, कला ने विचार किया।

धकिट धकिट धा किट, अ हा हा-हा ! अ हा हा !! क्या बात है।

जय शंकर भगवान की ! जय नटराज की ! बैजू ने कहा और वीणा पर गाया--'मान खेलैं होरी, राजा मान खेलैं होरी,' उसके बाद उसने पखावज ली और गुनगुनाते हुये बजाने लगा। पखावज को रखकर फिर वीणा को हाथ में लेने ही वाला था कि कला अकुलाहट के साथ बोली—गुरू जी अब समय आ रहा है।

उसने हर्ष मग्न होकर पूछा—आ रहा है नहीं, आ गया है, मूर्ख छोकरी—ध्रुव पद से होरी की गायकी की रूपरेखा बना ली और ताल भी तैयार हो गया। धमार ताल में गाई जायगी होरी। गति के बोल भी बना लिये हैं। पानी रुक जाय तो राजा को जाकर सुना दूं अभी। पर उस रूपरेखा में रंग और भर दूं, तब सही। हां, यही ठीक है। ठीक रहेगा न कला ?

हां महराज, बहुत ठीक रहेगा ! मैं कुछ और कह रही थी।

फिर कभी कह लेना, मुझको अवकाश नहीं है अभी तो।

अभी ही सुनना पड़ेगा। बड़े महत्व की बात है !

ध्रुव पद और होरी से बढ़कर, फिर सीखा क्या तूने इतने दिनों में।

महाराज को स्मरण होगा। जब चन्देरी से हम लोग चले।

हां चन्देरी से चले थे और अब ग्वालियर में हैं। क्या मैं बच्चा हूं जो इतनी सी बात न जानूंगा।

चन्देरी फिर लौटना होगा।

काहे के लिये ? चन्देरी के पत्थरों से सिर मारने के लिये।

चन्देरी से चलते समय राव राजा राजसिंह ने कुछ कहा था ?

हाँ, कहा था कि ग्वालियर के मेले में सब गवैयों बजैयों को परास्त करना और चन्देरी का नाम रखना, सो हो गया अब ग्वालियर के नाम को बढ़ाऊँगा।

उन्होंने कुछ और भी कहा था।

क्या कहा था, बताओ ! मैं राव राजसिंह की बात को मान्यता देता आया हूं।

उन्होंने बहुत कुछ कहा था, और यह भी कि ग्वालियर को जब कोई घेरने आवे तब उसके सैन्य बल आदि का सही पता बताकर तुरन्त चन्देरी लौट पड़ना और फिर बतलाना। किले के चित्र मैंने बना लिया है।

होंगे चित्र वित्र, क्या करेंगे राव राजसिंह यह सब जान कर

ठीक समय पर चढ़ाई कर देंगे और अपनी बपौती को ले लेंगे।

दूसरे ही परिच्छेद में वह मानसिंह से सब कुछ कह देता है। 'कला पसीने पसीने हो गई'। मानसिंह सब कुछ जान कर कला से कहता है—'तुमको रक्षकों के साथ आराम की सवारी में भेज दिया जायगा। तुमको इतना द्रव्य दे दूँगा कि जीवन पर्यन्त बेखटके रहो। राव राजसिंह बड़ा शूरवीर है। परन्तु शूरवीरी का उपयोग अनुचित करता है। कह देना!"

इस प्रकार के कथोपकथन ही उपन्यास में सजीवता और सरसता की सृष्टि करते हैं और उपन्यासकार की उसके उद्देश्य पालन में भी सहायता करते हैं! चरित्रों को उभारने वाले इस प्रकार के कथोपकथनों का वर्मा जी के सारे उपन्यासों में बाहुल्य है।

कथोपकथनों का एक अन्य गुण पात्र और परिस्थिति के अनुकूल होना है। जिस प्रकार का पात्र है कथोपकथन भी उसी की प्रवृत्तियों के अनुकूल होना चाहिये तभी उनमें सजीवता आ सकती है। इसमें भाषा का भी परिवर्तित रूप देखने योग्य होता है। वर्मा जी के उपन्यासों में हिन्दू, मुसलमान, अंग्रेज सभी पात्रों की अवतारणा हुई है। उनकी बातचीत भी उन्हीं के अनुरूप रख कर वर्मा जी ने स्वाभाविकता को स्थिर रखा है। पात्रों की मनोवृत्तियों और उनकी प्रवृत्तियों के अनुरूप कथोपकथनों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—बोधन रूढ़िवादी ब्राह्मण है। राजा उससे रूढ़ि का आग्रह छोड़ देने को कहता है पर बोधन का साफ़ उत्तर है—'मैं राज्य छोड़ कर परदेश चला जा सकता हूं, पर वर्णाश्रम धर्म को लात नहीं मार सकता।" आगे भी वह कहता है—"प्राचीन ऋषियों ने जो कुछ किया उसको अब न तो कोई बदल सकता है और न उसमें किसी नई बात को उत्पन्न कर सकता है!!"

निहालसिंह सामन्त वर्ग का है। उसकी बातों की अकड़ सिकन्दर लोदी के सामने भी स्थिर रहती है भले ही वह मार डाला जाय! उससे स्पष्ट शब्दों में कहता है—"आपको भी जानना चाहिये कि आप किसी ऐरे गैरे से बात नहीं कर रहे हैं। जिसके पुरखों ने इसी दिल्ली में लोहे की कील गाड़ी थी और जो फिर उससे भी बड़ी कील गाड़ने की दम रखता है, जिसके राजा ने कभी बैरी के सामने सिर नहीं झुकाया, उसी का सामन्त सामने खड़ा है। दिल्ली को आपके पुरखों ने दो हजार टंकों में खरीद लिया होगा क्योंकि उसके दुर्दिन हैं परन्तु ग्वालियर को समूचे विन्ध्याचल की तौल सोने

के बदले में भी नहीं मोल ले सकोगे।"

'गढ़कुण्डार' की हेमवती के इस कथन में सामन्ती जात्याभिमान बोलता हुआ प्रतीत हो रहा है—"यदि आप यहाँ से नहीं जाते तो मैं जाती हूं। बुन्देला कन्या न ऐसी भाषा सुन सकती है और न सह सकती है। और खंगार राजा होने पर भी बुन्देला कन्या का अपमान करने की शक्ति नहीं रखता।" 'मृगनयनी' के महमूद बघर्रा के कथन में उसकी हिंसक प्रवृत्ति साफ झलक आती है। वह निन्नी और लाखी का उतना प्रेमी न था, उसे तो कोई अवसर चाहिए था कि युद्ध हो—मारकाट हो। कहता है—"मांडू के सुल्तान और दो देहाती छोकरियों के पीछे न पड़ कर बिलोचियों को पहले कुचल डालना जरूरी है। फिर देखा जायेगा।" ......अगर मिल गई तो देखूँगा। कम से कम ख्याल तो अच्छा है। मजेदार है। कुछ भी न मिला तो जंग की कसरत तो हाथ पैरों को मिलेगी ही। तलवार और तीर से कट कर लुढ़कते हुए सिर और धूल पर बहता हुआ खून।"

गियासुद्दीन शराब के नशे में चूर जंगल में डेरा डाले पड़ा है। आधीरात को हाथी चिंघाड़ता है। "फिसलते रपटते स्वर में गियास बोला—कितनी प्यारी बोली है।"

नसीरुद्दीन कामुक, चिड़चिड़ा एवं क्रोधी हैं। कामुकता की तृप्ति के लिए झील में सुन्दरियों के साथ स्नान करने का आयोजन करता है। कुछ सुन्दरियां डूबने लगती हैं। नसीरुद्दीन चिल्लाता है—'बचाओ, इनको बचाओ।" पर्दा लगा हुआ था। किसी को जलक्रीड़ा देखने की आज्ञा न थी। पर उसकी चिल्लाहट सुन कर कुछ लोग पानी में कूद पड़ते हैं। डूबने वाले बच जाते हैं। सुल्तान उन व्यक्तियों को जो सुन्दरियों को बचाने के लिए पानी में कूदे थे अपने निकट बुलाता है—

तुम्हारा नाम ?

उन लोगों ने अपने अपने नाम बतलाये।

तुम कनात के भीतर कैसे घुस आये ?

उन लोगों की घिग्घी बंध गई।

किसने कहा था ? किसके हुक्म से आये, बोलो ?

........उनमें से एक बोला—जहांपनाह ने हुक्म दिया था कि इनको बचाओ।

कम्बख्तो ! तुमको हुक्म दिया था ? वह कड़का।

नसीर ने आज्ञा दी—इनका सिर धड़ से जुदा कर दो जिनकी आंखों ने यह सब देखा और हाथ भी काट दो।

खवासियों ने उन लोगों को कैद कर लिया। कनात के बाहर ले जाकर उनको मार दिया गया।

फटे गले से नसीर बोला—ख्वाजा मटरू! सब मजा किरकिरा हो गया! कोई और शगल सोचो। ख्वाजा मटरू के होश कूंच कर चुके थे।"

नसीरुद्दीन की सारी चारित्रिक प्रवृत्तियाँ यहाँ झलक उठी हैं।

मानसिंह, अटल और लाखी को नरवर का किला बचा लेने के लिये धन्यवाद देते हैं और उन्हें हाथी में बिठाकर अपने साथ ले जाते हैं। जनता की काना फूसी, अशिक्षित और ग्रामीण जनता की विशेषकर स्त्रियों की सारी प्रवृत्तियाँ यहां झलक उठी हैं—

"तमाशा देखने वाली स्त्रियों में से एक ने दूसरी से कहा—

अपना राजा है बहुत अच्छा, बड़ा रसिया है। है न?

रसिया न होता तो उसको हाथी पर कैसे चढ़ा देता। सलहज है उसकी। साले को भी हाथी पर चढ़ा दिया! अच्छा तो रहा।

बाई! रूप सरूप ने बिठला दिया हाथी पर। क्या सचमुच तुर्कों की सेना को रस्सी और नसेनी पर से नट उतार लाते नगर में?

की तो लाखी ने बहादुरी। इतना तो कहना पड़ेगा।

इतनी कि राजा घोड़े पर और वह छोकरी हाथी पर। हां रूप की लुनाई है उसमें। तुमने लखा या नहीं, जब हाथी पर चढ़ने को जाने लगी; तब कैसी आँख उठाई थी राजा पर?

राजा उसको ग्वालियर ले जाकर महलों में डाल लेगा।

राजा जो ठहरा, चाहे जो करे, पर है अच्छा। ठीक समय पर आ गया नहीं तो नरवर राख हो जाता, उसी ने बचाया!"

शिक्षा का अभाव और परम्परा गत रूढ़ियों का आग्रह भोले भाले ग्रामीणों को इस तरह की बातचीत करने को बाध्य कर देता है। दोष ग्रामीणों का नहीं, सामन्ती व्यवस्था का है जिसने उन्हें सदा ही पैर की धूल समझा है! एक उदाहरण इसी से मिलता जुलता और है।

लाखी ने नरवर का किला बचाया। सब लोग उसको श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगते हैं। लाखी को विश्वास था कि सब लोग उसे गूजर ही समझते हैं। मन्दिर में बैठी थी कि एक स्त्री आकर अटल से लाखी की ओर संकेत करके कहती है—"इनकी जाति के अहीर तो यहां पड़ोस में ही रहते हैं"

किनकी जाति के?

उस स्त्री ने दांत निकाल कर लाखी की ओर संकेत किया।

अटल के मुख से प्रश्न निकला—तुम्हें कैसे मालूम--

उसने कहा-हमें कैसे मालूम ! सच्ची बात कहीं छिपती है भैया !! अपना बरन क्यों छिपाते हो ? बस्ती भर में खबर है कि तुम गूजर हो और.........

मैं अहीर हूं-लाखी ने कड़वे स्वर में कहा-किसी अहीर के यहाँ या तुम्हारे यहां नातेदारी करने नहीं आये हैं हम यहां ।'

स्त्री उठ खड़ी हुई । बोली-राम ! राम !! मुझको क्या करना है, मैंने तो बस्ती की बात सुनाई । तुम्हें ये ठाकुर रक्खे हैं सो रक्खे रहें । हमको क्या पड़ी ?

ग्रामीण स्त्रियों की प्रपंच बुद्धि यहां सक्रिय हो उठी है ।

कचनार में मानसिंह व दलीपसिंह दोनों कामुक हैं ! मानसिंह कलावती को तो प्यार करता ही है, उसकी दृष्टि में डरू की पत्नी मन्ना भी उलझी हुई है । डरू से मन्ना के बारे में तरह तरह की बातें करके ही उसे संतोष होता है । उसकी कामुक प्रवृत्ति यहाँ साफ झलक उठी है—

मानसिंह—कहाँ से कहाँ पहुँच गये । अपनी शर्त की याद करो । अब तुम मन्ना का वर्णन सुनाओ ।

डरू—केवल दो शब्दों में तो बात खतम होती है । वह सदा हंसती रहती है । उसके हंसने से घर भर में नित्य दिवाली सी बनी रहती है । बस !

मानसिंह-बस ? तुमने उसके रंग रूप का तो बखान ही नहीं किया ?

डरू—बस !मेरे लिये उसका इतना सौन्दर्य काफी है । वह मेरे लिये अपने प्राण झोंक देगी ।"

मानसिंह को संतोष न हुआ ! उसने पुनः अनुरोध किया । "अच्छा अब मन्ना की बात करो ।"

डरू ने अलग होकर कहा—फिर कभी बतलाऊंगा ।

उठती हुई आह को मसोस कर मानसिंह ने कहा—अच्छी बात है परन्तु मेरी सौगंध खाओ ।

डरू बोला—वाह ! जरा जरा सी बात पर सौगन्ध खाओ । कह दिया कि बतलाऊंगा !

मानसिंह ने हठ किया—अच्छा यह तो अभी बतलाओ कि मन्ना तुम्हारे मित्रों को चाहती है या नहीं ।

डरू ने जरा रुखाई के साथ उत्तर दिया—क्यों नहीं ? अब चलो सोएं ! दोनों चले गये !"

'विराटा की पद्मिनी' में राजा नायकसिंह व लोचनसिंह की बातों से भी उनकी सारी चारित्रिक प्रवृत्तियाँ साफ झलकती हैं। राजा नायकसिंह की बातों में काम, वासना, क्रोध, चिड़चिड़ेपन, की छाप रहती है जब कि लोचनसिंह की बातों में बुन्देलों का अक्खड़ पन !!

विराटा की पद्मिनी कुमुद, तारा, रानी लक्ष्मी बाई आदि की बातें उनके चरित्रों के अनुसार ही हैं। उनमें हास विलास भी है, गम्भीरता भी है, कभी कभी व्यंग्य की हलकी रेखा भी।

परिस्थिति के अनुसार भी पात्रों के कथोपकथन बदलते रहते हैं। कथोपकथनों का भिन्न भिन्न परिस्थितियों में ढल जाना ही उनका वास्तविक गुण है। इस प्रकार के कथोपकथनों की सत्ता भी वर्मा जी के उपन्यासों में हैं। प्रारम्भ की अठखेलियां करती हुई निन्नी की बातचीत की तुलना उसके रानी बन जाने के उपरान्त के कथोपकथनों से करने पर उपर्युक्त कथन स्पष्ट हो जाता है। प्रारम्भ की अल्हड़ निन्नी बाद को राजा मानसिंह से इस प्रकार के गम्भीर वचन कहती है–

"संकल्प और भावना जीवन तखड़ी के दो पलड़े हैं। जिसको अधिक भार से लाद दीजिये वही नीचे चला जायगा। संकल्प कर्तव्य है, भावना कला। दोनों के समान समन्वय की आवश्यकता है।"

इस प्रकार के उदाहरण और भी अनेक हैं, उन्हें उद्धृत कर अनावश्यक विस्तार करना हम उपर्युक्त नहीं समझते !

वर्मा जी के उपन्यासों का मूल विषय सौन्दर्य, प्रेम और वीरता है। इस कारण स्वाभाविक रूप से उनमें श्रृंगार और वीर रसों की प्रधानता है। इन रसों से सिंचित कथोपकथनों में भी एक अजीब सजीवता आ गई है। सरसता भी इनमें इतनी है कि ये पढ़ते ही अपना इच्छित प्रभाव उत्पन्न करते हैं। पहले श्रृंगार रस से सिंचित कथोप-कथनों का माधुर्य देखिये--मृगनयनी और मानसिंह महल की छत पर बैठे बातचीत कर रहे हैं। उनके दाम्पत्य प्रेम की कितनी सुन्दर व्यञ्जना निम्नांकित कथोपकथन में हुई है—

आज तुमको नायक बैजू की परिपाटी का बहुत अच्छा गायन वादन सुनने को मिलेगा—मानसिंह ने कहा।

वह उत्साह के साथ बोली–और इसके उपरान्त मैं भी अपने यहां आपको कुछ सुनाऊंगी और ताण्डव नृत्य दिखलाऊंगी। मैंने तैयार कर लिया है।

अवश्य ! अवश्य ! तुम जो कुछ भी न कर डालो वह थोड़ा है।

अच्छा अब आप लगे बनाने !

तो तुम मान कर जाओ, मैं मनाने लगूंगा।

यहां, चलिये मेरे यहाँ फिर देखूंगी आपको, कितना मनाते हैं! आज रंग पंचमी है। संभल कर आना।

अच्छा तो रही, देखें कौन किसको झुकाता है?

आपको हरा दूंगी।

उस हार में भी मेरी जीत रहेगी।

वाह! वाह! चित्त भी मेरा और पट्ट भी मेरा! वे हंस पड़े।"

इसी प्रकार का एक उदाहरण और देखिये—

"मानसिंह को प्रवचन करने की वृत्ति में देखकर मृगनयनी ने उसकी ओर आँखें ऊंची की। ओठों पर मुस्कान खिल गई और चेहरे पर निखर गई। टोक कर बोली—मन को जो आनन्द मिलता है, वह किस आनन्द के समान होता है।

इस मुस्कान को देखकर जो आनन्द मिलता है उसके समान।

इतने निकट से?

बड़ी कठिनाइयाँ भी तो निकट ही आती हैं, जिनका सामना निकट से ही करना पड़ता है। दूर की कठिनाइयाँ तो थोड़ा सा डर छोड़ कर चली जाती हैं।

छोड़ दीजिये, नहीं तो ओठों को समेट कर मुंह लटका लूंगी!

तो मैं हंस पड़ूंगा, फिर?

आप बहुत बुरे हैं।

और तुम बहुत अच्छी हो, बुरे और भले की जोड़ी का तो नियम ही है।"

'कचनार' में मानसिंह और कलावती की विवाह के पश्चात होने वाली बातचीत का एक उदाहरण देखिये—

"मानसिंह ने तकिया से जरा सिर उठाकर कहा—जरा घूंघट डालो, देखूं घूंघट के अंधेरे में नेत्र कितनी चाँदनी बरसाते हैं?

कलावती मुस्कराकर बोली-कितना लम्बा डालूं?

मानसिंह—हाथ भर लम्बा, जैसे रानियाँ हाथ भर लम्बा डालती हैं!

कलावती-अपने हाथ के नाप से या तुम्हारे हाथ के नाप से।

मानसिंह-अच्छा, एक बीता लम्बा, तुम्हारे कोमल हाथ का बीता।

कलावती-वही रहने दो, हाथ भर लम्बा, उसमें क्या क्या देखोगे?

मानसिंह-अरे, उसमें से तो कुछ भी न देख सकूंगा। अच्छा केवल चार अंगुल।

कलावती ने घूंघट चार छः अंगुल पीछे हटा लिया। मानसिंह बोला-यह लो

मैंने घूंघट को आगे डालने के लिये कहा था, या पीछे हटाने को ?

कलावती ने हंसकर कहा–दाँतों की उज्वल पंक्तियों से जगमगाहट सी झरी-तुमने कहा था घूंघट डालो, मैंने डाल दिया। आगे पीछे की बात तो कुछ कही नहीं थी।

मानसिंह–अब आगे डालो।

कलावती—फिर कहोगे पीछे खींचो

मानसिंह—नहीं कहूंगा

कलावती—पक्की बात ?

मानसिंह—बिल्कुल पक्की।

....

बोला—अब घूँघट पीछे हटा लो। बहुत देर से तुमको देखा ही नहीं

कलावती ने घूँघट थोड़ा सा और आगे खींचा

मानसिंह ने हंस कर कहा—मैंने यह कहा था ?

कलावती ने घूँघट के भीतर हंसते हुए पूँछा—मैं क्या तुम्हारी फौज की सिपाही हूं जो इतनी कवायत परेड करूँ ?

मानसिंह—हाँ, हो। नहीं, नहीं, सेनापति ! सेनापति को राजा का हुक्म मानना पड़ता है।

कलावती-जाओ मैं ऐसी सेनापति नहीं। अभी कहोगे खड़ीहो जाओ,फिर कहोगे बैठ जाओ, फिर दौड़ो। इतना सब हुकुम संसार का कोई भी सेनापति मानता होगा ? मानसिंह हंसा।"

वीर रस से पूर्ण कथोपकथनों में भी वर्मा जी के उपन्यास पूर्ण सफल हैं। उनके उपन्यासों की नायिकाएँ प्रेम ही नहीं करतीं उस प्रेम के लिये अपना बलिदान दे डालने को तत्पर रहती हैं। उनके मुख से यदि हम कभी श्रृंगार रस से सिंचित बातचीत सुनते हैं तो कभी वे ही स्त्रियाँ वीर रस से भीगे हुए कथनों द्वारा हमें आल्हादित करती हैं। 'मृगनयनी' उपन्यास में ही नायिका मृगनयनी मानसिंह को कर्तव्य के प्रति सचेत करती हुई कहती है–

"वीणा को बजाते बजाते काम पड़ने पर यदि तुरन्त तलवार न उठ पाई, कोमल सेज पर सोते सोते संकट आने पर यदि तुरन्तही उछल कर कमर न कसी, ध्रुव पद को गाते गाते शत्रु के सामने आ खड़े होने पर यदि तुरन्त गरज कर चुनौती न दे पाई, जिन कानों में मीठे स्वरों की रस धार बह बह जा रही थी, उन्हीं कानों में यदि यदि रण वाद्यों और कड़खों की धुन न समा पाई तो ऐसी, वीणा, सेज और ध्रुव पद

की तानों का काम ही क्या ?"

मानसिंह सजग हो उठते हैं और अपने कर्तव्य पालन में दृढ़ हो जाते हैं। इसी प्रकार 'झाँसी की रानी' में रानी अपनी सहेलियों के सामने जिस आवेश पूर्ण वीर रस से भीगे भाषण को देती हैं, उसकी तुलना जब हम हल्दी कूं कूं के उत्सव की रानी की बातचीत से करते हैं तब हमारे सम्मुख यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय नारी की वाणी में जितनी ही मिठास है अवसर आने पर वही शत्रुओं के लिये आग तक उगल सकती है।

"दादा बाजीराव पेशवा हतप्रभ होकर बिठूर चले आये परन्तु हम लोगों को वे स्वराज्य की शिक्षा देने से कभी नही चूके। यदि हिन्दुस्तान में कोई भी उस पवित्र काम को अपने हाथ में न ले तो भी मैंने अपने कृष्ण के सामने, अपनी आत्मा के भीतर उसका बीड़ा उठाया है। करूँगी और फिर करूँगी। चाहे मेरे पास खड़े होने के लिये हाथ भर भूमि ही क्यों न रह जाय। मान लो कि मैं सफल न हो पाई तो भी जिस स्वराज्य धारा को आगे बढ़ा जाऊँगी, वह अक्षय रहेगी। ......हमको एक बड़ा संतोष है। जनता हमारे साथ है। जनता सब कुछ है, जनता अमर है। इसको स्वराज्य के सूत्र में बाँधना चाहिये। राजाओं को अंग्रेज भले ही मिटा दें परन्तु जनता को नहीं मिटा सकते। एक दिन आवेगा जब उसी जनता के आगे होकर मैं स्वराज्य की पताका फहराऊँगी।"

'विराटा की पद्मिनी' में नरपति का कुमुद से आशीर्वाद माँगना, प्रमत्त होकर थिरकने लगना तो अपूर्व है। 'मृगनयनी' में लाखी की मृत्यु के पश्चात अटल का अपने सैनिकों का आवाहन करके युद्ध में जूझ मरना तो नेत्रों के सम्मुख चित्र बनकर रह जाता है।

स्वाभाविकता में भी वर्मा जी के उपन्यासों के कथोपकथन अपना सानी नहीं रखते। वे जितने ही संक्षिप्त हैं उतने ही स्वाभाविक भी। इस प्रकार के कथोपकथन प्रत्येक उपन्यास में हैं। एक उदाहरण इस प्रकार है—

निन्नी और लाखी होली के अवसर पर एक दूसरे के साथ अठखेलियाँ कर रहीं हैं। निन्नी लाखी के शरीर पर गोबर डालने के लिये झपटती है—लाखी कहती है—उ... उं...निन्नी हमारे कपड़े मैले मत करो।

बाहर निकलो, बाहर, तुमको सिर से पैर तक न रँग दिया और नचा न दिया तो मेरा नाम निन्नी नहीं। अरे रे रे रे...और लाखी ने हंसते हुये ओठों पर दोनों हाथ रख लिये और आँखें मूंद लीं। उछल उछल कर और अट्टहास करते हुये निन्नी

ने उसको कीचड़ से सान दिया ।

अब मेरी बारी है । पास पड़े हुये गोबर को झपट कर लाखीं ने उठाया और निन्नी की ओर बढ़ी । ......

एक उदाहरण इस प्रकार है—

'ब्याज समेत पा लिया' लाखी खिलखिलाती हुई बोली, 'तुम्हारे गोरे गालों पर कैसा बैठा है । अहा हा हा ! डिठौना सा लग गया !!! अब किसी की नजर नहीं लगने पावेगी । तुम्हारे एक गाल पर लगने से रह गया है, तो तुमको किसी की दीठ लग जावेगी ।

हूं, तो लगा दो, नहीं तो अपने हाथ से लगाये लेती हूं ।
बाहर चलो, कोई न कोई लगा देगा ।
कोई कैसे लगा देगा, जो तुमको लगा सकता है वही तो मुझको लगा सकेगा ।
भावजें हैं बाहर और कुछ बहनें
तुम्हारी है कोई ननद ?
अरी हिष्ट—लाखी हंस पड़ी ।"

'झांसी की रानी' में हरदी कूं कूं के अवसर पर रानी व उनकी सहेलियों के कथोपकथन जैसे स्वाभाविकता के आगार हैं । एक छोटा सा उदाहरण पर्याप्त होगा—बख्शिन रानी को झांसा देकर उनके पति का नाम उन्हीं के मुख से कहला रही है—

सरकार, बतलाइये, महादेव जी के कितने नाम हैं—

रानी ने अपने नेत्र जरा झुकाये—गला साफ किया-बोली—शिव,शंकर, भोलानाथ, शंभु, गिरजापति ......,
सरकार को तो पूरा कोष याद है । अब यह बतलाइये कि महादेव जी के जटा जूट में से क्या निकला है ?
सर्प रुद्राक्ष...

जी नहीं सरकार, किसकी तपस्या करने पर, किसको महादेव बाबा ने, अपनी जटाओं में छिपाया, और कौन वहां से निकल कर, हिमाचल से बह कर, इस देश को पवित्र करने के लिये आया ? ब्रह्मावर्त के नीचे किसका महान सुहावनापन है ?

गंगा का, यकायक लक्ष्मी बाई के मुह से निकल पड़ा । उपस्थित स्त्रियाँ हर्ष के मारे उन्मत्त हो उठीं ।"
रानी बख्शिन से पूंछतीं है—"बतलाओ मेरे ससुर का नाम ।"
चतुर बख्शिन घबड़ा गई । उसके मुंह से निकल गया, भाऊ साहब !

बख्शिन के पति का नाम लाला भाऊ था। रानी ने हंस कर बख्शिन का हाथ छोड़ दिया।"

'कचनार' में ही दलीपसिंह के मुख से गोंसाई अचल पुरी के आश्रम में जो भी बातचीत कराई गई है, सब स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक आधार लिये हुये हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि सुन्दर, स्वाभाविक और सजीव कथोपकथन वर्मा जी के उपन्यासों में भरे पड़े हैं। कहीं से भी उदाहरण दिया जा सकता है।

व्यंगात्मक और परिहासात्मक स्थलों पर कथोपकथनों में और भी सजीवता आ गई है! ऐसे स्थल भी अनेक हैं। निन्नी और लाखी की बातचीत का उदाहरण हम दे ही चुके हैं। यहाँ विजय जंगम और मानसिंह के बीच होने वाले वार्तालाप को सुनिये। राजा मानसिंह को निन्नी व लाखी के विषय में पता लगता है। वे उन कुमारियों को देखने के लिये उत्सुक हो उठते हैं। वे विजय जंगम से कहते हैं कि वे शिकार खेलने के लिये राई गांव जयंगे और उसे भी उनके साथ चलना पड़ेगा। विजय जंगम राजा के मन की बात जान लेता है। तुरन्त चुटकी लेता है। राजा कहता है—

फिर व्यंग !!! नहीं जाऊँगा बाबा। उस गाँव का वह ब्राह्मण दो बार आकर कह गया है। हुलास में आकर उससे कह देता हूं कि शीघ्र आऊँगा परन्तु वह हुलास क्षणिक सा रहा। मैं भूल गया।

आज फिर स्मरण हो आया।

मेरे साथ न्याय करो आचार्य! मैं केवल मन बहलाने के लिये नहीं जाना चाहता हूं जंगलों में। तीव्र गति से 'दौड़ते हुए भयङ्कर पशुओं को एक तीर से मार गिराने की की क्रिया में निपुण होना चाहता हूं। बन सका तो वहाँ के टूटे हुए मन्दिर के उद्धार में भी कुछ सहायता कर दूँगा।

गांव के उस शास्त्री ने कुछ और भी कहा था?

स्मरण नहीं आता।

कुछ बहेलिनियों की बात कही थी।

कही होगी, याद नहीं रही।

उपर्युक्त कथोपकथन में विजय जंगम के व्यंग्य अत्यधिक सरस हैं। राजा निन्नी व लाखी के प्रति अपने आकर्षण को छिपाना चाहता है पर विजय जंगम से छिपा नहीं पाता।

विवादात्मक स्थलों पर बातचीत तार्किक हो उठती है। 'मृगनयनी' का ही यह उद्धरण इसका प्रमाण है। राजा बोधन से रूढ़ि छोड़ देने का आग्रह करता

है। बोधव को अपने शास्त्रार्थ पर विश्वास था। वह राजा से बहस करता है—

"महाराज एक दरिद्र परन्तु निर्लोभ ब्राह्मण से बात कर रहे हैं। धर्म बेचा नहीं जा सकता।"

क्या तुम नहीं सोचते कि कितने हिन्दू तुम लोगों के इस कट्टर पन के कारण धर्म और समाज से दूर जा पड़े हैं!

"शरीर में फोड़ा या कोढ़ होने से वह अंग काम का नहीं रहता"

तुमको कभी फोड़ा हुआ है या कोढ़

कभी नहीं।

होगा तो क्या करोगे?

अंग को काटकर फेंक दूँगा।

विवेक से काम लो शास्त्री

महाराज से मैं क्या निवेदन करूँ? इतना तो भी कहना पड़ेगा कि क्षत्रिय ब्राह्मण को उपदेश देने के लिये नहीं बनाये गये हैं, धर्म, गौ, ब्राह्मण की रक्षा के लिये बनाये गए हैं।" अन्य उपन्यासों में भी जहाँ पारस्परिक वाद विवाद हुआ है, इसी प्रकार के तार्किक कथोपकथन देख पड़ते हैं।

आवेश पूर्ण स्थलों पर कथोपकथनों में एक अजीब गति आ गई है! वातावरण उन्हें भी आवेश मय बना देता है। 'गढ़ कुण्डार' से ही दो उदाहरण दिये जाते हैं। अग्निदत्त तारा के वेश में मानवती के हरण को पहुंचता है। उसकी भेंट वहां नागदेव से होती है। नागदेव उसे पहचान लेता है। उस समय उसका एक एक उद्‌गार आवेश से युक्त है—

नाग ने टोक कर कहा—नीच, पामर, पिशाच! अपने मित्र के साथ यह घात! इस बालिका के साथ यह दैत्याचार!!

अग्निदत्त—गाली देने से कोई लाभ नहीं। मैं आपको आपके प्रण का स्मरण दिलाता हूं और सहायता केवल यह चाहता हूं कि यह छुरी मुझको अपनी छाती में भोंक लेने दीजिये।

नाग का हाथ ढीला पड़ने लगा—बोला—राक्षस! मित्र घाती' तेरे लिये आत्म घात की सुविधा बड़ा भारी दान होगा। मैं अपने हाथ से तेरा गला घोटूँगा।......

.........नाग बोला—मौत नहीं। पुरानी बातों का स्मरण करके तेरे लिये दूसरा दण्ड निर्णय करता हूं। इसी समय कुण्डार छोड़कर किसी नरक में जा डूब। कभी अपना पापी कुत्सित मुंह कुण्डार के राज्य में मत दिखलाना। यदि कभी इस राज्य की सीमा

में देखा गया तो खेतसिंह की सौगन्ध खाता हूं कि खाल में भुस भरवाऊँगा और तेरे कुटुम्ब का कोई भी दुर्दशा से न बचने पायेगा। तेरे भी एक बहन हैं। सोच ले।"

फिर वह अग्निदत्त को लात मारता है। उसकी मां आ जाती है।

"रानी ने आकर कहा—तुमने किसको लात मारी? क्या तारा को? और यह क्या मानवती पड़ी है?

नाग की पागलों जैसी दशा हो रही थी। रुँधे हुए गले से बोला—

माँ! माँ! धरती फट जाय, तो मैं उसमें समाजाऊँ! आज सब तरह से, सब तरफ से मान मर्दित हुआ हूं।

अन्तिम दृश्य में जब अग्निदत्त गर्भवती मानवती की रक्षा करता है, उस समय शत्रुओं से उसकी बातचीत भी अत्यधिक आवेश पूर्ण है। पुण्यपाल की बातों में तो आवेश छलका पड़ता है। सामन्तीय व्यवस्था का नग्न रूप यहाँ उपस्थित है। घायल अग्निदत्त और मानवती जिसने उसी समय शिशु को जन्म दिया था—तड़पते हैं और बुन्देले जय मनाते हैं।

"पुण्यपाल ने ललकार कर कहा—कौन किससे लड़ रहा है?

दलपति ने पुण्यपाल को पहचान कर कहा–दलपतिसिंह, अग्निदत्त और खंगार से

पुण्यपाल ने कहा–अग्निदत्त से! क्यों? लड़ाई रोको। अग्निदत्त और खंगार एक साथ! एक तरफ!

नहीं रोकूँगा। दलपति बोला—इसने दो बुन्देलों को मारा है।

सुनते ही पुण्यपाल के सहसा प्रवर्ती रक्त में आग सी लग गई। पहले खंगारों के साथ विश्वास घात अब हमारे साथ!" पुण्यपाल ने कहा—"आप कदाचित यहाँ के राजा बनना चाहते हैं।"

इतने में अग्निदत्त के भरपूर वार से दलपतिसिंह का सिर धड़ से अलग होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

पुण्यपाल ने कहा—नीच, पापी, विश्वासघाती, संभल

अग्निदत्त बोला—मैं मृत्यु का आवाहन कर रहा हूं। आओ। जब मरना है तो किसी के हाथों सही!

सहजेन्द्र ने आकर कहा—क्या हो रहा है, कुछ समझ में नहीं आता। अग्निदत्त, तुम क्या कर रहे हो? क्यों कर रहे हो?

मैं सब जानता हूं। पुण्यपाल ने लपक कर कहा—संभल पापी।"

अग्निनत्त—आओ।

सहजेन्द्र बोला—कवच नहीं पहने है। ब्राह्मण है। पुण्यपाल, जाने दो।"

पुण्यपाल ने कहा - नहीं छोड़ूँगा।
सहजेन्द्र बीच में पड़ने ही वाला था कि उस घायल खंगार ने, जो बैठ गया था, खड़े होकर उस पर वार किया।
सहजेन्द्र ने वार रोक लिया-
पुण्यपाल बोला—देखते नहीं हो, इस नारकी के कपट को।" और वह अग्निदत्त पर पिल पड़ा।
....

उसके पश्चात ही अग्निदत्त के नग्न शरीर से पुण्यपाल की तलवार चमक कर निकल गई! अग्निदत्त चक्कर खाकर गिर पड़ा और छटपटाने लगा।

नवजात शिशु रोया !!

इस प्रकार आवेश पूर्ण स्थलों पर प्रयुक्त कथोपकथनों में एक गति है और स्वाभाविकता तथा सजीवता भी है।

'विराटा की पद्मिनी' का एक उदाहरण लीजिये ! कुन्जर और देवीसिंह में सामना होता है! दोनों तलवारें खींच लेते हैं। पर कुमुद दुर्गा के मन्दिर में रक्तपात न होने देना चाहती थी। दोनों के निम्नांकित वार्तालाप में आवेश का स्वरूप अत्यन्त उग्र हो गया है—

कुन्जर ने कहा—गलियों के भिखारी, छल प्रपंच करके, मेरे पिता के सिंहासन पर जा बैठा है, इसी लिये ऐसी बातें मार रहा है ! मन्दिर के बाहर चल और देखले कि पृथ्वी माता को किसका प्राण भार समान हो रहा है।
देवीसिंह गरज कर बोला–चल बाहर, दासी पुत्र, चल बाहर, महाराज नायकसिंह के सिंहासन पर शुद्ध बुन्देला ही बैठ सकता है। बांदियों के जाये उसे छू भी नहीं सकते !!"

वर्मा जी के उपन्यासों में आये हुये कथोपकथनों के इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि उनके उपन्यास कथोपकथनों की सजीवता और सुन्दरता में पूर्ण सफल हैं। कथोपकथनों में जिन गुणों की सत्ता अनिवार्य होती है वह उनमें विद्यमान है। यही कारण है कि उनके उपन्यासों की सजीवता और सरसता भी बढ़ गई है। कथा वस्तु के विकास में तो कथोपकथनों ने योग दिया ही है, पात्रों के चरित्रों की रेखाओं को उभारने में भी उनका महत्व पूर्ण हाथ है। बुन्देल खण्डी बोली में प्रयुक्त कथोपकथन स्थानीय रंगत को हमारे सम्मुख साकार कर देते हैं। भाषा की विवेचना करते समय हम उनको उद्धृत कर चुके हैं!

इस प्रकार कथावस्तु, चरित्र चित्रण, भाषा शैली और कथोपकथनों की दृष्टि से वर्मा जी के उपन्यासों की सफलता असंदिग्ध प्रतीत होती है। उनमें इन दृष्टियों से कुछ कमजोरियाँ भी हैं पर वे उन गुणों के सम्मुख उभर नहीं पातीं जिनकी सत्ता इन उपन्यासों में अत्यधिक है। उपन्यास शिल्प की दृष्टि से वर्मा जी की सफलता के विषय में कोई भी संदेह नहीं कर सकता। उनके उपन्यासों में उपन्यास शिल्प अपने पूरे सौन्दर्य के साथ निखर उठा है और उन्हें सरस बनाने में उसने कोई कसर नहीं उठा रखी।

—उपन्यासों की ऐतिहासिकता—

वर्मा जी के उपन्यासों की ऐतिहासिकता पर विचार करने के पूर्व ऐतिहासिक उपन्यासों की सीमाओं और आवश्यकताओं को भली भांति समझ लेना अत्यधिक आवश्यक है। वे कौन सी रेखाएँ हैं जो इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यास को एक दूसरे से भिन्न कर देती हैं, जो इतिहासकार और ऐतिहासिक उपन्यासकार के दृष्टिकोण में परिवर्तन की उत्तरदायी होती हैं ? इन प्रश्नों को समझे बिना हम विषय के साथ पूर्ण न्याय नहीं कर सकते। इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यासों में जहां पर्याप्त बातों में समानता होती है वहाँ बहुत कुछ विभिन्नताएँ भी होती हैं। इतिहास में किसी विशेष काल में घटी घटनाओं का एक ब्योरा होता है, उन घटनाओं से संबन्धित पात्रों का एक लेखा होता है परन्तु ऐतिहासिक उपन्यासों में उन घटनाओं को कल्पना के द्वारा आकर्षक और रमणीय बनाया जाता है और कल्पना भी ऐसी जो सीमा का अतिक्रमण न कर सके, इतिहास की आत्मा को आघात न पहुँचा सके, घटनाओं के स्वरूप को विकृत न कर सके। इतिहास के पात्र मृत प्रतीत होते हैं पर वही पात्र जब ऐतिहासिक उपन्यासों की सीमा में प्रवेश करते हैं तब हमें नवीन रक्त और मांस से युक्त, जीवन धारी प्रतीत होते हैं। जहाँ इतिहास हमें शुष्क एवं नीरस हड्डियां देता है वहाँ ऐतिहासिक उपन्यासकार उन्हीं हड्डियों में रक्त और मांस का सृजन कर उन्हें ऐसा सुन्दर शरीर प्रदान करता है जिसमें जीवन होता है, गति होती है, सत्य होता है और उस सत्य को रमणीय बनाने वाले कल्पना के रंगीन धागे भी ! ऐतिहासिक उपन्यासों में उस युग के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के भी स्पष्ट चित्र रहते हैं जो इतिहास में हमें नहीं मिलते और यदि मिलते भी हैं तो अत्यन्त धूमिल, जिन पर समय की स्याही चढ़ चुकी होती है।

इतिहास को ऐतिहासिक उपन्यास में परिवर्तित करने में ऐतिहासिक उपन्यासकार का बड़ा भारी दायित्व रहता है। उसके लिये कतिपय सीमाएँ निर्धारित होती हैं जिनके भीतर रह कर ही वह सब कुछ कर सकता है। सीमा का अतिक्रमण उसके लिये अत्यधिक घातक होता है। इन्हीं सीमाओं को बताते हुए श्री राहुल सांकृत्यायन * कहते हैं—"ऐतिहासिक उपन्यास में हमें ऐसे समाज और उसके व्यक्तियों का चित्रण करना पड़ता है जो सदा के लिए विलुप्त हो चुका है। किन्तु, उसने पद चिह्न कुछ जरूर छोड़े हैं जो उनके साथ मनमानी करने की इजाजत नहीं दे सकते। इन पद चिन्हों या ऐतिहासिक अवशेषों के पूरी तौर से अध्ययन को यदि अपने लिए दुष्कर समझते हैं, तो

---

*'आलोचना' के उपन्यास अंक से !!

कौन कहता है, आप जरूर ही इस पथ पर कदम रखें ? हम देखते हैं, कम से कम हमारे देश में समर्थ कथाकार भी ऐसी गलती कर बैठते हैं और बिना तैयारी के ही कलम उठा लेते हैं। इसमें शक नहीं, यदि उनकी लेखनी चमत्कारिक है तो साधारण पाठक उसे बड़ी दिलचस्पी से पढ़ेंगे और हमारे समालोचकों में बहुत कम ही ऐसे हैं जो ऐतिहासिक यथार्थवाद की परख रखते हैं, इसलिए इतिहास के जानकारों और प्रेमियों के सिर में दर्द पैदा करने वाले उपन्यासों पर खूब अच्छी समालोचना या सम्मति भी प्राप्त हो सकती है, लेकिन ऐसे लेखक की कृति पर राय देने का अधिकार आज ही के पाठक नहीं रखते, समान धर्मा लोगों की अनेक पीढ़ियाँ उन्हें देखेंगीं और वह ऐसे लेखक को तुच्छ दृष्टि से देखेंगीं। ....रेडियो पर एक बार अशोक संबन्धी एक कहानी प्रसारित हुई थी जिसमें बारूद का धड़ाका करवाया गया था। जहाँ अर्थशास्त्र, साइंस के विलायती यूनीवर्सिटियों के ग्रेजुएट प्रभु और महा प्रभु बनने के सबसे योग्य पात्र समझे जाते हों, वहाँ ऐसा अन्धेरखाता क्यों न हो ? × × × × × × × ऐतिहासिक उपन्यासकार का विवेक वैसा ही होना चाहिये जैसा कि इतिहासकार का होता है। उसे समझना चाहिए कि कौन सी सामग्री का मूल अधिक है और किसका कम है। लिखित सामग्री वही प्रथम श्रेणी की मानी जायेगी जिसे उसी समय लिपिबद्ध किया गया हो। × × × । ऐतिहासिक अनौचित्य से बचने के लिये जिस तरह तत्कालीन ऐतिहासिक सामग्री और इतिहास का अच्छी तरह अध्ययन आवश्यक है वैसे ही भौगोलिक अध्ययन की भी आवश्यकता है। ××× जिस तरह ऐतिहासिक मानदण्ड स्थापित करने के लिये तत्कालीन राजाओं के राज्य और शासन काल की पहले से ही तालिका बनाकर उसमें वर्णनीय घटनाओं के अध्याय क्रम को टाँक लेना जरूरी है उसी तरह भौगोलिक स्थानों, उनकी दिशाओं और दूरियों का ठीक ठीक अन्दाज रहने के लिये तत्संबंधी नक्शे का खाका हर वक्त सामने रखना चाहिये। ऐसा न करने से अक्षन्तव्य गलती हो जाती है।"

राहुल जी के विचार ऐतिहासिक उपन्यासकारों के लिये बहुत मूल्यवान हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों को लिखना सरल नहीं अत्यन्त ही कठिन है। पल पल पर लेखक को सावधान रहना पड़ता है कि कहीं वह इतिहास की सीमाओं से बाहर तो नहीं जा रहा है ? उसे समझ सोचकर ही इस राह में पग रखना होता है। जब तक ऐतिहासिक उपन्यासकार को उस युग के इतिहास, भूगोल, लोगों के रीति रिवाज, रहन सहन आदि की पूरी जानकारी न हो, जिसका कि चित्रण वह अपने उपन्यास में कर रहा है तब तक उसे ऐतिहासिक उपन्यास लिखने से दूर ही रहना चाहिये अन्यथा वह ऐतिहासिक उपन्यास तो नहीं 'इतिहास की छीछालेदर' ही उपस्थित करेगा !

ये ही वे अनिवार्यताएँ हैं जो ऐतिहासिक उपन्यासकार के साथ जुड़ी रहती हैं। अब इस सम्बन्ध में वर्मा जी के भी कुछ विचारों को जान लेना आवश्यक है। उनके अनुसार इतिहास लिखते समय लेखकों का "अपना अपना दृष्टिकोण कुछ न कुछ काम तो करता ही रहता है। इतिहास के आधार पर उपन्यास लिखने वाला भी अपना दृष्टिकोण रखता है परन्तु वह केवल इतिहास लिखने वाले की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र है।.........।"

वर्मा जी ने एक स्थान पर और भी कहा है—"जिन स्थलों पर इतिहास का प्रकाश नहीं पड़ सकता उनका कल्पना द्वारा सृजन करके, उपन्यास लेखक भूली हुई या खोई हुई सचाइयों का निर्माण करता है। उनमें वही चमक दमक आ जाती है जो इतिहास के जाने माने तथ्यों में अवश्यमेव होती है पर है यह कि उन तथ्यों या परम्पराओं को ताश के पत्तों का महल या क्लब घर न बना दिया जाय।"*

इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यास तथा ऐतिहासिक उपन्यासकार के दायित्वों पर उपर्युक्त उद्धरणों से पर्याप्त प्रकाश पड़ चुका है। यह बात कदाचित स्पष्ट होगई होगी कि ऐतिहासिक उपन्यास लिखते समय लेखक को किन सीमाओं में बंधा रहना पड़ता है, कहाँ वह स्वतंत्र रह सकता है और कहाँ उसकी स्वतंत्रता घातक हो सकती है? उपर्युक्त सीमाओं एवं अनिवार्यताओं का पालन करते हुए ही ऐतिहासिक उपन्यासकार सफल हो सकता है अन्यथा नहीं। वर्मा जी ने जहाँ इतिहास को आधार माना है वहाँ परम्पराओं, जनश्रुतियों और किम्वदन्तियों को भी महत्व प्रदान किया है पर उन्हें ऐतिहाहिक सांचे में इस प्रकार ढाल दिया गया है कि वे हमें आल्हादित करती हैं। इसके लिए उपन्यासकार ने अपने उपन्यासों के 'परिचय' में सब कुछ स्पष्ट कह दिया है। यह आलोचक का अपना दृष्टिकोण है कि वह उन्हें जिस रूप में चाहे आंके!

अभी तक वर्मा जी ने कुल सात ऐतिहासिक उपन्यास (प्रकाशित) लिखे हैं। कुछ ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाशित होने को हैं जिनसे अभी हमारा कोई तात्पर्य नहीं। जो ऐतिहासिक उपन्यास अब तक प्रकाशित हो चुके हैं—वे ये हैं—

(१) गढ़ कुण्डार (२) विराटा की पद्मिनी (३) मुसाहिब जू (४) कचनार (५) झांसी की रानी (६) मृगनयनी और (७) टूटे काँटे !!

विराटा की पद्मिनी को छोड़ कर शेष सभी इतिहास के अत्यधिक निकट हैं, परम्पराओं, किम्वदन्तियों और जनश्रुतियों का आधार भी सबमें न्यूनाधिक मात्रा में है। 'विराटा की पद्मिनी' का वातावरण भर ऐतिहासिक है, कथा का मुख्य आधार जनश्रुतियाँ

*'ऐतिहासिक उपन्यास और मेरा दृष्टिकोण, शीर्षक वर्मा जी के विवेचन से !!'

एवं किम्वदन्तियाँ हैं। इसे छोड़ कर शेष ६ उपन्यास अपनी कथा में भी इतिहास से संबद्ध हैं।

वर्मा जी के उपन्यासों की ऐतिहासिकता पर विचार करने के लिए सबसे पूर्व उनके 'परिचय' को भी पढ़ना आवश्यक है कारण इनकी ऐतिहासिकता, अनैतिहासिकता के विषय में स्वयं उपन्यासकार ने ही बहुत कुछ कह दिया है। उसके कथन को ध्यान में रखते हुए ही हम आगे बढ़ सकते हैं।

सर्व प्रथम हम 'गढ़ कुण्डार' को लेते हैं। 'गढ़ कुण्डार के 'परिचय' में उपन्यासकार ने कथा से सम्बन्धित इतिहास का संक्षेप में उल्लेख किया है। कुण्डार गढ़ पर कई राजवंश बैठे जिनमें गौड़, मौर्य, चन्देल, चौहान आदि प्रमुख हैं। जिस समय पृथ्वीराज चौहान (लगभग ११९२ ई०) शहाबुद्दीन गोरी से पराजित हुए उस समय कुण्डार का गढ़ उनके सामंत और सूबेदार खेतसिंह खंगार के हाथ में था। खेतसिंह स्वतंत्र होगया और उसके वंश ने जुझौति पर लगभग ८० वर्ष राज्य किया। इस बीच मुसलमानों ने कुण्डार पर अनेक आक्रमण किये पर उसे दीर्घकाल तक कब्जे में न रख सके। कुण्डार का अन्तिम राजा हुरमतसिंह था, कथा के साथ जिसका सम्बन्ध है। हुरमतसिंह के आधीन ही कई बुन्देले सरदार भी थे जिनमें एक का भाई सोहनपाल था, कथा में उसका भाग है। सोहनपाल भाई के बर्ताव से क्षुब्ध होकर उसका साथ छोड़कर इधर उधर उधर भटक रहा था। उसके साथ में उसका विश्वस्त साथी धीर प्रधान था (कथा में इसका भी भाग है)। धीर प्रधान का ही एक मित्र कुण्डार में था—नाम था विष्णुदत्त पाण्डे। पाण्डे का हुरमत-सिंह पर लाखों रुपया ऋण था। सोहनपाल की कार्य सिद्धि के लिए धीरप्रधान विष्णुदत्त से मिला! हुरमतसिंह अपने लड़के नागदेव का विवाह सोहनपाल की पुत्री से करना चाहता था पर बुन्देले इसके लिए तैयार न हुए! घटनावश सोहनपाल परिवारसहित कुण्डार गया जहाँ हुरमतसिंह ने बलपूर्वक उसकी पुत्री को पकड़ना चाहा पर विफल रहा। बुन्देलों ने प्रतिशोध लेने के लिए चाल चली! उन्होंने हुरमतसिंह के पास कहला भेजा कि वे पुत्री देने को तैयार हैं पर विवाह की विधि खंगारों की रीतियों के अनुसार ही सम्पादित हो। खंगार तैयार हो गये! उनमें मद्यपान का प्राबल्य था। बुन्देलों ने खंगारों को खूब शराब पिलाई और तत्पश्चात उन पर सहसा आक्रमण करके उनका नाश कर दिया। यह घटना सन् १२८८ ई० में घटित हुई ऐसा कहा गया है। कुण्डार पर सोहनपाल का राज्य हुआ। उसके पश्चात उसका पुत्र सहजेन्द्र राजा हुआ। सन् १५०७ तक बुन्देलों का राज्य रहा। सहजेन्द्र को राज्य दिलाने में करेरा के पँवार राजा पुण्यपाल ने सहायता की थी। सहजेन्द्र ने अपनी बहिन का विवाह उसके साथ किया। आगे वर्मा जी ने लिखा है "इस उपन्यास में से जितने वर्णित चरित्र

इतिहास प्रसिद्ध हैं उनका नाम ऊपर आ गया है। मूल घटना भी एक ऐतिहासिक सत्य है परन्तु खंगारों के विनाश के कुछ कारणों में थोड़ा सा मतभेद है।"

बुन्देले कहते हैं कि हुरमतसिंह बलपूर्वक सोहनपाल की पुत्री को अपने पुत्र नागदेव के लिए हस्तगत करना चाहता था ! वे लोग शराबी और दुर्व्यसनी थे। जान बूझ कर वे विवाह के प्रस्ताव की आग में कूदे और खुली लड़ाई में उनका अन्त किया गया।

कुछ लोग कहते हैं खंगार राजा दिल्ली के मुसलमान बादशाहों के मित्र थे इस कारण उनका संहार आवश्यक था ! खंगार 'दबी जबान से कहते हैं—बुन्देलों ने लड़की देना स्वीकार कर लिया था पर बाद में कपट करके उन्हें शराब पिलाई और अचेतावस्था में उन्हें मार डाला ! वे ये भी कहते हैं कि बुन्देले ही जुझौति में मुसलमानों को लाये थे।

वर्मा जी ने खंगारों के कथन को नहीं माना है। बुन्देलों ने अपने राज्यकाल में जुझौति की पर्याप्त श्री वृद्धि की। खंगारों का नाम मिट गया, हां एक समय उनके गौरव का भी था। "उनके पतन की जिम्मेदारी उनके निज के दोषों पर कम है। उसका दायित्व उस समय के समाज पर अधिक है। लेखक को इसी कारण अग्निदत्त पांडे की शरण लेनी पड़ी।"

कहानी के स्थान आज भी हैं परन्तु खंडहरों के रूप में। उन्हें देखने में लेखक को अपने एक मित्र दुर्जन कुम्हार से बड़ी सहायता मिली ! उपन्यास का अर्जुन कुम्हार इसी दुर्जन का ही प्रतिबिम्ब है !

'परिचय' में वर्मा जी ने केवल इतना ही स्पष्ट किया है जो इस उपन्यास की ऐतिहासिकता को हमारे सम्मुख स्पष्ट कर देता है। अग्निदत्त, तारा, दिवाकर मानवती, आदि चरित्र कल्पित हैं। मुख्य चरित्रों का जो ऐतिहासिक हैं, ऊपर नाम आ चुका है। मूल घटना भी ऐतिहासिक है। कथा का आकर्षण बढ़ाये रखने के लिये ही लेखक ने तीन २ प्रेमी युग्मों की कल्पना की है पर कल्पना तत्कालीन ऐतिहासिक वातावरण की संगति में है। श्री गोरेलाल तिवारी ने अपने 'बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, नामक ग्रन्थ में खेतसिंह का नाम खूबसिंह दिया है। हेमवती का नाम भी इस इतिहास में 'धर्म कुँवरि' लिखा है जो पवायां (ग्वालियर) के परमार राजा पुण्यपाल को ब्याही कही गई है। हेमवती नाम वर्मा जी की कल्पना है। इसे वर्मा जी ने भी स्वीकार किया है। उन्होंने पुण्यपाल को पवांया के स्थान पर करेरा का राजा कहा है। परमार के स्थान पर उसे पँवार कहा है। हो सकता है पँवार परमार का अपभ्रंश हो। मूल घटना जो कि पीछे वर्णित की गई है इतिहास सिद्ध है। हुरमतसिंह ने पुत्र

के लिए हेमवती को मांगा था ! कुछ शत्रुता सोहनपाल और हुरमतसिंह में पहले से ही थी ! इस प्रस्ताव ने चिनगारी का काम किया और खंगारों का नाश हुआ !

पात्रों के विषय में हम कह चुके हैं । सोहनपाल, हुरमतसिंह, नागदेव, सहजेन्द्र, हेमवती (धर्मकुँवरि) पुण्यपाल, धीर प्रधान, विष्णुदत्त पाण्डे इतिहास सिद्ध व्यक्ति हैं शेष काल्पनिक ! खंगारों और बुन्देलों के युद्ध की मूल घटना, हेमवती का विवाह में मांगा जाना, युद्ध, शराब पिला कर खंगारों का नाश आदि घटनाएँ सत्य हैं । शेष सब काल्पनिक हैं । अग्निदत्त पाण्डे का खंगारों के नाश में जो हाथ है वह उपन्यासकार की कल्पना है, इसे उसने स्पष्ट कर दिया है । स्थान सब ऐतिहासिक हैं । इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि उपन्यास की कथा कल्पना से विस्तृत किये जाने पर भी अपने मूल रूप में ऐतिहासिक है । ऐतिहासिक उपन्यासकार इतनी स्वतंत्रता का अधिकारी है ।

वर्मा जी का दूसरा ऐतिहासिक उपन्यास 'विराटा की पद्मिनी' है । इसकी कथा कल्पना से प्रसूत एवं जनश्रुतियों पर आधारित है । वातावरण अवश्य ऐतिहासिक है और उसका निर्वाह सफलता पूर्वक किया गया है । इसमें फर्रुखसियर के समय के इतिहास को पृष्ठ भूमि में लिया गया है जब उसकी निर्बलता के कारण सैयद भाइयों का ही वास्तविक शासन था । सैयद भाइयों की मृत्यु के पश्चात देश की अस्तव्यस्त राजनैतिक दशा इस उपन्यास से भली भांति विदित हो जाती है । कथा, पात्र सब काल्पनिक हैं । स्थानों के नाम अवश्य सत्य हैं । कथा के आधार के विषय में उपन्यासकार ने 'परिचय' में जो कुछ लिखा है उसका सारांश निम्नलिखित है:—

'विराटा की पद्मिनी' की कहानी उन्हें सुरतान पुरा (परगना मौठ, जिला झांसी) के निवासी नन्दू पुरोहित ने सुनाई थी जो उनके मित्र थे ! उन्हें कहानियां सुनाने का शौक था । कहानी वर्मा जी को आकर्षक लगी । वर्मा जी ने उसकी सत्यता की परीक्षा करनी चाही । एक दाँगी ने भी उसे बहुत कुछ उसी रूप में उन्हें सुनाया । इसके पश्चात वर्मा जी ने विराटा, रामनगर और मुसावली की दस्तूर देहियां सरकारी दफ्तर में पढ़ीं ! उनमें उन्हें पद्मिनी के बलिदान का सूक्ष्म वर्णन मिला । आगे वर्मा जी ने लिखा है—"देवीसिंह, लोचनसिंह, जनार्दन शर्मा, अलीमर्दान इत्यादि नाम काल्पनिक हैं परन्तु उनका इतिहास सत्य मूलक है । देवीसिंह का वास्तविक नाम इस समय नहीं बतलाया जा सकता है । अनेक कालों की सच्ची घटनाओं को एक ही काल में समावेश कर देने के कारण मैं इस पुरुष के सम्बन्ध की घटनाओं को दूसरी घटनाओं से अलग करके बतलाने में असमर्थ हूं । जनार्दन शर्मा का वास्तविक व्यक्तित्व एक दुखान्त घटना है । जिस तरह जनार्दन ने जाल रच कर देवीसिंह को राज्य दिलाया था, उसी

तरह वह इतिहास और किम्वदन्तियों में भी प्रसिद्ध है परन्तु वास्तविक जनार्दन का अन्त बड़ा भयानक हुआ था।"

"कहा जाता है राजा नायकसिंह के वास्तविक नामधारी राजा के मरने के बाद उनकी रानी ने प्रण किया था कि जब तक जनार्दन (वास्तविक व्यक्ति) का सिर काट कर मेरे सामने नहीं लाया जायगा तब तक मैं अन्न ग्रहण न करूँगी। रानी का एक सेवक जब उस बेचारे का सिर काट लाया तब उन्होंने अन्न ग्रहण किया। यह घटना झाँसी के निकट एक ग्राम गोराम छिया की है।"

"लोचनसिंह के वास्तविक रूप को इस संसार में विलीन हुए लगभग बीस वर्ष से अधिक नहीं हुए। वह बहुत ही उदण्ड और लड़ाकू प्रकृति के पुरुष थे। मेरे मित्र श्रीयुत मैथिलीशरण जी गुप्त ने उनके एक उद्दंड कृत्य पर 'सरस्वती' में 'दास्ताने' शीर्षक से एक कविता भी लिखी थी।"

"परन्तु जैसा मैं पहले कह चुका हूं उपन्यास कथित घटनाएँ सत्य मूलक होने पर भी अपने अनेक कालों से उठा कर एक ही समय की लड़ी में गूँथ दी गई हैं इस लिए कोई महाशय उपन्यास के किसी चरित्र को उसके वास्तविक रूप का सम्पूर्ण प्रतिबिम्ब न समझें और यदि कोई बात ऐसे चरित्र की उन्हे खटके तो बुरा न मानें।"

वर्मा जी के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि कथा का आधार जनश्रुतियाँ और दस्तूर देहियां हैं। घटनाएँ सत्य हैं पर इतिहास से सम्बन्धित नहीं हैं और अनेक कालों की हैं। इस कारण इस उपन्यास को ऐतिहासिक आवरण में लिपटा हुआ रोमान्स कहना ही अधिक उपयुक्त है। मुख्य चरित्र जिनके नाम ऊपर दिये गये हैं काल्पनिक हैं, परन्तु उनके सम्बन्ध में जनश्रुतियां हैं। शेष चरित्र बिल्कुल काल्पनिक हैं। कथा का संगठन भी कल्पना पर ही आधारित है। जैसा कहा गया केवल स्थान सत्य हैं और बुन्देलखण्ड का वातावरण भी! कुछ भी हो कल्पना रमणीय है और उसे ऐतिहासिक आवरण जिस कुशलता से उढ़ाया गया है वह सराहनीय है। उपन्यास पूर्ण ऐतिहासिक प्रतीत होने लगता है, यही उपन्यासकार की सबसे बड़ी सफलता है।

'मुसाहिब जू' के विषय में भी इतना ही कहा जा सकता है कि वह भी ऐतिहासिक आवरण में लिपटा हुआ कतिपय सत्य घटनाओं के आधार पर लिखा हुआ एक उपन्यास है। कल्पना का योग इसमें भी है। स्थानों के नाम इसमें भी सत्य हैं। गजेटियरों से इसकी कथा का स्वरूप निर्मित हुआ है। तत्कालीन ऐतिहासिक वातावरण सत्य और यथार्थ है। सामन्तवाद के अन्तिम दिनों का वर्णन इसमें साकार हो उठा है। जनश्रुतियों से इसमें भी लेखक को सहायता मिली है। इसे हम उस श्रेणी में नहीं रख सकते जिसमें गढ़ कुण्डार है। यह 'विराटा की पद्मिनी, के अधिक निकट है।

अब 'कचनार' को लीजिये! 'कचनार में इतिहास और परम्परा दोनों का योग है। अनेक काल की घटनाएँ इसमें भी एक ही काल में गूँथ दी गई हैं परन्तु इसकी अधिकांश घटनाएँ सत्य भी हैं। हाल की ही एक घटना "भुवाल सन्यासी केस" का भी लेखक ने कथा के विकास में उपयोग किया है। स्थान इसमें भी ऐतिहासिक हैं, सत्य हैं। तत्कालीन इतिहास भी इसमें पूर्णता से प्रतिबिम्बित है। पिण्डारियों के उपद्रव, गौसाइयों का उत्कर्ष, मराठों के आक्रमण, अंग्रेजों की शक्ति वृद्धि सभी कुछ इसमें झलक उठी हैं। 'परिचय' में उपन्यासकार ने इस सम्बन्ध की पर्याप्त बातों पर प्रकाश डाला है।

"सागर और धामोनी दोनों मेरे हृदय के बहुत निकट हैं। जब मैंने सागर गजेटियर, बुन्देलखण्ड का इतिहास और लाल कवि रचित छत्रप्रकाश, पढ़े और उन स्थानों की श्री को देखा तब मन में एक लालसा उत्पन्न हुई।" सन १९३५-३६ में वर्मा जी ने अमर कण्टक पर्वत का भ्रमण किया जिसका उनपर बहुत प्रभाव पड़ा। इसी बीच भुवाल सन्यासी का मुकदमा छपा! सागर और धामोनी ने अमर कण्टक के धूमिल संस्मरणों को सजग कर दिया!

सन ४६ के लगभग उन्हें एक पुस्तक Notes on the Transactions of the Maratha Empire मिली जो इंगलैण्ड में सन १८०५ में छपी थी। कुछ और पुस्तकें उनके हाथ में आईं जिनमें एलविन की Folk songs of the mekhal range और नागपुर से सरकार द्वारा प्रकाशित The Raj Gonds प्रमुख हैं।

"धामोनी गोंडों—राजगोंडों का था मुगलों, मराठों और बुन्देलों की जकड़ों में से गोंडों ने हटते हटते भी इसको खोया और पाया। यह क्रम कई बार घटित हुआ।"

'भुवाल सन्यासी केस' डाक्टरों और वैज्ञानिकों में मतभेद का कारण हुआ। वर्मा जी ने मुकदमें से सम्बन्धित, मूल तथ्य का उपयोग किया है। डॉ० बखरू इस सम्बन्ध में उन्हें सहायक सिद्ध हुए। पर हमें इससे यहाँ तात्पर्य नहीं है।

'कचनार' के ऐतिहासिक पहलू पर लिखते हुए वर्मा जी कहते हैं—"कचनार के ऐतिहासिक पहलू के सम्बन्ध में मुझको उतना संकोच नहीं है। उपन्यास में वर्णित सब घटनाएँ सच्ची हैं। केवल समय और स्थान का फेर है। उदाहरण के लिये डरू की घटना जो उसके भाई के वध से सम्बन्ध रखती है, धामोनी की नहीं है बल्कि ओरछा राज्य स्थित उबोरा ग्राम से सम्बन्ध रखती है। डरू का नाम भी उबोरा से लिया गया है। बाकी डरू का कर्नल हो जाना, पिण्डारियों द्वारा सागर की लूट में भाग लेना, अन्त में साहस के साथ अपने वध का सामना करना सब ऐतिहासिक घटनाएँ हैं। जनरल मालकम ने अपने Memoirs of central India में उनमें से कई का

वर्णन किया है। परन्तु असली डरू जल्लाद के हाथों मारा गया था—जब सिपाहियों ने गोली मारने से इन्कार किया। परन्तु मुझको डरू को मरवा देने की आवश्यकता नहीं जान पड़ी"। "महन्त अचलपुरी और उनका अखाड़ा एक वास्तविकता है.........। मैंने कचनार के लिखने में उपन्यास के अनुसार इतिहास और परम्परा दोनों का उपयोग किया है।"

'परिचय' से स्पष्ट है कि 'कचनार' में इतिहास भी है और परम्परा भी! डरू की घटना की ऐतिहासिकता के विषय में तो लेखक ने पर्याप्त हवाला दिया है पर दलीपसिंह, मानसिंह, कचनार जैसे मुख्य पात्रों के सम्बन्ध में और उनसे सम्बन्धित घटना के विषय में लेखक बिलकुल चुप हो गया है। भले ही धामोनी में राज गोंडों का राज्य रहा हो पर जिन घटनाओं का उपन्यास के मुख्य पात्रों के साथ सम्बन्ध है उनके सम्बन्ध में उपन्यासकार की चुप्पी से यही निष्कर्ष निकलता है कि वे सब काल्पनिक हैं। भुवाल सन्यासी के मुकदमें आदि ने ही उन्हें उत्पन्न किया है। इन पात्रों के नाम भी काल्पनिक हैं। उपन्यास की कुछ घटनाओं का सम्बन्ध ही इतिहास से है, शेष का नहीं। वे अतीत और आधुनिक काल सबसे सम्बन्ध रखती हैं। उनकी सत्यता उन्हें ऐतिहासिक नहीं बना सकती! अस्तु 'कचनार' भी मुसाहिब जू की कोटि में ही आता है जो इतिहास और परम्परा दोनों पर आधारित है। गढ़-कुण्डार की कोटि में इसे भी नहीं रखा जा सकता।

'कचनार' के पश्चात हमारी दृष्टि 'झाँसी की रानी' पर पड़ती है। झाँसी की रानी' में वर्मा जी सर्व प्रथम वास्तविक ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में प्रकट हुये हैं। यह उपन्यास उनकी बारह-तेरह वर्ष की ऐतिहासिक खोज बीन का परिणाम है। इस उपन्यास के लिखने में उनका उद्देश्य ही यही था कि इसमें ऐतिहासिक तथ्यों का पूर्ण रूपेण पालन हो। 'परिचय' में उन्होंने लिखा है—"मैंने निश्चय किया कि उपन्यास लिखूँगा, ऐसा जो इतिहास के रगरेशे से सम्मत हो और उसके संदर्भ में हो। इतिहास के कंकाल में मांस और रक्त का संचार करने के लिये मुझको उपन्यास ही अच्छा साधन प्रतीत हुआ।"

वर्मा जी के इसी निश्चय ने ही प्रस्तुत उपन्यास को पूर्णतः ऐतिहासिक आवरण पहनाया है। इतिहास के अत्यधिक आग्रह के कारण यह अधिकांश स्थलों पर बोझिल भी हो उठा है पर इसके अतिरिक्त और कोई उपाय न था। ऐतिहासिक तथ्यों का वर्णन ऐतिहासिकता की रक्षा के लिये आवश्यक था।

पारसनीस ने लिखा था कि रानी विवश होकर अँगरेजों से लड़ी थीं। वे झाँसी का प्रबन्ध अँग्रेजों की ओर से ही कर रहीं थीं। उनका शौर्य विवशता की

परिस्थिति में उत्पन्न हुआ था ! वर्मा जी को यह बात खटकी । उन्होंने 'परिचय' में लिखा है—'पारसनीस' के अन्वेषण काफी मूल्यवान होते हुये भी उनका विचार कि रानी झांसी का प्रबन्ध अँगरेजों की ओर से 'गदर' के जमाने में करती रहीं—परदादी और दादी की बतलाई हुई परम्पराओं के सामने मन में खपता नहीं था ।" झाँसी की रानी के विषय में भारतीयों की एक अपनी धारणा है । हमें भी पारसनीस का उपर्युक्त कथन मान्य नहीं है ।

वर्मा जी का दृढ़ विश्वास था कि रानी स्वतंत्रता के लिये लड़ीं । उन्होंने सामग्री की खोज की । जजी कचहरी की अलमारी में चालीस पचास चिट्ठियाँ उन्हें मिलीं "जो १८५८ में किसी अंग्रेज फौजी अफसर ने ले० गवर्नर के पास झाँसी को अधिकृत कर लेने के बाद रोज रोज भेजी थीं ।"

इन चिट्ठियों से वर्मा जी का रानी के सम्बन्ध में निजी विश्वास और भी दृढ़ हुआ । इसके पश्चात नवाब अली बहादुर का रोज नामचा भी उन्हें मिला—रानी लक्ष्मी बाई की विलक्षणता और तत्कालीन समाज की प्रगति और रहन सहन का भी उससे पता चला ।

मुंशी तुराब अली दरोगा ने जो अँग्रेजों की ओर से पुलिस के थानेदार थे, वर्मा जी को रानी के सम्बन्ध में बहुत बातें बताईं । इनकी मृत्यु ११५ वर्ष की आयु में हुई । उनकी बताई हुई बातों से वर्मा जी के विश्वास को और भी दृढ़ता प्राप्त हुई । इसी प्रकार के कतिपय अन्य सूत्र भी उन्हें मिले जो उनकी विचार धारा के ही पोषक थे ।

मोती बाई—जूही, दुर्गा बाई, मुगल खां ऐतिहासिक हैं । इनके सम्बन्ध की घटनाओं का सार सत्य है ।

निष्कर्ष यह कि केवल पारसनीस महोदय के कथन की प्रतिक्रिया स्वरूप ही वर्मा जी को इतने सूत्र ढूँढ़ने पड़े । उपन्यास पूर्ण रूपेण ऐतिहासिक हैं । प्रेम कथाओं में अवश्य कल्पना ने भी पर्याप्त सहयोग दिया है । छोटी का वास्तविक नाम मझरिया था, ऐसा वर्मा जी ने 'परिशिष्ट' में लिखा है । उपन्यास में वर्णित स्थान भी ऐतिहासिक हैं । ऐतिहासिक तथ्यों के अत्यधिक आग्रह ने, जैसा कि कहा जा चुका है उपन्यास को बोझिल कर दिया है । 'प्रस्तावना' का अंश राजा गंगाधर राव व उनके पूर्वजों के इतिहास से ही संबंधित है । 'ऊषा के पूर्व' से कथा प्रारम्भ होती है जो 'अस्त' तक पहुँचकर समाप्त हो जाती है । कथा में भी अधिकाँश स्थलों पर उपन्यास से इतिहास प्रबल हो उठा है ।

झाँसी की रानी को हुए अभी पर्याप्त समय नहीं बीता इसी कारण ऐतिहासिक

तथ्यों के अन्वेषण में वर्मा जी को विशेष दिक्कत नहीं पड़ी। स्वयं भी झाँसी के ही निवासी होने के कारण एवं आनन्द राय के द्वारा रानी से किसी न किसी रूप में सम्बन्धित होने के कारण भी उन्हें उनके विषय में पर्याप्त सामग्री मिली। इतिहास एवं जनता की रानी के प्रति धारणाओं, दोनों का योग प्रस्तुत उपन्यास में निखर उठा है। वर्मा जी के समस्त ऐतिहासिक उपन्यासों में केवल यही ऐसा है जो एक बहुत बड़ी सीमा तक अपने ऐतिहासिक होने का दावा कर सकता है।

'झाँसी की रानी' के पश्चात 'मृगनयनी' का प्रकाशन हुआ। 'मृगनयनी' निश्चय ही 'झाँसी की रानी' की ऐतिहासिता के समकक्ष नहीं है कारण वर्मा जी ने प्रारम्भ में ही स्पष्ट कह दिया है कि इसका कथानक ऐतिहासिक रूमानी है। यही कारण है कि इसमें 'झाँसी की रानी' की अपेक्षा इतिहास का आग्रह कम है और जनश्रुतियों को भी महत्व दिया गया है।

'मृगनयनी' का कथानक मानसिंह तोमर (१४८६–१५१६) के राज्य काल से संबंध रखता है। मानसिंह ग्वालियर का राजा था। इस काल में इतनी अधिक राजनैतिक अस्तव्यस्तता थी कि इसे यदि इतिहास का अंध युग कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। ऐसे समय में भी ग्वालियर ने कला और संस्कृति के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति की। अंग्रेज इतिहासकारों ने मानसिंह के राज्य काल को तोमर शासन का स्वर्ण युग (Golden age of Tomar rule) कहा है। वर्मा जी के ही अनुसार "पन्द्रहवीं शताब्दि के अन्त और सोलहवीं के प्रारम्भ को राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से भारतीय इतिहास का कराल, कठोर और काला युग कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। उत्तर में सिकन्दर लोदी और उसके सहयोगियों के परस्पर युद्ध तथा दोनों द्वारा घोर जन-पीड़न, राजस्थान में राणा कुम्भा का अपने बेटे के ही हाथ से विष द्वारा वध, और उसके उपरान्त वहां की अराजकता, गुजरात में महमूद बघर्रा के अगणित विजन और रक्तपात, मालवा में गयासुद्दीन खिलजी और उसके उत्तराधिकारी नसीरुद्दीन की अत्याचार प्रियता और अय्याशी, दक्षिण में बहमनी सल्तनत और विजय नगर राज्य के युद्ध और बहमनी सल्तनत का पाँच सल्तनतों में बिखर जाना, जौनपुर, बिहार, और बंगाल में पठान सरदारों की निरन्तर नोच खसोट और इन सबके लगभग बीच में ग्वालियर। ग्वालियर पर सिकन्दर लोदी के पिता बहलोल ने आक्रमण किये, फिर सिकन्दर ने ग्वालियर का कचूमर निकालने के लिये कसर नहीं लगाई। सिकन्दर ग्वालियर पर पाँच बार वेग से आया। पांचो बार उसे मानसिंह के सामने से लौट जाना पड़ा।........ अन्त में सिकन्दर को १५०४ में आगरे का निर्माण इसी मानसिंह तोमर को पराजित करने के लिये करना पड़ा.........तो भी सिकन्दर सफल न हो पाया। ग्वालियर पर

घेरा डालकर नरवर पर चढ़ाई करदी थी। नरवर ग्वालियर राज्य में था। उस पर दावा राजसिंह कछवाहा का था। राजसिंह ने सिकन्दर का साथ दिया। तो भी नरवर वाले ११ महीने तक लगातार छाती अड़ाए रहे। जब खाने को घास और पेड़ों की छाल तक अलभ्य हो गई तब उन लोगों ने आत्म समर्पण किया। फिर सिकन्दर ने मन की जलन को नरवर स्थित मन्दिरों और मूर्तियों पर निकाला—वह ६ महीने इसी उद्देश्य से नरवर में रहा।"

मानसिंह ने ग्वालियर में अनेक नवीन भवन बनवाये जो आज भी हैं। मान मन्दिर और गूजरी महल इनमें प्रमुख हैं! ग्वालियर का संगीत विद्यापीठ भी उसी समय स्थापित हुआ था जिसमें तानसेन ने भी शिक्षा पाई थी।

मानसिंह और गूजरी रानी मृगनयनी का विवाह कहा जाता है सन १४६२ के लगभग हुआ। बैजू बावरा (इतिहास प्रसिद्ध गायक) मानसिंह के ही दरबार में था! उसने मृगनयनी के नाम पर कई राग बनाये—जिनमें गूजरी टोड़ी और मँगल गूजरी विशेष प्रसिद्ध हैं।

मृगनयनी गूजर कुल की थी और राई गाँव की निवासिनी। वीरता और शौर्य में विवाह के पहले ही प्रसिद्ध थी।

महमूद बघर्रा के भोजन का उल्लेख 'मीराते सिकन्दरी' के आधार पर किया गया है! नसीरुद्दीन की विलास प्रियता एवं उसका पन्द्रह हजार बेगमें रखना भी इतिहास प्रसिद्ध ही है।

स्वयं वर्मा जी के अनुसार "उपन्यास में आये सभी चरित्र—थोड़ों को छोड़कर ऐतिहासिक हैं। विजय जंगम लिंगायत था······लिंगायत सम्प्रदाय का, बासव पुराण दक्षिण में बारहवीं शताब्दी में लिखा गया था ······ विजय जंगम मानसिंह तोमर का मित्र था।"

"लाखी और अटल की कथा के साथ नटों का सम्बन्ध है·········। मृगनयनी ने अपने ब्याह से पहले राजा मानसिंह से जो वचन लिये थे उनमें से एक यह भी था कि राजा राई गाँव से ग्वालियर किले तक साँक नदी की नहर ले जायेंगे। राजा ने यह नहर बनवाई, उसके चिन्ह अब भी वर्तमान हैं।"

मानसिंह के आठ रानियां होने वाली बात लेखक को ग्वालियर किले के Guide से पता चली! यह किम्वदन्ती है। किम्वदन्तियाँ तो मानसिंह के २०० रानियां होने को भी कहती हैं पर लेखक को आठ रानियों वाली किम्वदन्ती मान्य लगी।

मृगनयनी के दो पुत्रों वाली बात भी गूजरों और Guide के अनुसार है। इनके विषय में भी किम्वदन्तियां हैं। कुछ कहते हैं कि इन दोनों पुत्रों ने आत्म वध कर लिया था और कुछ कहते हैं कि मृगनयनी ने स्वयं ही अपने पुत्रों को राज्य

न दिला कर विक्रमादित्य को राज्य दिलाया था! लेखक ने इसी दूसरी बात को माना है। दोनों ही बातें परम्परा पर आधारित हैं।

बोधन ब्राह्मण भी ऐतिहासिक व्यक्ति है। वर्मा जी के अनुसार—"उसके मारने वालों की बर्बरता का मैंने बहुत थोड़ा वर्णन किया है—करना पड़ा।" उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि 'मृगनयनी' में भी वर्मा जी ने इतिहास एवं किम्वदन्तियों, तथा परम्पराओं का सहारा लिया है। मृगनयनी और मानसिंह के विवाह से संबन्धित घटना किम्बदन्ती ही है। अटल और लाखी की कथा भी जनश्रुति पर आधारित है।

पात्रों में अटल, लाखी की जनश्रुति के आधार पर सृष्टि हुई है। पिल्ली, पोटा, कला, निहालसिंह आदि पात्र काल्पनिक हैं। मृगनयनी, मानसिंह, सिकन्दर, बघर्रा, गियास, नसीरुद्दीन, राजसिंह, विजय जंगम, बैजू, बोधन आदि पूर्ण ऐतिहासिक हैं।

सुल्तानों एवं मानसिंह के बीच में हुए युद्ध ऐतिहासिक हैं। मृगनयनी का अरने की सींग पकड़ कर मोड़ देना और शिकार खेलते हुए मानसिंह को मुग्ध कर देना 'ग्वालियर गजेटियर के आधार पर है। नरवर के ऊपर हुए आक्रमण भी इतिहास प्रसिद्ध हैं।

उपन्यास में आये सारे स्थान ऐतिहासिक हैं। राई की गढ़ी के भग्नावशेष, सांक की नहर के चिन्ह आज भी हैं। ग्वालियर किले का तैलमन्दिर मानसिंह और विजय जंगम की मित्रता का परिचयक है। बैजू द्वारा बनाये गये रागों के विषय में हम कह ही चुके हैं।

इस प्रकार उपन्यास की मुख्य कथा ऐतिहासिक है। प्रासंगिक कथाएँ अवश्य काल्पनिक और जनश्रुतियों पर आधारित हैं। उनमें भी थोड़ा बहुत इतिहास झलक उठा है। जहाँ २ लेखक ने इतिहास के अतिरिक्त अन्य आधार माने हैं—वहाँ उसने स्पष्ट कर दिया है। इन जनश्रुतियों ने जिस कथा को जन्म दिया है वह भी उतनी ही आकर्षक है जितनी मूल कथा!

'गढ़कुण्डार' की कोटि में 'मृगनयनी' को भली भांति रखा जा सकता है। इसे ऐतिहासिक कहने में हमें कोई झिझक नहीं! उपन्यासकार को कल्पनाएँ करने का अधिकार है और वर्मा जी ने जहाँ भी कल्पनाएँ की हैं वहाँ इतिहास तनिक भी विकृत नहीं हुआ! वे पूर्ण रूपेण इतिहास की संगति में हैं।

वर्मा जी का सबसे नवीनतम् ऐतिहासिक उपन्यास 'टूटे काँटे' है। इसके 'परिचय' में लेखक ने लिखा है—"टूटे काँटे की मूल कथा का सार बहुत समय से मन को कोंच रहा था। यथेष्ट सामग्री प्राप्त करने की लालसा में प्रकाशित ग्रन्थों को, जो मेरी पहुँच के भीतर थे, टटोला तो उनसे संतोष नहीं हुआ। बाजीराव का दिल्ली पर

१७३७ में यकायक झपट्टा मारना, मुहम्मदशाह के दरबारी और उनकी रंगरेलियाँ, मीर हसन खाँ दरबारी की हेकड़ी और गुण्डागीरी, निजामुलमुल्क और सादत खाँ की महत्वाकांक्षाएँ और अपनी २ स्वार्थ सिद्धि के लिये नादिरशाह को उन दोनों का न्योता, जाटों का उत्थान, शासन की घोर अव्यवस्था इत्यादि प्रसंग तो इतिहासों में कम बढ़ ब्योरे के साथ मिले परन्तु जन साधारण की आर्थिक स्थिति, जन संस्कृति का उतार चढ़ाव और जनमन की प्रगति का वर्णन विश्लेषण हाथ न पड़ा।

उत्तर भारत का साधारण जन विपदग्रस्त था और विषण्ण। कष्टों के पत्थर आए दिन उसके सिर पर फिकते रहते थे। वह रोता था—और गाता भी था। क्या गाता होगा ? कब कैसे ? त्रस्त मनो कामना की तृप्ति के लिये उसके पास त्योहार थे, लोक गीत थे। कुण्ठित मन को वह उनमें व्यक्त करता था परन्तु मनोबल उसको प्राप्त होता था सन्त महात्माओं की वाणी और सन्तप्त हृदयों के अमृत, भक्ति मार्ग से। कैसे गांठ में आता होगा मनोबल इस साधन द्वारा, मनोविज्ञान का विद्यार्थी उसको अपनी कल्पना में बाँध नहीं पाता।

इन सन्त महात्माओं और सन्त कवियों का वर्णन और जन संस्कृति तथा प्रगति पर उनका प्रभाव कितना होता रहा है, यह फारसी की विख्यात इतिहास पुस्तकों में बहुत ही कम मिलता है।"

इसके पश्चात लेखक ने राय चतुरमन कायथ और बहादुरसिंह भटनागर की लिखी दो पुस्तकें 'चहारे गुलशन' (१७५६) और 'यादगारे बहादुरी' (१८१७) का उल्लेख किया है जिसमें सन्तों, काव्यों और कलाकारों के बारे में विशदता से लिखा गया है।

जिस समय दिल्ली पर नादिर शाह का आक्रमण हुआ था उस समय वहाँ मुहम्मद शाह (१७१६–४८) का राज्य था। "नादिर शाह के आक्रमण का आप बीता और आँखों देखा वर्णन आनन्दराम मुखलिस ने अपने इतिहास 'तज किरह' में किया है।" ....फ्रेजर ने जो उस समय अहमदा बाद में था—नादिर शाह पर पुस्तक लिखी थी। यह—'नादिर शाह' सन १७४२ में लन्दन में छपी थी। फ्रेजर का एक 'परम मित्र' मिर्जा मुगल अहमदा बाद में था। इसी मित्र के पास दिल्ली से सरबुलन्द खां के निजी सचिव के पत्र आया करते थे। नादिर शाह ने सरबुलन्द खां को दिल्ली की लूट वसूली पर नियुक्त कर रखा था। इसलिये उन पत्रों में जो कुछ लिखा गया उसका विश्वास किया जा सकता है। यह पुस्तक मुझे भाग्य से मिल गई परन्तु उसमें इतना विशद वर्णन नहीं है जितना आनन्दराम 'मुखलिस' के 'तजकिरह' में उपलब्ध है! आनन्दराम मुहम्मद शाह के मुंशियों में था।"

इलियट और डासन ने अपने ग्रन्थ 'History of India as told by its own historians' में इस विषय पर केवल २१ पृष्ठ लिखे हैं। लेखक ने आनन्दराम की 'तज किरह' की खोज की। . बड़ी कठिनाइयों के पश्चात वह उसे मिली। उसे लेखक ने एक मौलाना साहब से सुना।

नूरबाई का वृत्तान्त लेखक को ख्वाजा अब्दुल करीम खां काश्मीरी की पुस्तक 'बयाने वुकाय' में मिला जो लाहौर की पब्लिक लाइब्रेरी में है। एक पाकिस्तानी मुसलमान मित्र के द्वारा उन्हें इससे बहुत सी सामग्री मिली !

नूरबाई पर अर्विन ने भी अपने 'Later Moughals' Vol. II में लिखा है पर संक्षेप में। अर्विन लिखता है—

"The Conqueror (नादिर शाह) allowed himself some relaxation after his ardous compaigns. Dances and songs were performed before him. One Indian dancing girl named Nurbai so highly fascinated him by her musical powers and ode in honour of him that he ordered her to be paid Rs 4000 and taken to Persia in his train. It was with the greatest difficulty that she culd save her self from this last mark of his favour"

अर्थात्—"विजेता ने कठोर अभियानों के उपरान्त कुछ अवकाश मनोरंजन के लिये निकाला। उसके सामने नृत्य और गान हुए। नूरबाई नामकी एक भारतीय नर्तकी ने अपनी संगीत शक्ति और विजेता के यश गान से उसे इतना मुग्ध कर दिया कि उसने नूरबाई को चार सहस्र रुपये दिये और साथ में ईरान ले जाने का आदेश किया। इस अन्तिम कृपा से नूरबाई ने अत्यन्त कठिनता के साथ अपने को बचा पाया।"

"नूरबाई फारसी की गजलें तो गाती ही थी उसे सूरदास,नन्ददास और रसखान के पद बहुत प्रिय थे। हो सकता है जब नूरबाई ने कोई पद गाया तो मुहम्मद शाह ने नादिर शाह को सुमाया हो कि 'कन्हैया की तारीफ' का पद 'आपकी ही तारीफ' में है।"

नूरबाई पहले सादत खाँ के पास थी। बाद में वह मुहम्मद शाह के पास पहुँच गई। सादत खाँ को यह बुरा लगा। उसने नादिर शाह को इसलिये भी निमन्त्रण दिया ! उसका जो अन्त हुआ वह उपन्यास में है। यह इतिहास को मान्य है कि सादत खां ने आत्म घात किया ! क्यों किया इस पर विभिन्न मत हैं। लेखक को केवल इतना ही मान्य है कि उसने आत्मघात किया।

मुहम्मद शाह ने नादिर शाह को नूरबाई दी। नादिर शाह इतने से ही न तृप्त हुआ। उसने बीस करोड़ रुपये और मांगे। मुहम्मद शाह न दे सका। उसने दिल्ली को लूटा और सत्तर करोड़ की सम्पत्ति और तख्तताऊस लेकर ईरान रवाना हुआ। साथ में नूरबाई और ४००० नर्तकियां और थीं !

नादिर शाह की लूट का विवरण अब्दुल अजीज की पुस्तक 'The Imperial-treasury of the Indian Moughals' में है।

नूरबाई देश न छोड़ना चाहती थी। लाल किले के पहरे में कुछ हिन्दू जाट भी थे। उन्हीं में से एक की सहायता से वह निकल भागी।

४००० नर्तकियां भी वह ईरान न ले जा सका। चिनाब नदी में बाढ़ आई। सब कुछ अस्त व्यस्त हो गया। इसी में वे भी बच गईं।

दिल्ली के कत्लेआम का वर्णन लेखक ने हैनवे नामक एक यूरोपीय यात्री के बयान के आधार पर किया है।

अब प्रश्न उठता है नूरबाई दिल्ली से भाग कर कहाँ गई ? लेखक ने उसे पहले से ही भक्ति की धारा में लीन दिखाया है। उसके अनुसार वह ब्रज गई और वहीं उसने उस जाट सैनिक के साथ नए जीवन का प्रारम्भ किया। यह कहाँ तक इतिहास सिद्ध है इस पर लेखक ने कुछ नहीं कहा—उसने संकेत यह किया है—

"नूरबाई लाल किले से भागकर 'कुफ्र' में शामिल हो गई। सदासुख के बतलाये हुये वैसे दुराग्रही इतिहास लेखक और क्या कहते ? हाँ रसखान होता तो वह कहता सच्ची बात। या दतिया का 'कारे' कवि जिसकी दो पंक्तियाँ ही काफी होंगी—

हिन्दुन के नाथ तो हमारा कुछ दावा नहीं—
जगत के नाथ तो हमारी सुधि लीजिये—

नूरबाई ब्रज तीर्थ में कैसे पहुँच गई होगी ? जब दिल्ली में कहर बरस रहा था, नादिरशाह के सिपाही दिल्ली के आस पास तीस चालीस मील तक मारधाड़ कर रहे थे, वह कैसे निकल पाई होगी ? पर वह तलवारों के तूफान में से बच निकली इसमें कोई संदेह नहीं। फिर वह क्या से क्या हो गई-यह तुलसीदास के इस पद से कुछ तो समझ में आ सकता है—

मैं हरि पतित पावन सुने—
मैं पतित तुम पतित पावन दोउ बानक बने
ब्याध गनिका गज अजामिल साखि निगमनि भने !!
... .

नन्ददास, सूरदास इत्यादि भक्त सन्त कवियों के रस का जो प्रभाव अहिन्दू

गायिका पर पड़ा नूरबाई उसी का प्रतिबिम्ब है और उस प्रभाव के क्रमिक विकास का भी।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि लेखक के पास नूरबाई के दिल्ली छोड़ने तक तो पर्याप्त ऐतिहासिक आधार हैं पर नूरबाई के बाद के जीवनके संबंध में इतिहास का आश्रय उसे नहीं मिला। बाद की सारी घटनाएँ उसकी कल्पना और अनुमान पर आश्रित हैं। मध्य कालीन भक्ति आन्दोलन एक साँस्कृतिक आन्दोलन था जिसका जन जीवन पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा था। लेखक ने नूरबाई को भी उसी से भीगा दिखाया है। उसका दिल्ली छोड़ने के पश्चात का सारा चरित्र लेखक की इसी आस्था और उसके इसी अनुमान पर आधारित है। बाद की अन्य घटनाएँ भी कल्पना की ही उपज हैं।

पात्रों में बाजीराव, मस्तानी, निजामुल मुल्क, सादत खां, मुहम्मदशाह, नूरबाई ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। मोहन,रोनी,तोता,चिन्तामनि,शुबराती काल्पनिक। घटनाओं के विषय में हम कह चुके हैं। प्रारम्भ की सारी मुख्य घटनाएँ ऐतिहासिक हैं बाद की काल्पनिक! मोहन—रोनी, तोता—रोनी, मोहन—शुबराती, मोहन—नूरबाई प्रसंग भी काल्पनिक हैं। मोहन और नूरबाई के प्रसंग के पीछे लेखक की अपनी एक आस्था है। नूरबाई का चरित्र उसकी इसी आस्था का परिचायक है।

युद्ध, लूटमार, नादिर शाह का कत्लेआम, नूरबाई का बच निकलना, बाजीराव के आक्रमण, निजाम का निकम्मापन, सादत खां की आत्महत्या सब ऐतिहासिक हैं! इनसे तत्कालीन राजनैतिक अस्तव्यस्तता और उथल पुथल का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है।

स्थान सभी ऐतिहासिक हैं। कल्पना से उत्तरार्ध में अधिक काम लिया गया है।

इतने विवेचन के पश्चात हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रस्तुत उपन्यास इतिहास और लेखक के निजी अनुमानों पर आधारित है। इसे 'मृगनयनी' की कोटि में ही रखा जा सकता है। कल्पना रमणीय है और सारगर्भित भी। तत्कालीन वातावरण और भक्ति आन्दोलन के ज्वार को देखते हुए लेखक का अनुमान बहुत अंशों में सत्य हो सकता है। टूटे काँटे भी वर्मा जी के ऐतिहासिक उपन्यासों की उसी परम्परा में हैं जिसमें 'मृगनयनी' व 'गढ़ कुण्डार' हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्मा जी के इन ऐतिहासिक उपन्यासों की स्पष्ट ही चार कोटियाँ बन जाती हैं। पहली कोटि में हम 'झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई' को रख सकते हैं जिसमें इतिहास का सर्वाधिक आग्रह है। दूसरी कोटि में उनके 'गढ़ कुण्डार' 'मृगनयनी' व 'टूटे काँटे' उपन्यास आ ते हैं जिनमें अधिकाँश और मुख्य घटनाएँ ऐतिहा-

सिक हैं परन्तु जन श्रुतियों, परम्पराओं और लेखक के निजी निष्कर्षों का भी योग है। तीसरी कोटि कचनार, 'मुसाहिब जू' की है जिनमें इतिहास और परम्पराओं का योग है एवं अनेक काल की घटनाओं को एक में गूँथ देने का प्रयत्न है। जनश्रुतियाँ एवं किम्वदन्तियां थोड़ा बहुत काम यहाँ भी करती हैं। चौथी कोटि में विराटा की पद्मिनी है जिसमें केवल वातावरण ऐतिहासिक है शेष सब कुछ जनश्रुतियों और कल्पना पर आधारित है। इसकी कोई भी घटना इतिहास द्वारा मान्य नहीं है।

फिर भी वर्मा जी के अपने दृष्टि कोणों और ऐतिहासिक उपन्यासों के सम्बन्ध में उनकी निजी मान्यताओं जिनका पीछे उल्लेख किया गया है को देखते हुए इन सारे उपन्यासों को 'ऐतिहासिक' कहा जा सकता है। वर्मा जी का दृष्टिकोण और उनकी मान्यताएँ इतनी व्यापक हैं कि उनमें 'विराटा की पद्मिनी' का समावेश भी अच्छी तरह हो जाता है। शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर तो 'झांसी की रानी' ही सफल हो सकता है और उसके पीछे दूसरी कोटि के तीन उपन्यास भी आ जाते हैं। शेष को अर्ध ऐतिहासिक कहा जा सकता है। 'विराटा की पद्मिनी' ऐतिहासिक आवरण में लिपटा हुआ रोमान्स मात्र है।

कुछ भी हो वर्मा जी युग के सर्व श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। हम भी ऐतिहासिक उपन्यासों के सम्बन्ध में वर्मा जी की मान्यताओं के समर्थक हैं। निरे ऐतिहासिक तथ्यों द्वारा ही उपन्यास को लाद दिये जाने के पक्ष में हम भी नहीं है। कल्पित घटनाएँ, जनश्रुतियां और किम्बदन्त्तियां भी अपना महत्व रखती हैं और यदि लेखक उनका उपयोग सीमा के भीतर रहकर करता है तो ठीक ही है।

वर्मा जी समर्थ कलाकार हैं। ऐतिहासिक उपन्यास रचना में उनकी कुशलता असंदिग्ध है। उन्होंने जिन जनश्रुतियों, किम्वदन्तियों और परम्पराओं को आधार बनाया है वे इतिहास की संगति में ठीक उतरती हैं। उनकी कल्पनाएँ भी इतिहास के वातावरण में पूर्ण रूपेण निभ गई हैं।

देशकाल चित्रण:—

उपन्यास में देशकाल से हमारा तात्पर्य "उसमें वर्णित आचार विचार, रीति-रिवाज़ रहन-सहन और परस्थिति आदि से है" । * उपन्यास की कथा जिसयुग से संबंधित है उसमें उस युग की पूर्ण छाप होना अनिवार्य है अन्यथा उसमें वास्तविकता का अभाव रहेगा । ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिये देशकाल का महत्व अत्यधिक होता है । वह अतीत के इतिहास को अपनी कथा का विषय बनाता है । उसके पात्र अतीत के प्रतिबिम्ब होते हैं इस कारण यदि उनके क्रिया कलापों में उस युग की छाप न हुई तो वे पूर्ण अस्भवाविक बन जायेंगे । इतिहास में केवल घटनाओं का ब्योरे वार वर्णन होता है, उस युग विशेष में जनता के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के चित्रण का उसमें अभाव होता है, ऐतिहासिक उपन्यास को इस अभाव की पूर्ति करनी पड़ती है । उसे अतीत की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक सभी दशाओं को अपनी कथा में पूर्ण यथार्थता के साथ उभारना पड़ता है और यदि इस कार्य में वह असफल हुआ तो उसकी कृति ऐतिहासिक गरिमा की अधिकारिणी नहीं रह जाती । इसीलिये कहा गया है कि ऐतिहासिक उपन्यासकार को इतिहास, भूगोल, व तत्कालीन प्रत्येक आँदोलनों, प्रत्येक दशाओं का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये, जिस युग का चित्रण उसके उपन्यास में हुआ है । पाठक उपन्यास को पढ़ते समय उस युग की प्रत्येक प्रवृत्तियों को, प्रत्येक धाराओं को उसी रूप में पाये जिस रूप मे वे थीं—तभी ऐतिहासिक उपन्यास सफलता का श्रेय प्राप्त कर सकता है । बहुधा अपरिपक्व ऐतिहासिक उपन्यासकार इसीलिये असफल हो जाते हैं कि उन्हें उस काल की रीतियों, जनसाधारण की सामान्य दशाओं, रहन—सहन आचार विचारों आदि का सही ज्ञान नहीं रहता जिसे वे अपनी कथा का माध्यम बनाते हैं ।

अस्तु—ऐतिहासिक उपन्यासकार की सबसे गहरी पहुंच अपने उपन्यास में चित्रित युग के भीतर होनी चाहिये, उसे उस युग प्रवृत्तियों और दशाओं से पूर्ण परिचित रहना चाहिये । जीवन को विविध दृष्टि कोणों से देखने और समझने का प्रयत्न तो सभी कुछ न कुछ करते हैं पर कथा और उसके पात्रों को युग के अनुरूप बनाकर, उन्हें उस युग का वास्तविक प्रतिबिम्ब बना देना कठिन कार्य होता है । ऐतिहासिक उपन्यासकार यदि उसमें क्षमता है—इस कार्य को करता है और तभी वह सराहना का पात्र बनता है ।

बाबू वृन्दावनलाल वर्मा ने जो भी ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं अधिकाँश मध्य युग से सम्बन्धित हैं । गढ़ कुण्डार का कथानक का १४ वीं शताब्दी से सम्बन्धित है, विराटा की पद्मिनी का ऐतिहासिक वातावरण मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात फर्रुखसियर जैसे

---

* बाबू श्यामसुन्दरदास ।

निर्बल बादशाह की मृत्यु से उत्पन्न राजनैतिक अस्तव्यस्तता से सम्बन्ध रखता है। मुसाहिब जू में मरते हुए सामन्तवाद और उभरते हुए पूंजीवाद का आभास मिलता है जब अंग्रेज भारत में अपनी शक्ति को दृढ़ करते जा रहे थे। 'कचनार' का मुख्य वातावरण भी अंग्रेजों की शक्ति वृद्धि और राजनैतिक अस्तव्यस्तता से सम्बन्धित है 'मृगनयनी' में १५ वीं व १६ वीं शताब्दी के सन्धि युग की भारत की राजनैतिक अस्तव्यस्तता का चित्रण है। 'झांसी की रानी' १८५७ की भारतीय जनक्रांति से संबंधित है जब एक बार भारतीयों ने अपनी समस्त शक्ति से अंग्रेजी पूँजीवादी शासन को उलट देने का प्रयत्न किया था। 'टूटे कांटे' में एक बार वर्मा जी पुनः पीछे की ओर गये हैं और नादिरशाह के आक्रमण के समय की भारतीय राजनैतिक उथल पुथल का चित्रण किया है।

अस्तु हम देखते हैं कि इतिहास का मध्ययुग और आधुनिक युग ही उनकी कथाओं का माध्यम रहा है। कथाओं का क्षेत्र अधिकाँशतः बुन्देलखण्ड है जिसके इतिहास और चप्पे-चप्पे से लेखक अत्यधिक परिचित है। इन विभिन्न उपन्यासों में विभिन्न कालों की राजनैतिक, सामाजिक और साँस्कृतिक उथल पुथलें प्रतिबिम्बित हुई हैं, भांति भांति के पात्र आये हैं, भाँति भाँति की प्रवृत्तियाँ उभरी हैं। प्रश्न यह होता है कि क्या उपन्यासकार उनके चित्रण में सफल रहा है? क्या उसने अपने उपन्यासों में चित्रित युग को वास्तव में उनमें प्रतिबिम्बित किया है? इस प्रश्न के लिये हमें उसके प्रत्येक उपन्यास पर अलग २ दृष्टि डालनी होगी तभी हम उसकी सफलता और असफलता का अनुमान लगा सकते हैं।

गढ़ कुण्डार का कथानक १४ वीं शताब्दी के बुन्देलखण्ड से सम्बन्धित है। यह युग सामन्तीय युग था। सामन्तीय प्रवृत्तियां अपने पूरे उभार पर थीं! मुसलमानों का अधिपत्य देश पर हो गया था फिर भी छोटे छोटे हिन्दू राज्य देश भर में इधर उधर बिखरे हुए थे। उन्हें पारस्परिक युद्धों से ही अवकाश न मिलता था। शक्ति विश्रृंखल हो चुकी थी! अपने २ स्वत्व और स्वार्थों को लिए हुए अपनी अस्तित्व चिन्ता में ही वे प्रयत्नशील थे! क्षत्रियों में जातीय अभिमान की गहरी भावना थी जो सामन्तीय प्रवृत्तियों से पूर्ण मेल खाती है। सौन्दर्य की प्यास भी अनेक युद्धों का कारण बनती थी। राजकुमारियों के अपहरण होते थे, युद्ध होते थे और राज्य समाप्त हो जाते थे। पृथ्वीराज और जयचन्द का युद्ध इसका प्रमाण है। इन सामन्ती शासकों में और कई विशेषताएँ थीं। जरा जरा सी बात में तलवारें खिंच जाती थीं, आन पर मर मिटना इनके लिये साधारण सी बात थी और प्रतिशोध लेने के लिये वाह्यशक्तियों को आमंत्रण देने के तो उदाहरण भारतीय इतिहास में भरे पड़े हैं। जात्याभिमान की भावना भी जैसा कहा जा चुका है अपने पूरे वेग पर थी। क्षत्रियों में

यह भावना सबसे अधिक थी ! 'गढ़-कुण्डार' के कथानक में इस जात्याभिमान के कारण पारस्परिक मानापमान के परिणाम-स्वरूप हुए खंगारों और बुन्देलों के ही युद्ध का चित्रण है। सामन्त लड़ते थे — पिसती साधारण जनता थी। सामान्य रूप से ये ही भावनाएँ उस समय उत्कर्ष पर थीं।

'गढ़-कुण्डार' के कथानक पर जब हम दृष्टि डालते हैं तो इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि उसमें ये प्रवृत्तियाँ पूर्णरूपेण उभर उठी हैं। तत्कालीन युग उसमें पूर्ण-रूपेण प्रतिबिम्बित है, हां कहीं २ लेखक की आधुनिक विचारधारा भी कार्य कर रही है पर दबे रूप में और ऐतिहासिक वातावरण में लिपटी हुई। नागदेव हेमवती पर रीझता है— उसे अपहृत करके अपने अधिकार में करना चाहता है। अग्निदत्त मानवती से प्रेम करता है, वह भी उसका अपहरण कर कहीं भाग जाना चाहता है। दिवाकर तारा से प्रेम करता है और समाज और धर्म की रूढ़ियों के सामने घुटने टेक देता है। बुन्देले खंगारों के प्रस्ताव को अपना अपमान समझते हैं कारण वे अपने को उनसे ऊँचा समझते थे। अग्निदत्त अपमानित होता है। सामन्त नाग मित्र की मित्रता को एक ओर रखकर उसे लात मारता है। अग्निदत्त अपमानित होकर बुन्देलों से मिलता है। छल प्रपञ्च होते हैं, धोखे दिये जाते हैं। खंगारों का नाश होता है और उनके रक्त मांस पर बुन्देले अपना महल खड़ा करते हैं। इस प्रकार तत्कालीन प्रवृत्तियाँ पूर्ण रूपेण कथा में उभर उठी हैं। चरित्र भी युग के प्रतिबिम्ब हैं। नागदेव, हेमवती, सोहनपाल, हुरमतसिंह आदि सभी अपने युग की प्रवृत्तियों को चरितार्थ करते हैं और अपने निजी आदर्शों के लिए एक दूसरे से जूझ जाते हैं। युद्धों के वर्णनों में भी तत्कालीन युग की पूर्ण छाप है। अन्य वर्णन भी युग के अनुरूप हैं। एक बात जो खटकती है वह यही कि वर्णाश्रम धर्म की रूढ़ियों के सम्मुख ये सामन्त विचलित होते हैं। वर्णाश्रम धर्म की रूढ़ियां भले ही साधारण जनों के लिए हों सामन्तों ने सदैव अपनी शक्ति पर ही विश्वास किया है। ये दुर्बल थे इस कारण उनके शिकार बनते हैं, उनके स्थान पर दूसरे होते तो वे सफल हो सकते थे। यहाँ लेखक की आधुनिक विचारधारा कार्य कर रही है और उसने वर्णाश्रम धर्म की आज की रूढ़ियों को उस युग में भी सामन्तों पर लादा है। परन्तु सामन्तों का उनके प्रति तिरस्कार दिखा कर वह आधुनिक प्रभाव को बचा गया है। केवल दिवाकर ही वर्णाश्रम धर्म से भयभीत होता है, अग्निदत्त तो उससे संघर्ष करने को प्रस्तुत रहता है।

'विराटा की पद्मिनी' का वातावरण और पृष्ठभूमि मात्र एतिहासिक है। इसमें भी तत्कालीन परिस्थितियां उभर उठी हैं। सैयद भाइयों की मृत्यु के पश्चात देश में राज-नैतिक अस्त व्यस्तता फैल गई थी ! छोटे छोटे राजा नबाब स्वतंत्र होने लगे थे। देश

भर संघर्ष ग्रस्त था। साधारण जनता दरिद्रता की आग में तड़प रही थी! सामन्तीय स्वार्थ उसे और भी खोखला किये दे रहे थे! मध्य युगीन अन्धविश्वास भी इसमें मुखर हो उठा है। कुमुद पर देवीत्व का बोझ लाद दिया जाता है। उसका रूप सामन्तों की लोलुप दृष्टि का लक्ष्य बनाता है। दासी पुत्र कुञ्जर हीन समझा जाने के कारण उत्तराधिकार से वन्चित होता है। दरबारी चालें और षड्यंत्र देवीसिंह को राजा बनाते हैं। सत्ता का मद देवीसिंह को गोमती की याद नहीं आने देता! कुमुद का सौन्दर्य युद्ध का कारण बनाता है। अलीमर्दान उसे प्राप्त करने के उद्देश्य से चलता है। विराटा पर आक्रमण होता है। झूठा देवीत्व कुमुद और कुञ्जर को एक होने से रोकता है। सामन्तीय व्यवस्था की वेदी में कुञ्जर और कुमुद के प्रेम की बलि दे दी जाती है।

ऐतिहासिक न होने पर भी विराटा की पद्मिनी के पात्र उस ऐतिहासिक वातावरण में इतना घुला मिला दिये गये हैं कि वे वातावरण की स्वाभाविकता बनाये रखते हैं। यहाँ उपन्यासकार की सफलता सराहनीय है। साधारण जनता के अंधविश्वासों ने ही कुमुद को देवी बनाया, यद्यपि सामन्त उसके देवीत्व को अच्छी तरह पहचानते थे। देवीत्व का बोझ लादे हुए ही कुमुद आत्म हत्या कर लेती है। तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण करने में यहाँ भी लेखक सफल है। यहाँ साधारण जनता की दशाओं के चित्र भी हैं। चरित्र युग की प्रवृतियों के अनुरूप हैं। युद्धों के वर्णन भी तत्कालीन युग से मेल खाते हैं। अंधविश्वासों और मध्ययुगीन आदर्शों से दबी जनता के चित्र भी उभर आये हैं। देवीसिंह कुञ्जर के स्वत्व का तो अपहरण करता ही है, गोमती तक को भूलने का बहाना करता है। उसका चरित्र सामन्तीय प्रवृत्तियों का प्रतिनिधि चरित्र है। यही बात अलीमर्दान के विषय में भी कही जा सकती है।

देशकाल के उपयुक्त चित्रण ने ही इस उपन्यास की महत्ता को बढ़ा दिया है और यही कारण है कि यह ऐतिहासिक होने का भ्रम उत्पन्न करता है। बुन्देलखण्डीय वातावरण, परिस्थितियों, वहाँ की जनता के सामाजिक सांस्कृतिक, जीवन से परिचित होने के कारण ही वर्मा जी इसमें सफल हो सके हैं। साधारण जनता के जो भी चित्र दिये गये हैं वे आज के ही हैं पर उस युग से बिल्कुल मेल खाते हैं। जनता प्रतिदिन के आक्रमणों, आदि से कितनी संतप्त रहती थी, परन्तु फिर भी उसे अपनी लोक संस्कृति से प्रेम था, यह इससे भली भांति स्पष्ट हो जाता है। 'विराटा की पद्मिनी' भी देशकाल का सफलता पूर्वक निर्वाह करता है और इस दृष्टि से पूर्ण है।

'मुसाहिब जू' उपन्यास की कथा व्यापक नहीं है। वह एक छोटी सी परिधि तक है। सामन्तवाद के अन्तिम क्षणों में भी जब सामन्तों की दशा अत्यन्त शोचनीय होगई थी—कुछ व्यक्तियों में श्रेष्ठ भावनाएँ विद्यमान थीं। इसी को लेकर लेखक ने मुसाहिब

जू का चित्रण किया है जो स्वयं भूखे पेट रह लेते थे पर अपने अधीनस्थों को दुखी न देख सकते थे ! सामन्तीय आदर्शों में इसका भी स्थान है। वैसे उस युग की अस्त-व्यस्तता का चित्रण उपन्यास में छोटे आकार और लघु कथा के होने के कारण नहीं हो पाया है फिर भी सामन्तवादी व्यवस्था की दम तोड़ती हुई सिसकियाँ मुसाहिब जू के चरित्र को ध्यान से देखने पर सुनाई पड़ जाती हैं।

'कचनार' में तत्कालीन परिस्थितियों का व्यापक चित्रण है। राजगोंडों के जीवन की तो थोड़ी बहुत झाँकी उसमें हमें मिलती ही है तत्कालीन राजनैतिक उथल पुथल का चित्रण भी देख पड़ता है। यह वह युग था जब अंग्रेज आ चुके थे। फिर भी छोटे मोटे तमाम राज्य इधर उधर विद्यमान थे ! मरहठे भी उभर रहे थे, गोसाइयों का उत्कर्ष भी हो रहा था और इन सब के बीच अंग्रेज भी अपनी शक्ति को दृढ़ करने का प्रयत्न कर रहे थे।

मानसिंह और दलीपसिंह का चरित्र युग के अनुरूप ही चित्रित किया गया है। गोंसाई अचलपुरी और उनके अखाड़े का चित्रण भी इतिहास और तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप है। पिण्डारियों की लूट, डरू का कर्नल होना सभी कुछ उस समय की राजनैतिक स्थिति का स्पष्ट आभास देते हैं। सामन्ती राजमहलों में होने वाली विलास क्रीड़ाओं का प्रतिबिम्ब मानसिंह और दलीपसिंह की विलासिता से झलक उठता है। सामन्ती अत्याचारों का रूप बैजनाथ के कत्ल से स्पष्ट हो जाता है। युद्धों आदि के वर्णन भी उस युग की भूमिका में निखर उठे हैं। उपन्यास में आधुनिक घटनाओं की भी सत्ता है पर ऐतिहासिक वातावरण में वे घुल मिल गई हैं। तात्पर्य यही कि ऐतिहासिक वातावरण में कथा पूर्ण रूपेण लीन होकर ही आगे बढ़ी है और तत्कालीन उथल पुथल का चित्र भी स्पष्ट कर देती है।

'झाँसी की रानी' उपन्यास भी आधुनिक काल से ही संबन्धित है। १८५७ की जनक्रांन्ति के समय देश की जो दशा थी उसका पूर्ण परिचय उपन्यास से मिल जाता है। क्रान्ति के पूर्व अंग्रेजों ने जो जाल रचा था और देशी राजा नबाबों को जिस प्रकार उस जाल में फांसा था उसका भी स्पष्ट आभास उपन्यास से मिल जाता है। झांसी ही मुख्य रूप से कथा का केन्द्र है। वहाँ की जनता के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का चित्रण भी उपन्यास में सफलता से हुआ है। जनेऊ आन्दोलन, छुआछूत आन्दोलन सब तत्कालीन सामाजिक दशा के ही परिचयाक हैं। नारायण शास्त्री और छोटी भंगिन का प्रेम, उसका झांसी से चले जाना सब सामाजिक जीवन की कट्टरता सूचित करते हैं। राजा गंगाधर राव का कला प्रेम, उनके अत्याचार भी उपन्यास में मुखरित हो उठे हैं। रानी के आगमन से हिन्दू मुस्लिम ऐक्य का सूत्रपात हुआ,

ऊंचनीच में बराबरी का जो आन्दोलन उठा, उसका भी रूप देखने को मिल जाता है। जनक्रान्ति के पश्चात युद्धों के वातावरण में भी आधुनिक रण विद्या का पूर्ण सहयोग देख पड़ता है। किले बाजी के वर्णन में भी उपन्यासकार ने सौ वर्ष पहले की युद्ध प्रणाली को साकार कर दिया है! अंग्रेजों की छावनियों का वर्णन, राजा नवाबों की निर्बलता, विद्रोहियों में संगठन का अभाव, क्रांति की असफलता सभी कुछ सजीवता और यथार्थता से चित्रित हुआ है।

कथा की परिधि प्रस्तुत उपन्यास में व्यापक हो उठी है। उसने समस्त देश को छुआ है! परन्तु इतना होने पर भी उसमें विश्रंखलता नहीं आने पाई और समूचे देश की अस्तव्यस्त राजनैतिक स्थिति को उपन्यासकार ने स्पष्ट कर दिया है। विद्रोह की चिनगारी किस प्रकार सुलगती हुई एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँची यह सब कुछ हमें देखने को मिल जाता है। वर्णनों में सजीवता और चित्रण में यथार्थता होने के कारण ही उपन्यास सजीव है।

जनजीवन पर क्रान्ति का प्रभाव, अंग्रेजों के हथकंडों से व्याकुल जनता, राजा नवाबों के चित्र, उनके अत्याचारों से पीड़ित समाज, सबका चित्रण उपन्यासकार ने कुशलता से किया है। झाँसी का निवासी होने के कारण वहाँ की जनता की रीतियों नीतियों से परिचित होने के कारण उपन्यासकार झांसी को तत्कालीन जनता के चित्रण में अधिक सफल हुआ है। उसने जो कुछ भी दिखाया है, सब तत्कालीन परिस्थतियों को दृष्टि में रख कर ही। इसीलिए वह सफल है, इसीलिये उसका चित्रण सजीव है। स्थान स्थान पर उसने जनता की सामाजिक और आर्थिक दशाओं पर प्रकाश डाला है जिससे वे अत्यधिक स्पष्ट हो गई हैं। एक स्थान पर उसने लिखा है—"समाज में संतुलन यथेष्ट नहीं था। असमानता विषमता स्पष्ट थी। परन्तु आर्थिक श्रंखला की कड़ियां मजबूती के साथ जुड़ी हुई थीं। धन इकठ्ठा हो होकर बँट जाता जाता था। एक एक आश्रित पर शत शत आश्रित टंगे हुये थे, लिप्त और संलग्न थे। आश्रय और आश्रित सब क्रियाशील। जहाँ आश्रय श्रम हीन प्रयत्न रहित और दुःशील हुआ कि गया और उसका स्थान दूसरे प्रबल सबल स्थानापन्न ने ग्रहण किया। खोखला गौरव अपनी कहानी बहुत अल्प समय तक ही कह सकता था।"

और भी—"झांसी में उस समय मन्त्रशास्त्री. तन्त्रशास्त्री, वैद्य, रणविद इत्यादि अनेक प्रकार के विशेषज्ञ थे। शाक्त, शैव, वाममार्गी, वैष्णव, सभी काफी तादाद में। अधिकांश वैष्णव और शैव! और ऐसे लोगों की तो बहुतायत ही थी जो गृहेशाक्ताः बहिर्शैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः थे। इन सबके संघर्ष में अनेक जातियां और उपजातियां, जिनको शूद्र समझा जाता था उन्नति की ओर अग्रसर हो रही थीं। व्यक्ति गत चरित्र का

सुधार, घरेलू जीवन को अधिक शान्त और सुखी बनाना तथा जातियों की श्रेणी में ऊंचा स्थान पाना यह उस प्रगति की सहज आकांक्षा थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जनेऊ पहिनते हैं, यह उनकी ऊँचाई की निशानी है जो न पहिनता हो वह नीचा। इसलिए उन जातियों के कुछ लोगों ने जिनके हाथ का छुआ पानी और पूड़ी मिष्ठान्न आमतौर पर ऊँची जाति के हिन्दू ग्रहण कर सकते थे जनेऊ पहिनने प्रारम्भ कर दिये। उनके इस काम में कुछ बुन्देलखण्डी और महाराष्ट्र ब्राह्मणों का समर्थन था। झांसी नगर में ब्राह्मण काफी संख्या में थे। अकेले महाराष्ट्र ब्राह्मणों के ही तीन सौ घर थे। इन सबका बहुत बड़ा भाग इस प्रगति के विरुद्ध था।"

इस प्रकार और भी स्थानों पर लेखक ने तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दशाओं की विवेचना की है जिससे ये परिस्थितियां और भी स्पष्ट और सजीव हो उठी हैं। इस विवेचन के आधार पर ही उपन्यास का देशकाल चित्रण सजीव कहा जा सकता है।

'मृगनयनी' में वर्मा जी पुनः इतिहास के मध्य युग में चले गये हैं। १५ वीं शताब्दी के भारत की राजनैतिक उथल पुथल का चित्रण उसमें व्यापकता से हुआ है।

तत्कालीन राजनैतिक दशा तो उपन्यास में इतनी सजीवता से उभरी है कि कथानक में गति आ गई है। चारों ओर छोटे छोटे राज्य थे जो अपनी शक्ति वृद्धि का निरन्तर प्रयत्न कर रहे थे! मुसलमानों सुल्तानों का आकर्षण मुख्य रूप से ग्वालियर पर था इसी कारण उस पर कई आक्रमण हुए! दिल्ली में सिकन्दर लोदी था जो अपनी धर्मान्धता के लिये प्रसिद्ध था। मालवा में गयासुद्दीन खिलजी और गुजरात में महमूद बवर्रा अपनी शक्ति को विकसित करने का प्रयत्न कर रहे थे। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत चरितार्थ हो रही थी! जिसने जिसे निर्बल समझा उस पर टूट पड़ा। राजस्थान अलग घरेलू षणयंत्रों में व्यस्त था। उसे उनसे ही अवकाश न था! ग्वालियर में अवश्य ऐसे संघर्ष पूर्ण युग में भी उन्नति हुई यह आश्चर्य की बात है। इन सुल्तानों और राजाओं के पारस्परिक युद्धों का वर्णन उपन्यास में सजीवता से हुआ है। सामन्तीय प्रवृत्तियों का उभार इनके क्रिया कलापों में स्पष्ट देखा जा सकता है।

सामाजिक व सांस्कृतिक दशाओं का चित्रण भी उपन्यास में विविधता से हुआ है। चारों ओर राजनैतिक अस्तव्यस्तता थी, आए दिन युद्ध हुआ करते थे, इस कारण प्रजा की दशा ठीक न थी! धार्मिक अंधविश्वास एवं मान्यताएँ उसे और भी जर्जर

ऐसे अत्याचारपूर्ण शासन में साधारण जनों की जो दशा होगी, उसका सरलता से अनुमान लगाया जा सकता है। उनके पास जब पेट भरने को न होता, सेना में भरती हो जाते और अपने राजाओं महाराजाओं के लिए कट मरते। इसी समय भक्ति आन्दोलन भी उठान पर था! निराश और सन्तप्त जनता को उससे सन्तोष मिला। इसी भक्ति आन्दोलन की उठती हुई लहर में नूरबाई भी लीन हो जाती है। उपन्यासकार ने तत्कालीन प्रत्येक परिस्थिति का विशदता से चित्रण किया है और साधारण जनता की दशाओं के भी यथार्थ चित्र दिये हैं। वातावरण भी युग के अनुकूल है और यही कारण है कि 'टूटे काँटे' भी एक सुन्दर ऐतिहासिक कृति बन सका है।

— 'रोमान्स' और वर्मा जी के उपन्यास —

'रोमान्स' शब्द इतना अधिक विवादास्पद रहा है कि विभिन्न विद्वानों ने इसे विभिन्न तरीकों से समझा और समझाया है। फ्राँस और उसके पश्चात इंगलैंड तथा अन्य देशों में, एक समय तो इससे सम्पन्न साहित्य ने (विशेषकर कथा कहानियाँ) ऐसी जबर्दस्त लहर उत्पन्न की थी कि ऐसा प्रतीत होता था कि साहित्य के अन्य रूपों पर यह सदा के लिये ही छा जायगा। जनता इस साहित्य के प्रति इतनी आकर्षिक थी कि जार्ज सेन्ट्सबरी 'सदृश विख्यात अँग्रेजी समालोचकों ने अपने समसामयिक यथार्थवादी उपन्यासकारों को चुप बैठ जाने का आदेश दिया था कारण उन्हें भय था कि रोमान्स से पूर्ण साहित्य के सम्मुख यथार्थवादी उपन्यासकारों की कृतियां तत्कालीन जनता की अभिरुचि देखते हुए, उसके द्वारा गृहीत नहीं हो सकती थीं। *

आखिर इस 'रोमान्स' शब्द का आशय क्या है? इसकी उत्पत्ति कैसे हुई और आज जिस व्यापक अर्थ में इसका प्रयोग किया जाता है वह किस प्रकार संभव हो सका, ये कुछ प्रश्न ऐसे हैं जिन पर पहले ही विचार कर लेना आवश्यक है।

सबसे पूर्व जब इस शब्द का प्रयोग हुआ था तब इसका बिल्कुल सीधा अर्थ था— The vernacular language of France as opposed to Latin. अर्थात फ्राँस की बोलचाल की वह भाषा जिसे लेटिन भाषा के विरोध में खड़ा किया गया था। फ्रांस के रोमन विजेताओं ने वहां के निवासियों पर बल पूर्वक अपनी लेटिन भाषा लादनी चाही थी। फ्राँस के लोगों ने उसका विरोध किया और अपनी भाषा को ही जीवित रखा, उसे एक रूप दिया और उसका नाम रखा-रोमान्स !! फ्राँस के निवासियों का लेटिन भाषा से व रोमनों से यहीं तक विरोध न था उन्होंने रोमनों के साहित्य में वर्णित पुराने विषयों का भी बहिष्कार किया और नवीन विषयों को लेकर साहित्य रचना में प्रवृत्त हुये। फलतः एक नवीन साहित्य का जन्म हुआ जिसे भी 'रोमान्स' नाम से ही अभिहित किया गया। उस समय 'रोमान्स' का रूप यह था— A Tale in verse embodying the adventure of some hero of chivalary espacially of those of the great cycles of medieval

---

* Phelps has Written-'Mr Saints bury and Mr Goose each independently predicted the coming flood warning all novelists to get into the ark of safety"

legend and belonging both in meter and form to the ages of knight hood"..सारांश-यह कि पद्य में लिखी वीर गाथायें ही 'रोमाँस' कहलाईं ।

कुछ काल उपरान्त इस शब्द का प्रयोग लेटिन से उत्पन्न सभी भाषाओं के लिये होने लगा । गद्य कहानियाँ भी इसकी सीमा में आ गईं । इंगलैंड में इस शब्द का व्यवहार सबसे पूर्व १४ वीं शताब्दी में हुआ और १६ वीं और १७ वीं शताब्दी तक इसका अर्थ और भी व्यापक हो गया । दूरवर्ती असाधारण घटनाएँ भी इसकी परिधि में आ गईं । १८ वीं शताब्दी में इंगलैंड में रूमानी साहित्य का तीव्र विरोध हुआ पर उसके अन्तिम चरणों में एक बार इसकी जबर्दस्त लहर पुनः चली जिसमें स्वच्छन्द कल्पना को विशेष स्थान मिला । शब्दकोषों में 'रोमान्स' के अर्थ लिखे गये—"Any fictious and wonderful tale, A fictious narrative in prose or verse which passes beyonds the limits of real life." परन्तु ये अर्थ 'रोमान्स' शब्द की व्यापकता को पूर्ण रूपेण व्यक्त न कर सके ।

W.P. केरने रोमान्स के विषय में अपना मत प्रकट करते हुए लिखते हैं—

"Romance means almost every thing from the two horse men riding together at the beginning of the histori-cal novel or from the paste board moors of the puppet show, the spell of the enchanted ground, the music of dreams and shadows" अर्थात "किसी ऐतिहासिक उपन्यास के प्रारम्भ में जाते हुए दो अश्वारोहियों अथवा कठपुतली के नाच में बनाये हुये काठ के मूरों से लेकर तिलस्म व जादू अथवा स्वप्न तथा छाया के संगीत तक, सभी को हम 'रोमान्स' कह सकते हैं ।"

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में लिखा है कि "उस व्यक्ति की रोमान्स की परिभाषा में सिर्फ परिहास ही नहीं है बल्कि जब तक वह चीज ठीक से पढ़ी नहीं जाती है और उसमें ही वर्णित वर्जित देशों के समान ही उसमें समुचित अनुसंधान नहीं किया जाता है तब तक हम ठीक से नहीं जान सकते कि वास्तव में वह चीज क्या है, जिसने कहा है कि 'रोमान्स' वह चीज है जो अंध युग के एक अज्ञात काल से लेकर रेनैसाँ तक लिखी गई है और १८ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण से फिर उसका अनुकरण होने लगा है ।"*

---

* "There is more then mere irony in the person who defined. Romance as 'something which was written between an unknown period

एक डिक्शनरी में रोमान्स की परिभाषा इस प्रकार दी हुई है किंतु वह भी उसके सम्पूर्ण अर्थ को पूर्णतः व्यक्त नहीं करती—"The class of fictions which consists of such stories of ideas and actions suggestive of chivalary, adventure and mystery; an affair of a strange or adventurous nature."

इनसाइक्लोपीडिया के लेखक ने कहा है—"Incapable of exacter definition inclining towards the vague it is nevertheless comprehensible for all its vagueness and informal as it is, possesses its own forms of beauty and that a precious one." कहने का तात्पर्य यह कि 'रोमान्स' की दुनियां एक नई दुनियां है जो जादू टोनों, प्रेम और वीरगाथाओं से पूर्ण है, जहाँ अतिमानव और अतिदानव सभी की सत्ता है और एक से एक रोमान्चकारी घटनाओं का बाहुल्य है।

इस विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि विभिन्न विद्वानों ने रोमान्स के संबंध में अपने विचार प्रकट किये हैं पर किसी सर्वमान्य निष्कर्ष पर कोई नहीं पहुंच सका है।

मि० W. Lyon Phelps ने रोमान्स के विषय में अपनी पुस्तक 'The Advance of English Novel' में लिखा है— We ought to mean by Romance, a story where the chief interest lies not in the characters but in the events' as for example–Quenton Durwart.' अर्थात रोमान्स उस कहानी को कह सकते हैं जहाँ पात्रों के चरित्र की अपेक्षा घटनाओं में ही पाठक की मुख्य दिलचस्पी होती है। उदाहरण के लिये क्विन्टिन डरवर्ट उपन्यास !!

एक बात यहां और ध्यान देने योग्य है कि पाश्चात्य समालोचकों ने उपन्यास और रोमान्स के बीच एक विभाजक रेखा को भी माना है। उनके अनुसार इनमें भेद है। अपने यहां रोमान्सों को भी उपन्यासों के अन्तर्गत ही माना गया है। मि० Phelps ने इसी सम्बन्ध में रोमान्स को उपन्यास से भिन्न कर दिया है। वे आगे कहते हैं—'By the word 'Novel' we should denote a story

---

of the dark ages and the Renaissance, and which has been imitated since the later part of the 18 th century.' What that some thing really is not well to be known except by reading more or less considerable sections of it by exploring in like one of its own forbidden countries.

where the principal stress falls not on the succession of events but on the development of characters' (page 17). अर्थात उपन्यास वह कहानी है जहां प्रमुखता घटनाओं के आगे आने वाले क्रम पर नहीं वरन पात्रों के चरित्रों के विकास को दी जाती है।

क्लारारीव ने अपनी पुस्तक The progress of Romance में रोमांस और उपन्यास का अन्तर समझाते हुए लिखा है—कि उपन्यास यथार्थ जीवन और व्यवहार का तथा उस काल का एक चित्र है जिसमें कि उसकी रचना हुई है। रोमान्स उदात्त और उन्नत भाषा में उन सब का वर्णन करता है जो न कभी घटित हुआ है और न जिसके घटित होने की कोई संभावना ही है। उपन्यास हमारी उन जानी बूझी वस्तुओं का वर्णन करता है जो प्रतिदिन हमारे सामने होती रहती हैं जो हमारे और हमारे मित्रों के अनुभवों की हैं। उपन्यास की पूर्णता यही है कि वह प्रत्येक दृश्य का चित्रण इस सरलता और स्वाभाविकता के साथ करे कि वह पूर्ण रूपेण संभाव्य प्रतीत हो और हमें (उस समय जब हम उसे पढ़ रहे हों) यथार्थ का भ्रम होने लगे। हम यह समझने कि लगें उपन्यास के पात्र जिस सुख अथवा दुख का अनुभव कर रहे हैं वह हमारा ही सुख-दुख है। *

रोमानी और यथार्थवादी कहानियों का अन्तर Phelps ने उदाहरण देकर बड़ी ही सुन्दर रीति से समझाया है। उसका आशय यही है कि—जीवन की विभीषिकाओं और दुख दर्दों से ऊबा हुआ मनुष्य आराम चाहता है, मस्तिष्क से उन दर्दों को भुला देना चाहता है और रोमान्स उसे सौन्दर्यमयी युवतियों, वीर पुरुषों और आश्चर्यजनक घटनाओं के एक ऐसे लोक में ले जाता है जहाँ वे सन्तोष की साँस लेते हैं और आनन्द प्राप्त करते हैं।

इस विवेचन से हम 'रोमान्स' की रचना करने वाले कतिपय तत्वों को पा जाते हैं। रोमान्स में साहस और जोवट का प्रमुख उद्देश्य प्रेम से अत्यधिक घुला-मिला

---

* The novel is a picture of real life and manner and of times in which it is written. The Romance in lofty and elevated language describes, which never happened nor is likely to happen. The novel gives a familiar relation of such things, as pass every day before our eyes, such as many happen to our friends, or to ourselves, and the perfeetion of it is to present every scene in so easy and natural a manner and to make them appear so probable as to decieve us into persuasion (atl east while we are reading) that all is real until we are a fected by joys or distresses of persons in the story as if they were our own."

रहता है और कभी २ तो उसका स्थान ही ले लेता है। वातावरण बहुधा अवास्तविक, होता है और पात्र भी अति प्राकृतिक और अति-मानवीय होते हैं।

रोमान्स का प्रमुख तत्व वर्तमान संघर्षों से पलायन है। एक स्वच्छन्द कल्पना को लिये हुए इसका लेखक एक ऐसी दुनियाँ में विचरण करता है जहां जादू होते हैं, परियां होती हैं, अनहोनी तथा असम्भव घटनाएँ यहां तक कि सब कुछ हो सकता है। यही कारण है कि रोमान्स का लेखक बहुधा वर्तमान से पलायन कर अतीत में पहुँचता है और उस युग में अपने अनुकूल वातावरण को पाकर अपनी स्वच्छन्द कल्पना का विस्तार करता है। पाश्चात्य देशों विशेषकर फ्रांस और इंगलैंड में इसके जबर्दस्त आन्दोलन एक समय इसकी शक्ति के परिचायक हैं। परन्तु इतना होने पर भी जन जीवन और वर्तमान संघर्षों में आस्था रखने वाले पाठक या आलोचक द्वारा यह कभी आदर की दृष्टि से नहीं देखा गया। आज के संघर्षों में डूबने उतराने वाले मानव को यह खटकता रहेगा।

रोमान्स साहित्य अधिकांशतः असंभव घटनाओं का साहित्य है जहां वीरता, शौर्य और प्रेम का वातावरण होता है। उसमें एक स्वच्छन्द कल्पना होती है जो बहुधा अतीत में जाकर तत्कालीन जीवन के रंगीन चित्र खींचती है।

इस प्रकार के साहित्य की रचना सभी देशों में हुई है। भारत भी इससे अछूता नहीं है। परन्तु भारत में 'रोमान्स' के भीतर कार्य करने वाली प्रवृत्ति मध्यकालीन क्षत्रिय प्रवृत्ति रही है। यद्यपि भारत के कतिपय अन्य प्राचीन ग्रन्थों को भी रोमान्स की ही कोटि में रखा जा सकता है—यथा कादम्बरी, दशकुमार चरित, कथा सरित्सागर आदि २!! पुराणों में वर्णित अनेक घटनाएँ भी इसी कोटि में आ जाती हैं। अरबी-फारसी की अलिफलैला आदि की कहानियाँ, किस्सा चहार दरवेश, भी इसी कोटि की रचनाएँ हैं। देवकीनन्दन जी खत्री का 'चन्द्रकान्ता' भी रोमान्स ही है। रोमाँस किशोरीलाल गोस्वामी ने भी लिखे हैं पर उनके उपन्यासों में रोमान्स का स्वरूप विकृत और घृणित है। वास्तविक रोमान्स में जिस वीरता, जिस शौर्य जिस जीवट और जिस प्रेम के स्वरूप को होना चाहिये वह किशोरीलालजी की कृतियों में नहीं मिलता! उनके नायक नायिकाएँ रसिक और कामुक हैं। वे षणयन्त्रों और कपट को जन्म देते हैं। साथ ही रोमान्स का एक प्रमुख तत्व वर्णन की काव्यात्मकता का तो उनमें समावेश ही नहीं है। 'रोमान्स' की वर्णन में यह काव्यात्मकता स्वयं आ जाती है। किशोरीलालजी भले ही रसिक रोमान्स देने में समर्थ रहे हों, वास्तविक रोमान्स की छाया को नहीं छू पाये।

कुछ काल पश्चात हिन्दी उपन्यासों के क्षेत्र में बाबू वृन्दावनलाल वर्मा का

आविर्भाव हुआ। आपने अपने उपन्यासों में रोमान्स और उपन्यास को मिला दिया फलतः जिस सौन्दर्यमय वातावरण की सृष्टि हुई वह अद्वितीय है। 'रोमान्स' के सम्बन्ध में कही गई अधिकाँश बातें आपके रूमानी उपन्यासों में नहीं लागू होतीं। हाँ उसके प्रमुख तत्वों की सत्ता उनमें पूर्ण रूपेण विद्यमान है। उनके उपन्यासों में वीरता है, शौर्य है, जीवट है और जीवन और मृत्यु के बीच किया गया प्रेम है फिर भी उनके पात्रों में इतनी सजीवता है कि वे हमें दूर की चीज़ नहीं जान पड़ते, हम चाहें तो उन्हें अपने आस-पास देख सकते हैं। उनकी उपन्यास कला में रोमान्स और यथार्थ का सुन्दर सम्मिश्रण है और तभी उनकी कृतियाँ रोमान्स होते हुए भी रोमान्सों से भिन्न है।

वीरता, शौर्य, जीवट, और उस पर भी प्रेम यही रोमान्स के प्रमुख तत्व हैं और जैसा हम कह चुके हैं वर्मा जी के उपन्यासों में यह सब कुछ है और इतना होने पर भी उनके उपन्यास 'हवाई' नहीं बन पाये। वे हमारे जीवन के सत्यों और तथ्यों से भी संबंधित है। मृत्यु के मुख में भी प्रेम का संगीत गाना, परिस्थितियों के संघर्ष में भी प्रेम की अमरता स्थापित रखना, तोप और गोलों तथा तलवारों की झनझनाहट में भी मिलने के स्वप्न देखना, भीषण से भीषण विपत्तियों में भी प्रेम के उच्च धरातल पर खड़े रहना, अन्याय का सक्रिय प्रतिरोध करना, जीवन की भाग दौड़ में भी कर्तव्यों की ओर प्रेरित रहना, यही वर्मा जी के उपन्यासों का रोमान्स है। उनकी नायिकाएँ लक्षण ग्रन्थों की नायिकाएँ नहीं है जो अपने रूपजाल से अपने प्रेमियों को फांसे रहती हैं वरन् वे उन्हें कर्तव्य क्षेत्र में उन्मुख करती है, युद्ध में जाते हुए उन्हें हंस कर विदा देती हैं, अन्याय और जर्जर मान्यताओं का डटकर विरोध करती हैं, उन्हीं के समान अपनी छाती पर भी लोहे के नुकीले तीरों को रोकती हैं। सामन्तीय व्यवस्था से पीड़ित वर्मा जी के नायक नायिकाएं, उनका प्रतिरोध करते हैं, सफल न भी हुए तो भी अन्तिम क्षणों तक अपनी क्रियाशीलता में कोई कमी नहीं आने देते! आज के तथाकथित 'मनोवैज्ञानिक' उपन्यासों में जिस रोमाँस का वर्णन होता है उसमें केवल यौवन की उठती हुई आँधियों की चंचलता है, उद्वेग है, रूप की प्यास है, कर्तव्यों और परिस्थितियों के सम्मुख झुक जाने की प्रेरणा है या फिर प्रेम भरे पत्रों का बाहुल्य है और वर्मा जी के उपन्यासों में यथार्थ के सम्मिश्रण से जिस रोमाँस के दर्शन हमें होते हैं उसमें स्थिरता है, विकास के बीज हैं, संघर्षों में जूझ जाने की शक्ति है और साथ ही जीवन और युग के प्रवाह को मोड़ देने की क्षमता भी !!

'गढ़-कुण्डार' में ही देखिये-युद्ध के भीषण वातावरण में भी तारा दिवाकर को बंदी गृह से निकालती है, उसे अपने प्राणों की चिंता नहीं [illegible] है और न ही उस वर्ण

व्यवस्था की जो उनके मिलन में बाधक थी ! वह सब का तिरस्कार कर अपने कर्तव्य को सम्पादित करती है ! अग्निदत्त गर्भवती मानवती की रक्षा अपने प्राणों की बलि देकर करता है कारण मानवती के प्रति उसके हृदय में जो प्रेम था उसका यही आग्रह था। इस रोमाँस का स्वरूप विकृत नहीं प्रत्युत संघर्षशील और शुद्ध है।

'विराटा की पद्मिनी' में एक अजीब वातावरण है। कुंजर अन्तिम युद्ध करने जा रहा है। उसे जीवित बचने की कोई आशा नहीं देख पड़ती ! कुमुद भी उसके साथ जाना चाहती है पर वह उसे रोक देता है।

"कुंजर की आंखें भी छलक आईं। बड़ी कठिनाई से कुंजर के मुख से ये शब्द निकले—प्राणप्यारी कुमुद ! सुखी रहना। एक बार मेरी तलवार की मूठ छू दो। तुरन्त कुमुद उसके सन्निकट जाकर खड़ी हो गई। एक उसका कोमल कर कुंजर की कमर में लटकती हुई तलवार की मूठ पर जा पड़ा और दूसरा उसके उन्नत भाल को छूता हुआ उसके कन्धे पर जा पड़ा।

ऊपर गोले सांय साँय कर रहे थे। तोपचियों ने कुंजरसिंह को पुकारा। कुंजर ने अपना एक हाथ कुमुद की पीठ पर धीरे से रखा और फिर जोर से उसे हृदय से लगा लिया। कुमुद ने अपना सिर कुंजर के कंधे पर रख दिया। तोपचियों ने कुञ्जर को फिर पुकारा। कुञ्जसिंह कुमुद से धीरे से अलग हुआ। बोला—यहीं रहना, बाहर मत आना। सुखी रहना ! कुमुद कुछ न बोल सकी। खोह से बाहर जाते हुए पीछे मुड़कर कुंजर ने फिर कहा—अगले जन्म में फिर मिलेंगे—अवश्य मिलेंगे अर्थात यदि आज समाप्त हो गया तो।"

कुन्जर लड़ता है। उस दिन का युद्ध समाप्त होता है ! दूसरे दिन कुमुद से अन्तिम विदा मांगने आता है। कुमुद अधखिले और जंगली पुष्पों की एक माला उसके गले में डाल देती है। उधर कुन्जर देबीसिंह से लड़ते हुये मारा जाता है और इधर बेत्वा कुमुद को अपनी गोदी में छिपा लेती है।

वही वीरता, वही जीवट, वही प्रेम यहां भी है जो गढ़ कुण्डार में था। 'झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई' में उद्देश्य महान है—अंग्रेजों के विरुद्ध लड़कर देश की स्वाधीनता को प्राप्त करना। फिर भी उसमें प्रेमी युग्म हैं, एक दो नहीं—चार चार। मुन्दर रघुनाथसिंह, तात्या-जूही, मोतीबाई खुदा-बक्श, नारायण शास्त्री-छोटी ! नारायण शास्त्री जाति पाँति के बन्धनों की अवहेलना कर छोटी भंगिन के साथ कहीं दूर निकल जाता है। जूही, मोतीबाई, मुन्दर, खुदाबक्श प्रेम करते हुये भी स्वतन्त्रता संग्राम में अपनी बलि दे देते हैं। इनके सम्मुख मृत्यु को कोई महत्व नहीं है। स्वाधीनता की प्राप्ति इनका पहला उद्देश्य है—तत्पश्चात अपने प्रेमियों से मिलन ! युद्ध क्षेत्र में

ये मुस्कराते हैं।

रानी जूही से कहती है—

"आज तेरी सुगंधि ऐसी बरसे कि बैरी बिछ जाय।" जूही प्रसन्न होकर बोली—आज मैं जो कुछ कर सकूँ कह नहीं सकती परन्तु आंखें खुलते ही जो कुछ प्रण किया है उसके अनुसार अवश्य काम करूँगी। ......

जूही—एक हसरत मन में रह जाती है। आपको गाना न सुना पाया।

रानी—किसी दिन सुनूँगी।

जूही—हाँ सरकार, अवश्य। जूही जरा ज्यादा हँस पड़ी।'-

जूही अंग्रेजों से जूझ जाती है। शत्रु उसकी देह को चीर देता है पर उसके ओठों से उसकी मुस्कराहट नहीं छीन पाता।

रघुनाथसिंह और मुन्दर भी प्राण देने के लिये युद्ध करने जा रहे हैं।

"मुन्दर बाई, रघुनाथसिंह ने कहा—रानी साहब का साथ एक क्षण के लिये भी छूटने न पाये। वे आज अन्तिम युद्ध लड़ने जा रहीं हैं।

आप कहाँ रहेंगे ?

जहाँ उनकी आज्ञा होगी। वैसे आप लोगों के समीप ही रहने का प्रयत्न करूँगा।

मैं चाहती हूं आप बिल्कुल निकट रहें। मुझे लगता है, मैं आज मारी जाऊँगी। आपके निकट होने से शान्ति मिलेगी।...... मुन्दर ने रघुनाथसिंह की ओर आँसू भरी आंखों से देखा। कुछ कहने के लिये होठ हिले। ...... मुन्दर ने रघुनाथसिंह को मस्तक नवा कर प्रणाम किया और उसने ओट में जल्दी आंसू पोंछ डाले।"

परिणाम वही होता है जिसे मुन्दर समझी थी! पिस्तौल की गोली मुन्दर का शरीर छेद डालती है। रघुनाथसिंह उसके शव को पीठ में बांध कर फुर्ती से निकल जाता है।

मोतीबाई के खून से भी रानी की गोद तर होती है। इसके प्राण रानी की गोद में ही छूटते हैं। खुदाबक्श भी मारा जाता है।

'प्रेम की भेंट' में सरस्वती अपने सीमित साधनों द्वारा अपने ऊपर किए गए अन्याय का प्रतिरोध करती है। धीरज भी मर जाता है।

'मृगनयनी' में लाखी और अटल का प्रेम सच्चा रोमान्स है। विपत्तियाँ उन्हें छेदती हैं, संघर्षों में वे व्यस्त होते हैं पर उनका प्रेम अचल रहता है। राई की गढ़ी की रक्षा में दोनों अपने प्राणों की बलि दे देते हैं। जाति पांति का शत्रु उनके प्राण ले लेता है पर वे उससे हार नहीं मानते अन्त तक उससे डट कर लड़ते हैं।

'टूटे काँटे' में मोहन नूरबाई का प्रेम संघर्षों और विपत्तियों में और भी निखार पाता है। धर्म की दीवार उनके आड़े आती है पर वे उसकी परवाह न कर अपनी राह पर बढ़ते रहते हैं और प्रेम की उज्वलता चरितार्थ करते हैं।

'कुण्डली चक्र' में पूना और अजित का प्रेम भी रोमान्स ही है। जिन परिस्थितियों के बीच पूना अजित को प्राप्त करती है उनमें एक अजीब क्षिप्रता है। इसी प्रकार 'लगन'में देबीसिंह और रामा अपने प्रेम से रोमान्स के शुद्ध रूप को चरितार्थ करते हैं। भरी बेतवा को पार कर देबीसिंह रामा से मिलने जाता है और उसी प्रकार रामा भी अपनी व अपने प्रेमी की लाज के लिये बरसात की अथाह बेतवा में कूद पड़ती है और अपने ससुर के सामने जाकर खड़ी हो जाती है।

इन उपन्यासों में प्रेम का जो भी स्वरूप देख पड़ता है वह उज्वल है, संघर्षों के बीच में पला हुआ है और कर्तव्योन्मुख है। इसी कारण वर्मा जी के उपन्यास वास्तविक और एक भिन्न प्रकार के रोमान्स की गरिमा पा सके हैं। वर्मा जी से पूर्व हिन्दी में रोमान्स का यह स्वरूप देखा भी न गया था और आज भी कोई अन्य लेखक रोमांस के इस रूप की स्थापना नहीं कर पाया है।

रोमान्स में परिस्थितियों की प्रधानता रहती है, परिस्थितियां ही आगे का घटना चक्र निर्मित करती हैं और उसमें पात्रों को अनजाने ही फांसने की चेष्टा करती हैं। पात्र उन परिस्थितियों और घटनाओं को चीरते फाड़ते अपना मार्ग बनाता है और सफल असफल होता है। इस कारण रोमान्स में घटनाओं की-शीघ्रता से घटने वाली घटनाओं की प्रधानता होती है। क्या ड्यूमा और क्या स्काट्स सभी के उपन्यासों में घटनाओं की यह प्रधानता पाई जाती है। एक बात और है। श्रेष्ठ रोमान्स लेखक घटनाओं की इस बहुलता के बावजूद भी ऐसे चरित्रों का सृजन करता है जो हमें कभी नहीं भूल सकते। घटनाओं और चरित्र चित्रण दोनों का सौन्दर्य मिलकर एक आश्चर्य जनक वातावरण की सृष्टि करता है। यही बात वर्मा जी के उपन्यासों में है। उनमें भी घटनाओं की प्रधानता है, परिस्थितियों की प्रधानता है। स्टीवेन्सन का कथन कि रोमान्स 'परिस्थितियों का काव्य' (Poetry of circumstances) है, वर्मा जी के उपन्यासों में भी पूर्ण रूपेण लागू होता है। परिस्थितियों का चक्र निर्मित होता चलता है, पात्र उसमें फँसते और छूटते हैं, सफल असफल होते हैं, डट कर उनका सामना करते हैं। 'विराटा की पद्मिनी' का उदाहरण लीजिये ! परिस्थितियां अपने आप उत्पन्न होती चलती हैं। कुन्जरसिंह और लोचनसिंह कुमुद के दर्शनों को जाते हैं, वहीं मुसलमान सैनिकों से उनकी मुठभेड़ होती है जो अलीमर्दान से शत्रुता में परिणित हो जाती है। इसके पश्चात नायकसिंह की मृत्यु के पश्चात एकदम

वातावरण गम्भीर हो जाता है। देवीसिंह राज्य का अधिकारी बनता है और कुन्जरसिंह उत्तराधिकार से वंचित रह जाता है। यहाँ भी परिस्थितियाँ ही प्रमुख भाग लेती हैं। देवीहसिं अकस्मात ही रंगमंच पर प्रविष्ट होता है और शीघ्र ही राजा बन बैठता है। घटनाएं इतनी तेजी से घटती हैं कि सदा कौतूहल रहता है कि अब आगे क्या होगा ? यही सब चीजें मिलकर आकर्षण को द्विगुणित कर देती हैं। अन्तिम दृश्यों में भी घटनाओं में एक वेग है। अलीमर्दान व देवीसिंह का साथ २ विराटा की ओर बढ़ना, दांगियों का युद्ध, कुमुद का आत्म वलिदान सब शीघ्राति शीघ्र घटने वाली घटनाओ में क्रम से एक के पश्चात एक होते रहते हैं। घटनाओं और परिस्थितियों की यह व्यापकता ही रोमान्स में आकर्षण ला देती है।

'कुण्डली चक्र' में भी यही बात है। पूना और अजित संबंधी सारी घटनाओं का निर्माण परिस्थितियों द्वारा ही होता है। परिस्थितियां पात्र की गति विधि को मोड़ देती हैं, उसके ऊपर अकस्मात ही गिरतीं हैं भले ही वह इसके लिये तैयार न हो ! पूना और अजित का मिलन परिस्थितियों पर आधारित है।

'लगन' में रामा और देवीसिंह का एकीकरण भी अधिकाँशतः परिस्थितियां ही करती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि परिस्थितियाँ वर्मा जी के उपन्नासों में अत्यधिक महत्व रखती हैं और चूँकि वे रोमान्स हैं इस कारण उनकी सत्ता भी आवश्यक है !!

दूसरी बात,चरित्र चित्रण की उत्कृष्टता के कारण भी वर्मा जी के रोमान्सों का आकर्षण द्विगुणित हो उठा है। एक साथ घटनाओं की बहुलता और चरित्र चित्रण की उत्कृष्टता वर्मा जी के रूमानी उपन्यासों में आश्चर्य जनक आकर्षण का कारण बनी है। यही कारण है कि हम इन रूमानी उपन्यासों को पढ़ते हुए नहीं थकते हैं, इनके पात्रों को नहीं भूलते, इनकी घटनाओं को नहीं भूलते और उनमें चित्रित प्रेम को नहीं भूलते। उत्कृष्ट रोमान्स इसी कारण पढ़े भी जाते हैं यद्यपि जैसा कहा जा चुका है कि वर्तमान संघर्षों से पलायन की प्रवृत्ति आज के जागरूक पाठक और आलोचक को सदैव खटकी है और खटकती रहेगी। भले ही हम अपने घनिष्ठ मित्रों को भूल जाँय पर इन उपन्यासों के पात्रों को नहीं भूल सकते।

अस्तु वर्मा जी के उपन्यास रोमान्स से भीगे हुये होने के कारण अपना विशेष स्थान रखते हैं, वर्णन और चित्रण की यथार्थता उन्हें सस्ता भी नहीं होने देती और वे हमें उतना ही आनन्द पहुंचाते हैं जितना वर्तमान जीवन के चित्रों को लेकर लिखे गये उपन्यास ! हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में अपने रूमानी उपन्यासों की एक नई धारा बहा देने के कारण वर्मा जी की महत्ता चिरस्थायी हो गई है।

—बुन्देलखण्डीय चित्र—

"भारतवर्ष के मध्यभाग में नर्मदा के उत्तर और यमुना के दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत की शाखाओं से समाकीर्ण और यमुना की सहायक नदियों के जल से सिञ्चित सृष्टि सौन्दर्यालंकृत जो प्रदेश है उसे बुन्देलखण्ड कहते हैं। समय समय पर इसके नाम दशार्ण, वज्र, जेजाक भक्ति, जुझौति, जुझारखण्ड तथा विन्ध्येलखण्ड भी रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि विन्ध्याटवी में स्थित होने के कारण, इस प्रदेश का नाम विन्ध्येलखण्ड पड़ा, बाद में अपभ्रष्ट हो, यह बुन्देलखण्ड कहलाया। इस भूभाग के उत्तर में यमुना का प्रचण्ड प्रवाह, पश्चिम में मन्द मन्द बहने वाली चम्बल और सिन्ध नदियां, दक्षिण में नर्मदा नदी और पूर्व में बघेलखण्ड है।...... ......। इस प्रान्त में बहने वाली मुख्य नदियां बेतवा, धसान, सुनार, केन और टोंस (तमसा) हैं जिनके जल से यह भाग बहुत उपजाऊ होगया है। यहाँ के पर्वतों में कई प्रकार के खनिज पदार्थ पाये जाते हैं। उनमें हीरा, ताँबा, लोहा आदि मुख्य हैं।"*

बुन्देलखण्ड ने भी इतिहास के पन्नों में अनेक नए अध्याय जोड़े हैं। न जाने कितने राजवंशों ने यहाँ राज्य किया। आदि काल से लेकर आज तक यह परम्परा नहीं टूटी। सामन्तीय व्यवस्था भी एक समय यहाँ पराकष्ठा पर थी। बात २ में तलवारों का खिचजाना, पारस्परिक मानापमान के लिये जूझ जाना, स्त्री सौन्दर्य के पीछे बड़े २ युद्धों का होना, पारस्परिक जय पराजय, यहाँ की जर्जर गढ़ियाँ, ध्वस्त किले, पथरीली ऊँची नीची चट्टानें आज भी अतीत के उस इतिहास की साक्षी हैं।

इसी बुन्देलखण्ड की धरती में वर्मा जी ने भी सांस ली! बड़े हुए। अपने नेत्रों से इसके ध्वस्त ऐतिहासिक स्मारकों को देखा, यहाँ की पथरीली भूमि में घूमें, यहाँ के इतिहास को पढ़ा, यहाँ की सौन्दर्यमयी प्रकृति को निरखा और अपने साहित्य में उन्हें अमर कर दिया। वर्मा जी को लोगों ने बुन्देलखण्ड का उपन्यासकार और उनके उपन्यासों को 'बुन्देलखण्डी उपन्यास' कहा है। इसका कारण यही है कि उनके अधिकांश उपन्यासों का क्षेत्र यही बुन्देलखण्ड है। उसी के इतिहास और समाज का चित्रण उनके उपन्यासों में विशदता से हुआ है। जैसा कहा गया बुन्देलखण्ड का इतिहास सामन्ती वीरता, प्रेम और शौर्य से आच्छादित है। वर्मा जी ने उसी को अपनी

---

*श्री गोरेलाल तिवारी लिखित 'बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास' से—प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

लेखनी का विषय बनाया है। केवल बुन्देलखण्ड के इतिहास ने ही वर्मा जी को प्रेरणा नहीं प्रदान की, उसका कण २ उनके लिये अपूर्व प्रेरक सिद्ध हुआ। वहाँ के झरनों का कल २ शब्द, करौंदे के फूलों से उलझ २ कर बहने वाली वायु, लहराते खेतों के झूमते हुये पौधे, वहाँ का स्वच्छन्द वातावरण, वहाँ की प्रकृति का निश्छल प्यार, घांघरा पहने इठलाती हुई बुन्देलखण्डी बालाओं का सौन्दर्य, अपने बीते इतिहास की कहानी कहने वाले जर्जर किले, ध्वस्त गढ़ियां, सभी में वर्मा जी ने एक अद्‌भुत आकर्षण देखा और यही कारण है कि उनके उपन्यासों में इनके चित्र जिस सुन्दरता से उभरे हैं, वह अद्वितीय है। एक स्थान पर उन्होंने लिखा भी है—

"आप कभी बुन्देलखण्ड के भीतरी स्थानों पर घूमें हों तो आपको स्मरण होगा कि हमारा यह दरिद्र खण्ड कितना विभूतिमय है। हम लोगों के पास पैसे नहीं हैं परन्तु हम लोग फिर भी फागें और राछेर गाते हैं, अपनी झीलों और नदी नालों के किनारे नाचते हैं और अपनी रंगीली कल्पनाओं में मस्त हो जाते हैं। हमारे यहाँ हाल में एक 'ईश्वरी कवि' हुआ है। इसका नाम भी यही था। इसकी फागें प्रसिद्ध हैं। गाड़ीवान, चरवाहों, मल्लाहों से लेकर राजा महाराजा लोग तक उसकी फागों को झूम झूम कर गाते हैं। बिहारी के दोहों की तरह उसकी फागें भी छोटी छोटी सी हैं। बहुत सरल भाषा में हैं ओज और रस से ओत प्रोत। प्रत्येक फाग किसी मनोभाव का एक सम्पूर्ण चित्र। ये ही नदियां नाले झीलें और बुन्देलखण्ड के पर्वत वेष्ठित शश्य श्यामल खेत मेरी प्रेरणा के प्रधान कारण हैं इसीलिये मुझे Historical Romance पसन्द हैं!"

कहने का तात्पर्य यह कि बुन्देलखण्ड की प्रकृति, वहाँ के इतिहास, वहाँ के लोगों के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन, ने ही वर्मा जी को लिखने के लिए प्रेरणा प्रदान की। अब तक उन्होंने जितने उपन्यास लिखे हैं एक या दो को छोड़ कर सबका क्षेत्र बुन्देलखण्ड ही है। ऐतिहासिक उपन्यासों में यदि हमें बुन्देलखण्ड का अतीत इतिहास साकार देख पड़ता है तो सामाजिक उपन्यासों में बुन्देलखण्ड का आधुनिक जीवन और वह भी ग्रामीण जनता से संबन्धित!

वर्मा जी के ऐतिहासिक उपन्यासों में प्रमुख गढ़ कुण्डार, विराटा की पद्मिनी, मृगनयनी, झांसी की रानी, कचनार और टूटे कांटे हैं। टूटे कांटे को छोड़ कर शेष सभी का कथानक बुन्देलखण्ड के इतिहास से ही ग्रहीत है। 'विराटा की पद्मिनी' यद्यपि पूर्ण कल्पना है तो भी बुन्देलखण्डीय वातावरण और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में वह भी इतना सजीव हो उठा है कि मालूम पड़ता है कि शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है।

सामाजिक उपन्यासों में प्रमुख अचल मेरा कोई, लगन, प्रेम की भेंट, संगम कुण्डली चक्र, प्रत्यागत और अमरबेल हैं। इनमें से अधिकांश में बुन्देलखण्डीय वातावरण और चित्रों की भरमार है। ग्रामीण जीवन के चित्रों के लिए तो ये भी अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों के विषय में एक बात और भी जान लेनी चाहिए कि उन "उपन्यासों का ढाँचा ऐतिहासिक है; उनकी न केवल भौगोलिक वरन् सांस्कृतिक पृष्ठभूमि भी आज की है। उनकी सजीवता का यह बहुत बड़ा कारण है।"* इसके मूल में उस युग का प्रभाव स्पष्ट है जिसमें वर्मा जी ने जन्म लिया है।

वर्मा जी के इन उपन्यासों में बुन्देलखण्डीय जीवन के, प्रकृति के, इतिहास के, अनेक बहुमूल्य चित्र छिपे हैं जो अपने सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध हैं। इन चित्रों के प्रति उपन्यासकार का गहरा मोह है जो उनके वर्णनों से स्पष्ट झलक उठता है। उसने इतनी सूक्ष्मता से उनका वर्णन किया है कि उनकी एक एक रेखा स्पष्ट होगई है। यही कारण है कि वे पाठकों को भी सुन्दर लगते हैं और उन्हे बार बार पढ़ने पर भी पुनः पढ़ने को जी चाहता है। बुन्देलखण्ड की नदियां, उसके पहाड़, गांव, झाड़ी झुरमुट, सबसे लेखक को आत्मीयता है। वहाँ की निश्छल, सौन्दर्यमयी प्रकृति ने जैसा कहा जा चुका है लेखक को बहुत बड़ी सीमा तक प्रभावित किया है और उसे प्रेरणा प्रदान की है। बुन्देलखण्डीय प्रकृति के इसी प्रकार के कुछ चित्रों का उद्धरण इस कथन को बिल्कुल स्पष्ट कर देगा।

सबसे प्रथम बुन्देलखण्ड की नदियों को लीजिये ! वर्मा जी को उनसे बड़ा मोह है। उनके अधिकांश उपन्यासों में कोई न कोई बुन्देलखण्डीय नदी अवश्य कल्लोल करती मिलेगी ! कहीं बेतवा का सौन्दर्य दिखाई पड़ेगा तो कहीं धसान और टोंस का। इनका वर्णन इतनी सूक्ष्मता और सुन्दरता से लेखक करता है कि पाठकों को भी इनसे मोह हो जाता है। बेतवा के कुछ चित्र देखिये—

"बेतवा नदी अपनी दोनों धारों से कलकल करती बहती जा रही थी। कुछ दूर ऊपर से पत्थरों के टकराने का शब्द पवन के साथ मिलकर कभी धीमा और कभी प्रबल हो जाता था। दोनों धारों के बीच में कई टापू बन गये थे। एक जो सबसे बड़ा था और अब भी है, लगभग आध मील लम्बा और पाव मील चौड़ा था !! उसके किनारों पर जामुन और ऊमर के सघन और सदा हरे भरे रहने वाले वृक्ष नीचे की ओर झुक आये थे। अस्ताचल गामी सूर्य की किरणें हरी पत्तियों के साथ कल्लोल सी कर रही थीं। इनके नीचे कहीं पतली सी धार बहती थी और प्रायः बड़े बड़े गहरे नीले

*डा० रामविलास शर्मा !!

जल से भरे हुए दह थे। पक्षी इन पर अपनी परछाईं डालते हुए रात के बसेरे के लिये इधर उधर चले जा रहे थे। कभी बाज को और कभी किसी जंगली पशु को पानी के लिए किसी दह की ओर उतरते हुये देख कर टिटहरी बोल उठती थी।" (गढ़ कुण्डार पृष्ठ ६६)।

"बेतवा की धार पुञ्ज के ऊपर पुञ्ज सी दिखलाई पड़ती थी। क्रम अभंग और अनन्त सा। जब एक क्षण में ही अनेक बार एक जल पुञ्ज दूसरे से संघर्ष खाता और एक, दूसरे से आगे निकल जाने का अनवरत, अथक, अटूट प्रयास करता तब इतना फेनिल हो जाता कि सारी नदी में फेन ही फेन दिखलाई पड़ता था। झाग की इतनी बड़ी निरन्तर बहती और उत्पन्न होती हुई राशियां आड़े आ जाती थीं कि घुड़सवारों को सामने का किनारा नहीं दिखलाई पड़ पाता था।

लहरों के एक पक्षड़ को चीरा, उस पर के झाग को बेधा कि दूसरा सामने। शब्द मय प्रवाह की निरर्थक भाषा मानो बार बार कहती थी, बचो बचो। सामने की उथल पुथल से आगे बढ़े कि बगल से थपेड़ पड़ी।............। सवारों के चारो ओर भाँवरें पड़ पड़ जा रहीं थीं। एक भँवर बनी, पार की कि दूसरी तुरन्त मौजूद। (झांसी की रानी पृष्ठ २८३) !!

सूर्य ढल चुका था। हवा तेज चल रही थी। बेतवा लहरें भर रही थी। सुनहरी किरणें तट की हरी वृक्षावली पर नाच रही थीं। लहरों पर उतराती हुई किरणें कभी २ बरातियों के चेहरों पर झाईं दे जाती थीं।............। किसी कारण दो बड़े २ आँसू जानकी की आखों में आ गये। लहरों पर उतराती हुई अस्तगत सूर्य की कोमल किरणों की छाया उन मोतियों की बूँदों में जा बसी। उन बूँदों में निश्चित बेतवा की लहरें खेल गईं, शून्य आकाश की असीमता चमक गई और अनन्त भविष्य की वियोगपूर्ण निराश्रयता।" (संगम) !!

विराटा की पद्मिनी में तो बेतवा के एक से एक सुन्दर चित्र हैं परन्तु सबसे आकर्षक तो अन्तिम दृश्य में बेतवा की धार में कुमुद का आत्म बलिदान है। बेतवा भी कुमुद को उसी प्रकार गोद में छिपा लेती है जिस प्रकार कोई मां अपने शिशु को अपनी छाती में समेट ले। उसकी धार अलीमर्दान को फटकार देती है—

"उधर तान समाप्त हुई .... खड़ा रह गया।" 'लगन' में भी बेतवा के अनेक चित्र हैं। कहीं वह दहाड़ें मारते हुये बहती दिखाई गई है, कहीं शान्त गति से। रामा इसी भरी बेतवा में कूद जाती हैं। देवीसिंह भी इसे ही पार कर रामा के पास आता जाता है।

एक चित्र देखिये—रामा घर से चल देती है। बेतवा के किनारे आती है।

भीषण बरसात । बेताली उसके पीछे २ ही उसे खोजता हुआ आता है—

"नीचे तीव्र गति के साथ दहाड़ मारती हुई बेतवा नदी बही चली जा रही थी । ऊपर से मेह बरस रहा था और हवा ने प्रचण्ड रूप धारण कर लिया था।...... ......पीछे से बेताली ने आकर कहा, कौन है; ठहरो !

रामा मन में 'जय गंगा मइया' की कहती हुई नदी में कूद पड़ी ! मगरों से डरने वाली रामा को उस अँधेरी रात में, उस प्रचण्ड बेतवा की भयंकर धारा ने न डरा पाया । विकट साहस के साथ हाथ मारती हुई, सघन बादलों में छिपे हुए चन्द्रमा की तरह, रामा बेताली की आँख से उछलती हुई लहरों की ओट होगई !!"

इसी प्रकार 'कचनार' में धसान और 'मृगनयनी' में साँक नदी के भी अनेक सौन्दर्य चित्र हैं।

तालाबों और झीलों के सौन्दर्य का एक उदाहरण देखिये—

"धामोनी की झील पहाड़ी ढोंको में है और गोल नहीं है । किनारे कोंण मय हैं। एक स्थान से दूसरा स्थान आसानी से नहीं दिखलाई पड़ता ।" (कचनार—पृष्ठ १६३) !!

"अभी गर्मी ने ऋतु पर अपना अधिकार नहीं जमा पाया था। सागर की झील की एक एक लहर पर कल्लोल करने वाली सांध्य रश्मियों को बसन्त के मेघों ने घेर लिया। हवा धीमी थी और नीम के पुष्प राग से लदी हुई। संध्या के बाद मेघ और पवन दोनों कुछ और सघन हुए।" (कचनार—पृष्ठ २५६) !!

पहाड़ियों और उनके आस पास उगी हुई वृक्षावलियों का सौन्दर्य भी वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में साकार कर दिया है। बुन्देलखण्ड का बहुत कुछ सौन्दर्य विन्ध्याचल पर्वत पर आधारित है। पहाड़ी प्रदेश होने के कारण उसकी सुन्दरता वास्तव में अत्यधिक आकर्षक है !! कतिपय उद्धरण निम्नलिखित हैं—

"उस पार की पहाड़ियों का लहरियादार सिलसिला हरियाली से ढका हुआ था। बादल के सफेद धूमरे टुकड़े पहाड़ियों की चोटी और हरियाली को चूमने के लिये नभ से उतर उतर कर टकराते चले जा रहे थे।.......................। पहाड़ों की कन्दराओं में घुसे हुये, उनको आच्छादित किये हुये, बादलों में होकर वह बकुलावलि छिपती हुई सी मालूम पड़ी। और फिर तितर बितर हुई। जैसे हिलती हुई सांवली, सलोनी चादर में टंके हुये सितारे। पहाड़ पर बड़े २ और सघन पेड़। गहरे हरे श्यामल !" (झांसी की रानी—पृष्ठ २८४) !!

पलोथर की पहाड़ी का सौन्दर्य 'गढ़ कुण्डार' में अपूर्व है।

"सूर्य की कोमल किरणें वृक्ष शिखाओं की झुरमटों की अनवरत समस्थली पर बिछौना सा बिछाये हुई थीं। पलोथर, कुण्डार और दक्षिण वर्ती सारौल की पहाड़ियां इन झुरमुटों के ऊपर ऊकड़ू सी बैठी या लेटी मालूम पड़ती थीं। कुण्डारगढ़ के बुर्ज प्रकाश में चमक से रहे थे। गिरि श्रेणियां ऐसी मालूम पड़ती थीं मानों भीमकय

अटल सैनिक जुझौति के इस खण्ड की रक्षा के लिये डटे हों।" (गढ़ कुण्डार–पृष्ठ ६६)!!

बेतवा और पलोथर के संयुक्त सौन्दर्य को झाँकी देखिये—

"पूस का महीना था। सूर्यास्त होने में बहुत देर थी। देवरा से पाव मील पूर्व पलोथर की पहाड़ी कीजड़ में बहने वाले नाले के दोनों किनारों के पेड़ों के झुरमुटों की नीलिमा पर रवि रश्मियां नाच सी रही थीं। बेतवा के पश्चिमी किनारे पर से ऐसा भास होता था मानों वन देवी के पदचारण के लिए पलोथर ने लम्बा सुनहला पांवड़ा बिछा दिया हो।" (गढ़ कुण्डार–पृष्ठ २१) !!

राई गाँव के आस पास छाई पहाड़ियों का सौन्दर्य मृगनयनी में निखर उठा है। "एक दिशा में उन रजत लहरों के उस पार छोटी छोटी पहाड़ियों के ऊपर एक ऊंची पहाड़ी सिर उठाकर धूमिल नेत्रों में चांदनी को भर सा लेना चाहती थी। ऊंची पहाड़ी का शिखर धुँए का स्थिर पुञ्ज सा जान पड़ता था। नदी के इस पार दूसरी दिशा में विशाल वृक्षों की सेज के पीछे एक ऊँचा पहाड़ चन्द्रमा को मानों नीचे उतर आने के लिये आवाहन सा दे रहा था। बीच बीच में पतोखी टीं टीं चीं चीं कर देती थी जिससे न तो चांदनी विचलित हो रही थी और न पर्वत के ऊंचे शिखर का ध्यान ही।" (मृगनयनी–पृष्ठ १६, १७) !!

नदी, नाले, पहाड़ियों आदि के अतिरिक्त बुन्देलखण्ड के झाड़ झंखाड़ों, गढ़ियों एवं खेत खलिहानों के वर्णनों में भी वर्मा जी को पर्याप्त सफलता मिली है। इन वर्णनों को पढ़ने से ही ज्ञात होता है कि वर्मा जी का इनसे कितने निकट का परिचय है, अन्यथा इतनी सूक्ष्मता और आत्मीयता से वे इनसे सम्बन्धित चित्रों को न खींच पाते! कतिपय उद्धरण इस प्रकार हैं—

नरवर के किले का वर्णन देखिये—

"नरवर के नगर कोट में तीन फाटक थे, एक उत्तर की ओर और दो पूर्व दक्षिण में। दीवारें ऊंची थीं और फाटक मजबूत। हाथियों के कवच रक्षित माथे को फोड़ने के लिये फाटकों के बाहरी ओर बड़े मोटे, नुकीले लोहे के कील जड़े हुये थे। खाद्य सामग्री नगर और किले के भीतर कम से कम एक वर्ष के लिये पर्याप्त थी।··· । रक्षा के लिए लड़ने वाले और आक्रमण कारियों का भर्ता कर देने के लिए फाटकों की बुर्जों और कोट मीनारों पर भारी भारी चट्टानें थीं जिनको नीचे ढकेल दिया जाय तो गाज सी टूटे।" (मृगनयनी–पृष्ठ २७८)!!

धामोनी के किले का संक्षिप्त वर्णन—

"किला विशाल था और उसमें अनेक बड़ी २ बुर्जें थीं। बुर्ज पचास फीट से अधिक ऊँची और किले की दीवाल पन्द्रह फीट से कम मोटी न होगी। बुर्ज से थोड़े

ही फासले पर कबरें थीं।" (कचनार—पृष्ठ १०) !!

'झांसी की रानी' में झांसी के किले का वर्णन एवं 'मृगनयनी' में राई की गढ़ी और ग्वालियर के किले का वर्णन भी वर्मा जी की सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है। वर्मा जी ने जितनी आत्मीयता से इन गढ़ों और किलों का वर्णन किया है, ऐतिहासिक उपन्यासकारों में ऐसी क्षमता कम ही होती है। इन सूक्ष्म वर्णनों का कारण यही है कि वर्मा जी ने इन गढ़ों और किलों को निकट से देखा है, वे उनके खण्डहरों पर घूमें हैं, उन्हें उनसे सम्बन्धित प्रत्येक बात का ज्ञान है। उन्होंने एक मित्र को लिखा भी था—"जब फुरसत होती है बन्दूक लेकर निकल जाता हूं। दो दो चार चार दिन जंगलों पहाड़ों में घूमता रहता हूं। वहाँ जो दृश्य पसन्द आता है कागज पर उसका शब्द चित्र खींच लेता हूं। 'गढ़ कुण्डार' का अधिकांश तो कुण्डार के दुर्ग के चारो ओर चक्कर काट कर लिखा है। 'विराटा की पद्मिनी' लिखने के लिये कई बार खजराहो हो आया हूं। उसके भी कई परिच्छेद वहीं लिखे गये हैं।"*

यही कारण है कि जंगलों, खेत खलिहानों और झाड़ झंखाड़ों के वर्णनों तक में भी वर्मा जी की सूक्ष्म दृष्टि का पता चलता है। बुन्देलखण्डीय बनस्पति के विषय में उनका ज्ञान अपूर्व है। जंगली पेड़ों, झुरमुटों, खेतों आदि के बड़े स्वाभाविक वर्णन उनके उपन्यासों में मिलते हैं। कतिपय उद्धरण निम्नलिखित हैं—

"बिखई से लगे हुए तीन चार महुए के पेड़ थे! महुओं के पीछे से एक चक्कर दार नाला निकला था। दूसरी ओर वह पहाड़ी थी जो मुजावली घाटा कहलाती है। एक ओर बीहड़ जंगल। कुञ्जरसिंह महुओं के नीचे गया। एक अहीर की कुछ भैंसे नाले के पास चर रही थीं। कुछ महुए के नीचे ऊंघ रही थीं। एक लड़का कुछ धूप कुछ छाया में सोता हुआ जानवरों की देख भाल कर रहा था। घास आधी हरी और आधी सूखी थी। करधई के पत्ते पीले पड़ पड़ कर गिरने लगे थे। नाले का पानी अभी नहीं सूखा था—कुछ भैंसें उसमें लोट लोट कर शब्द कर रही थीं। चिड़ियां इधर से उधर उड़ कर शोर कर रही थीं। सूर्य की किरणों में कुछ तेजी और हवा में उष्णता आगई थी।" (विराटा की पद्मिनी—पृष्ठ—१३१) !!

"चैत लग गया था। बसन्त ने पत्थरों और कंकड़ों तक में फुलवारियां पसार दीं। टेसू के फूलों ने क्षितिज को सजा दिया और धरती पर रंग बिरंगे चौक पूर दिये। समीर और प्रभञ्जन में भी महक समा गई। रात और दिन संगीत से पुलकित हो उठे।" (झांसी की रानी पृष्ठ १०) !!

---

*सुधा, वर्ष, १०, खण्ड १, संख्या ५, पृष्ठ ४१४ !!

"सालय, करघई, रेंवजा, नेगड़, अड़सा, खैर, कौंकिर और मकोय के घने जंगल में, जहाँ कहीं २ शिकारियों को हतोत्साह करने के लिये लम्बी लम्बी घास भी खड़ी हुई थी, इस दल को अपने घोड़ों के कारण बड़ा कष्ट उठाना पड़ा, जगह २ काँटे चुभे और भरकों तथा नालों में होकर घोड़ों को निकालने में कई स्थानों पर प्राणों पर आ बनने का संकट उपस्थित हुआ।" (गढ़ कुण्डार—पृष्ठ २१२) !!

"पहाड़ों में करघई धूमरे, बैंगनी रंग की छाई हुई सी थी! बीच बीच में कठबर, तेन्दू और अचार की हरी भरी झुरमुटें। बड़े बड़े छपकों जैसी। पहाड़ों की उपत्यका में साज, महुआ, अचार और सागौन के दीर्घकाय हरे वृक्षों की कतारें की कतारें, मानों उनका कहीं अन्त ही न हो !!" (कचनार—पृष्ठ ७) !!

"नदी के उस पार पहाड़ियों की खिरबिरें, लम्बे लम्बे समूह, बढ़ते हुए अन्धकार में एक लम्बी तिरछी अस्पष्ट रेखा की भांति भासित हो रहे थे। सघन वन के ऊपर पल्लव हीन करघई की क्षीण लालिमा, और रेंवजा तथा करदो की गहरी हरियाली की धूंधली चादर सी तन गई थी। नदी में टिटहरी बोल रही थी। किनारे के वृक्षों पर श्यामा चिड़िया चहक उठी। नदी में मछली उछल उछल कर शोर करने लगी और मगर खुले स्थान से सरक कर पानी में समा गया। संध्या हो गई।" (लगन—पृष्ठ ८) !!

मृगनयनी में तो खेतों और झाड़ झंखाड़ों के चित्र अत्यन्त सुन्दर बन पड़े हैं—

"दोनों उसी तौल के साथ आगे बढ़ती गईं। आगे एक पहाड़ी की एक छोटी सी ओट मिली जो लम्बाई में नदी की ओर गई थी। आंख के इशारे से दोनों इसी के नीचे की ओर बढ़ीं। पहाड़ी के नीचे साल, सागौन, महुए और अचार के बड़े बड़े पेड़ थे। पहाड़ी के ऊपर करधई की घनी हलकी कत्थई रंग की झाड़ी थी। दोनों इस पर चढ़ कर उस ओर के नीचे मैदान के जंगल को निरख करना चाहती थीं परन्तु पहाड़ी की घनी करघई में घुसने के लिये पतली पगडण्डी भी नहीं थी।

(मृगनयी पृष्ठ ५०)

बुन्देलखण्डीय प्रकृति से सम्बन्धित ये सारे उद्धरण इसी बात के परिचायक हैं कि वर्मा जी का उस प्रकृति के प्रति कितना मोह और कितनी आत्मीयता है। प्रकृति के ये वर्णन कल्पित नहीं पूर्ण यथार्थ हैं। इससे इनकी रमणीयता और आकर्षण और भी अधिक बढ़ गया है। यदि वर्मा जी के उपन्यासों में बताये गये रास्तों के अनुसार कोई भ्रमण करे तो उसे वही गढ़ियाँ, वही नदी नाले, झाड़ झंखाड़, और ध्वस्त किले मिलेंगे जिनके कि चित्र उपन्यासकार ने गढ़े हैं। प्रकृति के इतने हृदयग्राही, रम्य और यथार्थ चित्रों को प्रस्तुत करने वाला उपन्यासकार हिन्दी में कदाचित कोई नहीं है। सम्पूर्ण बुन्देलखण्डीय प्रकृति को अपने उपन्यासों में साकार कर जहां वर्मा जी

ने उपन्यासों को आकर्षण प्रदान किया है वहां उस सुन्दर प्रदेश को भी अमर कर दिया है ! दिवाकर बुन्देलखण्ड के अपूर्व सौन्दर्य को देखकर कह भी उठता है—इस सुन्दर देश के लिये प्राण देना बड़े गौरव की बात होगी।"

(गढ़ कुण्डार—पृष्ठ २१३) !!

प्रकृति के अतिरिक्त बुन्देलखण्डीय जीवन के और भी अनेक चित्र वर्मा जी ने अपने उपन्यासों को गूँथ दिये हैं। सबसे पहला आकर्षण हमारे लिये बुन्देलखण्डीय भाषा का है। उनके उपन्यासों की भाषा शैली की विवेचना करते समय हम यह बता चुके हैं कि उनके पास जो भी भाषा-भण्डार है उसमें बुन्देलखण्डीय शब्दों की भी पर्याप्त प्रचुरता है। यहाँ हम वर्मा जी की उपन्यासों वाली भाषा की विवेचना न कर उन पात्रों की भाषा के सौन्दर्य को प्रदर्शित करना चाहते हैं जो ठेठ बुन्देलखण्डी में ही बोलते हैं। वर्मा जी की भाषा के सम्बन्ध में हम कह चुके हैं कि उनकी भाषा जनता की भाषा है—बुन्देलखण्डीय रंग में रंगी अपनी भाषा है। औरों को भले ही उसके सौन्दर्य में आकर्षण न देख पड़े पर हमें उनकी इस बुन्देलखण्डीय भाषा में ही अपूर्व मनोहरता देख पड़ती है। भाषा वही है जो बोलने वालों की आत्मा से निकली हुई हो, उनके जीवन से घनिष्ट रूप में सम्बन्धित हो ! अपने The Novel and the people, के प्रारम्भिक अंशों में रूस के महान कलाकार मैक्सिम गोर्की के साहित्य की विवेचना में प्रसिद्ध मार्क्स वादी आलोचक राल्फफाक्स ने लिखा है—

"Gorki has suffered from his translators into English, but Gorki as a Russian writer is full of a force which comes straight from the people among whom he lived. He always emphasized that the richest treasure house of language is to be found in the speech of the simple people, among the folk lore and stories of the people-there is to be found the greatest enrichment of language and of literature. The whole of his own work is proof of this. *

वर्मा जी की भाषा भी ऐसी ही है। राल्फफाक्स और गोर्की की भाषा सम्बन्धी मान्यताओं से हम पूर्ण रूपेण सहमत हैं। वर्मा जी के उपन्यासों में बुन्देलखण्डी भाषा का सौन्दर्य पूरी गति से उभरा है। ठेठ बुन्देलखण्डी बोलने वाले पात्रों की बातचीत को तो सुनते हुए जी नहीं अघाता। ग्रामीण जीवन के चित्रों में ऐसी भाषा ही रमणीयता लाती है। प्रेमचन्द की भाषा में भी यही खूबी है और तभी से उनका साहित्य जन जीवन का

* Ralph Fox--the Novel and the people, Page--49.

साहित्य बन सका है।

बुन्देलखण्डी बोली में भी अपनी निज की विशेषता है। उसकी मधुरता अपूर्व है विशेषकर जब वह उपन्यासों में ग्रामीण भोले भाले पात्रों के मुख से निसृत होती है। यह बात भी नहीं कि बुन्देलखण्डीय बोली में केवल कोमलता और मधुरता ही हो, उसमें तीव्रता, गति और अटूट शक्ति भी है। कठिन से कठिन और हृदय के सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को व्यक्त करने में भी उसकी क्षमता अपूर्व है। झलकारी के दो बोल— जनता में अंग्रेजों के प्रति जो रोष भरा था उसे व्यक्त कर देते हैं—कितनी आग और अंग्रेजों के प्रति कितनी घृणा है—झलकारी के इन दो बोलों में—"छाती बर जाय इन अंगरेजन की, गुटक लई झांसी।" इससे प्रकट है कि बुन्देल खण्डीय भाषा कितनी समृद्ध और कितनी शक्ति सम्पन्न है।

अपने अधिकाँश उपन्यासों में ग्रामीण पात्रों से ही वर्मा जी ने बुन्देलखण्डी भाषा का प्रयोग कराया है जो उपन्यास में स्वाभाविकता की सृष्टि तो करता ही है, उचित भी है। वैसे अन्य पात्रों की बोली में भी बुन्देलखण्डीय शब्द मिलते हैं पर उनसे बुन्देलखण्डीय भाषा का पूर्ण सौन्दर्य उभर नहीं पाता। उसे तो उभारती है—झलकारी, उसे सौन्दर्य प्रदान करता है—अर्जु न कुम्हार, उसे गति देते हैं बुन्देलखण्ड के भोले भाले, हृष्ट पुष्ट ग्रामीण! कतिपय उद्धरणों से भाषा की मधुरता, उसकी सम्पन्नता, झलक उठेगी!

'झांसी की रानी' में रानी झलकारी से उसका नाम पूछती हैं—उत्तर मिलता है 'सरकार, झलकारी दुलैया' !! इस दुलैया शब्द की मधुरता अपूर्व है। भाषा शैली की विवेचना करते समय डा० रामविलास शर्मा का इससे संबंधित एक उद्धरण देकर हम उसे व्यक्त कर चुके हैं। झलकारी रानी से कुछ कहना चाहती है—रानी पूछती हैं तब उत्तर देती है-'मोय जा बिनती करने-मोय माफी मिल जाय तो कओं"

रानी आश्वासन देती हैं, झलकारी कहती है—'महाराज, मोरे घर में पुरिया पूरबै को और कपड़ा बुनबै को काम होत आओ है। पै उनने अब कम कर दओ है। मलखम्ब, कुश्ती और जाने का का करन लगे। अब सरकार घर कैसे चलै"

रानी उससे पूछती है कि उसकी जाति में और कितने लोग कुश्ती आदि लड़ते हैं। झलकारी अपनी बड़ी २ कजरारी आँखें घुमाकर उत्तर देती है- "काए मैं का घर घर देखत फिरत ?" आदि २ !!

झलकारी की बातें इतनी मधुर होती हैं कि उन्हें बार बार सुनने को जी चाहता है।

'विराटा की पद्मिनी' में भी ग्रामीण किसान ठेठ बुन्देलखण्डी में ही बोले हैं।

उनकी बातचीत में भी अपूर्व मधुरता है—। कुंजर और एक अहीर लड़के की बातचीत सुनिये—कितनी मधुरता, स्वच्छता एवं स्निग्धता है उस लड़के की बातचीत में—

"दाऊजू, अबै दर्शन नई भए का ?" कुंजर पूछता है—"किसके दर्शन भाई ?" लड़का उत्तर देता है—"एल्लो; ! हमई सो टिटकारी करन आए ! दर्शन खों गई आए; इतै तो कोउ के लाने आए इत्ती दूर से ? संसार भर के राजाराव नित्त आउत रहत।" कुंजर पूछता है—"अच्छा बतलाओ हम किसके दर्शन के लिये आए हैं ?"

लड़का—"जी के दर्शन खों हमाओ दद्दा कभऊँ कभऊँ जात। का ओ दाऊजू, हमने जान लई कै नई। हम खाँ कौन कोउ ने बताई है हम तौ जान गए।"

कुंजर कहता है—"तुम्हारे साथ चलें गे कब जाओगे ?

लड़के ने उत्तर दिया—"जब चाए तब ! कौन दूर है ? इतै से दो कोस तो हैई। हमई एक भैंस के दूध नई निकरत सो बिनती के लाने कालई पूरी जैहै। तुम जो कुछ माँगौ, सो तुम्हें सोऊ मिल जैय।"

कुंअर—"रास्ता क्या बहुत बीहड़ में होकर है ? यहाँ तो मन्दिर दिखाई नहीं देता।" "पाठे पै हाँ के सब दिखात।" लड़का बोला—"बिराटा की गढ़ी दिखात और देवी को मन्दिर दिखात। ठीक नदी के बीच में बिराजेमान है। ए दाऊ जू ! हमने जब पैलउपैल देखो, तब आँख खिच गई हतीं। उनके नेत्रन में से भार सी निकर रई हती।" बुन्देलखण्डी का समस्त माधुर्य लड़के की भोली बातचीत में विद्यमान है। 'गढ़ कुण्डार' के अर्जुन कुम्हार की बातों में भी अपूर्व रस है। सुनते जाइये और फिर भी तृप्ति न होगी। हेमवती के विषय में अपनी राय प्रकट करते हुए कहता है—"नई जू, इत्तो तो मैं कै सकत कि बेटी के रूप छार छार बरसत ! गंगा सी रानी सी लगत"

अर्जुन की भाषा का यही स्वरूप आदि से अन्त तक हमें देख पड़ता है। मुहावरे कहावतों का प्रयोग करने में भी वह कम नहीं है। वर्मा जी की बुन्देलखण्डी भाषा की एक विशेषता यह भी है कि उसमें बुन्देलखण्डी कहावतों और मुहावरों का भी यथा स्थान प्रयोग हुआ है। अर्जुन ही एक स्थान पर कहता है—"अर्जुन की बान खाकें कोऊ राम को नाँव लो नईं ले पाउत।" और भी—"ऐसो औसर आहै तो कौन माता खों सात बेर जन्म दैनें।"

'कुण्डलीचक्र' में कहीं कहीं पूना की भाषा में भी बुन्देलखण्डी मधुरता छलक उठी है। इसी बुन्देलखण्डी बोली ने वर्मा जी के उपन्यासों को बुन्देलखण्ड की अतुलनीय निधि बना दिया है। बुन्देलखण्डीय वातावरण की स्वाभाविकता इसके कारण और भी द्विगुणित हो उठी है। स्थानीयता की यह सत्ता वर्मा जी के उपन्यासों

की प्राण है। इसी कारण उन्हें बुन्देलखण्डी उपन्यासकार कहा गया है। बुन्देलखण्डी भाषा का माधुर्य, उसकी सम्पन्नता का अनुमान वर्मा जी के उपन्यासों के पात्रों की बोली से हो लगा जाता है। इनकी बोली सुनकर इस भाषा के गहरे अध्ययन की जिज्ञासा पाठक को होती है। भारत की थोड़ी ही भाषाएँ इतनी सम्पन्न हैं। लोक संस्कृति के अंग के रूप में वर्मा जी के उपन्यासों में बुन्देलखण्डी का माधुर्य और भी निखर उठा है।

अब प्रश्न उठता है बुन्देलखण्डी लोक गीतों का। वर्मा जी के उपन्यासों में बुन्देलखण्ड के लोक गीतों के स्वर भी सुन पड़ते हैं। लोक गीत ही बुन्देलखण्डीय संस्कृति को और भी स्पष्टता से उभार देते हैं। "लोक गीत लोक संस्कृति की अभिन्न अंग हैं। जनता का चित्रण करते हुए लोक गीत एक ओर कथा में बुन्देलखण्डी पन का आभास देते हैं दूसरी ओर उपयुक्त अवसर पर—जिसे गद्य काम नहीं कर सकता वे पाठक और लेखक की भावना प्रकट करते हैं।"* कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।

सागरसिंह डाकू किले की दीवार लांघने के पहले याद करता है—"फेर न जननी जनम है—फेर न खैंच कमाना।"

इसी प्रकार गोसिखा अपने सहयोगी लालता से कहता है—"तब वह गीत याद रखना पंडितजी, 'जननी जनम दियो है सोबी बस आजहि के लाने।" और तत्पश्चात वह अंग्रेजों के ऊपर ऐसी भीषण गोलाबारी करता है कि अंग्रेजों के छक्के छूट जाते हैं। उपन्यास के परिशिष्ट में दी हुई भवगी दाऊजी की यह पंक्ति अमर है—"झाँसी की जो सटी सके तिहि खाए कालका माई।"

"विराटा की पद्मिनी" का "उड़ गये फुलवा रह गई बास" गीत अपूर्व है। वर्मा जी ने इसकी अन्तिम दो पंक्तियों को अपने उपन्यास का मार्मिक अन्त दिखाने के लिये बड़ी कुशलता से प्रयुक्त किया है। वैसे 'विराटा की पद्मिनी' में ही पूरा गीत भी उस समय उद्धृत किया गया है जब आवेश में नरपति नाचता हुआ उसे गाता है। पूरा गीत इस प्रकार है—

मालिनियाँ फुलवा ल्याओ नन्दन बन के।
ऊँची नीची घटिया डगर पहार
जहां बीरा लंगूरा लगाई फुलवार
मलिनियाँ फुलवा ल्याओ नन्दन बन के
छोटी सी रे मालिन लम्बे ऊँचे केश
फुलवा बीने पुरुष के बेस
मलिनिया फुलवा ल्यांओ नन्दन बन के।

* डॉ० रामविलास शर्मा !! ('नया पथ' के लेख से) !!

बीन बीन फुलवा लगाई बड़ी रास
उड़ गये फुलवा रह गई बास !! भलिनियाँ......

गीत की मोहकता का अनुमान उसके बोलों से ही लग जाता। अपने नाटकों में तो वर्मा जी ने बुन्देलखण्ड के कई लोक गीतों को अमर कर दिया है। उन पर कभी विचार होगा।

बुन्देलखण्ड के सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन के चित्र भी वर्मा जी के उपन्यासों में पाये जाते हैं। इन सबके संयोग से बुन्देलखण्ड के समाज और संस्कृति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

'विराटा की पद्मिनी' में ही ग्रामीण जीवन की एक से एक सुन्दर झांकियां हैं। उसमें एक स्थान पर उन्होंने लिखा है– 'जिस समय बड़े बड़े राजा और नवाब अपनी विस्तृत भूमि और दीर्घ सम्पत्ति के लिये रोज रोज खैर मनाते थे, अपने अथवा पराए हाथों अपने मुकुट की रक्षा में व्यस्त रहते थे और उसी व्यस्त अवस्था में बहुधा दिन में दो चार घन्टे नाच रंग, दुराचार और सदाचार के लिये भी निकाल लेते थे उस समय प्रजा अपनी थोड़ी सी भूमि और छोटी सी सम्पत्ति के बचाव की फिक्र करते हुए भी देवालयों में जाती, कथा वार्ता सुनती, और दान पुण्य करती थी। संध्या समय लोग भजन गाते थे। एक दूसरे की सहायता के लिये यथावकाश प्रस्तुत हो जाते थे। यद्यपि बड़ों के सार्वजनिक पतन की विपाक्त छाया में साधारण समाज को खोखला करने वाले अधर्ममूलक स्वार्थ का पूरा घुन लग चुका था और कादरता तथा नीचता डेरा डाल चुकी थी परन्तु बड़ों को छोड़कर छोटों में छल कपट और बेईमानी का आमतौर पर दौर दौरा न हुआ था। झांझ बजाकर रामायण गाते थे (विराटा की पद्मिनी-पृष्ठ ६१, ६२) !!

नाच रंग, होली 'फाग' आखेट, सदा से ही लोक संस्कृति के अंग रहे हैं। ग्रामीण जनता सदा ही इनमें लीन रही है। बड़े २ सामन्त और उनके अत्याचार भी जनता के इस कला प्रेम को नहीं दबा सके।

'मृगनयनी' में ही बहलोल और सिकन्दर लोदी के आक्रमणों से ग्वालियर व उसके आस-पास के गाँव तबाह हैं पर आक्रमण कारियों के जाते ही जहां वे अपने ग्रामों का पुनरुद्धार करते हैं वहाँ फाग, होली में भी मस्त हो जाते हैं।

"पांच दिन रंग पंचमी तक होली मनाने की प्रथा थी। किसी युग में एक महीने तक मनाई जाती थी। जीवन के बोझों ने एक महीने को घटा कर पांच दिनों में सीमित कर दिया। अब एक दिन भी दूभर था।

सबेरा होते ही कुछ लोगों ने हल्दी की थोड़ी सी गाँठों को बांट कर रंग तैयार किया और झींकते झींकते होली खेल ली। जिनकी गांठ में रंग नहीं था उन्होंने रास्ते

की धूल बटोरी और पानी में घोली। पिछली विपदाओं को भूल कर कम से कम कुछ घन्टों के लिए मतवाले हो जाने की ठान ली।" इनमें संख्या स्त्रियों की अधिक थी !! (मृगनयनी—पृष्ठ ४) !!

गांव वाले होली खेलते हैं और एक बार पुनः नाच रंग में मस्त हो जाते हैं।

"ओट ले लेकर पुरुष भाग रहे थे। सम्भाले हुए घूँघटों को खोल खोल कर स्त्रियां हंसती हुई कीचड़ के लड्डू बना बना कर पुरुषों पर फेंक रही थीं। पुरुष नाच नाच कर, फिरकियां खा–खा कर उन लड्डुओं को पीठ पर झेल झेल ले रहे थे।" (पृष्ठ ७) !!

"बहलोल भागा ! सिकन्दर भागा ! कहते हुये कुछ लोग अटल के पीछे पीछे दौड़ रहे थे। अटल दिल्ली के बादशाह का अभिनय करता हुआ अकड़ के साथ कूदता फाँदता जा रहा था। बीच २ में धूल और छोटे छोटे कंकड़ और सूखे गोबर के टुकड़े पछियाने वालों पर फेंकता जा रहा था। दिल्ली वाले को वैसे नहीं मार पाया था तो यों सही।" (पृष्ठ ६) !!

"स्त्रियां गाने लगीं। कई भोंड़े स्वरों में निन्नी का स्वाभाविक मधुर कंठ अलग सुनाई पड़ रहा था। गीत तीन कड़ी का ही था, स्त्रियां एक कड़ी को गाकर चुप हो जाती थीं तो पुरुष लय को पकड़ लेते थे—

जाग परी मैं पिया के जगाये,
भाग जगे पिय मोरे घर आये
उन नैनन में नींद कहाँ है जिन नैनन में आप समाये !!

गाते गाते कुछ स्त्रियां नाचने लगीं। निन्नी और लाखी ने नहीं नाचा। वे केवल गाती रहीं। कुछ पुरुष भी नाचे।" (पृष्ठ ११) !!

गांवों के सांस्कृतिक जीवन में जैसा कहा जा चुका है नाच रंग का बहुत स्थान है और वर्मा जी इस जीवन की झलक देने में भी नहीं चूके हैं।

'लगन' में भी ग्राम्य जीवन की सुन्दर झांकियां हैं। 'कुण्डली चक्र' इस दृष्टि से और भी सुन्दर है। 'अचल मेरा कोई' में पंचम गिरधारी प्रसंग में भी ग्राम्य जीवन की अच्छी झलक देखने को मिलती है। 'टूटे काँटे' में लोक संस्कृति और भी उभर उठी है। 'सोना' की कथा का आधार ही दादी नानी की कही हुई कथाएँ हैं। इसी से पता चलता है कि लोक संस्कृति के प्रति वर्मा जी को कितना गहरा मोह है। 'झांसी की रानी' में हरदी कूं कूं और पलाश पूजन के दृश्य तो इस दृष्टि से अपूर्व हैं। वहाँ पर लोक संस्कृति और भी निखर उठी है। "उपस्थित स्त्रियां हर्ष के मारे

उन्मत्त हो उठीं। नाचने लगीं। झलकारी ने तो अपने बुन्देलखण्डीय नृत्य में अपने को बिसरा सा दिया।" (झांसी की रानी पृष्ठ १००) !!

वर्मा जी ने स्वयं एक पत्र में लिखा था कि उनका बुन्देलखण्ड दरिद्र होते हुए भी सांस्कृतिक जीवन में कितना भाग लेता है—"आप कभी बुन्देलखण्ड के भीतरी स्थानों पर घूमें हों तो आप को स्मरण होगा कि हमारा यह दरिद्र खण्ड कितना विभूति-मय है। हम लोगों के पास पैसे नहीं हैं परन्तु फिर भी फागें और राछरे गाते हैं, अपनी झीलों और नदी नालों के किनारे नाचते हैं और अपनी रंगीली कल्पनाओं में मस्त हो जाते हैं। हमारे यहां हाल में एक 'ईश्वरी' कवि हुआ है। इसका नाम भी यही था। इसकी फागें प्रसिद्ध हैं। गाड़ीवान, चरवाहों, और मल्लाहों से लेकर राजा महाराजा लोग तक उसकी फागों को झूम झूम कर गाते हैं। बिहारी के दोहों की तरह उसकी फागें भी छोटी छोटी सी हैं। बहुत सरल भाषा में हैं—ओज और रस से ओत प्रोत। प्रत्येक फाग किसी मनोभाव का एक सम्पूर्ण चित्र। ये ही नदियां नाले, झीलें और बुन्देलखण्ड के पर्वत वेष्टित शस्य श्यामल खेत मेरी प्रेरणा के प्रधान कारण हैं।"

बुन्देलखण्ड के ग्रामों के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के इन चित्रों के कारण वर्मा जी के उपन्यास अत्यधिक समृद्ध हो उठे हैं। उन्हें पढ़ कर तत्कालीन बुन्देलखण्डीय वातवरण का पूरा ज्ञान हो जाता है। एक प्रकार से वे ऐसे दर्पण के समान हैं जिनमें बुन्देलखण्डियों का सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन, वहाँ का इतिहास, वहाँ की प्रकृति प्रतिबिम्बित हो उठी है।

बहुधा आलोचक वर्मा जी के उपन्यासों को अधिकांशतः बुन्देलखण्ड तक ही सीमित देख कर उनकी तुलना अंग्रेजी के उपन्यासकार थामस हार्डी से करते हैं। मेरी समझ में यह उपयुक्त नहीं है। हार्डी से वर्मा जी की तुलना केवल इसी बात पर आधारित है कि जहाँ वर्मा जी ने एक विशेष भू भाग से संबन्धित उपन्यास लिखे हैं वहां हार्डी ने भी, और उसने अपने इस भूभाग को 'वेसेक्स' कह कर पुकारा है, जो पूर्णतः कल्पित प्रदेश है। इस बात के अतिरिक्त हार्डी और वर्मा जी के उपन्यासों में और कोई समानता नहीं है। 'वेसेक्स' के अतिरिक्त हार्डी के उपन्यासों में आये अन्य स्थानों के नाम भी कल्पित हैं। वर्मा जी का भूभाग वेसेक्स से अधिक समृद्ध है और सबसे बड़ी बात तो यह है कि वह कल्पना नहीं है। उनके उपन्यासों का स्थान २ आज भी उसी प्रकार अपनी सत्ता की गवाही दे रहा है। हां, हार्डी ने कल्पित प्रदेश की रचना करने पर भी उस प्रदेश के रहने वालों के जीवन का जो वर्णन किया है वह कल्पना नहीं है। वर्मा जी और हार्डी के उपन्यासों में इतनी सी समानता देख कर दोनों की तुलना करना समीचीन नहीं है। हार्डी का कल्पित 'वेसेक्स' प्रदेश वास्तव में आक्स-

फोर्ड विश्वविद्यालय* के आस पास का प्रदेश है। वहाँ के ग्रामीण जीवन की सच्चाई के अतिरिक्त जैसा कहा जा चुका बाकी सब कुछ उसकी कल्पना है। उसकी कथा, उसके स्थान, उसके पात्र सब कल्पित हैं। वर्मा जी के पात्र, उनकी कहानियां, उनके स्थान, सब कुछ सत्य हैं। वर्मा जी की ऐसी कहानियों में भी पर्याप्त सत्यता है जो उन्होंने अपने मन से गढ़ी हैं। अस्तु हार्डी और वर्मा जी के उपन्यासों में किसी प्रकार की समानता दिखाना हमें रुचिकर नहीं !!

वर्मा जी के उपन्यासों में जो भी मुख्य बुन्देलखण्डीय चित्र देख पड़ते हैं तथा उन पर जो भी बुन्देलखण्डीय प्रभाव है, उसका संक्षेप में विवेचन किया जा चुका है ! और भी ऐसी बातें हैं जो बुन्देलखण्ड से सम्बन्धित होने के कारण वर्मा जी के उपन्यासों में भी उभरी हैं। बुन्देलखण्ड के ईंट रोड़े तक वर्मा जी के उपन्यासों में मौजूद हैं। हमने केवल मुख्य और महत्वपूर्ण चित्रों और प्रभावों का ही संकलन किया है जो हमारे विचार से पाठकों को इस सम्बन्ध की यथेष्ट जानकारी प्रदान कर सकेंगे।

वर्मा जी को अपने प्रदेश पर गर्व है, उन्हें उससे ममता है और ममता की यह भावना ही उन्हें उसके इतिहास के दबे खंडहरों तक खींच ले गई। उसने उन्हें बुन्देलखण्ड के इतिहास, वहाँ के समाज, वहाँ की प्रकृति, वहाँ के पत्ते पत्ते पर लिखने को प्रेरित किया ! वर्मा जी को इन्हीं खण्डहरों, इन्हीं वनस्थलियों और पहाड़ी उपत्यकाओं, में नई नई वीरता, प्रेम और शौर्य से भीगी कहानियां मिलीं। उन्होंने उन्हें शब्दबद्ध किया जो आज भी उसके इतिहास, प्रकृति एवं सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन की परिचायक हैं। वर्मा जी के उपन्यास बुन्देलखण्डीय गाथाओं की निधि हैं, वहाँ के इतिहास, वहाँ के समाज, वहाँ के गौरव, सब कुछ हैं। उनका महत्व इस दृष्टि से अत्यधिक है। उन्हें पढ़ कर पाठक अजीब मस्ती में लीन हो जाता है। उसे भी उनसे मोह हो जाता है। बुन्देलखण्डीय पात्र, वहाँ की प्रकृति, वहाँ के खेतों की ऊंघती बालें, पसीने से लथपथ मिहनतकश किसान, ऊंची २ पहाड़ियां, उसे भी इस

*हार्डी के वेसेक्स प्रान्त के विषय में A History of English Literture में लुई कजामिया (Louis Cajamia) ने लिखा है—Hardy's novels "are novels of provincial and even rustic life; for if the scene is sometimes shifted from the country to the towns, these are sleeping boroughas or cities flooded by the influences of fields. Oxford, the great University, which lifts its towers and spires on the horizon, is to the north the boundary of the agricultural country, hardly eaten into by the fever of modern manners, whose heart is Hardy's own Dorsetshire, and for which he has kept its old name of "Wessex."

सीमा तक प्रभावित कर देती हैं कि दिवाकर की तरह वह भी कहने को ललक उठता है—"इस सुन्दर देश के लिए प्राण देना बड़े गौरव की बात होगी।"

अपने विशद भौगोलिक ज्ञान के फलस्वरूप ही वर्मा जी बुन्देलखण्ड के इस वातावरण को शब्दों में उतारने में सफल हो सके हैं। ऐतिहासिक उपन्यासकार का गौरव यही है कि वह उस युग, उस प्रदेश, के इतिहास, भूगोल, वहाँ के लोगों के सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन, वहाँ के स्थान २ से पूर्ण रूपेण परिचित हो और तभी उसकी कृति में वह युग अपने वास्तविक स्वरूप को लिये उतर सकता है। वर्मा जी के विषय में तो यह असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि वे पहले बुन्देलखण्डीय हैं बाद को उपन्यासकार और बुन्देलखण्डीय वर्मा जी ने ही उपन्यासकार वर्मा जी को ऐसा सुन्दर साहित्य रचने की प्रेरणा और गति प्रदान की!

समस्याएँ

प्रत्येक जागरूक कलाकार अपने युग की परिस्थितियों से प्रभावित रहता है चाहे वे राजनैतिक हों अथवा सामाजिक, धार्मिक या अन्य ! इन परिस्थतियों का प्रतिबिम्ब उसकी कृतियों में यथास्थान झलकता रहता है। आज का युग अधिक संघर्ष ग्रस्त है। चारो ओर एक अस्तव्यस्तता सी देख पड़ रही है। सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों में कुछ ऐसी समस्याएँ उठ खड़ी हुई हैं कि उनके उपयुक्त समाधान के बिना हमारा जीवन स्वस्थ और सुन्दर नहीं बन सकता। समाज की एक इकाई होने के नाते कलाकार का यह कर्तव्य होता है कि वह अपनी राष्ट्रीय, जातीय व अन्य समस्याओं की ओर से उदासीन न हो प्रत्युत उन्हें उभार कर सबके सम्मुख रखे, उनके उपयुक्त निदानों की ओर इंगित करे और समाज एवं देश को एक स्वस्थ विकास की ओर उन्मुख करे।

निष्पक्ष रूप से देखा जाय तो भारतीय समाज आज सबसे अधिक क्षयग्रस्त है। सामाजिक एवं धार्मिक बंधन इतने जटिल हो गये हैं कि बिना उनसे मुक्ति पाये जीवन का स्वस्थ विकास असम्भव सा देख पड़ रहा है। जटिलताएँ इतनी अधिक बढ़ गईं हैं कि जीवन संकीर्ण होता जा रहा है, घुट घुट कर समाप्त होने की दिशा के अतिरिक्त उसके लिये और कोई मार्ग नहीं है। पूँजी वादी व्यवस्था इस दिशा में सबसे अधिक घातक सिद्ध हो रही है। वर्ग संघर्ष प्रबलतर हो उठा है,और मुट्ठी भर लोग अपने वर्ग के स्वार्थों के हित एक वृहत समुदाय की इच्छाओं का खून कर रहे हैं। ऐसी दशा में एक मानवतावादी कलाकार का यह अनिवार्य कर्तव्य हो जाता है कि वह इन समस्याओं को उभार कर समाज की दुर्बलताओं पर कठोर प्रहार करे, मानव को उनसे मुक्ति दिलाये। परिस्थितियों से निरपेक्ष रहना जागरूक कलाकार का लक्ष्य न होना चाहिये।

जितने भी जागरूक कलाकार अब तक हुये हैं उन्होंने समय समय पर प्राचीन जर्जर रूढ़ियों के प्रति अपनी आवाज को बुलन्द किया है। क्या कविता, क्या नाटक, क्या उपन्यास, कहानी,सभी क्षेत्रों में यह विद्रोह उग्रतर हो उठा है।

विषय प्रवेश में हिन्दी उपन्यासों का वर्णन करते समय हम यह इंगित कर चुके हैं कि किस प्रकार समय समय पर जागरूक उपन्यास लेखकों ने जर्जर और रूढ़िग्रस्त सामाजिक और धार्मिक मान्यताओं को अपने प्रहारों का लक्ष्य बनाया है। प्रेमचन्द और प्रसाद उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों

में ग्राम्य और शहरी जीवन से संबंधित अनेक समस्याओं को उभारा है। प्रसाद ने 'कंकाल' में हिन्दू समाज का कंकाल ही सबके सम्मुख उपस्थित कर दिया है। इनके अतिरिक्त और भी ऐसे उपन्यास लेखक हुए हैं जिन्होंने समाज के प्रति अपने दायित्व को समझ कर उसकी जर्जर रूढ़ियों के प्रति अपनी घृणा प्रदर्शित की है और वास्तविक निदान खोजे हैं।

बाबू वृन्दावन लाल वर्मा ने जिस समय उपन्यास क्षेत्र में पग रखा वस्तुस्थिति बदली नहीं थी वरन और भी उग्रतर हो चुकी थी! सामाजिक एवं धार्मिक बन्धन वैसे ही थे। राजनीतिक समस्याएँ भी सम्मुख थीं जिनके परिणाम स्वरूप और भी न जाने कितनी नवीन समस्याओं का उदय हो गया था। उन्होंने भी एक जागरूक कलाकार का कर्तव्य निभाया। चाहे उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हों चाहे सामाजिक या अन्य परन्तु समाज की पतनोन्मुख दशाओं को वे नहीं भूले। उन्होंने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में भी इस युग की समस्याओं को खूबी के साथ उपस्थित किया, उनके जर्जर रूपों के प्रति घृणा पैदा की। सामाजिक उपन्यासों में तो इन समस्याओं का उभार पाना स्वाभाविक ही था।

कहने का तात्पर्य यही कि वर्मा जी के प्रत्येक उपन्यास में चाहे वह अतीत के युग से सम्बन्धित हो चाहे वर्तमान युग से, आज की समस्याएँ उभरी हैं, उन पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। ऐतिहासिक उपन्यासों में इन समस्याओं को उभारना कठिन था पर एक कुशल कलाकार उस ऐतिहासिक वातावरण के बीच भी अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये उचित स्थान बना लेता है! वर्मा जी में यह कौशल था इसी कारण उनके ऐतिहासिक उपन्यास ऐतिहासिकता व देश काल की पूर्ण रक्षा करते हुए भी वर्तमान के चित्र बन सके हैं।

गढ़ कुण्डार वर्मा जी का प्रथम उपन्यास है। यह ऐतिहासिक है और १४ वीं शती के बुन्देलखण्ड से संबंध रखता है। ५००—६०० वर्ष पूर्व के कथानक वाले इस उपन्यास में भी वर्मा जी ने कतिपय समस्याएँ उठाई हैं। सबसे पहली समस्या जो गढ़ कुण्डार में विशेष रूप से उभरी है वह असवर्ण विवाह से सम्बन्धित है। इस समस्या ने ही उपन्यास की कथावस्तु को भी आकर्षण व विकास प्रदान किया है। आज भी यह समस्या अपने उग्र रूप में उपस्थित है। उस समय की परिस्थितियों को देखते हुये इसकी उग्रता का अनुमान किया जा सकता है। वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति जिस युग में हुई थी, हो सकता है उस युग के वह अनुरूप हो पर आज की परिस्थितियाँ इस वर्ण व्यवस्था के प्राचीन रूप को स्थिर रखने के प्रति विद्रोह कर रही हैं। विभिन्न वर्णों की अनेकता ही आज राष्ट्रीय ऐक्य को छिन्न भिन्न कर रही है।

समाज और धर्म ने असवर्ण विवाहों पर जो बन्धन लगा रखे हैं, गढ़ कुण्डार में उसका लक्ष्य दो प्रेमी युग्म बनते हैं। तारा दिवाकर, मानवती अग्निदत्त ॥

अग्निदत्त मानवती से भाग चलने को कहता है पर मानवती दुर्बल हृदया थी। वह तत्पर नहीं होती। समाज उसे उसी के वर्ण वाले एक क्षत्रिय के गले में बांध देता है। अग्निदत्त अपमानित होता है। उसका प्रतिशोध खंगारों का नाश कर देता है। मानवती भाग भी जाती तब भी समस्या का समाधान नहीं होता। तारा व दिवाकर संयमी हैं। सब कुछ सहते हैं। समाज से टक्कर लेने की शक्ति उनमें भी न थी। दिवाकर की असमर्थता उसके इस कथन में स्पष्ट है-

तारा ! जो कुछ मन में हो उसको भूल जाना। आज इस पूजा का अन्तिम दिवस है इस लिये साहस के साथ इन बातों के कहने की ढिठाई करता हूं। क्षमा करना ! कदाचित अब किसी बात के कहने का कभी अवसर न मिले। ईश्वर ने आप को कष्टों के लिये नहीं बनाया। मैं आज सच्चे हृदय से भगवान से प्रार्थना करूँगा कि आपको आपके वर्ण का सुयोग्य और सुपात्र वर मिल जाय। यही प्रार्थना आप भी करना। मुझे इसमें अनन्त आनन्द प्राप्त होगा !" दिवाकर इतना कह कर चल देता है पर पैर आगे नहीं बढ़ते। घोड़े के पास आकर उससे कहता है— "सिवा तेरे और मेरा इस संसार में कोई नहीं है।" दिवाकर की आंखों ने उस दिन न मालूम कितने आँसू चुपचाप अकेले में उस पेड़ के नीचे डाले।"

घटनाएँ बदलती हैं। दिवाकर व तारा को अवसर भी मिलता है कि वे दोनों एक ही सम्बन्ध सूत्र में गुँथ कर जीवन व्यतीत करें। पर धर्म का आग्रह उन्हें उनके आध्यात्मिक मिलन पर ही संतोष करने को वाध्य कर देता है।

यह समस्या केवल दिवाकर और तारा तथा अग्निदत्त और मानवती की नहीं है, आज यह और भी उग्रतर हो उठी है !

गढ़ कुण्डार में दूसरी प्रमुख समस्या जात्याभिमान की है। यह समस्या भी केवल क्षत्रियों में ही नहीं अन्य वर्णों में भी अपना अस्तित्व रखती है। हम ऊँचे हैं, तुम नीचे हो, हमारा तुम्हारा विवाह सम्बन्ध कैसा ?' क्षत्रियों में आज भी यही प्रश्न उपस्थित है। बुन्देले अपने को उच्च कहते थे। खंगार नीचे कुल के थे। एक ही वर्ण में विवाह सम्बन्ध होने में कठिनाई थी ! नागदेव हेमवती को प्रेम करता है। नागदेव खंगार था, हेमवती बुन्देला ! हेमवती नागदेव को उसकी धृष्टता पर फटकारती है।

नागदेव भड़क उठता है। वह हेमवती के अपहरण की योजना बनाता है परन्तु असफल होता है। जाति दर्प युद्ध को जन्म देता है। खंगार दुर्बल थे। उनका नाश कर दिया जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गढ़-कुण्डार में चित्रित ये दो समस्याएँ आज भी अपनी सत्ता रखती हैं। इनकी भीषणता का अनुमान तो इसी से लगाया जा सकता है कि इन समस्याओं से उत्पन्न परिस्थितियों ने ही उपन्यास के अन्त को इतना मार्मिक कर दिया है। चारों ओर नाश ही नाश देख पड़ता है। विजयी बुन्देले खंगारों के खून की होली खेलकर नाचते हैं। खंगारों का दीपक सदा के लिये अस्त हो जाता है। मानवती युद्ध क्षेत्र में निस्सहाय अवस्था में एक बच्चे को जन्म देती है। उसकी रक्षा करते हुए अग्निदत्त मार डाला जाता है। तारा दिवाकर भी एक अनजानी डगर पर चल देते हैं।

आज भी ऐसी घटनाओं को ढूँढ़ने की आवश्यकता न पड़ेगी जब इन समस्याओं से उत्पन्न परिस्थितियाँ परिवारों का सारा सुख नष्ट कर उन्हें जीवन भर तड़पने को छोड़ देती हैं, घरों के चिराग सदा के लिये बुझ जाते हैं, जीवन अन्धकारमय हो उठता है!!

'विराटा की पद्मिनी' में भी इसी से मिलती जुलती समस्याएँ दृष्टिगोचर होती हैं। जात्याभिमान यहां भी हमें देख पड़ता है। कुंजरसिंह दासी पुत्र है इस कारण उसे राज्य की बागडोर नहीं दी जाती जब कि देवीसिंह नामक एक बुन्देला राजा से किसी प्रकार भी सम्बन्धित न होने पर उनका उत्तराधिकारी बनता है। अपमानित कुंजरसिंह प्रतिशोध के लिये बाहर निकल जाता है। अन्त में उसकी और देवीसिंह की मुठभेड़ होती है और कुंजर मृत्यु को प्राप्त होता है। कुंजर का दासी पुत्र होना ही, सब के द्वारा उसका उपेक्षित होना ही और भी घटनाओं की सृष्टि करता है जिनके दुखदायी परिणाम होते हैं।

धार्मिक अंधविश्वास का भी स्पष्ट चित्र हमें 'विराटा की पद्मिनी' में देख पड़ता है। कुमुद दुर्गा का अवतार कही जाती थी। रूपवती थी और शान्त भी! सैकड़ों व्यक्ति प्रतिदिन उसके दर्शनों को आते! चर्चा अलीमर्दान तक पहुँचती है जो उसे प्राप्त करने के उद्योग में उपन्यास की अनेक घटनाओं को दुखदायी परिणामों की ओर ले जाता है। कुञ्जर कुमुद से प्रेम करता है, कुमुद भी कुञ्जर को चाहती है पर देवीत्व की दीवाल दोनों के बीच बाधा स्वरूप खड़ी हो जाती है। उनका मिलन अन्त नहीं हो पाता। दोनों के हृदयों में प्रेम की आग सुलगती रहती है। अन्त में जब कुमुद देवीत्व के आवरण को अलग कर कुँजर के गले लग भी जाती है तब तक उसकी अन्तिम घड़ी आ चुकी थी!

प्रश्न यहां इन समस्याओं के उपन्यासों के पात्रों तक ही सीमित होने का नहीं है, इस प्रकार की समस्याएँ आज भी हमारे बीच उपस्थित हैं और न जाने कितने कुञ्जर और कुमुद इनका लक्ष्य बन चुके हैं। धार्मिक अन्ध विश्वास आज भी उसी रूप

में हैं। सच बात तो यह है कि आज समाज इतना अधिक दुर्दशा ग्रस्त हो गया है कि उसके परित्राण के उपाय स्पष्ट नहीं दृष्टिगोचर हो पाते ! कलाकार उनका चित्रण कर समाज को उनके प्रति सचेष्ट करता है यही उसका सबसे बड़ा महत्व है।

झाँसी की रानी का कथानक बहुत प्राचीन नहीं है इस कारण आज की अनेक समस्याएँ उसमें अधिक स्पष्टता के साथ उभर सकी हैं जिनमें सबसे प्रमुख हिन्दू मुस्लिम ऐक्य की समस्या है। 'झाँसी की रानी' का प्रकाशन सन १९४६ ई० में हुआ था। उस समय तक देश को स्वतन्त्रता न मिली थी ! हिन्दू मुसलमानों के झगड़े उग्रतर हो उठे थे ! प्रस्तुत उपन्यास लिखने में भी वर्मा जी को पर्याप्त समय लगा ! इसकी रूपरेखा तो प्रकाशन से १०–१२ वर्षों पूर्व बन चुकी थी ! इस कारण उनके लिये इस समस्या का उभारना आवश्यक ही था ! देश की स्वतन्त्रता के लिये होने वाले संघर्षों के युग में हिन्दू मुसलमानों का पारस्परिक वैमनस्य सबसे बड़ा रोड़ा था ! 'झाँसी की रानी' के हिन्दू–मुसलमान पात्र एक स्थान पर ही अपने रक्त को बहाकर यह सिद्ध कर देते हैं कि उनमें विरोध नहीं है, कोई भेद नहीं है, वे एक हैं। झाँसी की रक्षा में यदि बख्शिश, देशमुख आदि अपना रक्त बहाते हैं तो गौसखाँ भी झाँसी की रक्षा में अपने प्राणों की बलि दे देता है। रानी के साथ लड़ते २ यदि काशीबाई, सुन्दर और मुन्दर अपने प्राण छोड़ती हैं तो जूही और मोतीबाई भी उसी रानी के लिये अपने प्राणों की बलि दे देती हैं। हिन्दू मुसलमानों की एकता का इससे अच्छा उदाहरण और क्या हो सकता है।

इस एकता के चित्रण का महत्व आज के युग में होने वाले स्वतन्त्रता के संघर्ष की भूमिका में और भी निखर उठता है। वर्मा जी ने 'झाँसी की रानी' में इस समस्या का चित्रण जितनी सुस्पष्टता और कुशलता के साथ किया है वह सराहनीय है।

असवर्ण विवाह की समस्या भी इसमें झलक मारती है परन्तु उसका दुखद परिणाम नहीं हो पाता कारण प्रेमी युग्म साहसी था ! नारायण शास्त्री छोटी भंगिन के लिये दर दर की ठोकरें खाने को निकल जाता है पर उसे त्याग देना उसे मान्य नहीं।

ऊँच नींच की समस्या का एक और पहलू इस उपन्यास में दृष्टिगत होता है। गंगाधरराव के समय में ही शूद्रों के जनेऊ धारण करने के अधिकार के सम्बन्ध में वाद-विवाद होता है। परन्तु मामला किसी प्रकार शान्त हो जाता है। इस प्रकार के वाद–विवाद बहुधा सुन पड़ते हैं जिनसे अनैक्य की ही वृद्धि होती है।

इस प्रकार झाँसी की रानी में भी वर्मा जी ने आज की कतिपय ज्वलन्त समस्याओं को उभारा है और हिन्दू मुसलिम एक्य की समस्या का तो आदर्श भी उपस्थित किया है। आज भी भारत में यह समस्या उपस्थित है, इस कारण जो भी आदर्श वर्मा जी

ने उपस्थित किया है वह और भी महत्वपूर्ण हो जाता है।

असवर्ण विवाह की समस्या एक बार मृगनयनी में पुनः अपने उग्र रूप में देख पड़ती है। अटल गूजर है, लाखी अहीर! दोनों में प्रेम है और दोनों विवाह कर सुखी जीवन व्यतीत करने के इच्छुक हैं। परन्तु वर्णाश्रम धर्म उन्हें विवाह की आज्ञा नहीं देता। बोधन शास्त्री धर्म के संरक्षक के रूप में उनके विवाह का स्पष्ट विरोध करता है। गढ़ कुण्डार के तारा दिवाकर, और मानवती अग्निदत्त तो वर्णाश्रम धर्म के सम्मुख घुटने टेक देते हैं पर मृगनयनी के अटल और लाखी उससे टक्कर लेते हैं। वे अपना विवाह कर लेते हैं। उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं कि वे समाज से बहिष्कृत कर दिये जायेंगे, लोगों के तिरस्कार का पात्र बनेंगे, वरन् इन कष्टों को सहकर भी वे अपने प्रेम की दृढ़ता सुरक्षित रखते हैं। गांव छोड़कर दर दर भटकते हैं पर अपने प्रेम के आदर्श को स्थिर रखते हैं। अटल तो कुछ दुर्बलता भी प्रकट करता है पर लाखी अडिग है। वह ग्वालियर जाने से भी इन्कार कर देती है। उसका आत्माभिमान उसे भूखों मरने का तो परामर्श देता है पर तिरस्कार और अवहेलना सहकर पेट भरने को नहीं कहता! जो काम गढ़ कुण्डार के तारा दिवाकर, मानवती अग्निदत्त न कर सके थे उसे अटल और लाखी पूरा करते हैं।

'अचल मेरा कोई' वर्मा जी का सामाजिक उपन्यास है और स्त्री पुरुष के वर्तमान युगीन सम्बन्धों की विवेचना करता है। लेखक ने अपने इस उपन्यास में जिस प्रमुख समस्या को उभारा है वह आज के शिक्षित युवक और युवतियों से सम्बन्ध रखती है।

उपन्यास में चार प्रमुख पात्र हैं—कुन्ती, सुधाकर, अचल और निशा! कुन्ती शिक्षित युवती है। अचल से उसका आन्तरिक प्रेम है। विवाह वह सुधाकर से करती है। उधर अचल कुन्ती के कहने पर विधवा निशा से विवाह कर लेता है। कुन्ती अचल के यहाँ आती जाती है। सुधाकर को यह खटकता है। वह बाधा स्वरूप उसके सम्मुख खड़ा होता है और परिणाम स्वरूप कुन्ती आत्म हत्या कर लेती है।

वर्तमान युग में स्त्री स्वातंत्र्य की एक लहर चल पड़ी है। आज स्त्री अपने अधिकारों की मांग कर रही है। पुरुष जिसने उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का आज तक अपहरण किया है आधुनिक शिक्षा के प्रकाश में उसके इन अधिकारों का समर्थन तो करता है पर अपने व्यक्तिगत जीवन में उसे व्यवहारिक रूप नहीं दे पाता। ऊपर से स्त्री स्वतंत्रता का समर्थन करने पर भी उसकी स्त्री के ऊपर अधिकार की भावना नहीं समाप्त हो पाती! फल यह होता है कि उनका दाम्पत्य जीवन अनेक दुखद घटनाओं का केन्द्र बनता है, तलाक होते हैं, आत्महत्याएँ होती हैं, यहाँ तक कि ऐसा भी सुना जाता है कि अमुक पति ने अपनी स्त्री की हत्या कर दी अथवा अमुक स्त्री ही अपने पति की हत्या कर

बैठी! सुधाकर वैसे तो स्त्री की व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हिमायती है पर उसकी कुछ सीमाएँ भी वह मानता है कुन्ती जिनका विरोध करती है। प्रेम के भावावेश में कुछ दिन तो सुख से कट जाते हैं पर बाद को आये दिन गृह कलह होती रहती है। परिणाम कुन्ती की आत्महत्या में प्रकट होता है। दाम्पत्य जीवन को कटु बना देने वाली यह समस्या आज ज्वलन्त हो उठी है। प्रश्न उठता है कि आखिर इसका समाधान क्या है? लेखक ने अचल और निशा के पारस्परिक संबन्धों द्वारा इसका समाधान प्रस्तुत कर दिया है।

यह समस्या कम महत्वपूर्ण नहीं है। ऊपर ऊपर से स्त्री स्वतंत्रता का ढोल पीटना व अन्तरतम से स्त्री के ऊपर अपने अधिकार को स्थायी रखने की भावना को बनाये रखना घातक है। व्यवहारिक जीवन में भी अपने सिद्धान्तों का पालन करने वाला मनुष्य बहुधा दुख नहीं उठाता! पाश्चात्य विचारों से प्रभावित युवक युवतियों के लिए दाम्पत्य जीवन सुखमय बनाने के लिये उपर्युक्त बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। अचल सुलझा हुआ था! उसे यदि कुन्ती मिलती तब भी उसका दाम्पत्य जीवन सुखमय होता और अस्थिर विचारधारा वाले सुधाकर का विवाह यदि और किसी शिक्षित युवती के साथ होता तब भी उसके दाम्पत्य जीवन में कटुता होती! यह समस्या स्त्री और पुरुष के बीच क्यों उत्पन्न होती है—तथा इसका समाधान कैसे हो सकता है इन प्रश्नों का उत्तर उपन्यासकार ने उपन्यास में दे दिया है—

"देह की मांग को .... हृदय की शक्ति !!"

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में आज की एक ज्वलन्त समस्या को उभार कर और उसका एक उचित समाधान प्रस्तुत कर लेखक ने अपने इस उपन्यास को और भी आकर्षक बना दिया है।

'प्रेम की भेंट' वर्मा जी का दूसरा सामाजिक उपन्यास है। विधवा विवाह की समस्या उजियारी द्वारा इसमें पूर्णतः उभर उठी है। आज हिन्दू समाज में विधवा विवाहों का प्रचलन नहीं है। समाज और धर्म के ठेकेदार शास्त्रों की बातें करते हैं और जब भी विधवा विवाह के समर्थन में कुछ लोग आवाज उठाते हैं, उनका हवाला देकर रूढ़िगत मान्यताओं के प्रति अपने विश्वास को प्रकट करते हैं। पुरुष कितने भी विवाह करे, शास्त्र उसकी आज्ञा देता है पर स्त्री यदि वह बाल्यावस्था में ही विधवा हो गई हो, उसे दूसरा विवाह करने की अनुमति नहीं है। अपनी इच्छाओं को मार कर बेचारी विधवाएँ अपने जीवन को व्यतीत करती हुईं, समाज के अत्याचारों को सहन करती हुईं एक दिन मृत्यु को प्राप्त हो जाती हैं। विधवा विवाह की समस्या भी आज की एक ज्वलन्त समस्या है। न जाने कितनी विधवाएँ सम्बन्धियों के तिरस्कार को न सह सकने के

कारण या तो आत्महत्या कर लेती हैं अथवा घर से भाग कर पतित जीवन बिताने को बाध्य होती हैं और यदि यह न कर सकीं तो अप्रत्यक्ष रूप से अपनी प्राकृतिक भूख को शान्त करती हैं। लेखक ने इस उपन्यास में इस समस्या को उठाया है, पर उसने कोई समाधान नहीं प्रस्तुत किया है।

विधवाओं के विवाह ही इस समस्या का एक मात्र हल हैं। उजियारी की कथा समस्त विधवाओं की कथा है और उनका उत्पीड़न एवं उनकी आहें हिन्दू समाज के लिये कभी कल्याणकारी नहीं सिद्ध हो सकतीं।

'कुण्डली चक्र' में भी हिन्दू समाज में व्याप्त कतिपय कुरीतियों और उनसे उत्पन्न समस्याओं का दिग्दर्शन है। बहुविवाह की प्रथा, अटा सटा की रीति कुछ ऐसी ही कुरीतियाँ हैं।

'प्रत्यागत' में भी लेखक ने एक समस्या उठाई है। बलपूर्वक धर्म से भ्रष्ट किया जाने वाला पुनः प्रायश्चित करके अपने धर्म को ग्रहण कर सकता है अथवा नहीं? आज इस प्रकार की भी घटनाएँ देखने को मिलती हैं। ४६–४७ के दंगों में सहस्रों की संख्या में हिन्दू मुसलमानों से बलपूर्वक धर्म परिवर्तन कराये गये। प्रश्न उठता है कि क्या वे पुनः अपने २ धर्मों को ग्रहण कर सकते हैं और समाज उनकी आज्ञा देगा? मुसलमानों की तो कह नहीं सकते पर हिन्दुओं में आर्य समाज अवश्य शुद्धि के पश्चात ऐसे लोगों को ग्रहण करने का हिमायती है। कट्टर पंथी हिन्दू अवश्य ऐसे प्रश्नों पर नाक भौं सिकोड़ते हैं पर हिन्दू समाज का प्रगतिशील वर्ग आज तीव्रता से उनका विरोध करने को तत्पर है।

प्रत्यागत का नायक भी बलपूर्वक मुसलमान बना लिया जाता है। जब वह लौट कर घर आता है तब उसे ग्रहण करने में समाज हिचकता है। कट्टर पंथी उसका स्पष्ट विरोध करते हैं। उपयुक्त प्रायश्चित कर चुकने के पश्चात भी कट्टरपंथी और रूढ़िवादी लोग उसे अस्पृश्य समझते हैं परन्तु प्रगतिशील युवकों का समुदाय उनके विरोध को परास्त करता है और नायक पुनः अपने समाज में घुल मिल जाता है।

इस समस्या को उठाकर लेखक ने कट्टर पंथियों पर कड़े प्रहार किये हैं। उन्हें नीचा दिखा कर उसने अपने उद्देश्य की प्राप्ति की है। कोई भी धर्म हो उसमें इस प्रकार के बन्धन कतई उपयुक्त नहीं हैं। यदि कोई अपनी इच्छा से अपने पुराने धर्म को ग्रहण करना चाहता है तो उसे इसकी अनुमति अवश्य दी जानी चाहिये! समाज की रूढ़िवादी विचारधाराओं का जब तक अन्त नहीं होता तब तक उसकी प्रगति असंभव है।

'लगन' में वर्मा जी ने दहेज की समस्या को उभारा है। दहेज की प्रथा भी आज के युग में हिन्दू समाज को खोखला कर रही है। इस समस्या के परिणामस्वरूप अगणित दुखद घटनाएँ हम प्रतिदिन देखते और सुनते हैं। दहेज के अभाव में न जाने कितनी सुन्दर और सुशील कन्याएँ या तो जानवरों के गले में बाँध दी जाती हैं या आत्महत्याएँ कर लेती हैं। उनके माता पिता भी दहेज न दे सकने की चिन्ता में या तो घुल घुल कर मर जाते हैं या वे भी अपने हाथों ही अपनी बलि दे देते हैं।

इस समस्या का समाधान भी तभी हो सकता है जब समाज के प्रगतिशील युवक आगे बढ़ें और इस प्रथा के प्रति अपना घोर विरोध करें। अपने रूढ़िवादी अभिभावकों को दहेज न लेने के लिए बाध्य करें। जब तक ऐसा नहीं होता अगणित युवक युवतियाँ अभिशाप ग्रस्त जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होंगे। उनका जीवन इसी प्रकार अन्धकारमय बना रहेगा! कानूनों को लागू करने से इस समस्या का समाधान नहीं हो सकता, इसके लिए तो उत्साही और प्रगतिशील विचारधारा के युवक युवतियों को ही रूढ़िवादी विचारधारा वाले व्यक्तियों के विरोध में खड़ा होना चाहिये। वर्मा जी ने इस उपन्यास में इस समस्या को भली भांति उठाया है। रामा और देवीसिंह का उदाहरण प्रस्तुत कर उसने इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि समस्या का समाधान तभी हो सकता है जब उत्साही युवक युवतियां स्वयं आगे बढ़ कर समाज का नेतृत्व करें।

दहेज की समस्या एक ज्वलंत समस्या है। इसका समाधान अत्यन्त शीघ्र होना चाहिये अन्यथा समाज का यह घुन उसे बिल्कुल जर्जर कर देगा। दो हृदयों के पारस्परिक मिलन के अवसर पर इस प्रकार के बंधन अभिशाप हैं। उन्हें तोड़ना पड़ेगा।

'संगम' में वर्ण संकरता की समस्या को उठाया गया है। रामचरण पं० सुखलाल का पुत्र है जो उनकी ब्राह्मण स्त्री से नहीं प्रत्युत उनके द्वारा रखी गई एक अहीर स्त्री से उत्पन्न हुआ था। ब्राह्मणों के समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति होने के नाते पं० सुखलाल रामचरण से कटे कटे रहते हैं। घटना चक्र चलता रहता है और अन्त में पं सुखलाल के हृदय से झूठा जातिगत अभिमान समाप्त होता है। वे रामचरण को तो गले से लगाते ही हैं उसका विवाह भी एक अहीर लड़की गंगा से जो उन्हीं के यहाँ रहती है करा देते हैं। प्रगतिशील विचारधारा वाले युवक इस विवाह का हार्दिक समर्थन करते हैं।

वर्मा जी ने पं० सुखलाल के इस परिवर्तन द्वारा एक प्रगतिशील उदाहरण प्रस्तुत

जाता है। यह नहीं प्रतीत होता कि लेखक जान बूझ कर कथा में समस्या को भर रहा है। वर्मा जी ने इन समस्याओं के चित्रण में एक कुशल कलाकार का कर्तव्य निबाहा है। व्यक्ति के उचित अधिकारों की राह में वह किसी भी सामाजिक अथवा धार्मिक बन्धनों से सहमत नहीं है। उसकी यह स्थापना उसके प्रत्येक उपन्यास में हमें मिलेगी। साहित्यकार का कर्तव्य है कि युग की प्रगति और बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार वह भी प्रगति शील हो। वर्मा जी में यह प्रगति शीलता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि इन समस्याओं के चित्रण में लेखक का दृष्टि कोण क्या है? यह हम कह चुके हैं कि लेखक ने समस्याएँ तो उठाई हैं परन्तु उनके समाधान नहीं प्रस्तुत किये। इससे लेखक की महत्ता पर कोई अन्तर नहीं पड़ता। अधिकाँश स्थलों पर वर्मा जी ने एक जागरूक कलाकार का कर्तव्य निबाहा है भले ही आरम्भिक उपन्यासों में कुछ स्थानों पर वे फिसल गये हों।

उदाहरण के लिये हम 'गढ़ कुण्डार' को लेते हैं। गढ़ कुण्डार में दिवाकर वर्णाश्रम धर्म के सम्मुख घुटने टेक देता है। उसके हृदय में इन कुरीतियों के प्रति विद्रोह है पर वह कुछ नही कर पाता। सबसे अधिक आश्चर्य तो हमें उस समय होता है जब युद्ध के पश्चात भी तारा के साथ वह विवाह नहीं कर पाता और 'योग साधन' करने चल देता है। उसके हृदय में स्पष्ट रूप से वर्णाश्रम धर्म का आतंक मालूम पड़ता है। लेखक ने भी यहाँ उसे झुकाकर अपनी दुर्बलता का परिचय दिया है।

'विराटा की पद्मिनी' में भी वह सक्रिय रूप से कुन्जर के अधिकारों के हरण का विरोध करता नहीं प्रतीत होता है, हाँ उसकी सहानुभूति अवश्य कुन्जर के साथ है। कुमुद के देवीत्व के गरिमामय चित्र भी धार्मिक अंधविश्वासों पर लेखक की आस्था के परिचायक प्रतीत होते हैं।

'लगन' में देवीसिंह और रामा साहसी अवश्य हैं परन्तु उनके मिलन में परिस्थितियों का भी हाथ है जिसे हम अस्वीकार नहीं कर सकते।

'प्रेम की भेंट' में उजियारी के प्रति लेखक का जो दृष्टि कोण है वह हमें सबसे अधिक अखरता है। लेखक ने उसमें बाल विधवा की समस्या को उभारा तो है पर लेखक के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष न तो किसी मन्तव्य के ही दर्शन होते हैं और न बाल विधवाओं के प्रति प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उसकी सहानुभूति ही रही है। वह स्वयं धीरज और सरस्वती के साथ रहा है। उजियारी तो Villain के रूप में ही देख पड़ती है। साधारण पाठक को उससे कोई भी सहानुभूति नहीं होती प्रत्युत उसके क्रिया कलापों से वह उससे घृणा ही करने लगता है। समस्याएं उठाने और उनके

निर्वाह का यह तरीका ठीक नहीं है। उजियारी किन भावनाओं से प्रेरित होकर सामने आती है, उसके प्रतिशोध के मूल में कौन सी बातें हैं, कहीं भी इनका निर्देश न होने से हम यह कहने में तनिक भी नहीं हिचकते कि लेखक का उजियारी के प्रति दृष्टि कोण सहानुभूति से पूर्ण नहीं है, न उसका उद्देश्य बाल विधवाओं के उत्पीड़न के परिणाम-स्वरूप होने वाली घटनाओं के विश्लेषण का है। वह केवल Villain के रूप में उसे रख कर अपनी कथा का आकर्षण बढ़ा रहा था। समस्या उठाकर उससे इस प्रकार उदासीन रहना जागरूक कलाकार का लक्ष्य न होना चाहिये। प्रत्यागत में लेखक का दृष्टि कोण आर्य समाजी सुधारक का दृष्टि कोण है। सोमा के चरित्र को उसने अन्त में गरिमामय बनाने का प्रयत्न किया है पर हम उससे तनिक भी सहमत नहीं हैं।

'मृगनयनी' में अटल और लाखी का विवाह कराकर लेखक ने अवश्य 'गढ़ कुण्डार' की दुर्बलता को झटका देकर फेंक दिया है।

'झाँसी की रानी' और 'संगम' में भी लेखक ने समस्याओं को व्यापकता पूर्वक उभारा है।

ऊपर कही गई कतिपय उलझनों को छोड़कर लेखक का दृष्टि कोण और सभी स्थानों पर स्पष्ट है। प्रारम्भिक उपन्यासों में लेखक का दृष्टि कोण कुछ कुछ शिथिलता अवश्य लिये है पर बाद को उसने उस शिथिलता का परिष्कार किया है।

एक बात और, समस्याओं का जिस व्यापक ढंग से चित्रण आवश्यक था, उतने व्यापक ढंग से वह हो नहीं पाया है। 'गढ़ कुण्डार' के युग की परिस्थितियों को देखते हुए यह अस्वाभाविक सा लगता है कि शक्ति सम्पन्न पात्र घुट घुट कर मर जांय, अपनी प्रेमिकाओं के पाने में असफल हों। वह युग ऐसा था कि जिसके पास शक्ति थी वह सब कुछ कर सकता था। दिवाकर—तारा अपनी स्वयं की दुर्बलताओं के कारण असफल होते हैं। अग्निदत्त अवश्य शक्ति से विजयी होने का प्रयत्न करता है पर असफल होता है।

तात्पर्य यह कि कतिपय उलझनों को छोड़कर वैसे वर्मा जी का प्रयत्न सराहनीय है। उनकी विचार धारा प्रगति शील है। उनकी समस्याएँ ज्वलन्त हैं भले ही उनके चित्रण में प्रेमचन्द के उपन्यासों की भांति व्यापकता न हो। वर्मा जी अपनी इस प्रगतिशीलता के कारण हमारी बधाई के पात्र हैं, आगे हमें उनसे और भी आशाएँ हैं।

—उपसंहार—

वर्मा जी के उपन्यासों के अब तक के विवेचन के आधार पर हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचने में तनिक भी झिझक नहीं होती वे हिन्दी के सर्व श्रेष्ठ ऐतिहासिकउपन्यास-कार हैं। जिस समय उपन्यासों के क्षेत्र में उनका आविर्भाव हुआ था उस समय हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों का सर्वथा अभाव था। वर्मा जी ने जिस परिश्रम और लगन से उपन्यासों के इस रिक्त अंग की पूर्ति की वह प्रशंसनीय है। सामाजिक उपन्यासों के क्षेत्र में भी उनका प्रयास कम सराहनीय नहीं। जिस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में उनके गढ़ कुण्डार, विराटा को पद्मिनी, मृगनयनी, झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई और टूटे काँटे अमर हो गये हैं उसी प्रकार सामाजिक उपन्यासों के क्षेत्र में उनके 'अचल मेरा कोई,' कुण्डली चक्र, लगन, आदि की महत्ता असंदिग्ध है।

हिन्दी उनका में वही स्थान है जो अंग्रेजी में सर वाल्टर स्काट का बल्कि सामन्तीय व्यवस्था के विरोधी होने के कारण वे वाल्टर स्काट से भी कुछ बातों में आगे हैं। उनके उपन्यासों को पढ़ कर कोई भी उनकी महत्ता का सरलता से अनुमान लगा सकता है। उनका अपना निजी महत्व और उद्देश्य है। अपनी कथावस्तु, चरित्र चित्रण, सुन्दर और स्वाभाविक कथोपकथनों के कारण उनकी महत्ता बढ़ गई है। रोमान्टिक कल्पना और यथार्थ का जैसा सुन्दर सम्मिश्रण आपके उपन्यासों में पाया जाता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। यही कारण है कि रोमान्स होते हुए भी वे हमारे हृदय को छूने की शक्ति रखते हैं, हमारे जीवन को निकट से देखने का प्रयत्न करते हैं, उसे आगे बढ़ाने में, एक प्रगतिशील राह पकड़ने में हमारी सहायता करते हैं।

उनके उपन्यासों में जीवन के मार्मिक सन्देश निहित हैं। उन्हे सुनने और समझने के लिये उन पर आस्था की आवश्यकता है, उनमें अधिक गहराई से प्रवेश करने की जरूरत है। ऐसा करने पर ही उनके उपन्यासों का वास्तविक महत्व हमारी समझ में आ सकता है।

एक जागरूक कलाकार का जो कर्तव्य होना चाहिये, वर्मा जी ने उसे खूबी के साथ निभाया है। देश और समाज की प्रगति में उनके उपन्यासों का भी बड़ा हाथ रहेगा, ऐसा हमारा विश्वास है। समाज की रूढ़िगत और जर्जर मान्यताओं के खिलाफ वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में जिस विद्रोह को जन्म दिया है वह भविष्य में एक प्रेरक शक्ति के रूप में हमारे सम्मुख आयेगा। उसकी गहनता और सचाई को हम तभी पहचान भी सकेंगे।

आज आलोचक वर्ग वर्मा जी के उपन्यासों में उतनी दिलचस्पी नहीं ले रहा जितनी के वे पात्र हैं। यह बात अखरने वाली है। वर्मा जी हमारे साहित्य के एक दृढ़ स्तंभ हैं और उनके उपन्यास उस साहित्य के गौरव। परन्तु हमें विश्वास है बदले हुए युग की परिस्थितियाँ लोगों को मजबूर करेंगी कि वे वर्मा जी के उपन्यासों का वास्तविक महत्व आँक कर उन्हें प्रकाश में लायें। आज इस बात की सबसे अधिक आवश्यकता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सदृश आलोचक ने उनके 'गढ़ कुण्डार' और विराटा की पद्मिनी इन दो उपन्यासों से ही उनकी महत्ता का अनुमान लगा लिया था। आज तो वर्मा जी का साहित्य और भी समृद्ध है। उनके अधिकांश ऐतिहासिक उपन्यास 'गढ़ कुण्डार' और विराटा की पद्मिनी की परम्परा में ही हैं। समय की प्रगति के साथ २ वर्मा जी की प्रतिभा और भी निखर रही है और उनके आगे प्रकाशित होने वाले चार उपन्यास उसे और भी देदीप्यमान करेंगे ऐसा हमारा विश्वास है। साहित्य को अभी वर्मा जी से बड़ी २ आशाएँ हैं। हमारा दृढ़ विश्वास है कि उसकी ये आशाएँ अवश्य फलीभूत होंगी।

परिशिष्टः—(१)

मध्यकालीन सामन्तीय युग और वर्मा जी का दृष्टिकोण

उपरोक्त शीर्षक के विषय में यहां कहने की आवश्यकता इस कारण अवगत हो रही है कि वर्मा जी के सारे ऐतिहासिक उपन्यास मध्यकालीन युग से सम्बन्धित हैं जो सामन्तवाद का युग था और ऐसे युग को अपने उपन्यासों का विषय बनाकर, उस युग का यथार्थ चित्रण कर के भी, वर्मा जी ने एक आकर्षक विशेषता को स्थिर रखा है जो क्या देश, क्या विदेश के ऐतिहासिक कथाकारों में भी कम पाई जाती है और वह विशेषता है-उस युग की व्यवस्था के प्रति अपना आलोचनात्मक दृष्टिकोण ! ऐतिहासिक कथाकार होने के नाते उन्होंने उस युग का यथार्थ चित्रण किया और जन साधारण के प्रति गहरी आत्मीयता होने के कारण उन्होंने उस युग की व्यवस्था के प्रति अपना विरोध प्रकट किया जो जन साधारण के लिये अत्यधिक कष्टदायक थी ! यह विशेषता वर्मा जी के ऐतिहासिक उपन्यासों को और भी अधिक ग्राह्य बना देती है। स्काट तथा ड्यूमा आदि ने भी सामन्तीय युग को अपनी रचनाओं में उभारा है परन्तु कहीं भी उन्होंने उस युग की व्यवस्था के प्रति अपना विरोध नहीं प्रकट किया है। हम विरोध केवल विरोध के लिये नहीं चाहते, हमारा निष्पक्ष दृष्टिकोण यही है कि यदि कोई विशेष युग मुट्ठी भर व्यक्तियों के स्वार्थ के सम्मुख एक विशाल वर्ग को दरिद्र, पीड़ित व निरीह बनाये रहा हो, तो उस युग और उसकी व्यवस्था का विरोध आवश्यक है—सच्चे मानवतावादी कलाकार का यह प्रमुख लक्ष्य होना चाहिये। यह विरोध भी ऊपर से उतराता न प्रतीत हो अन्यथा ऐतिहासिकता में, कथा में बाधा पड़ने का भय होगा। ऐतिहासिक कथाकार को अपनी विचारधारा अपनी कथा के पात्रों, द्वारा ही प्रमुख रूप से व्यक्त करा देना चाहिये, हाँ, आवश्यकता पड़ने पर अपने मुख से भी कुछ कहने का वह अधिकारी है। वर्मा जी के उपन्यासों का सबसे आकर्षक गुण यही है कि सामन्तीय युग के कथानक को स्थान होने पर भी, सामन्त वर्ग का सही चित्रण होने पर भी उनमें जनसाधारण के प्रति लेखक का मोह स्पष्ट हो गया है। 'गढ़ कुण्डार' से लेकर' टूटे-कांटे' तक की परम्परा यही सिद्ध करती है कि वर्मा जी ने सदैव ही जन जीवन की प्रगति चाही है ! इस सम्बन्ध में उदाहरणों का अभाव नहीं है।

'गढ़ कुण्डार' में युद्ध होते हैं—किसी महत् उद्देश्य की प्राप्ति के लिये नहीं—जात्याभिमान के कारण, स्त्री सौन्दर्य के कारण, पारस्परिक मानापमान के कारण। बुन्देले खंगारों का अस्तित्व सदा के लियेमिटा देते हैं। वर्मा जी ने सामन्तीय व्यवस्था के

इस पहलू का घोर विरोध किया है और इसके प्रतिनिधि चरित्रों की कड़ी आलोचना! नागदेव हेमवती का बलपूर्वक अपहरण करना चाहता है—वह आदेश देता है—"तब हेमवती को जैसे बने, तैसे अमावस्या की रात को बस्ती से उठाकर किले में लाना होगा चाहे एक लक्ष प्राणों का बलिदान इस काम में भले ही हो।" यही सामन्तों के निजी स्वार्थ हैं—एक लाख प्राणों को मिटाकर भी नाग अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति करना चाहता है! ऐसे ही सामन्तों एवं उनकी इसी व्यवस्था के प्रति लेखक का विरोध है।

'विराटा की पद्मिनी' में सामन्तीय व्यवस्था के प्रति लेखक की घृणा और भी उभर उठी है। राजा नायकसिंह, देवीसिंह और अलीमर्दान आदि इसी सामन्त वर्ग के प्रतिनिधि हैं जो अपने स्वार्थों के आगे अन्धे हो जाते हैं और दूसरों के स्वत्व को छीन कर भी स्वार्थ सिद्धि करना चाहते हैं। राजा नायकसिंह कुमुद के रूप के विषय में सुनते हैं, उनकी काम पिपासा बढ़ जाती है और वे आदेश देते हैं—'उसे हमारे डेरे पर भिजवा दो, लोचनसिंह, हम उसकी रक्षा करेंगे'। लोचनसिंह राजा की 'रक्षा' को समझता है इसी से उनसे कहता है—'हकीम जी से महाराज पूछ लें कि महाराज को ऐसी बातों की ओर ध्यान नहीं देना चाहिये'। राना नायकसिंह भड़क उठते हैं। देवीसिंह छल से कुंजरसिंह के स्थान पर राजा बना दिया जाता है। पद का मद उसे अंधा कर देता है। कुंजर का स्वत्व छीन लेने पर भी उसे रंज नहीं होता। यहाँ तक कि वह उस गोमती को भूल जाता है जिसके साथ वह विवाह करने जा रहा था। नरपति गोमती को देवीसिंह के पास ले जाना चाहता है पर गोमती इस प्रकार जाने का विरोध करती है। वह कहती है—"किसे लिवा लेते जायेंगे? क्या मैं कोई ढोर गाय हूं?" कुमुद भी गोमती का ही पक्ष लेती है और कहती है— "क्या राजा होते ही वह यह भूल गये कि उस दिन पालर में उनकी बारात गई थी, बंदनवार सजाए गये थे, स्त्रियों ने कलश रखे थे, मण्डप बनाया गया था और गोमती के शरीर पर तेल चढ़ाया गया था? (पृष्ठ २०५, २०६)............। आगे वह देवीसिंह से भी कहती है—"क्या आप समझते हैं कि स्त्रियों में निजत्व की कोई लाज नहीं होती?" गोमती भी अपनी बात पर दृढ़ रहती है। वह स्वयं देवीसिंह के पास न जाने की प्रतिज्ञा करती है—"मेरी बोटी बोटी चाहे कोई काट डाले परन्तु मैं ऐसे तो कदापि नहीं जाऊंगी" (पृष्ठ १६३)! रामदयाल से भी वह कहती है—"मैं ऐसे महलों को पैरों से ठुकराती हूं जहाँ सम्मान के साथ प्रवेश न हो" (पृष्ठ २३०)!!

देवीसिंह का अहसान वह नहीं लेना चाहती, वह उसकी पत्नी बनकर ही रहना चाहती है! सामन्त देवीसिंह राज मद में सब कुछ भूल जाता है। कुमुद और गोमती के कथनों द्वारा वर्मा जी ने अपनी स्वयं की विचार धारा व्यक्त करदी है।

अलीमर्दान सौन्दर्य लोलुप है। कुमुद के रूप की चर्चा सुनकर वह उसे प्राप्त करने का उद्योग करता है और कुमुद की बलि लेकर ही उसे सन्तोष होता है।

राजा नायकसिंह जहाँ गोमती की बारात आने वाली थी, उस स्थान से गुजरते हैं गोमती के घर की ओर देखकर लोचनसिंह से कहते हैं—"बहुत दरिद्र मालूम होता है। द्वार पर कोई ठाट बाटन हीं।'

होगा, महाराज! किस किसका दुख रोवें, यहां और सब कहीं ऐसे अनेक भरे पड़े हैं। राजा जबाब देते हैं—"अजी नहीं, सब शरारत है, बदमाशी है, घर में संपत्ति गाड़कर रखते हैं, ऊपर से गरीबी का दिखावा करते हैं।"

उपर्युक्त बातचीत से यह स्पष्ट पता चल जाता है कि आये दिन के सामन्ती अत्याचारों और युद्धों से प्रजा कितनी दरिद्र हो गई थी और राजा नवावों के उस पर भी उसकें सम्बन्ध में क्या विचार थे ? कुमुद कुंजर को अपने स्वत्व के लिये लड़ने को नहीं रोकती। वह स्वयं देवीसिंह का विरोध करती है। ऐसे दृढ़ स्त्री चरित्रों की सृष्टि कर वर्मा जी ने सामन्ती व्यवस्था पर कड़ी चोट की है।

'कचनार' में सामन्ती विलासिता और अत्याचारों की कहानी बिलकुल स्पष्ट है। रावदलीपसिंह कलावती से विवाह करता है। कलावती को मानसिंह से अधिक बातचीत करते देख जल उठता है और चाहता है कि वह उससे भी उसी प्रकार बातचीत करे। वह कलावती को नंगी कर देने की धमकी देता है। देखिये—

दलीप—मैं मुंह तो क्या तुम्हारा सारा शरीर नंगा कर दूंगा।

कलावती ने अपने घुटनों पर सिर रख लिया और घुटनों पर दोनों हाथों की कुप्पी बाँध कर बोली—ऐसा नहीं हो सकता।"

उसकी विलासिता यहीं तक सीमित नहीं है। वह कचनार का भी भोग करना चाहता है। कचनार की दृढ़ता उससे उसकी रक्षा करती है।

मानसिंह भी इसी कोटि का है। कलावती से उसका जी नहीं भरता। वह ललिता को अपनी वासना पूर्ति का साधन बनाता है। ललिता के पश्चात वह कचनार को अपने अधिकार में करना चाहता है। उसकी कचनार से की हुई निम्नलिखित बातचीत से सामन्ती विलासिता का पहलू और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है।

मानसिंह— मैं तुम को जो पद देना चाहता हूँ उसके लिये न जाने कितनी दासियों, कितनी स्त्रियों के मन तरसते होंगें। मान जाओ, तुम्हारा जीवन सार्थक हो जायगा। ...... क्या सोच रही हो कचनार, सुख का जीवन या चिर दुख का।

कचनार ने एक आह खींच कर जवाब दिया— मेरे भाग्य में सुख नहीं लिखा है।

मानसिंह चिढ़ गया। कण्ठावरोध हो गया। धीरे से बोला— तब मैं तुम को जबर्दस्ती सुख दूँगा।"

अपनी चतुराई से कचनार उससे अपनी रक्षा करती है और किले से भाग निकलती है। डरू की स्त्री मन्ना भी मानसिंह की दृष्टि से नहीं बचती। वह उसका भी भोग करना चाहता है पर मन्ना की दृढ़ता उसे बचाती है।

सामन्ती वासना और कामुकता के इन्हीं घृणित दृश्यों द्वारा वर्मा जी ने सामन्तीय व्यवस्था के प्रति अपनी घृणा प्रदर्शित की है। अपनी वासना पूर्ति के लिये वे छल बल किसी से भी काम लेने से नहीं हिचकते। महल की विलास क्रीड़ाएँ, आँख मिचौलियों का खेल इस विलासिता को और भी उन्मुख कर देता है।

सामन्ती अत्याचारों की कहानी भी 'कचनार' में स्पष्ट है। बैजनाथ का कत्ल दिलीप सिंह की आज्ञा से होता है। बैजनाथ निरपराध था फिर भी उसका बध कर दिया जाता है। डरू सोने साह को मार कर भाग जाता है तब उसकी स्त्री मन्ना सताई जाती है। मन्ना बचती है कचनार के प्रयत्न से! मानसिंह मन्ना के प्रति जो भी सहानुभूति दिखाता है वह इस विचार से नहीं कि मन्ना उसके मित्र की पत्नी थी वरन् उसके मूल में उसकी विषय वासना थी! वह मन्ना से सहानुभूति दिखा कर उसे अपने वश में करना चाहता था। लगान वसूली में दलीप सिंह किसानों पर जो अत्याचार करता है उसका वर्णन भी उपन्यास में है। सोने साह कहता है— 'जो किसान अपने किले के आश्रय में आ बसे हैं वे लगान बिना कठिनाई के दे देते हैं, जो दूर की भूमि जोते हैं और पहाड़ों में रहते हैं वे समय पर नहीं देते और पूरा तो दे ही नहीं पाते।'

स्पष्ट है कि किले में बसने वाले किसान लगान क्यों न देते? उनके ऊपर राज्य की तलवार जो सदा टंगी रहती थी। आश्रयदाता के आश्रय में आकर वे क्या इन्कार कर सकते थे? डरू और बैजनाथ से सोने साह का झगड़ा होता है। सोने साह बैजनाथ को गाली देता है। जब सहन की पराकाष्ठा हो जाती है तब बैजनाथ भी सोने साह को फटकारता है। सोने साह बैजनाथ को बुरी तरह पीटता है। डरू आ कर उससे विनती करता है— 'काका जू, क्या कर रहे हो? ऐसे तो कोई जानवर को भी नहीं पीटता जैसे तुम मेरे भाई को पीटते हो, छोड़ दो उसको। × ×

× × × × ×

सोने— तुम्हारे जैसे पाजियों ने ही हमारे राज्य में गड़बड़ी फैला रक्खी है। काला मुँह करो और जाओ, आज ही निकल जाओ।

बैजनाथ हिलक हिलक कर रोने लगा। उसको दो आदमी पकड़े हुए थे। डरू ने कहा—आओ भैया, रोओ मत। आज ही इस अधर्मी के राज्य को छोड़ देंगे।

डरू और सोनेसाह में बात और बढ़ती है। सोनेसाह मारा जाता है। डरू भागकर जंगल में चला जाता है। दलीपसिंह सोनेसाह के बध का समाचार सुन कर भड़क उठता है। उसकी आज्ञा होती है—"जैसे बने तैसे दोनों भाइयों को शीघ्र पकड़ कर लाओ और मकान में आग लगा आओ।......जब तक यह न हो जायगा काका जू की अन्तिम क्रिया न की जावेगी।"

बैजनाथ दलीपसिंह के सामने लाया जाता है। मानसिंह उसका पक्ष लेता है। दलीपसिंह उसे भी फटकारता है। बैजनाथ सारी बातें सत्य कह देता है पर दलीपसिंह को शक्ति और अधिकार का नशा था। बोला—"तुम दोनों ने काका जू का वध किया है। कोई है ? मारो इसको।"

"सिपाही आगे बढ़े और ठिठक गये। दलीपसिंह ने कहा—नहीं काका जू के खून का बदला मुझको स्वयं लेना चाहिये। उसने एक क्षण में तलवार निकाल कर हुमक के साथ बैजनाथ पर चलाई और उसके दो टूक कर दिये। बोला—ले जाओ इसकी लाश को बाहर। अब काका जू का क्रिया कर्म करो।"

दलीपसिंह के ये अत्याचार उसी तक सीमित नहीं हैं,युगों से सामन्तीय व्यवस्था के अत्याचारों का यही चक्र निरीह जनता को पीसता आया है।

सामन्ती अत्याचारों, विलासिता और कामुकता की यह कहानी वर्मा जी के उपन्यासों में इतनी सजीवता के साथ उभरी है कि उसे पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

'मृगनयनी' में एक बार वर्मा जी ने पुनः सामन्तीय व्यवस्था को चोट पहुंचाई है। निन्नी और लाखी दोनों निर्धन हैं और दोनों में अटूट प्रेम है। निन्नी लाखी को अपनी भाभी बनाना चाहती है। लाखी को विश्वास नहीं होता कि गांव वाले इस असवर्ण विवाह पर अपनी सम्मति दे देंगे। वह निन्नी से कहती है परन्तु निन्नी इसका उत्तर देती है—"गांव वाले कहा सुनी करेंगे तो नदी ऊपर किसी डांग डूँगर जंगल में चले जायगे परन्तु तुमको अपनी भौजी बनाने की साध तो पूरी ही करके छोड़ूंगी।"

लाखी और अटल के सम्बन्धों को लेकर गाँव में चर्चा होती है! पुजारी अटल से पूछता है। अटल अपनी पवित्रता की सौगन्ध खाता है। पुजारी उसका विवाह नहीं करता। वह उसका विरोध करता है। अटल एक दिन खेत में निश्चय कर लेता है कि वह लाखी को अपनाकर रहेगा। लाखी उससे कहती है—"ऐसी कौन सी जल्दी पड़ी है?" अटल उत्तर देता है—"हम दोनों पति पत्नी की तरह रहना चाहते हैं यह जल्दी पड़ी है।"

पुजारी का विरोध देखकर अटल चुपचाप खलिहान में लाखी से विवाह कर लेता है। कहता है—"हे भगवान मैं कुंआरा हूं और लाखी कुंआरी है। मैं गंगा जी

की सौगन्ध खाकर कहता हूं कि वह जन्म भर मेरी होकर रहेगी।" लाखी का हाथ अपने हाथ में लेकर कहता है—"अब सदा के लिये तुम मेरी हुई, चाहे जाति मुझको रक्खे, चाहे निकाले, चाहे गाँव मुझको पत्थर मार कर गांव से भगा दे, मेरा तुम्हारा संबंध कभी नहीं टूटेगा। बोलो तुम मेरी हुई ?

लाखी के उदास चेहरे पर लाली दौड़ आई, ओठों पर मुस्कान आ गई और रेखाओं में सारे मुख पर आखों तक बिखर गई। बोली—हां"

लाखी वैभवों की भूखी नहीं है। अटल ग्वालियर चलने को कहता है पर वह उससे कहती है—"कोई मुझको यदि किसी की चेरी कहे, चाहे वह मेरी निज की ननद ही क्यों न हो तो मैं नहीं सह सकूंगी और न यह सह सकूंगी कि तुमको राजा का दास या रोटियारा कहे। हम लोगों को भगवान ने भुजाओं में बल दिया है और काम करने की लगन। कुछ करके ही ग्वालियर चलेंगे।"

वे संघर्षों में भटकने के लिये गाँव छोड़कर चल देते हैं। लाखी अटल को उत्साहित करती है—"उतर पड़ो संसार में कमर कस कर और सिर उठाकर निन्दाचारे का सामना करो।"

× × ×

मृगनयनी यह सुनकर कि मानसिंह के पहले से ही आठ रानियाँ हैं-सोचती है।

"उसको बात असाधारण नहीं लगी और न अखरी ही। तो भी उसके मन में प्रश्न उठा जब इन्होंने पहली स्त्री से ब्याह किया होगा तब उससे भी इस तरह का प्रेमालाप करते होंगे, फिर दूसरा, तीसरा और आठवां ब्याह किया, हर एक रानी के साथ आरंभ में इसी प्रकार की चिकनी और मीठी बातें करते रहे होंगे······।"

स्थान २ पर वर्मा जी ने स्वयं अपने मुख से भी ऐसी २ बातें कहीं हैं जो सामन्ती व्यवस्था की कलई खोल देती हैं। किसानों की दरिद्रता का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—"उन्हें पेट के लिये, राजा के लगान के लिये, लुटेरों की पिपासा के लिए खेती की रखवाली करनी थी। आशा तो न थी कि चैत बैसाख तक खेती बची रहेगी।" (विराटा की पद्मिनी) !! एक स्थान पर उन्होंने और भी कहा है-"जहाँ आशा नहीं होती वहां निराशा ईश्वर के पैर पकड़वाती है। यदि बच गए तो कृतज्ञ हृदय ने एक आंसू डाल दिया, और बह गए तो भाग्य तो कोसने के लिए कहीं गया ही नहीं।" वर्मा जी के इस कथन में कितनी सचाई है। इसका अनुमान पाठक सरलता से लगा सकते हैं।

'मृगनयनी' में एक स्थान पर वर्मा जी ने झूठे ढोंग ढकोसलों, अन्धविश्वासों

और सामन्तीय नियमों पर बड़ा कड़ा व्यंग किया है। वे लिखते हैं—"राज्य के सिपाहियों की उगाही के बाद पुजारी की उगाही सहज ही नहीं हो गई। किसानों को अन्न के दर्शन राम राम करके हुये थे। इस लिए वे देने में किनर मिनर कर रहे थे। पुजारी ने कहा—शास्त्र का वचन कभी न भूलो, छठवाँ भाग रौजा का होता है, सो तुमने दे दिया। बीसवां देवता का, तीसवाँ ब्राह्मण का होता है। उसको देने में आना कानी करने से यह लोक तो बिगड़ेगा ही परलोक से भी हाथ धो बैठोगे।

एक किसान खिसियाहट को छिपाता हुआ बोला—फिर हम क्या खायेंगे ?

भगवान देंगे, मैं भजन जो करूँगा।

भजन करने पर भी दिल्ली के सुल्तान ने इतना खून बहा दिया। इतने घर और खड़े खेत चौपट कर दिये।

देखा इस मूर्ख को ! इस घोर नास्तिक को। अब कोई नई विपद को बुलाने वाला है। करता है एक, भोगवान भुगतनी पड़ती है, हम तुम सब को।"

अटल पुजारी को निन्नी और मानसिंह के विवाह का उदाहरण देकर अपने व लाखी के विवाह के विषय में अनुमति चाहता है। पुजारी कहता है-"वह राजा है। राजा किसी देवता का अवतार होता है। वह कर सकता है। उसको सब सुहाता है। तुम लोग राजा नहीं हो। तुम्हारे लिये मनाही है।"

मानसिंह कर्तव्यों की राह से यदा कदा डगमग होता है, उसे राह दिखाती है मृगनयनी जो साधारण वर्ग की थी ! उसके साहचर्य से ही मानसिंह सामन्तों की कोटि से ऊपर जा पाता है। मानसिंह के चरित्र को बनाने में मृगनयनी का बहुत बड़ा हाथ है। यहाँ भी वर्मा जी की जन साधारण के प्रति उच्च विचार धारा झलकती है। कुछ लोगों ने 'मृगनयनी' को 'सामन्त वाद का पोषक उपन्यास' तक कह डाला है पर हम उससे सहमत नहीं हैं। वर्मा जी ने मानसिंह का चरित्र आदर्श सामन्ती शासक के रूप में अवश्य चित्रित किया है पर वे भी मानसिंह के चरित्र के साथ वहीं तक सहानुभूति दिखाते हैं जहां तक उसमें प्रगति शीलता की भावना है, जहां तक मानसिंह की जन–साधारण के साथ सहानुभूति है। वैसे उपन्यास भर में स्पष्ट है कि लेखक की सहानुभूति केवल जनसाधारण के प्रति ही है और उसने सदा ही उसके अधिकारों का समर्थन किया है ! अतएव, 'मृगनयनी' को 'सामन्त वाद का पोषक' उपन्यास नहीं कहा जा सकता। उन्होंने एक किसान के मुख से स्पष्ट ही कहला दिया है—"हम किसान किसी से नहीं लड़ते। लड़ाई राजपूतों, तुर्कों और पठानों का काम है।" ये राजपूत, तुर्क और पठान भले ही अपने स्वार्थों के लिए लड़ा करें किसानों को अपने खेतों से मतलब है।

'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई' में भी वर्मा जी की सामन्त विरोधी भावनाएं स्पष्ट हैं। अंग्रेजों की संस्कृति, उनकी व्यवस्था का विरोध तो वर्मा जी ने किया ही है, राजा गंगाधर राव की सामन्तीय प्रवृत्तियों और क्रिया कलापों को भी उभारने में वे नहीं चूके हैं। उनके अत्याचारपूर्ण शासन की, उनकी सनक, उनकी विलासिता और उनके मन मौजी पन की उन्होंने एक एक रेखाएं उभार दी हैं। झांसी में जनेऊ पहनने का आन्दोलन होता है। नीची जाति वाले जनेऊ पहिनें यह बात कुछ रूढ़िवादियों को बुरी लगती है। राजा के पास शिकायत की जाती हैं। राजा एक व्यक्ति को लोहे का एक तार गरम कर जनेऊ के स्थान पर पहनाते हैं। तात्या के प्रयत्नों के उसकी सजा माफ की जाती है। साधारण से अपराधों पर बिच्छुओं से कटवाना उनके कानन में था।

प्रजा को ऐसे शासन से विरक्ति थी। रानी लक्ष्मी बाई आकर झांसी की जनता के राजा के प्रति रोष को अपने प्रति प्रेम में परिवर्तित कर देती हैं कारण वह दरिद्र ब्राह्मण की पुत्री थीं, सामन्तीय प्रवृत्तियां उन्हें छू तक नहीं पाई थीं।

अंग्रेजों के प्रति लेखक की घृणा उपन्यास भर में स्पष्ट है। अंग्रेजों ने जिस प्रकार हमारी संस्कृति पर कुठाराघात किया, हमें दरिद्र बनाया वह उनके ३०० साल के शासन के इतिहास में स्पष्ट है। अपने राज्य काल में उन्होंने हिन्दू मुसलमानों को सदैव ही एक दूसरे से लड़ा कर अपना स्वार्थ सिद्ध करने का प्रयत्न किया। १८५७ की जन-क्रान्ति में हिन्दुस्तानियों ने यह दिखला दिया कि हिन्दू मुसलमान दोनों का देश एक ही है। उन्होंने सम्मिलित शक्ति से अंग्रेजों के ऊपर प्रहार किये। रानी का इस दिशा में जो प्रयत्न रहा वह सराहनीय है। जूही, मोतीबाई, खुदाबख्श, गौस खां, गुलमुहम्मद सब रानी के ही सिपाही थे और उनके हृदय के उतने ही निकट जितने कि सुन्दर, मुन्दर, रघुनाथसिंह, देशमुख और बख्शी आदि! मोतीबाई का प्राणान्त रानी की ही गोद में होता है। जूही भी रानी के सम्मुख ही मारी जाती है। खुदाबख्श और गौस खां भी रानी और झांसी के लिए प्राण देते हैं। सुन्दर, मुन्दर, काशीबाई आदि भी अपने प्राण देकर अमर हो जाती हैं। हिन्दू मुसलिम एक्य के इस स्वरूप का उपन्यास में जिस सजीवता से चित्रण हुआ है वह यह बता देता है कि अंग्रेजों की चालें ही दोनों को अलग बनाये रहीं, दोनों की नसों में बहने वाला रक्त एक है, दोनों के शरीर एक ही हाड़ मांस से बने हैं। उनकी सम्मिलित शक्ति ही भारत की अपनी शक्ति है। वर्मा जी ने इसे प्रस्तुत उपन्यास में भली भांति उभारा है। प्रश्न यह उठता है कि जब रानी झांसी की स्वामिनी थीं तो जनता ने अपना रक्त क्यों बहाया? उत्तर यही है कि रानी ही झांसी की स्वामिनी न थीं, झांसी का बच्चा २ झांसी को अपनी समझता था। रानी

ने उनके हृदयों में यह विश्वास जमा दिया था ? पठान यह पूछे जाने पर कि तुम्हारा कौन मुल्क है, उत्तर देता है—"झाँसी हमारा मुल्क है बाबा, तुम्हारा मुल्क ? यह कहने पर कि 'बाई साहब का राज्य है खान ?' वह उत्तर देता है—"बेशक है। और अमारा तुम्हारा बी।"

यही कारण है कि झाँसी के सारे निवासी युद्ध में रानी और झाँसी के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा देते हैं ! राजा नवाबों के विषय में बात करता हुआ तात्या रानी से कहता है—"राजाओं को अपने सरदारों और प्रजा से प्रणाम लेने में सुख की इति अनुभव होती है। हास विलास और सुरापान में मस्त रहते हैं।" (पृष्ठ १२७) राजा नवाबों का यही घृणित रूप देश की दुर्दशा का कारण था जिसने देश को सब प्रकार से बरबाद करने में कोई कसर न उठा रखी थी ! अंग्रेजों की सफलता इसी कारण हुई कि देशी राजा नवाबों ने उनका साथ दिया, अपने ही भाइयों का खून किया और अपने ही स्वतंत्रता आन्दोलन पर कुठाराघात किया ! वर्मा जी के व्यंग्यों से ये कोई नहीं बचे हैं। तात्या रानी को देशी राजा नवाबों के बारे में बताता है—हैदराबाद के सम्बन्ध में कहता है—"वहाँ नहीं गया। परन्तु इतना निर्विवाद समझिये कि हैदराबाद अंग्रेजों का परम भक्त है। जनता अपने साथ हैं।" ......"सिक्खों में अंग्रेजों को पछाड़ने की शक्ति होते हुए भी फूट इतनी विकट है और राजा इतने स्वार्थान्ध हैं कि अंग्रेज उस ओर से बिल्कुल निश्चिन्त रह सकते है।" रानी इन बातों से यही निष्कर्ष निकालती हैं कि जनता की ही शक्ति वास्तविक शक्ति है। उसी के भरोसे अंग्रेजों के शासन का तख्ता उलटा जा सकता है। राजा नवाबों की सहायता की आशा करना बेकार है। वे कहती हैं—"हाँ, जो साधन, जहाँ मिले उसका उपयोग करना चाहिए ! जनता मुख्य साधन है। राजा और नवाब की पीढ़ी दो पीढ़ी ही योग्य होती हैं परन्तु जनता की पीढ़ियों की योग्यता कभी नहीं छीजती।" वे जनता का भरोसा करके ही आगे बढ़ती हैं और सामान्य जनता अपने रक्त की भेंट देकर उनके विश्वास को स्थाई रखती है।

स्वतंत्रता संग्राम चल रहा है। कालपी में पुनः सेना एकत्र की जाती है। बानपुर, शाहगढ़ और बाँदा के नवाब की सेनाएँ भी आ चुकी थीं ! पर नवाबों को इस लड़ाई से विशेष तात्पर्य न था। वे अपने विलास में ही अधिक लिप्त थे। "उधर रोज़ लुहारी के किले को, कोंच का पहला मोर्चा समझ कर ले लेने के प्रयत्न में था, इधर कोंच में रात को रावसाहब, बानपुर और शाहगढ़ के राजा तथा बांदा के नवाब की इच्छा नाच देखने की हुई।......................

रावसाहब ने कहा—आज दिन में बहुत गरमी रही। अब ठंडक है। सब लोग

मजे में है। युद्ध पर युद्ध होते रहते हैं, बीच बीच में कुछ आनन्द भी चाहिए" जूही को बुलाने का प्रस्ताव होता है। शाहगढ़ का राजा तात्या से कहता है—भाई टोपे साहब, वह जो झाँसी का तुहफा छावनी में है, उसका नृत्य कब देखने को मिलेगा ?"

तात्या सन्नाटे में आ जाता है। विवश था। जूही के पास जाता है। जूही उसे दृढ़ता पूर्वक उत्तर देती है—"सरदार साहब मैं आपको मन ही मन अपना हृदय भेंट कर चुकी हूं परन्तु आपको इतना स्मरण रहे कि मैं झांसी की रानी की सिपाही हूं और किसी राजा या नवाब से अपने को कम नहीं समझती। ये लोग समझते होंगे कि मैं वेश्या पुत्री हूं। परन्तु वेश्या नहीं हूं और न नाचने गाने का पेशा करती हूं। मेरा प्रस्ताव उस मंडली में किसने किया, सरदार साहब ? और आपके मुँह से यह प्रस्ताव निकला कैसे ?

तात्या उसे विश्वास दिलाता है कि उसने प्रस्ताव नहीं किया था ! जूही रानी से सारी बातें कहती है। रानी अवसर उपयुक्त न देख मन मसोस कर रह जाती हैं। यह है तत्कालीन राजा नवाबों का असली रूप ? इन्होंने ही ५७ की क्रान्ति को असफल किया और सदा के लिए इतिहास के पृष्ठों को कलंकित कर दिया।

इन राजे नवाबों ने साधारण जनता को सांस तक लेना दूभर कर दिया था। प्रजा संतप्त थी और चहती थी कि कब इनका राज्य मिटे और उसे खुली हवा में सांस लेने का अवसर मिले।

रानी का अपने सिपाहियों पर अटूट प्रेम था ! वे अपने हाथ से कलेवा बना कर उन्हें खिलाती हैं। यही कारण है कि उनके सैनिक उनके लिए प्राणों की बलि देने में नहीं चूकते।

रानी भी मर जाती हैं। गुलमुहम्मद उनकी यादगार में एक चबूतरा बनवाता है। एक अंग्रेज उस चबूतरे के बारे में उससे प्रश्न करता है—वह उत्तर देता है—"अमारे पीर का ! वो बौत बड़ा बली था।" गुलमुम्मद का कथन रानी की वीरता को वास्तव में उभार देता है। रानी के अन्तिम क्षणों में उसकी चीख दूर दूर तक गूँज गई थी और वह बच्चों की तरह हिलक हिलक कर रोने लगा था। यदि देशी राजे नवाब संगठित होकर रानी को सहयोग देते, अपनी विलासिता और फूट को कुछ समय के लिये दूर रख देते तो कोइ संदेह नहीं कि अंग्रेजों के शासन का जुँआ भारतीय जनता के कंधों से १८५७ में ही उतर जाता। पर इनका भी अपना एक इतिहास रहा है—उनकी विलासिता—अत्याचारों और कामुकता का, उनके निजी स्वार्थों का। उन्होंने रानी को वास्तविक सहयोग न दिया, उल्टे युद्ध के दिनों में नाच रँग की महफिलें सजाईं—सुरापान में मस्त रहे, जब सर पर बीती तब चेते। वर्मा जी ने स्पष्ट ही लिखा

है—"सरदारों ने रानी को प्रधान सेनापति न बना कर इतिहास में अपनी पराजय पेशगी लिख दी ।"

तात्या बच गया था ! उसका भी अन्त हुआ । वर्मा जी ने लिखा है—तात्या को आशा थी कि इतना सब खो जाने पर भी मैं देश को जगा दूँगा और खड़ा कर लूँगा । परन्तु जैसा कि इस अभागे देश में होता चला आया था राजपूताने के एक उसके मित्र राजा ने विश्वासघात करके पकड़वा दिया । तात्या को शिवपुरी में अप्रैल सन १८५६ में फांसी दी गई ।" झाँसी निवासी रानी की अमर स्मृति को आज भी सुरक्षित रखे हैं । "झांसी के हृदय में, झांसी की रानी का राज्य सदा बना रहा । लावनियों में, फागों में, गाँवों और शहरों में किसान और मजदूर उनके सम्बन्ध में अपने निजत्व को प्रकट करते रहे हैं । उनकी एक स्मृति झांसी नगर में आज भी जनता को पकड़े हुए है—होली जलने के बाद की प्रथमा के दिन झांसी वाला होली नहीं मनाता । वह दिन उसके लिए सूतक है ।"

'टूटे काँटे' भी सामन्तीय व्यवस्था के प्रति अपना घोर विरोध प्रकट करता है । देशी राजा नवाबों के स्वार्थों में पिसती हुई जनता का चित्र इसमें अत्यन्त सजीवता के साथ उभरा है—बाजीराव लड़ता है, निजाम लड़ता । है, मुहम्मदशाह लड़ता है, नादिरशाह कत्ले आम का आदेश देता है—पिसती साधारण जनता ही है । सत्तर करोड़ की जो सम्पत्ति नादिरशाह लूट कर ले गया था उसमें साधारण जनता की खून पसीने की कमाई का कितना भाग होगा इसका अनुमान भर लगाया जा सकता है । मुहम्मदशाह और सादत खाँ की अनबन, निजाम की महत्वाकांक्षाएँ नादिरशाह को बुलाती हैं—मारी जाती है साधारण जनता ! वर्मा ने जिस सजीवता से इनके अत्याचारों और निकम्मेपन का वर्णन किया है वह इनके प्रति हमारी सारी घृणा उभार देता है ।

दूसरी ओर वर्मा जी की सहानुभूति साधारण जनता के प्रति रही है । मोहन और शुबराती की मित्रता को दिखा कर उन्होंने एक बार पुनः हिन्दू मुस्लिम ऐक्य पर बल दिया है । राजा नवाब भले ही लड़ें, साधारण जनता चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान सदैव एक रही है और भविष्य में भी रहेगी ।

एक नर्तकी है नूरबाई ! सामन्ती वैभवों में रह कर कुछ दिन उसकी चमक दमक देख लेती है । उसे सामन्ती विलासिता से बेहद घृणा हो जाती है और वह एक साधारण जाट सैनिक मोहन के साथ निकल जाती है । संघर्षों में फंसती है, कठिनाइयां झेलती है पर उसे इसमें अपूर्व सुख प्राप्त होता है । वह नूरबाई नाम तक से घृणा करने लगती है । शुबराती भी लड़ता है—राजा नवाबों के लिये ! वह सोचता

भी है पर पेट भरने को कुछ तो चाहिये ही था।

रोनी के ऊपर कानूनगो और सिपाही अत्याचार करते हैं। वह ऊब उठती है। तोता से कहती है—'यहाँ गुजर न होती दिखेगी तो और कहीं चले जायँगे।"
"कहाँ—तोता ने पूछा—
"भरतपुर, डीग, कहीं भी, जहाँ यह सत्यानासी राज्य न होगा ....।"

सामन्ती अत्याचारों के प्रति रोनी का यह रोष स्वाभाविक है। साधारण प्रजा पर इस तरह के अत्याचार आए दिन हुआ करते थे! रोनी सबको कोसती है—"इन कानूनगोओं, जमादारों और सिपाहियों का मिटाने वाला नहीं पैदा होता कोई? जैसे कन्हैया ने कंस को मिटाया था।" (पृष्ठ ७७) !!

साधारण जनता के रोष को प्रस्तुत उपन्यास में वर्मा जी ने बड़ी ही सजीवता से चित्रित किया है। उनकी भविष्य की कामनाओं और आशाओं को भी स्वर दिया है। एक स्थान पर मोहन भी दिन प्रति दिन की उथल पुथलों से जिनके उत्पन्न करने वाले यही राजे नवाब थे—ऊब उठता है और सोचता है—"इतना ऊधम, इतना अत्याचार कि जिसका कोई ठिकाना नहीं। मन चाहता है बहुत से अच्छे दृढ़, और पक्के चाल चलन के लोगों को इकट्ठा करूँ और इन सबको ढाह दूँ।"

मोहन शुबराती और नूरबाई के पारस्परिक सम्बन्धों में भी पग पग पर रोड़े आते हैं पर इनका पारस्परिक प्रेम अटल रहता है। ये सब रोड़ों को पैरों से ठुकरा देते हैं।

नूरबाई को नादिरशाह ईरान ले जाना चाहता है। नूरबाई देश न छोड़ना चाहती थी! वह किले से भागने का प्रयत्न करती है। मोहन उसकी सहायता करता है। पूछता है—"ईरान जा रही थीं, फिर यह सब क्या?
नूरबाई ने तुरन्त उत्तर दिया—मेरी लाश ईरान जायेगी! मैं बच निकलना चाहती हूं।
कहाँ जाओगी?
यहाँ से किसी तरह निकल पाऊँ फिर कहीं भी। वैसे मेरा घर द्वार दिल्ली में है लेकिन मैं घर पर नहीं जाऊँगी क्योंकि फिर पकड़ी जाऊँगी! मैं कहीं दूर देश चली जाऊँगी।
कहाँ?
जहाँ बादशाह या नादिरशाह का हाथ न पहुंच सकता हो। हिन्दुओं के किसी तीर्थ में हाथ भर जगह न मिल जायेगी मुझको?

सामन्ती वैभवों के प्रति नूरबाई की यह घृणा भी स्वाभाविक है। वह उनमें कुछ ही दिन लिप्त रह कर उनकी यथार्थता समझ लेती है।

मुहम्मदशाह के निकम्मेपन का वर्णन तो अत्यधिक सजीव है। वह सामन्ती

विलासिता का प्रतीक कहा जा सकता है, वर्मा जी ने उसे इसी रूप में चित्रित किया है। नादिरशाह सामन्ती अत्याचारों का प्रतीक है।

ब्रज की भूमि में इठलाते हुए नूरबाई कला के वास्तविक स्वरूप को पहचानती है। उसे वह आनन्द प्राप्त होता है जो उसे बड़ी २ महफिलों में भी न मिल पाया था। "नूरबाई गाते गाते नाच उठी और यमुना कूल की ओर बढ़ने लगी। बढ़ते बढ़ते धूप में आगई। मोहन की आंखें बन्द होगई थीं। कानों में तानें गूँज रही थीं और आँखों में कोई गोपी नाच उठी थी। प्रकाश भरी एक झांकी उसने देखी और आँखें खोल दीं। नूरबाई की पदचापों से रज उठ रही थी जिसको पवन के झोंके उसके चारों ओर घुमा घुमा दे रहे थे। किरणें रज के छोटे छोटे से पतले आवरों को चमत्कार दे रही थीं। सलोनी नूरबाई मोहन को प्रकाश में नहाती हुई पुञ्ज प्रकाश का घर सी जान पड़ी।"

यही नूरबाई सामन्तों की आखिरी निशानी सोने की पट्टी को यमुना में फेंक देती है। मोहन सन्न रह जाता है। नूरबाई उससे कहती है—"सोने और हीरों के इन टुकड़ों की कहानी कितनी गन्दी है, तुम नहीं जानते। अब यह बतलाओ कि तुम नापाक नूरबाई को चाहते हो जो कबर में गाड़ दी गई या धुली धुलाई सरूपा को जो तुम्हारे सामने खड़ी है?
"रुँधे हुए स्वर में मोहन के गले से निकला—सरूपा को।" नूरबाई मुस्करा उठती है मोहन श्रद्धा से भरा उसे देखता रह जाता है।

नूरबाई के जीवन में जो परिवर्तन होता है वह सामन्ती वैभवों की निस्सारता को सूचित कर देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में वर्मा जी ने सामन्तवाद की गहरी आलोचना करके जन साधारण के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की है और इस प्रकार अपने मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है।

अहिल्याबाई × :—[१९५५]

'अहिल्याबाई' वर्मा जी का नवीनतम् प्रकाशित ऐतिहासिक उपन्यास है। कथा मुख्यतः इन्दौर की महारानी अहिल्याबाई के राज्यकाल एवं उनके क्रिया कलापों से सम्बन्धित है यद्यपि तत्कालीन भारत की राजनैतिक आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक अस्तव्यस्तता एवं विषमता भी उपन्यास में पूर्णतः उभर उठी है। लेखक की अहिल्याबाई के विषय में अपनी एक आस्था है, प्रस्तुत उपन्यास उसकी इसी आस्था का परिचायक है। जिस समय अहिल्याबाई का राज्य था, वह समय इतिहास की अस्तव्यस्त दशाओं के लिये प्रसिद्ध है! उस युग में और वैसे समय में अहिल्याबाई ने जो कुछ किया वह सराहनीय है!

उपन्यास की कथा अहिल्याबाई के राज्यकाल के अन्तिम वर्षों से सम्बन्धित है! अहिल्याबाई की दानशीलता, उनकी न्याय प्रियता, दूरदर्शिता, लोकोपकारी कार्यों पर लेखक ने विस्तार से प्रकाश डाला है! उसका प्रमुख उद्देश्य अहिल्याबाई की चरित्रगत विशेषताओं को उभारना रहा है और उसमें वह सफल है! अहिल्याबाई एक छोटे से राज्य की रानी थीं, उनका सारा जीवन संघर्ष मय रहा, विपत्तियाँ उन पर पहाड़ बन कर टूटीं परन्तु उन्होंने सब कुछ धैर्य पूर्वक सहा और अपने शासन का एक आदर्श प्रस्तुत किया। स्वयं लेखक के ही शब्दों में :—

"अहिल्याबाई इतिहास प्रसिद्ध सूबेदार मल्हारराव होलकर के पुत्र खण्डेराव की पत्नी थीं! जन्म इनका सन् १७२५ ई० में हुआ था और देहान्त १३—८—१७९५ को, तिथि उस दिन भाद्रपद कृष्णा चतुर्दशी थी! अहिल्याबाई किसी बड़े भारी राज्य की रानी नहीं थीं। उनका कार्यक्षेत्र अपेक्षाकृत सीमित था। फिर भी उन्होंने जो कुछ किया उससे आश्चर्य होता है। × × ×। दस बारह वर्ष की आयु में

× प्रस्तुत पुस्तक समाप्त हो चुकी थी कि इस नवीन ऐतिहासिक उपन्यास के प्रकाशन की सूचना मिली! बिना इसके विवेचन के प्रस्तुत पुस्तक एक प्रकार से अपूर्ण प्रतीत होती! शीघ्रता में 'अहिल्याबाई' पर जो कुछ लिख सका वह यहां प्रस्तुत है! विस्तृत विवेचना तो न की जा सकी, इस संक्षिप्त विवेचन से ही पाठकों को उपन्यास के सम्बन्ध में जो कुछ थोड़ा बहुत मालूम हो सके उसी से वे सन्तोष कर लें ऐसा मेरा आग्रह है।

उनका विवाह हुआ। २६ वर्ष की आयु में विधवा हो गईं! पति का स्वभाव चञ्चल और उग्र था। वह सब उन्होंने सहा। फिर जब बयालीस तेतालीस वर्ष की थीं पुत्र मालेराव का देहान्त हो गया। जब अहिल्याबाई की आयु बासठ वर्ष के लगभग थी दौहित्र नत्थू चल बसा! चार वर्ष पीछे दामाद यशवन्तराव फणसे न रहा और इनकी पुत्री मुक्ताबाई सती हो गईं। दूर के सम्बन्धी तुकोजीराव के पुत्र मल्हारराव पर उनका स्नेह था, सोचती थीं कि आगे चलकर यही शासन, व्यवस्था, न्याय और प्रजारंजन की डोर सँभालेगा पर वह अन्त तक उन्हें दुख देता रहा × × ×। अहिल्याबाई ने अपने राज्य की सीमाओं के बाहर भारत भर के प्रसिद्ध तीर्थों और स्थानों में मन्दिर बनवाये, घाट बँधवाये, कुओं और बावड़ियों का निर्माण किया, मार्ग बनवाये सुधरवाये, भूखों के लिये अन्न सत्र खोले. प्यासों के लिये प्याऊँ बिठलाईं, मन्दिरों में विद्वानों की नियुक्ति शास्त्रों के मनन, चिन्तन और प्रवचन हेतु की। और, आत्मप्रतिष्ठा के झूठे मोह का त्याग करके, सदा न्याय करने का प्रयत्न करती रहीं—मरते दम तक! ये उसी परम्परा में थीं जिसमें उनके समकालीन पूना के न्यायाधीश राम शास्त्री थे और उनके पीछे झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई हुईं!!"

कथा में अहिल्याबाई की इसी न्याय प्रियता, आदर्श शासनव्यवस्था, लोकोपकारी कार्यों आदि का विस्तार से वर्णन है!

चरित्रों में प्रमुख अहिल्याबाई, मल्हारराव, सिन्दूरी व आनन्दी हैं! गौण चरित्रों में गनपतराव, भीकाजी, भारमल दादा होलकर आदि हैं! अहिल्याबाई के चरित्र के विषय में हमें विशेष नहीं कहना। उनका सारा जीवन परिस्थितियों, विपत्तियों एवं विघ्न बाधाओं से संघर्ष करने में बीता। तत्कालीन अस्त व्यस्त युग में भी उन्होंने जो कुछ किया, अपने शासन एवं न्याय प्रियता का जो आदर्श उपस्थित किया वह अपूर्व है! उपन्यास उन्हीं के चरित्र का प्रतिबिम्ब है।

मल्हारराव अहिल्याबाई के संबंधी तुकोजीराव का पुत्र था—उनकी आशाओं का केन्द्र! परन्तु मल्हार ने अहिल्याबाई की सारी आशाओं पर पानी फेर दिया। फिर भी अहिल्याबाई ने जीवन पर्यंत उससे स्नेह किया और उसे सुधारने में प्रयत्नशील रहीं! मल्हार न सुधरा और यह दुख लिये अहिल्याबाई की मृत्यु भी हो गई! मल्हार उश्रृंखल, विलासी एवं अयोग्य था! जीवन भर वह लूटमार में व्यस्त रहा, और इसी लूट मार के बल पर ही शिवाजी के समान आदर्श शासक बनने में प्रयत्नशील रहा, पर यह उसकी बहक थी, परिणाम भी उसे ही भुगतना पड़ा। कुसंगति ने उसे भ्रष्ट और विलासी बनाया, चापलूसों से घिरे रहने के कारण कभी भी अपने को अहिल्याबाई की इच्छाओं के अनुरूप न बना सका! वह युग सामन्तवाद के अन्तिम चरणों का युग था! सामन्त

भ्रष्ट व विलासी हो गये थे। मल्हार ऐसे ही पतनोन्मुख सामन्तों का प्रतिनिधि बनकर उपन्यास में आया है जिन्होंने अंग्रेजों के पैरों को भारत में दृढ़ता से जमाने में सहयोग दिया।

सिन्दूरी साधारण वर्ग की युवती है—धार्मिक अन्ध विश्वास उससे अपनी जीभ काट कर देवी पर चढ़वा देते हैं ! वह बहरी थी ही, गूँगी भी हो जाती है। दरिद्रता उसे भोपत के साथ डाकों में भाग लेने को बाध्य करती है ! मल्हार सिन्दूरी पर आकर्षित होता है ! सिन्दूरी अहिल्याबाई के सम्पर्क में आती है ! उनका सम्पर्क उसके जीवन के क्रम को बदल देता है ! उसका चरित्र अत्यधिक ऊँचा उठ जाता है। मल्हार के जाल में फँसने से वह इंकार कर देती है ! अहिल्याबाई का साहचर्य ही उसके लिये सर्वस्व बन जाता है ! अहिल्याबाई के अन्तिम क्षणों तक वह उनके साथ रहती है। उसे अहिल्याबाई का अपार स्नेह प्राप्त होता है, वह अपने जीवन को धन्य समझती है।

आनन्दी भी सिन्दूरी की भाँति ही साधारण वर्ग की है ! षड़यन्त्रों में खेलती है ! मल्हार को अपने रूपजाल में भी फाँसने की चेष्टा करती है ! मल्हार उससे विरक्त रहता है ! दरिद्रता आनन्दी को भी विपत्तियों एवं षड़यन्त्रों में भाग लेने को बाध्य करती हैं ! मल्हार से प्रतिशोध लेने का भी प्रण करती है ! परिस्थितियों की चपेट आनन्दी का नाश कर देती है ! मल्हार से प्रतिशोध लेना तो दूर रहा अनजाने में वह मल्हार के हाथों ही मरती है ! आनन्दी की मृत्यु हमारे हृदय में उसके प्रति सहानुभूति उत्पन्न करती है ! आनन्दी का चरित्र परिस्थितियों से प्रभावित है। हमें उसके ऊपर दया आती है। दरिद्रता, आर्थिक कष्ट, सामाजिक विषमताएँ, उसकी हत्या एवं उसके चरित्र की काली रेखाओं की उत्तरदायी हैं !

गनपतराव डाकू है। अहिल्याबाई का प्रभाव, उनका सम्पर्क, उसके चरित्र को सुधारता है ! प्रायश्चित कर वह अपने प्राण त्याग देता है।

भीकाजी मल्हार का सहयोगी है। धूर्त, चालबाज एवं कपटी है ! मल्हार को बिगाड़ने में उसका प्रमुख हाथ है !

भारमल दादा होलकर का चरित्र सुन्दर है !!

कहने का तात्पर्य यह कि चरित्र चित्रण सुन्दर है ! अहिल्याबाई, सिन्दूरी, आनन्दी, मल्हार आदि के चरित्र विशेष कुशलता से चित्रित किये गये हैं ! सबमें अपनी अपनी विशेषताएँ दुर्बलताएँ हैं। अहिल्याबाई व सिन्दूरी का चरित्र विशेष आकर्षक है !!

भाषा शैली व कथोपकथन साधारण हैं। उनमें कोई विशेष उल्लेखनीय बात नहीं है।

देशकाल चित्रण में उपन्यासकार बहुत बड़ी सीमा तक सफल हुआ है।

तत्कालीन भारत की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक अस्तव्यस्तता के चित्र उपन्यास में पूरी तरह से उभर उठे हैं !

राजनैतिक अस्तव्यस्तता उस युग में पराकाष्ठा पर थी ! अंग्रेज अपनी शक्ति दृढ़ता से केन्द्रित कर रहे थे । देशी राजा नवाबों की पारस्परिक फूट उनको अकथनीय सहयोग दे रही थी ! उनके पारस्परिक स्वार्थ, उनकी लड़ाइयां उनकी रही सही शक्ति को भी चूसती जा रहीं थीं ! निजाम अपनी महत्वाकाँक्षा में लीन था, मराठे अपनी ! मराठों में सिंधिया व होलकर एक दूसरे से जूझ रहे थे ! रामपुरा भरतपुरा के राजपूत होलकरों से भिड़ रहे थे ! बटमारी, लूटमार, जंगली जातियों के उपद्रवों ने एक भीषण उथल पुथल मचा रखी थी । अंग्रेज इससे लाभ उठा रहे थे !

सामाजिक व आर्थिक विषमता भी उत्कर्ष पर थी ! राजा नवाबों के आये दिन के युद्धों से साधारण प्रजा संतप्त और भयभीत रहती थी ! दरिद्र इतनी थी कि अपनी निरीहता में सिसक रही थी । उसका जीवन दूभर हो गया था । 'परिचय' में स्वयं उपन्यासकार ने ही लिखा है—

"चारों ओर गड़बड़ मची हुई थी । शासन और व्यवस्था के नाम पर घोर अत्याचार हो रहे थे । प्रजाजन—साधारण गृहस्थ, किसान, मजदूर अत्यन्त हीन अवस्था में सिसक रहे थे, उनका एक मात्र सहारा धर्म—अंधविश्वासों, भयत्रासों और रूढ़ियों की जकड़ में कसा जा रहा था । न्याय में न शक्ति रही थी, न विश्वास ।"

ऐसी आर्थिक विषमता—और प्रजा का यह पीड़न—वास्तव में हृदय द्रावक है। उपन्यास के पृष्ठ १६४ में उपन्यासकार ने एक स्थान पर और भी इस आर्थिक विषमता का उदाहरण प्रस्तुत किया है। महारानी अहिल्याबाई की सेना को रण विद्या में दीक्षित करने के लिये ददुर्नेक नामक फ्रान्सीसी नौकर रखा जाता है। "वेतन उसको दो हजार रुपया महीना तै हुआ । सिपाही को ६ रुपया मासिक दिये जाते थे । हरकारों और डाकियों को ५ रुपया महीना ही ! आर्थिक विषमता उस काल में इतनी गहरी जड़ें पकड़े हुऐ थी कि कोई नहीं मिटा सकता था ।"

साधारण प्रजा की तो बात क्या स्वयं राजा नवाबों के कोष ही पारस्परिक युद्धों के कारण खाली हो चुके थे ! सामन्तों की दशा और भी गिर चुकी थी इसी कारण अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिये वे साधारण प्रजा को लूटते थे !

धार्मिक अंधविश्वासों का इतना जोर था कि लोगों को पल पल पर धर्म के बवंडरों से घिर जाना पड़ता था ! जीभ काट कर देवी को अर्पित करना, ऊँचे टीले पर से नर्मदा में कूद कर मुक्ति पा जाना साधारण सी बातें थी ! बलिदानों का भी जोर था । अहिल्याबाई स्वयं धार्मिक मनोवृत्ति की थीं, इन अंधविश्वासों को वे भी न

मिटा पाई ! विपत्तियों की चोटों ने अवश्य इन धार्मिक अंधविश्वासों के प्रति उनको सजग कर दिया ! पुत्री के सती होने की उन पर गहरा आघात लगा ! चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा देख पड़ने लगा । वे सोचने को बाध्य होगई—

"दान पुण्य, होम हवन, जप तप सब व्यर्थ गया । मेरा पुत्र गया । दौहित्र, दामाद और पुत्री का अन्त हुआ ! मैं और अब क्या देखने को बची हूं । कोई आड़े न आया । भजन पूजन सब असफल । ये जितने अंधविश्वास हैं सब व्यापक भय के कारण उत्पन्न हुए हैं । देवी को जीभ काट कर चढ़ाना, मुक्ति के नाम पर पहाड़ी से गिर कर आत्मघात करना, खरगोन के चबूतरे, खम्भे और फरसे का पूजन, देवताओं के सामने पशुओं का बलिदान ! ओह ! न जाने कितने घोर कर्म धर्म के नाम पर किये जा रहे हैं.......... .... ।"

सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक विषमता के इस युग में अहिल्याबाई हुईं ! उन्होंने जिस योग्यता, दूरदर्शिता एवं कुशलता से राज्य संचालन किया, जनजीवन के कल्याण के लिये प्रयत्न किया वह इतिहास और प्रस्तुत उपन्यास से बहुत कुछ लक्षित हो जाता है । उपन्यासकार ने अहिल्याबाई के चरित्र एवं उनके राज्यकाल की जिन बातों का वर्णन किया है, वे महत्वपूर्ण हैं ! इतिहास की ऐसी महिला का चित्रण कर उसने वास्तव में एक स्तुत्य कार्य किया है !

उपन्यास साधारण है, तत्कालीन युग का वास्तविक प्रतिबिम्ब होने एवं अहिल्याबाई के चरित्र को सुन्दरतापूर्वक आंकने के कारण ही उसका महत्व है ।

इति